सूची

मुद्रक—श्री हकूमतलाल, विश्वभारती प्रेस, पहाड़गंज, नई दिल्ली।

अध्याय १

जहीरुद्दीन मुहम्मद बाबर

(१५२६—३० ई०)

मुगल काल:—भारतीय इतिहास का यह प्रसिद्ध युग बाबर के आक्रमण से
म्भ होता है। यह आक्रमण देहली के सुल्तान इब्राहीम लोदी के चाचा अलाउद्दीन
र पंजाब के गवर्नर दौलतखाँ के निमन्त्रण से हुआ। पानीपत के युद्ध-क्षेत्र में
य-श्री बाबर के हाथ रही। इस विजय के परिणामस्वरूप भारतवर्ष में मुगल-
म्राज्य की स्थापना हुई, जिससे भारतवर्ष उन्नति के उच्चतम शिखर पर पहुँच गया
। राज-दरबार प्रसिद्ध विद्वानो एव कलाकारो से परिपूर्ण हो गया। इन सबका
रण मुगल सम्राटो की उदारता तथा गुणग्राहकता थी।

'मुगल वंश का संस्थापक' जहीरुद्दीन मुहम्मद बाबर.—मुगल वश का
थापक जहीरुद्दीन मुहम्मद बाबर अपने पिता की ओर से तैमूर का वशज था। उसकी
ा चगेजखाँ के वश में से थी। इस प्रकार उसकी रगो में मध्य एशिया के दो
द्ध योद्धाओं का रक्त विराजमान था, तथा उसमें दोनो वशो की विशेषताएँ थी।
प्रकार हम देखते हैं कि बाबर मुगल न था। अपनी स्मृति में वह स्वय मुगलो के
ा घृणा प्रगट करता है, और अपने आप को तुर्क कहता है। इसपर आश्चर्य होता
कि फिर इस वश का नाम मुगल वश क्यों पडा? अफगानो के अतिरिक्त अन्य
लम आक्रमणकारियों को भारतीय जनता मुगल कहती थी। अतः बाबार को भी
ति मुगल ही कहा, अतः यह वश जनता के दिये हुए नामानुसार मुगल वश ही
लाया, तुर्क वश नहीं, जैसा की बाबर की अभिलाषा थी।

बाबर का प्रारम्भिक जीवन:—बाबर का जन्म २४ फरवरी सन् १४८३
को हुआ था। उसका पिता उमरशेख मिर्जा तैमूर के मध्य एशियन साम्राज्य मे
छोटे से भाग फरगाना का शासक था। वह केवल ११ वर्ष का ही था कि उसके
ा का देहान्त हो गया और अपने छोटे से राज्य का भार उसके नन्हे कन्धों पर आ
, परन्तु उसकी राज्य प्राप्ति उसके चाचाओ तथा कुटुम्बी भाइयो को बहुत असह्य
और वे स्वय उसकी सम्पति पर अधिकार करने का निरतर प्रयत्न करने लगे।

उनमें से एक ने तो गद्दी पर बैठने के पश्चात् ही उसपर आक्रमण कर दिया, तथ अन्य अपने जीवन पर्यन्त उसके साम्राज्य को हड़पने का प्रयत्न करते रहे। सर्वप्रथ अहमद मिर्जा नामक उसके चचा ने, जो समरकंद का शासक था उसका विरोध किय परन्तु एक वर्ष पश्चात् उसका देहान्त होगया और समरकंद छिन्न-भिन्न दशा में ! गया। इस अवसर से लाभ उठाकर बाबर ने समरकंद पर अधिकार कर लिया। इ प्रकार वह अपने महान् पूर्वज तैमूर की गद्दी पर बैठा।

बाबर के जीवन में उत्थान पतन:—इस समय उसकी अवस्था केवल ! वर्ष की थी। परन्तु उसकी अनुपस्थिति का लाभ उठाकर उसके महत्वाकांक्षी म ने यह प्रसिद्ध कर दिया कि एक आकस्मिक रोग से बाबर का देहान्त हो गया। उसने इस लाघवता से यह षडयन्त्र रचा कि सबको विश्वास हो गया, और उ बाबर के छोटे भाई जहाँगीर को फरगाना कि गद्दी पर बैठा दिया। जब बाबर यह सूचना मिली तो वह तुरन्त समरकंद से चल पड़ा परन्तु उसने समरकंद छ ही था कि उसके चचेरे भाई अली ने उस पर अधिकार प्राप्त कर, अपने आपको का स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया। इधर वह फरगाना पर भी पुन अधिका कर सका। इस प्रकार सन् १४९८ ई० में समरकंद और फरगाना उसके हा जाते रहे केवल खोजन्द नामक स्थान पर, जो समरकंद और फरगाना के बीच ि है उसका आधिपत्य रह गया। यहाँ वह अवसर की प्रतीक्षा करता रहा, और १४९९ ई० में फरगाना पर अधिकार करने में सफल सिद्ध हुआ। एक वर्ष उप उसने समरकन्द पर पुन अधिकार प्राप्त कर लिया। अब उजबेगो ने उसको श पूर्वक न रहने दिया उनके सरदार जो शैबानीखाँ के नेतृत्व में थे, निरंतर समरक पर आक्रमण करने लगे। १५०१ ई० में उन्होंने बाबर को परास्त किया। इस प्रक समरकंद दूसरी बार भी उसके हाथो मे जाता रहा। एक वर्ष बाद फरगाना उसके हाथ से निकल गया।

बाबर की सब आशाओं पर पानी फिर गया। ऐसी दशा में उसने फ़रगा से विदा ली और १५०१ ई० में अफगानिस्तान में अपनी भाग्य परीक्षा करने अग्रसर हुआ। अभी काबुल पहुँचा भी न था कि उसे सूचना मिली कि समरकंद अमीरों के एक प्रभावशाली दल ने उसके चचा के विरुद्ध विद्रोह कर दिया है ? वह राज्य वंश के किसी योग्य व्यक्ति को गद्दी पर बैठाने के लिए उत्सुक है। १५०४ ई० म अफगाना को परास्त कर उसने काबुल पर अधिकार कर लिय तत्पश्चात् उसने कंधार, हिरात और बदख्शाँ पर भी विजय प्राप्त की। इस विजय प्रोत्साहित हो उसने एक बार पुन समरकंद पर अधिकार करना चाहा। सन् १५

ई० में उसने फारिस के बादशाह से सधि करली और उसकी सहायता से बुखारा तथा समरकद पर विजय प्राप्त की। इस प्रकार वह अफगानिस्तान और मध्य एशिया का स्वामी बन गया, परन्तु उसकी स्थिति अच्छी न थी। उसका प्रतिद्वन्दी उजबेग सरदार शैबानीखाँ निरन्तर उसकी शान्ति भग करता रहा। इसके अतिरिक्त फारिस के बादशाह की सधि से, जिसमें उसने शिया धर्म स्वीकार करने का वचन दिया था, उसकी सुन्नी प्रजा क्षुब्ध हो उठी। उजबेगों ने जनता की भावनाओं का लाभ उठाकर बाबर को और तग करना आरम्भ कर दिया और एक स्थान के पश्चात् दूसरे स्थान पर अधिकार प्राप्त कर उसको इस दशा पर पहुँचा दिया कि वह अफगानिस्तान तथा मध्य एशिया को छोड भारत की ओर आने की सोचने लगा।

बाबर का भारत पर आक्रमण :—भारत की स्थिति का परिचय प्राप्त कर वह सिंध नदी तक बढ गया और इस प्रदेश को लूटने तथा इस पर अधिकार प्राप्त करने में सफल सिद्ध हुआ। १५१६ ई० में उसने दूसरी बार सीमाप्रान्त पर आक्रमण कर दिया और आगामी वर्ष में वह सिंध नदी पारकर पजाब प्रान्त में प्रविष्ट हुआ। परन्तु इसी समय सूचना मिली कि उजबेगों ने कधार पर आक्रमण कर दिया है और वे काबुल पर दृष्टि जमाये है। वह तुरन्त काबु[illegible] लौट गया। परन्तु उजबेग साम्राज्य में एक जगह विद्रोह हो गया और वे स्वत: [illegible] कधार छोडकर भाग गये।

सीमा को दृढ करना :—भारत विजय के लिए कध[illegible] को सुदृढ करना आवश्यक था। अतएव उसने कधार पर अधिकार कर उसकी र[illegible] का प्रबन्ध किया। इसके अतिरिक्त उसने गजनी तथा खुरासान के बीच के प्रद[illegible] र अधिकार कर अपनी सीमा को और भी दृढ बना लिया।

भारत की स्थिति :—अपनी सीमा को दृढ करने के [illegible]त् बाबर ने भारत की ओर अधिक ध्यान दिया, यहाँ की राजनैतिक स्थिति अत्यन[illegible]नीय थी। उत्तरी भारत में चारों ओर असन्तोष तथा क्षोभ फैला हुआ थ[illegible] १५१७ ई० में सिकन्दर लोदी का जो कि एक योग्य शासक था, देहान्त हो [illegible] उसके स्थान पर उसका अयोग्य पुत्र इब्राहीम लोदी गद्दी पर बैठा। उसके दुर्[illegible] सब अमीर औ[illegible] सरदार क्षुब्ध हो उठे और वे निरतर षडयत्र [illegible]चने में [illegible]ने लगे। बगाल जौनपुर, मालवा, गुजरात तथा अन्य सीमावर्ती प्रदेश स्वत[illegible]ए। इब्राहीम के चचा अलाउद्दीन तथा पजाब के गवर्नर दौलतखाँ ने बाबर [illegible]न पर आक्रमण करने का निमत्रण भेजा। राणा साँगा ने भी बाबर से [illegible]हार किया और उससे भारत में हस्तक्षेप करने की प्रार्थना की।

पानीपत का प्रथम युद्ध (१५२६ ई०) :—इससे उपयुक्त अवसर और हो ही क्या सकता था। भारतवर्ष निर्बल था, बाबर सबल, दृढ-प्रतिज्ञ तथा तैयार। १५२४ ई० में वह भारत पर आक्रमण करने के लिए चल पड़ा और लाहौर पहुँचा। परन्तु दौलतखाँ लोदी को, जिसने उन भारत पर आक्रमण करने का निमत्रण दिया था, विरोध करने के लिए तत्पर पाया। इसलिए वह सैन्य-सगठन के लिए काबुल लौट गया। सन् १५२५ ई० के अन्तिम महीनो में उसने पुन भारत पर आक्रमण किया। दौलतखाँ को परास्त कर उसने सम्पूर्ण पजाब पर अधिकार कर लिया, और फिर सरहिन्द के मार्ग से देहली की ओर अग्रसर हुआ। इब्राहीम लोदी ने अपनी सेना एकत्रित की और उसका मुकाबला करने के लिए चल पडा। अप्रैल सन् १५२६ ई० में दोनो सेनाएँ पानीपत के मैदान में आ डटी। बाबर के पास १२००० सिपाही थे, उसने १०० तोप गाडियो को जजीरो से बाँधकर मोर्चा बना दिया। रक्षा-पक्ति और दृढ करने के लिए उसने चारो ओर एक खाई खुदवाई। उसने सेना को दाएँ, बाएँ, केन्द्र, दाईं भुजा, बाईं भुजा आदि भागो में विभक्त किया और यह योजना की कि दाईं भुजा तथा बाईं भुजा कुछ अन्तर से चलती हुई शत्रु के पीछे पहुँच जाए, जबकि दक्षिण तथा वाम टुकडियाँ खुलते हुए वर्ग की भाति आगे बढें। इस प्रकार समस्त सेना एक वृत्त बनाकर इब्राहीम की सेना को चारो ओर से घेर ले। इब्राहीम की सेना एक लाख थी। परन्तु सुसगठित न थी। अत. बाबर की युद्ध कला के सामने न ठहर सकी। इब्राहीम लोदी युद्ध करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ और उसकी सेना परास्त हुई। देहली और आगरा बाबर के हाथ आ गए। २२ अप्रैल सन् १५२६ ई० को दोनों नगरो की मस्जिदो में बाबर की दुआ मागी गई। इस प्रकार पानीपत के प्रथम युद्ध ने अफगान साम्राज्य का अन्त कर मुगल-राज्य की नींव डाली।

भारत में प्रारम्भिक कठिनाइयाँ:—पानीपत की विजय ने बाबर को देहली तथा आगरे का बादशाह बना दिया, किन्तु भारत का नही और समस्त भारत का तो बिल्कुल ही नहीं। ऐसा बनने के लिए उसके मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ थीं। प्रतिद्वद्वी अफगान यद्यपि परास्त हो गए थे परन्तु पूर्णतया पराजित नही हुए थे। उनमें से कई अब भी स्वतत्र आचरण करते थे, और उसके अधिकार की अवहेलना करते थे। जनता भी राज्य परिवर्तन का विरोध कर रही थी। राजपूत राजा/जो इब्राहीम के पतन में हिन्दू-साम्राज्य का स्वप्न देख रहे थे, बाबर के भारत मे ही स्थिर होने पर निराश हो गए। इस प्रकार बाबर की स्थिति अच्छी न थी। स्थिति और भी खराब उस समय हो चली, जब उसके बहुत से साथी स्वदेश लौटने को कहने लगे। भारतवर्ष की गर्मी उन्हें असह्य हो गई, और वे अपने घर लौटने को विह्वल थे।

भारत ठहरने या विचार—बाबर ने इसके विपरीत भारतवर्ष पर साम्राज्य स्थापित करने के विचार से आक्रमण किया था। वह भारतवर्ष में ठहरने के लिए आया था। अत उसने अपने सैनिको से एक मार्मिक अपील की, और उनके हृदय में एक नवीन स्फूर्ति का सचार किया। उसने इन्हे स्पष्टतया बतलाया है कि एक साम्राज्य, जो उन्होने इतने रक्तपात के पश्चात् प्राप्त किया है इस प्रकार नही छोड देना चाहिए। अतः उसने एक घोषणा निकाली जिसमें उसने भारतवर्ष में ठहरने की दृढ प्रतिज्ञा प्रदर्शित की। उसने काबुल के लिए लालायित सैनिको को यह कहकर छुट्टी दे दी कि वे ऐसे सिपाहियो को अपनी सेना में रखना चाहता है जिन्हे अपने बादशाह तथा अपने देश का गौरव प्रिय हो। घोषणा का अभीष्ट प्रभाव पडा। सब कानाफूसी बन्द हो गई, और उसके पदाधिकारियो ने स्वामिभक्ति की शपथ ली। उनको बाबर ने बडी-बडी जागीरें प्रदान की। इस प्रकार भारत में मुगल अपना साम्राज्य स्थापित करने में सफल हो गए। उन्होने बियाना, ग्वालियर तथा धौलपुर पर विजय प्राप्त की। उसके पुत्र हुमायूँ ने जौनपुर, गाजीपुर पर विजय प्राप्त की। बाबर स्वय आगरा में ठहरा रहा और सम्पूर्ण विजय प्राप्त करने की योजना तैयार करता रहा। इसी समय इब्राहीम की माता ने बाबर को विष देकर उसकी हत्या का षडयन्त्र रचा, परन्तु वह सफल न हो सका।

राजपूतों से युद्ध:—जब बाबर ने भारतवर्ष में ठहरने का विचार किया, तो राजपूतो की आँखें खुल गईं। वे समझते थे कि बाबर भी अन्य मगोल सरदारो की भाँति इब्राहीम को परास्त कर तथा लूट-मार कर अपने देश को वापिस लौट जायगा, और इस प्रकार देहली की शक्ति अस्त-व्यस्त होने से भारत पर हिन्दू साम्राज्य पुनः स्थापित करने में सहायता मिलेगी। अब उन्होने बाबर को भारत में ठहरने के लिए दृढ प्रतिज्ञ पाया तो वे अधीर हो उठे और वे प्रसिद्ध मेवाड के राणा सग्रामसिंह के नेतृत्व में बाबर से युद्ध करने की तैयारी करने लगे। सग्रामसिंह वास्तव में एक बुद्धिमान् तथा गुणी राजा था राजपूत रियासतें उसको बहुत श्रद्धा की दृष्टि से देखती थी। अजमेर, सीकरी तथा बूँदी उसके अधीन थे। उसने अपनी सैनिक शक्ति खूब बढा ली थी। वह अनेक युद्धो में लड चुका था उसके शरीर पर ८० घावो के चिन्ह थे। युद्ध में उसका एक हाथ, एक पैर तथा एक आँख भी जाती रही थी।

११ फरवरी को बाबर राणा से युद्ध करने के लिए आगरे से चल पडा। बाबर का प्रारम्भिक आक्रमण राजपूतों ने विफल कर दिया। पराजित सैनिक युद्ध-स्थल छोडकर भाग गये। जिससे मुसलमान सेना में अत्यन्त निराशा फैल गई । इसी स काबुल से एक ज्योतिषी आया। उसने यह भविष्यवाणी की कि 'यु

विजय अत्यन्त कठिन है।' इससे सेना की बिल्कुल कमर टूट गई और ये काबुल लौटने को अधीर हो उठे। बाबर ने देखा कि प्राप्त किया हुआ साम्राज्य हाथ से निकला जा रहा है, इससे उसके हृदय को बहुत चोट लगी। उसने शराब न पीने की शपथ खाई, उसने अपने शराब के प्याले तोड डाले। उसने एक युद्ध सम्बन्धी सभा की। जिसने बाबर को सम्मति दी कि उसको आगरा में एक वीर सेना छोड पंजाब से लौट जाना अच्छा होगा। इस पर बाबर ने घोर निराशा प्रकट की। उसने कहा कि ससार के सब मुस्लिम बादशाह यह सुनकर कि बाबर मृत्यु के भय से एक साम्राज्य छोडकर भाग आया, क्या कहेंगे ? तुरन्त उसने अपने समस्त सैनिको को एकत्रित कर एक ओजस्वी भाषण दिया, "सेनाध्यक्षो व सैनिको ! प्रत्येक मनुष्य ससार में जन्म लेता है और मृत्यु को प्राप्त करता है। केवल ईश्वर ही अमर, अजर, तथा अनन्त है। जो मनुष्य जीवन के प्रीत-भोज में सम्मिलित होता है, वह मृत्यु पाकर संसार से विदा लेता है। जो भी इस मृत्युशाला में प्रवेश करता है, एक दिन अवश्य इस अपार ससार से चल बसता है। इस प्रकार जब मृत्यु अनिवार्य है तो फिर अपमान-जनक जीवन व्यतीत करने में क्या लाभ ? आदरपूर्वक हम मृत्यु का ही आलिंगन क्यो न करें ? प्रसिद्धि से यदि मैं मृत्यु को भी प्राप्त होता हूँ तो मैं सतुष्ट हूँ, जब मेरा शरीर मेरा नही, मृत्यु का है, तो प्रसिद्धि तो मेरी है।

सदा परमपिता परमात्मा की हमारे प्रति असीम कृपा रही है। उसने हमें इस परिस्थिति पर पहुँचाया है कि जहाँ यदि हम युद्ध करते हुए मृत्यु को प्राप्त हो तो शहीद कहलाने के अधिकारी होंगे और यदि हम विजय प्राप्त करते हैं, तो गाजी कहलायेंगे। अत. मै अपने सब साथियो से प्रार्थना करता हूँ कि वे उच्च स्वर में एक साथ शपथ लें कि तुममें से कोई भी भागकर अपने देश, जाति तथा अपने आपको कलकित न करेगा, बल्कि वीरता पूर्वक युद्ध में वीरगति को प्राप्त होगा।" बाबर के ओजस्वी भाषण ने मृतक सैनिको में नवीन जीवन का सचार किया उन्होंने कुरान की शपथ ली कि वे जीवन मरण में अपने नेता का साथ देंगे। इस प्रकार अपने सैनिको को प्राणार्पण करने के लिए प्रोत्साहित कर बाबर ने धावा बोल दिया। कन्वाह के मैदान में राणा सग्रामसिंह व बाबर की सेना एक दूसरे से भिड गई। सम्पूर्ण दिन घोर संग्राम होता रहा, परन्तु सूर्यास्त होने पर राजपूत भाग्य भाग्य भी अस्त हो गया। राणा स्वय बाल-बाल बचा। उसके अनेक साथी युद्ध में काम आये।

कन्वाह के युद्ध का महत्त्व :—कन्वाह का युद्ध भारतीय इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना है। प्रोफेसर रशब्रुक विलियम ने निम्नलिखित शब्दो में इसका वर्णन किया है—"प्रथम तो इस युद्ध से राजपूतो की वीरता का भय, जो सोलहवी

शताब्दी में मुसलमानो को था, सर्वथा समाप्त हो गया। दूसरे, मुसलमान साम्राज्य भारतवर्ष में स्थापित हो गया। इब्राहीम की पराजय के पश्चात् देहली, आगरे की प्राप्ति उसके जीवन की साधारण घटना कही जा सकती है, परन्तु कन्वाह की विजय ने उसकी काया पलट दी। अब उसका जीवन एक निश्चयात्मक रूप धारण कर गया। उसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर मारा-मारा फिरने की चिंता न रही। इसके बदले उसको एक विशाल साम्राज्य के लिए क्षेत्र प्राप्त हो गया।

भारतवर्ष मे उसे युद्ध करने की आवश्यकता थी क्योंकि उसे अभी बहुत से विद्रोहियो का दमन करना था। परन्तु ये सब युद्ध सिंहासन-प्राप्ति तथा उसकी रक्षा के लिए न थे, वरन् एक साम्राज्य को सम्भालने के विचार से थे। तीसरे, इस विजय से मुगल केन्द्र, काबुल से देहली तथा आगरे में परिणत हो गया। इस प्रकार कन्वाह ने पानीपत की लड़ाई की पूर्ति की।"

चन्देरी युद्धः—कन्वाह के युद्ध ने राजपूत विरोध की शक्ति तोड़ दी। परन्तु फिर भी उन्होने चन्देरी के राजा मेदनीराय के नेतृत्व में भारतीय राज्य-सत्ता पर अधिकार प्राप्त करने का प्रयास किया। जब बाबर को यह विदित हुआ तो उसने शान्ति-पूर्वक इस समस्या को हल करना चाहा। उसने मेदनीय के पास संधि-प्रस्ताव भेजा, जिसके अनुसार उसे चन्देरी के बदले जागीर देने का वचन दिया गया। मेदनी-राय ने सन्धि की धाराएं स्वीकार न की, फलस्वरूप बाबर एक सेना लेकर चन्देरी पहुँचा और किले पर धावा बोल दिया। इसी समय उसे सूचना मिली कि अफगानों ने मुगल सेना को लखनऊ के पास परास्त कर उसे कन्नौज में शरण लेने के लिए बाध्य कर दिया। साधारण मनुष्य तो इस घटना से अस्त-व्यस्त हो उठता, परन्तु धैर्य तथा साहस को मूर्ति बाबर ने घेरा और भी दृढ कर दिया। वह जानता था

बाबर चन्देरी के युद्ध में व्यस्त था, तो उन्होंने मुगल सेना को लखनऊ के पास परास्त कर कन्नौज में शरण लेने के लिये बाध्य कर दिया था। अब उन्होंने विद्वान् तथा जौनपुर में विद्रोह कर दिया और इब्राहीम लोदी के भाई महमूद् लोदी को सुल्तान घोषित कर दिया। बाबर ने अपने पुत्र अस्करी को सेना लेकर उसके विरुद्ध भेजा, और कुछ कालोपरान्त स्वय उससे जा मिला। उसके प्रस्थान की सूचना पाते ही अफगान छिन्न-भिन्न हो गये। उनमें से अनेको न बक्सर के मार्ग में इलाहाबाद, चुनार तथा बनारस के स्थान पर उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। महमूद लोदी यह देखकर बगाल भाग गया, और वहां के शासक नसरुतशाह के यहाँ शरण ली। नसरुतशाह और बाबर एक सधि में बँधे थे, जिसके कारण उनकी राज्य-सीमायें निर्धारित की जा चुकी थी, तथा यह तय पाया था कि कोई एक दूसरे के शत्रु को किसी प्रकार की सहायता न देगा। अत: जब नसरुतशाह ने महमूद लोदी को शरण देदी और सधि का उल्लघन किया तो बाबर बगाल की ओर अग्रसर हुआ और ७ मई सन् १५२९ ई० को घाघरा के युद्ध में अफगानो को पूर्णतया परास्त किया। इस विजय ने अफगानो की आशाओ को समाप्त कर दिया और सब प्रमुख अफगान सरदारो ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। इस प्रकार सफलता प्राप्त कर बाबर वापिस लौटा।

बाबर के अन्तिम दिवस:—कन्वाह के युद्ध के समय काबुल में उजबेगों ने विद्रोह कर दिया। अत: युद्ध-समाप्ति पर बाबर ने हुमायूँ को काबुल भेजा। परन्तु वह विद्रोह समाप्त करने में सफल न हो सका। इसलिए बाबर ने स्वय काबुल के लिए प्रस्थान किया। परन्तु वह लाहौर पहुँचा ही था कि उसका स्वास्थ्य खराब हो गया। अत. उसने आगे बढ़ना बन्द कर दिया। इसी समय मीर मुहम्मद ख्वाजा नामक बाबर के एक निकट सम्बन्धी ने, जो इटावे का जागीरदार था, गद्दी प्राप्त करने के लिये षडयन्त्र रचा। जब हुमायूँ को इसकी सूचना मिली तो वह बदखशां से चल पड़ा। यद्यपि बदखशां की स्थिति अच्छी न थी। और वहाँ के अमीरो ने उसके वहीं पर रहने के लिए आग्रह किया था। परन्तु उसने आगरे में आकर प्रतिद्वन्द्वी के प्रयत्न को विफल किया। यहाँ से वह सम्भल चला गया और वहाँ सन् १५३० ई० में बीमार पड गया। यहाँ तक कि उसके जीवन की कोई आशा न रही। वैद्य और हकीम सब निराश हो गये। कुछ विद्वानों ने यह सम्मति दी कि ऐसे सकट के समय हुमायूँ के बचाने का उपाय किसी बहुमूल्य-वस्तु का दान देकर ही सकता है। बाबर ने सोचा कि हुमायूँ के प्राणो की रक्षा के लिए मेरे जीवन के अतिरिक्त और क्या चीज अधिक मूल्यवान् हो सकती है। उसने भगवान् से प्रार्थना की कि हे ईश्वर!

हुमायूँ का रोग मुझ पर आ जावे, तत्पश्चात् हुमायूँ के पलग की तीन बार परिक्रम कर मन में दृढ निश्चय किया कि हुमायूँ का रोग मुझ पर आ गया है और व पलग पर लेट गया। उसी दिवस से हुमायूँ स्वस्थ होता चला आया और बाब का स्वास्थ्य गिरने लगा। अन्त में हुमायूँ पूर्णतया स्वस्थ हो गया और बाबर के जीवन का दीपक बुझ गया। अन्तिम समय उसने हुमायूँ को सम्बोधित कर कहा कि "मैं तुम्हे तुम्हारे भाइयो सहित भगवान को सौपता हूँ और उनकी रक्षा का भा तुम्हे सौपता हूँ। भगवान् तुम्हारी सहायता करे।" तीन दिवस पश्चात् बाबर क देहान्त हो गया। उसको आगरा में दफनाया गया। परन्तु फिर उसको काबुल भेज दिया गया, जैसी कि उसकी इच्छा थी। वहाँ एक रमणीक स्थान में, जिसको वि बाबर ने स्वय चुना था, दफनाया गया।

बाबर का साम्राज्य:—यह बाबर के परिश्रम का फल था कि अफगान पूर्णतया परास्त हुए। राजपूत सत्ताहीन हुए, तथा मुगल साम्राज्य स्थापित हो गया। बाबर समस्त उत्तरी भारत का स्वामी हो गया। उसका साम्राज्य काबुल, पजाब, बगाल, विहार, अवध, ग्वालियर तथा राजपूताने के अधिकतर भागो में फैला हुआ था। उत्तर में हिमालय, दक्षिण में ग्वालियर, पूर्व में बगाल, पश्चिम में पजाब उसकी सीमा थी। यदि वह जीवित रहता तो अपने साम्राज्य का और भी विकास करता। परन्तु भगवान् की इच्छा प्रबल थी कि वह अधिक जीवित न रह सका। यह भी एक कारण था कि हुमायूँ सदैव कठिनाइयो में व्यस्त रहा और अन्त में भारत छोडने को बाध्य हुआ।

बाबर का शासन प्रबन्ध.—भारतवर्ष में बाबर का शासन केवल ५ वर्ष रहा। परन्तु इसने वही स्फूर्ति तथा उग्रता दृष्टिगोचर होती है जो उसके सैन्य सघर्ष में देखने को मिलती है। उसने ग्राड ट्रक रोड की मरम्मत कराई तथा आगरा में एक नवीन राजधानी स्थापित की। जिसे कि उसने सुन्दर भवनो से सुसज्जित किया। उसने अनेको मसजिदो तथा इमारतो की मरम्मत कराई और काबुल तथा आगरा के बीच डाक का प्रवन्ध किया। एक नियमित दूरी पर डाकरक्षक तथा डाक चौकियाँ स्थापित की। जिससे कि डाक कार्य में कोई बाधा न पडे। शासन-कार्यो में वह व्यक्तिगत निरीक्षण को बहुत महत्व देता था। इसलिए उसने अपने साम्राज्य में भ्रमण कर जनता की दशा और भारतवर्ष की सामाजिक तथा राजनैतिक दशा का परिचय प्राप्त किया। उसका यह आचरण जनता को अत्यन्त हृदयग्राही हुआ। उसने एक राजकीय गजट का प्रकाशन कराया। उसने स्कूलो तथा कालिजो के निर्माण को विशेष प्रोत्साहन दिया।

अन्य अनेकों बातों में बाबर ने प्रचलित शासन व्यवस्था का अनुकरण किया। उसने अपने साम्राज्य को जागीरों में विभक्त किया, और प्रत्येक पदाधिकारी को जागीर सुपुर्द की। परन्तु देश अस्त व्यस्त रहा। माल-विभाग का प्रबन्ध सुचारु रूप से न किया जा सका। जिसका परिणाम यह रहा कि राज कर अत्यधिक मात्रा में शेष रहने लगे। इसके अतिरिक्त उसने आगरा तथा देहली पर अधिकार प्राप्त करने के पश्चात् ही समस्त राजकोष अपने सैनिकों में विभक्त कर दिया। इससे और अधिक आर्थिक कठिनाइयाँ बढ़ गईं। यही कारण है कि रशबुक विलियम ने बाबर के विषय में कहा है कि 'बाबर ने अपने पुत्र के लिए इस प्रकार का साम्राज्य छोड़ा जो केवल युद्ध द्वारा ही शृंखलाबद्ध रखा जा सकता था। शान्तिकाल के लिए वह अत्यन्त शक्तिहीन तथा निर्बल था। परन्तु स्मरण रहे कि बाबर को अपनी राजनीतिक व्यवस्था ठीक करने का समय ही न मिला। जो कुछ उसने ५ वर्ष के अल्प काल में किया उससे सिद्ध होता है कि यदि यह अधिक दिन जीवित रहता तो बहुत योग्य तथा उच्च शासक सिद्ध होता ? उसका वसीयतनामा जो उसने अपने पुत्र हुमायूँ के लिए छोड़ा, उसकी नीति प्रकाशित करता है। अकबर ने इसका अनुसरण कर उच्च शासकों में अपनी गणना कराई। इसके द्वारा उसने मुगल सम्राटों को शान्ति तथा धार्मिक उदारता का सन्देश दिया है।

बाबर नामा:— बाबरनामा' बाबर लिखित इसकी स्वयं संसार प्रसिद्ध जीवनी है। इसके कारण बाबर को जीवनी लेखकों का गुरु कहा जाता है। लेखक ने इसमें अपने जीवन का अत्यन्त स्पष्ट रोचक वर्णन अंकित किया है। भारतीय ऐतिहासिक सामग्री में यह एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है, अपनी सरल भाषा तथा रोचक शैली के कारण इसने संसार में पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त करली है। लेखक के व्यक्तित्व का स्पष्ट वर्णन इसका सर्वोत्तम गुण है। इसमें अपने गुणों तथा अवगुणों का नि संकोच वर्णन कर बाबर ने पाठकों के सम्मुख वास्तविक बाबर को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इसमें बाबर ने अपने भाइयों, समकालीन महान् विभूतियों, उनकी वेष-भूषा, प्रकृति, उनके व्यवसाय, उनकी रीति-रिवाज, अत्यन्त स्पष्टता से अंकित किये हैं। अत बाबरनामा इतिहास साहित्य की अमूल्य निधि है।

यह पुस्तक बाबर ने तुर्की भाषा में लिखी थी। १५५३ ई० में हुमायूँ ने इसका अनुवाद किया। १५६० ई० में अकबर के समय में अब्दुर्रहीम खानखाना ने इसका फारसी अनुवाद कर विद्वत्समाज को इससे परिचित किया। अब इसके अनुवाद कई योरपीय भाषाओं में प्राप्य है। पुस्तक का महत्त्व इससे प्रकट होता है।

बाबर का व्यक्तित्व—शासक, योद्धा तथा विद्वान् होने के कारण बाबर मध्यकालीन इतिहास के अत्यन्त आकर्षक सम्राटो में से है। वह इतना बलवान् था कि दो आदमियो को दोनों बगलो में दबाकर किले की दीवार पर दौड सकता था। नदियो में स्नान करना उसे बहुत प्रिय था। यहाँ तक कि एक बार वह एक नदी में, जिसकी धरातल पर बर्फ जमी थी और जिसका तापक्रम शून्य से भी नीचे था, स्नान करने के लिए कूद पडा। स्वाभिमान तथा आत्म-निर्भरता उसमें कूट-कूटकर भरे थे। जब उसके साथी निराश हो अपना साहस खो बैठते थे, तो अपने ओजस्वी भाषण द्वारा उनमें अपूर्व शक्ति तथा साहस का सचार करना उसके बाये हाथ का खेल था। वह अच्छा धनुर्धर तथा खड्गधारी था। उसकी युद्ध-कला मध्य एशिया में मगोल तथा तुर्कों से मिलती-जुलती थी। परन्तु उसने उसमें ऐसे सशोधन किए थे, तथा अपना तोपखाना इतना श्रेष्ठ बना लिया था कि उसको परास्त करना असम्भव नही तो कठिन अवश्य था। उसका सैनिक अनुशासन प्रशसनीय था। बाबर अत्यन्त स्पष्टभाषी तथा प्रसन्न चित्त व्यक्ति था। उसने अपने जीवन पर्यन्त इस गुण को स्थिर रक्खा। कोई भी आपत्ति उसके धैर्य तथा प्रसन्न मुद्रा को भग नही कर सकती थी। वह अत्यन्त उदार हृदय मनुष्य था और अपने शत्रुओ से भी उदारतापूर्वक वर्त्ताव करता था। वह अपने समस्त कुटुम्बियो तथा अन्य जनो को बहुत प्रेम करता था। हुमायूं के लिए अपने प्राण अर्पित कर देना उसका ज्वलन्त उदाहरण है।

कलाप्रियता:—बाबर अत्यन्त कला प्रेमी था। कलाविदो को आर्थिक प्रोत्साहन दे वह उन्हे उन्नति करने में सहायता प्रदान करता था। कलाओ से उसे इतना प्रेम था कि अपने सघर्ष काल में भी वह उन्हे थोडा-बहुत समय दे अपनी तृष्णा शात करता था। भवन निर्माण उसे अत्यन्त प्रिय था। उसे देहली तथा आगरा की इमारतें बडी पसन्द आई। वह ग्वालियर के विशाल भवनो को देखकर बहुत प्रभावित हुआ। 'बाबरनामे' में वह लिखता है कि 'केवल आगरा में उसने भवन निर्माण के लिये ६८० कारीगरो को भर्ती किया जबकि ग्वालियर, सीकरी, धौलपुर तथा आगरा में उसने १४९१ कारीगर इस कार्य में लगाये। दुर्भाग्यवश उसकी सुन्दर इमारतें नष्ट हो गई। केवल दो इमारतें एक पानीपत की काबुल बाग की विशाल मस्जिद और सम्भल की जामा मस्जिद शेष है। जो उसके कला प्रेम को प्रदर्शित करती हैं'।

कविता-प्रेम.—बाबर जन्म का कवि था, वह कवियों तथा विद्वानो का विशेष सम्मान करता था। वह स्वय अपने बाल्यकाल से ही कविता करता था कहा जाता है कि वह तुर्की भाषा का दूसरा प्रसिद्ध कवि था। उसकी पारसी मस-

नवियाँ बहुत लोकप्रिय सिद्ध हुई । इसके अतिरिक्त उसने अलकार तथा छन्दो के विषय में भी एक पुस्तक लिखी । वह प्राय कवि सम्मेलन का आयोजन करता था ।

चित्र-कला:—बाबर चित्र कला-प्रेमी था । कहा जाता है कि वह अपने साथ पूर्वजो के पुस्तकालयो से चित्र-कला के सर्वोत्कृष्ट नमूने लाया था । इनमें से कुछ अपने आक्रमण के समय नादिरशाह वापिस फारिस ले गया । जब तक वह भारत में रहे भारतीय-कला पर प्रभाव डालते रहे ।

गायन-विद्या:—बाबर गायन-प्रेमी था । वह स्वय प्रसिद्ध गायक तथा आलोचक था । उसने-गायन-विद्या-विषयक एक पुस्तक लिखी है, जो उसकी योग्यता तथा गायन प्रेम को पूर्णतया सिद्ध करती है ।

बाग लगवाना:—बाबर बाग लगवाने का भी विशेष प्रेमी था । काबुल का बागेवफा तथा आगरा का आराम बाग दर्शनीय स्थान हैं । इस प्रकार हम देखते है कि बाबर वास्तव में अपने समकालीन बादशाहो में विशिष्ट स्थान रखता है ।

प्रश्न

१ बाबर के प्रारम्भिक जीवन के विषय में तुम क्या जानते हो ?

२ बाबर ने किस प्रकार देहली और आगरा पर अधिकार प्राप्त किया ?

३ बाबर ने अपने साम्राज्य को दृढ़ करने के लिए क्या किया ?

४ बाबर का व्यक्तित्व वर्णन करो ।

५ 'बाबर नामा' पर एक नोट लिखो ।

अध्याय २

हुमायूँ

हुमायूँ का राज्यारोहण:—बाबर का प्रिय पुत्र हुमायूँ नासिरुद्दीन मुहम्मद-हुमायूँ के नाम से अपने पिता की मृत्यु के दो दिन पश्चात् गद्दी पर बैठा। शांति तथा समृद्धि उसके भाग में न लिखी थी। कठिनाइयों ने उसे आरम्भ काल में ही घेर लिया।

अधिकतर संघर्ष में व्यस्त रहने के कारण बाबर को उसकी शिक्षा का अधिक समय न मिला तो भी उसने उसे अधिक से अधिक योग्य बनाने का प्रयत्न किया वह अत्यन्त मिलनसार व्यक्ति, सच्चा मित्र, आज्ञाकारी पुत्र तथा सहृदय भाई था, यद्यपि इन गुणों के कारण उसे बहुत कष्ट उठाना पड़ा।

अपने पिता की आज्ञानुसार हुमायूँ ने अपने भाइयों को साम्राज्य के कई प्रान्तों में गवर्नर बनाया। कामरां को उसने काबुल और कंधार के सूबे दे दिये। हिन्दाल को अलवर व मेवात, तथा अस्करी को सम्भल का गवर्नर बना दिया। अपने चचेरे भाई सुलेमान को उसने बदखशाँ का प्रान्त दे दिया। हुमायूँ द्वारा प्रदर्शित यह भ्रातृ प्रेम उसके पतन का विशेष कारण बना। उसके भाई उसकी उदारता का अनुचित लाभ उठा सदैव उसका साम्राज्य हड़पने का प्रयत्न करने लगे। साम्राज्य वितरण से अपनी सैन्य शक्ति बढ़ाने का सुन्दर अवसर उन्हें मिल ही गया था। इसलिए उनकी आकांक्षाएँ बढ़ गईं। इस प्रकार उसके भाई आजीवन हुमायूँ की सबसे बड़ी कठिनाई रहे। दूसरे मुगल सेना, चगताई, उजबेग, अफगान तथा मुगल सिपाहियों का सम्मिश्रण थी। यह सब अपने-अपने वर्ग के अधिकार को प्रदर्शित कर स्वयं राज्य-सत्ता प्राप्त करने को लालायित रहते थे। इस प्रकार राज्य वंश के अतिरिक्त अनेक सरदार भी ऐसे थे, जितना कि हुमायूँ। हुमायूँ इनका अनेक षड्यन्त्र की स्थिति को सदैव शोचनीय बनाने में सहयोग देते रहे। तीसरे, बाबर को अपने शासन सत्ता सुदृढ़ करने का अवसर प्राप्त न हुआ। भारतवर्ष की बहुसंख्यक प्रजा, अर्थात् हिन्दू मुगलों को अविश्वास की दृष्टि से देखते थे। पूर्व में अफगान सरदार अपनी खोई हुई शक्ति को पुनः प्राप्त करने का स्वप्न देख रहे थे और महमूदखां लोदी बिहार में अपना सैन्य संगठन कर रहा था दूसरी ओर शेरखां ने अपने नेतृत्व में

अफगानो को सगठित करना आरम्भ कर दिया था। तीसरे, गुजरात का बादशाह बहादुरशाह राजपूताने पर विजय प्राप्त करने की योजना बना रहा था। असख्य धन के स्वामी होने के कारण उसने बिहार और बगाल के अफगान सरदारो को आर्थिक सहायता देने का वचन दे साथ ही आन्दोलन करने का आयोजन किया। इस प्रकार चारो ओर हुमायूँ की स्थिति को शोचनीय—बनाने का प्रयत्न किया जा रहा था। इन सबका सामूहिक परिणाम यह हुआ कि हुमायूँ को भारत की रम्य-स्थली छोडकर फारस की ऊबड-खाबड भूमि में शरण लेनी पडी।

कामराँ का पंजाब आक्रमण:—बाबर की मृत्यु के समय कामरॉ काबुल में था। इस प्रात को अस्करी के सुपुर्द कर एक विशाल सेना ले वह भारतवर्ष पर चढ आया। उसने बहाना किया कि वह अपने भाई हुमायूँ को राज्याभिषेक की बधाई देने आ रहा है। हुमायूँ कामराँ की प्रकृति से भली-भाँति परिचित था। वह इस प्रकार धोखे में आने वाला न था। अत. उसने एक अग्रदल पहिले ही उसकी सेवा में भेजा, जिसने पेशावर तथा लमगान प्रात कामराँ को भेट किए, परन्तु कामराँ इससे सतुष्ट न हुआ। वह बढा और लाहौर पर अधिकार कर उसने समस्त पजाब प्रात अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया सैनिक तैयारी न होने के कारण हुमायूँ उसका कुछ न कर सका। इस प्रकार काबुल कधार और पजाब कामरा के अधिकार में आगए। हुमायूँ का कामराँ की इस कार्यवाही पर शान्त रह जाना बहुत बडी भूल थी। क्योकि इस देश पर अधिकार प्राप्त करने के बाद कामराँ हुमायूँ का सैन्य प्रवेश सवथा बन्द कर सकता था। अफगानिस्तान तथा मध्य एशिया से सैनिक भारतीय सेना में भर्ती होने के लिए खैबर तथा बोलान के दर्रे से आते थे, और अब ये दोनों मार्ग कामराँ के अधिकार में थे। अतः वह जिस समय चाहता इन मार्गों को बन्द कर हुमायूँ की सैन्य-शक्ति को अत्यन्त क्षति पहुँचा सकता था, जैसा कि उसने किया था। दूसरे इस प्रकार चुप बैठने से हुमायूँ की निर्बलता सब सरदारो पर प्रकट हो गई, और वह और भी स्वच्छन्दता-पूर्वक हुमायूँ के विरुद्ध आचरण करने में सलग्न हो गए।

बहादुरशाह से युद्ध:—सिहासनारूढ होने के कुछ समय पश्चात् हुमायूँ को अपने प्रभावशाली प्रतिद्वन्दी गुजरात के शासक बहादुरशाह से युद्ध करना पडा। गुजरात भारत का अत्यन्त धनी तथा समृद्धशाली प्रान्त था। उसका शासक बहादुर-शाह अत्यन्त महत्वाकाक्षी पुरुष था। हुमायूँ से युद्ध करने से पूर्व उसने मेवाड के राणा साँगा की सहायता से मालवा पर विजय प्राप्त कर वहाँ के सुल्तान को बन्दी बनाकर चम्पानेर भेज दिया था। खानदेश, अहमदनगर और बरार के बादशाह उसे

अपना सम्राट् मानते थे। पुर्तगाली व्यापारी उसका आधिपत्य स्वीकार कर चुके थे। अपनी सैन्यशक्ति को बढाकर बहादुरशाह ने मेवाड़ के राणा पर आक्रमण कर उसे कठोर सन्धि करने पर बाध्य किया था। अब उसकी आकांक्षायें और भी बढ गईं, और वह समस्त भारतवर्ष की विजय का स्वप्न देखने लगा। उसने इब्राहीम के चचा आलमखां जैसे अफगान सरदारों तथा क्षुब्ध मुगल अमीरों को जो हुमायूँ के दरबार से भाग आये थे, अपनी सेना में भर्ती कर लिया था। इन सबकी सहायता से बहादुरशाह को विश्वास था कि वह देहली की गद्दी पर अधिकार प्राप्त करने में सफल होगा। अपने विरोधी मुगल अमीरों को गुजरात में शरण प्राप्त करते हुए देख हुमायूँ ने बहादुरशाह को लिखा कि वह इन अमीरों को अपनी सेना से निकाल दे, परन्तु उसने ऐसा करने से मना कर दिया। इस पर हुमायूँ एक सेना लेकर गुजरात की ओर अग्रसर हुआ। बहादुरशाह जो इस समय मेवाड़ में था यह सूचना पा तुरन्त हुमायूँ का सामना करने के लिए आया। परन्तु पराजित हुआ और असंख्य धन मुगल सेना के हाथ लगा। बहादुरशाह भागकर चम्पानेर पहुँचा। हुमायूँ ने उसका पीछा किया। परन्तु वह चम्पानेर से निकलकर पुर्तगाली बन्दरगाह ड्यू की ओर भाग गया। हुमायूँ ने अब चम्पानेर का घेरा डाला और चार मास के पश्चात् इस पर अधिकार कर लिया। अपनी सफलता स मुगल इतने प्रसन्न हुए कि वे आमोद-प्रमोद में व्यस्त हो, अपना समय व्यर्थ नष्ट करने लगे। बहादुरशाह ने इस स्थिति से लाभ उठाकर अपने विश्वासपात्र इमादउलमुल्क को हुमायूँ के विरुद्ध सैन्य-सगठन करने के लिए भेजा। इमाद तुरन्त अहमदाबाद पर अधिकार करने में सफल हुआ। पुर्तगाली गवर्नर ने भी बहादुरशाह की सहायता करने का वचन दिया। यह देख हुमायूँ बहुत व्याकुल हुआ उसने तुरन्त एक सेना ल इमाद पर आक्रमण किया और उसे परास्त कर गुजरात अपने भाई मिर्जा अस्करी के सुपुर्द कर स्वय शेरखा को, जिसने बिहार पर आक्रमण किया था परास्त करने के लिए चल पड़ा। परन्तु अस्करी अत्यन्त अयोग्य निकला, उसके सैनिक उसके विरुद्ध हो गए। बहादुरशाह ने जो अवसर की प्रतीक्षा में था तुरन्त अहमदाबाद पर आक्रमण कर दिया और उस पर अधिकार कर लिया। धीरे-धीरे उसने अपना समस्त राज्य मुगलों से छीन लिया। परन्तु वह अपने राज्य का उपभोग करने के लिए जीवित न रह सका। १५३१ ई० में पुर्तगाली गवर्नर ने उसे एक सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए बुलाया। वहाँ उसमें और बहादुरशाह में झगडा हो गया। जिसने बहादुर शाहको अपने बन्दी बनन तथा प्राण-दण्ड पाने का भय उत्पन्न हो गया। बचकर निकलने की कोई तरकीब न देख उसने समुद्र में कूद अपने प्राण विसर्जन कर दिये।

कर दिया तो उसने युद्ध आरम्भ कर दिया परन्तु वह पूर्णतया परास्त हुआ और अपने कुछ साथियो को ले युद्ध स्थल से भाग खडा हुआ ।

हुमायूँ का आगरा से भागना—गगा को पार कर हुमायूँ आगरा आया और वहाँ से अपने परिवार तथा बची-कुची सम्पत्ति ले देहली की ओर चला परन्तु वहाँ भी अधिकार प्राप्त न कर सका। अत वह सरहिन्द की ओर बढा। उसके भाइयो ने उसकी कोई सहायता नही की। कामराँ ने विशेषत उसका विरोध किया। अब हुमायूँ सिन्ध की ओर गया और सक्खर का घेरा डाला। परन्तु वहाँ भी सफल न हुआ। इस समय उसने शेखअली अकबर की सुपुत्री हमीदाबानू से विवाह किया जिससे आगे चलकर अकबर का जन्म हुआ। सक्खर की असफलता के पश्चात् हुमायूँ ने जोधपुर के राजा मालदेव से सहायता माँगी। मालदेव ने ८००० राजपूत देने का वचन दिया। परन्तु जब हुमायूँ ने जोधपुर रियासत में प्रवेश किया तो मालदेव ने शेरशाह के भय से अपनी स्वीकृति बदल दी। यह देख हुमायूँ ने जोधपुर छोड देने मे ही भलाई समझी। वह अमरकोट पहुँचा, जहाँ के राजा ने उसकी आवभगत की और उसे सक्खर तथा ठाठा जीतने के लिए सहायता प्रदान करने का वचन दिया। १५ अक्टूबर सन् १५४२ ई० में अमरकोट के दुर्ग में भारत के भावी सम्राट् अकबर का जन्म हुआ।

इस सुखद घटना के कुछ कालोपरान्त हुमायूँ ने राणा की सहायता से भक्कर पर आक्रमण किया। परन्तु युद्ध के बीच में ही राजपूतो और मुगलो में झगडा हो गया जिससे राजपूत मुगलो का साथ छोडकर चले गये। परन्तु इस समय भक्कर के शासक ने युद्ध से तग आकर सन्धि कर ली और हुमायूँ को ३० नावें, दस सहस्र दीनार, दो हजार मन अन्न तथा ३०० ऊँट देना स्वीकार किया। इस सामान को ले हुमायूँ ने कन्धार की ओर प्रस्थान किया। परन्तु दर्रे में ठहरना उसके लिए खतरनाक था। उसका भाई कामराँ जो कन्धार का शासक था, उसकी जान लेने पर उतारू था। उसने अपने भाई अस्करी और हिंदाल को भी अपनी ओर मिला लिया था। अत अपने पुत्र अकबर को जिसकी अवस्था केवल १ वर्ष की थी, वहाँ छोडकर अब हुमायूँ फारस की ओर गया, और वहाँ के बादशाह को अपने आगमन की सूचना दी।

हुमायूँ का फारिस पहुँचना—फारिस के बादशाह ने सूचना प्राप्त करते ही आज्ञा दी कि हुमायूँ का हृदय से स्वागत किया जाए। फारिस नरेश धर्म का अनुयायी था। उसके स्वागत का अर्थ हुमायूँ को शिया-धर्म स्वीकार करने के लिए बाध्य करना था। परिस्थिति के विचार से उसके साथियो ने सलाह दी कि वह शिया धर्म स्वीकार कर ले। अत उसने फारिस के बादशाह तहमाशप से सन्धि कर ली, जिसके

कारण हुमायूँ ने बड़ी हिचकिचाहट के साथ खतरे के साथ फारिस के बादशाह का नाम जोड़कर शिया-धर्म स्वीकार किया। इसके बदले फारिस के बादशाह ने हुमायूँ को एक सेना दे उसको काबुल कन्धार तथा बुखारा पर विजय प्राप्त करने में सहायता देने का वचन दिया।

काबुल और कन्धार विजय:—१४००० सैनिकों की फारिसी सेना ले यह काबुल की ओर बढ़ा। यहाँ कामराँ ने अकबर को किले की दीवार पर बैठा दिया, जिससे कि हुमायूँ उस पर गोलाबारी करता हुआ हिचकिचाए। परन्तु भगवान की इच्छा थी कि गोलाबारी हुई और अकबर का बाल बाँका न हुआ। परास्त होने के बाद भी कामराँ ने आशाएँ बनाये रक्खी, परन्तु पुन परास्त हुआ। एक रात्रि संघर्ष में मिर्जा हिन्दाल भी मारा गया। कामराँ ने भारत में भागकर सलीमशाह सूर की शरण ली। परन्तु यहाँ के अनुचित व्यवहार से क्षुब्ध हो वह गाखर प्रदेश भाग गया। गाखर सरदार ने उसको हुमायूँ को अर्पित कर दिया। परन्तु अपने पिता के आदेशानुसार उसने उसे प्राण दण्ड देने से मना कर दिया और उसकी आँखें निकलवा ली जिससे कि आगे चलकर वह कोई षड्यन्त्र न कर सके। अब उसने मक्का जाने की इच्छा प्रकट की जो स्वीकृत हुई और अपनी स्त्री के साथ, जिसने आजीवन बड़े पतिव्रत धर्म का परिचय दिया था। वह मक्का चला गया, जहाँ १५५७ ई० में उसका देहान्त हो गया। अब केवल मिर्जा अस्करी शेष रहा। यह अत्यन्त अवसरवादी था और अवसरानुसार कभी हुमायूँ तथा कभी कामराँ की ओर मिल जाता था। वह गिरफ्तार कर लिया गया। उसे मक्का जाने का आदेश मिल गया। इस प्रकार अपने भाइयों से छुटकारा पाने के पश्चात् हुमायूँ पुन भारत पर विजय प्राप्त करने की तैयारी करने लगा।

भारत विजय:—काबुल पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् हुमायूँ ने भारत की राजनीतिक दशा का अध्ययन करना प्रारम्भ किया। शेरशाह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र सलीमशाह गद्दी पर बैठा। उसने अपने पिता के साम्राज्य को सम्भाला। परन्तु उसके उत्तराधिकारियों में कोई योग्य न निकला।

देहली की गद्दी के लिए दो प्रतिद्वन्द्वी पैदा हो गये थे। मुहम्मदशाह आदिल तथा सिकन्दरशाह सूर। सिकन्दर ने पंजाब से गंगा तक का समस्त प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया। इस पारस्परिक ईर्ष्या को देखकर हुमायूँ ने भारत पर आक्रमण कर दिया। फरवरी १५५५ ई० में सिकन्दर ने सरहिन्द के स्थान पर उसका सामना किया, परन्तु परास्त हुआ और युद्ध स्थल से भाग गया। इस प्रकार पंजाब प्रान्त हुमायूँ के अधिकार में आ गया।

हुमायूँ की मृत्यु:—परन्तु इस विजय के पश्चात् हुमायूँ अधिक दिन तक जीवित न रह सका। एक दिन जब वह अपने पुस्तकालय की सीढ़ियाँ से नीचे उतर रहा था, तब उसका पैर फिसल गया और वह भूमि पर गिर पड़ा। कोई उपचार सफल सिद्ध न हुआ और अन्त में २४ जनवरी सन् १५५६ ई० को उसका देहान्त हो गया।

हुमायूँ का कला-प्रेम:—हुमायूँ की स्मृति बहुत अच्छी थी। उसने अपने जीवन के प्रारम्भ-काल में ही कई कलाम्रा तथा विज्ञानों में योग्यता प्राप्त की थी। वह अत्यन्त कविता-प्रेमी था, और स्वयं भी अच्छा कवि था। वह ज्योतिष तथा भूगोल का अच्छा विद्वान था। उसने सात ग्रहों के नाम पर सात भवन बनवाये और प्रत्येक एक विशेष प्रकार के मनुष्यों को अर्पित किया। जैसे कि मंगलभवन सैनिक पदाधिकारियों के लिए तथा बृहस्पति-भवन विद्वानों के लिए था।

हुमायूँ को नाव में भ्रमण करने का बहुत शौक था। उसने अपने शिल्पकारों से चार विशेष प्रकार की नावें बनवाई थी, जो दो मंजिली थी। यदि वह चारों एक स्थान पर एकत्रित हो एक दूसरे के सामने हो जाती तो उनके मिलने से एक फव्वारा बन जाता था। इन नावों में एक बाजार भी सुसज्जित किया गया था। बादशाह प्राय फीरोजाबाद से देहली इन्ही नावों द्वारा जाया करता था। इसी प्रकार शाही मालियों ने जमुना नदी में एक चल उद्यान बनाया था। इसी प्रकार चल भवन भी था जिसमें तीन मंजिलें थीं। इस भवन के भिन्न-भिन्न भाग जोड़कर इस प्रकार मिलाये गये कि उनमें जोड़ का आभास भी न होता था। सम्राट् ने एक खुलने वाला पुल भी बनवाया था।

शासन-प्रबन्ध:—शासन सुविधा के लिये हुमायूँ ने चार विभाग स्थापित किये। जिसके नाम प्रकृति के चार आदि पदार्थों वायु, आग, जल तथा पृथ्वी के ऊपर 'सरकारे आतशी' 'सरकारे बाद', 'सरकारे आब', 'सरकारे खाक' रखा। प्रत्येक विभाग एक मन्त्री के अधीन था और इस विभाग से सम्बन्धित समस्त कार्य उसी मन्त्री के अधीन थे। न्याय व्यवस्था की सुविधा के लिए उसने एक तस्ते अदल अर्थात न्याय की डुग्गी की व्यवस्था की। यदि किसी मनुष्य को शिकायत करनी होती तो उसे उस ढोल को केवल एक बार पीटने का हुक्म था। दो बार यदि कोई गलती ठीक न की गई हो, तीन बार यदि कोई चोरी अथवा डाके की शिकायत हो और चार बार यदि किसी की हत्या की शिकायत करनी हो। सत्य है कि जनता प्रायः इस ढोल का प्रयोग न करती थी। परन्तु जहाँ तक हुमायूँ का सम्बन्ध है यह प्रथा उसकी न्याय-प्रियता को प्रकट करती है।

हुमायूँ का मकबरा (देहली)
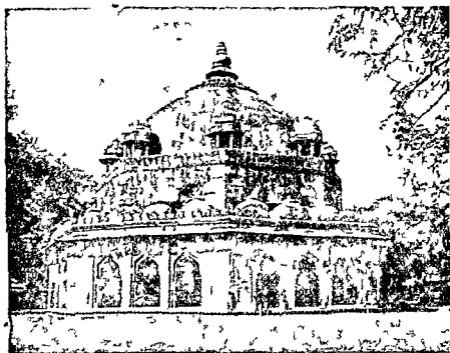
हसनखाँ सूर का मकबरा (सहसराम)

उसने अपने कर्मचारियों को भिन्न-भिन्न श्रेणियों में विभक्त कर रखा था और प्रत्येक श्रेणी के लोगों से मिलने के लिए अलग-अलग दिन निर्धारित किये। पहली श्रेणी अहले-सदारत अर्थात धर्मात्मा, विद्वान तथा न्याय सम्बन्धी श्रेष्ठ मनुष्यों की थी। दूसरी में अहले-दौलत अर्थात् अमीर लोग व राज्य वर्ग के व्यक्ति थे। तीसरी में अहले-मुराद प्राचीन गायक कथा कहने वाले इत्यादि व्यक्ति थे। चौथी में अहले तरब अर्थात् आमोद-प्रमोदी व्यक्ति थे।

हुमायूँ का व्यक्तित्वः—उपरोक्त वर्णन से हमें पता चलता है कि हुमायूँ एक उच्च कोटि का बादशाह था। पुस्तकालय स्थापित करना उसे अत्यन्त रुचिकर था। उसने राज्य पुस्तकालय में अनेकों मूल पुस्तकों का संग्रह किया। शेरशाह सूरी के शेर-मंडल नामक आमोद-भवन में उसने अपने दूसरे राज्य-काल में एक राज्य-पुस्तकालय स्थापित किया। पुस्तक संचय की उसे इतनी लग्न थी कि युद्ध इत्यादि समयों में भी एक छोटा-सा पुस्तकालय अपने साथ रखता था।

शिक्षा-प्रचार का उसे बहुत ध्यान था। उसने देहली में एक कालिज स्थापित कराया। वर्तमान हुमायूँ के मकबरे के समीप एक प्रसिद्ध विद्यालय था जहाँ संसार के प्रसिद्ध विद्वान् पठन-पाठन में संलग्न रहते थे।

अपने व्यक्तिगत जीवन में हुमायूँ एक अत्यन्त मिलन-सार व्यक्ति था। वह एक सच्चा मित्र, आज्ञापालक पुत्र तथा सहृदय भाई था। विद्या-प्रेमी मनुष्य होने के कारण वह अपना अधिकतर समय विद्वानों की संगति तथा साहित्यिक वाद-विवाद में व्यतीत करता था। वह वीर तथा साहसी था। युद्धार्थ उसमें बाबर जैसी लग्न तथा दृढ़ता न थी। अफीम की अधिकता ने उसे आलसी तथा आरामप्रिय बना दिया। यही कारण था कि वह अपनी विजय की पूर्णता पर न पहुँचा सका। वह सफलता की प्रथम सीढ़ी प्राप्त करने में ही सन्तुष्ट हो आराम में पड़ जाता था। उसकी अत्यधिक उदारता तथा निष्कपटता उसकी कठिनाइयों का प्रथम कारण हुई। दूसरे अपने समकालीन शेरशाह के सामने जो उससे अधिक वीर तथा योग्य था, उसकी ख्याति मंद पड़ गई, परन्तु तो भी हुमायूँ एक नेक बादशाह था। कठिन परिस्थिति, जिसमें वह गद्दी पर बैठा तथा उसके भाइयों के वर्ताव, उसके प्रति श्रद्धा और सहानुभूति उत्पन्न कराते हैं।

प्रश्न

१. गद्दी पर बैठते समय हुमायूँ के सामने क्या कठिनाइयाँ थीं?
२. शेरखाँ के प्रारम्भिक जीवन के विषय में तुम क्या जानते हो?
३. हुमायूँ और शेरखाँ का संघर्ष वर्णन करो।
४ शेरखाँ से पराजित होने के बाद हुमायूँ किस प्रकार भटकता फिरा?
५. हुमायूँ के व्यक्तित्व पर एक टिप्पणी लिखो।

अध्याय ३

सूर वंश

शेरशाह

पंजाब तथा गाखर प्रांत पर अधिकार:—हुमायूँ को परास्त करने के पश्चात् शेरशाह बंगाल, बिहार, जौनपुर, देहली व आगरा का बादशाह बन गया। अब तक उसका ध्यान मुगलों को भारत से बाहर निकालने की ओर था। परन्तु इसमें सफल होने के पश्चात् वह साम्राज्य-वृद्धि की ओर आकर्षित हुआ। सर्वप्रथम उसने पजाब पर आक्रमण किया। कामराँ ने बिना किसी आपत्ति के यह प्रात शेरशाह को दे दिया। अब शेरखाँ ने गाखर प्रांत पर, जो सिन्धु नदी तथा झेलम नदी के ऊपरी भागों में था, आक्रमण किया जिससे कि उसके उत्तरी-पश्चिमी साम्राज्य की सीमा सुदृढ बन जावे। क्योंकि काबुल का शासक कामराँ, तथा काश्मीर का शासक मिर्जा हैदर दोनों मिलकर इस तरफ से उसके साम्राज्य में प्रवेश कर सकट उत्पन्न कर सकते थे। शेरशाह ने समस्त गाखर प्रान्त पर अपना सिक्का बैठा कर झेलम देश में एक सुदृढ दुर्ग निर्माण करवाया और वहाँ ५००० वीर सैनिक एक सेनापति की अध्यक्षता में छोड़ बगाल विद्रोह को शात करने के लिए चला गया।

मालवा-विजय:—बगाल में शाति स्थापित करने के पश्चात् शेरशाह का ध्यान मालवा की ओर गया। यहाँ एक स्थानीय सरदार मल्लूखाँ ने माँडू, उज्जैन, सारगपुर आदि जिलो को एक-एक करके विजय कर, एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया था। मल्लूखाँ के अतिरिक्त दो अन्य सरदारों ने मालवा प्रदेश में स्वतन्त्र-सत्ताएँ स्थापित करली थी। मालवा और देहली एक दुसरे के अत्यन्त निकट होने के कारण शेरशाह का मालवा पर अधिकार प्राप्त करना आवश्यक था। उसने ग्वालियर सारंगपुर व उज्जैन इत्यादि पर अधिकार कर सन् १५४२ ई० के अन्त तक समस्त मालवे पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था।

राजपूताना-विजय:—मालवा पर अधिकार करने के पश्चात शेरशाह राजपूताने की ओर अग्रसर हुआ। १५४३ ई० में उसने मारवाड़ की राजधानी जोधपुर

पर आक्रमण किया। राजपूतो ने जी तोडकर उसका सामना किया तथा शेरशाह को एक चालाकी का आश्रय लेने के लिए बाध्य किया। उसने जोधपुर के राजा मालदेव के सरदारो की ओर से अपने आपको बनावटी पत्र लिखवाये और उन्हे मालदेव के डेरे के निकट डलवा दिये। इन पत्रों में लिखा था कि —

"बादशाह को व्याकुल होने तथा सन्देह करने की आवश्यकता नहीं, ज्योंही युद्ध आरम्भ होगा, हम मालदेव को बन्दी बनाकर आपको अर्पित कर देंगे।"

चाल सफल रही, क्योकि जब यह पत्र मालदेव के हाथ लगे तो उसे अपने सरदारो पर अविश्वास हो गया। उसने समझा कि वे शत्रु से मिल गये हैं। यह सोचकर मालदेव ने पीछे हटने की इच्छा प्रकट की। यद्यपि उसके सरदारो ने उसका सन्देह दूर करने तथा स्वामिभक्ति का पूर्ण परिचय देने का प्रयत्न किया, परन्तु मालदेव ने एक न सुनी। इस पर उन्होंने युद्ध से पीछे हटने तथा अपने ऊपर लगे सन्देह को दूर करने के लिए लडते हुए मर जाना ही श्रेयस्कर समझा। राजपूत शेरशाह की सेना पर टूट पडे, तथा अद्वितीय वीरता दिखाई परन्तु विजय-पताका शेरशाह के हाथ रही और बहुत से राजपूत सरदार रण-क्षेत्र में काम आये, परन्तु इस रण में अफगान भी बहुत बडी सख्या में मारे गए। शेरशाह के हृदय-पटल पर राजपूत-वीरता अमिट रूप से अङ्कित हो गई। उसके मुख से यह शब्द निकले— "मैंने मुट्ठी भर बाजरे के दाने प्राप्त करने के लिये भारतीय-साम्राज्य खो दिया होता।"

इस विजय के पश्चात् शेरशाह ने आबू पर्वत पर अधिकार प्राप्त कर लिया। तत्पश्चात् उसने चित्तौड़ पर आक्रमण कर, उसे एक अफगान सरदार को दे दिया। राजपूताने पर अधिकार प्राप्त करने के पश्चात् शेरशाह ने कालिंजर के दुर्ग पर आक्रमण किया। यहाँ भी राजपूतो ने अपूर्व वीरता का परिचय दिया। परन्तु अफगान यहाँ भी सफल हुये। घेरे के बीच में जब शेरशाह स्वय तोपखाने का निरीक्षण कर रहा था, एक गोला फटा और उसने उसे घायल कर दिया। घाव घातक सिद्ध हुआ और २२ मई सन् १५४५ ई० को शेरशाह इस ससार से चल बसा।

शेरशाह का राज्य-प्रबन्ध:—जन्म से भारतीय होने के कारण शेरशाह को भारतीय-जीवन तथा चरित्र का पूरा ज्ञान था। अपने पिता की जागीर के प्रबन्ध द्वारा उसने शासन-प्रबन्ध में पर्याप्त अनुभव प्राप्त कर लिया था। बादशाह के रूप में शेरशाह बहुत योग्य, राजनीतिज्ञ तथा सफल प्रबन्धक सिद्ध हुआ। बहुत-सी बातो में वह अकबर का पथ-प्रदर्शक था। उसका समस्त शासन-प्रबन्ध एकता के

आधार पर अवलम्बित था। भारतवर्ष की अनेक सम्प्रदायवाली जनता उसकी प्रजा थी और वह उसको बिना किसी धर्म या जाति-भेद के समान-दृष्टि से देखना चाहता था। उसने स्वय तथा अकबर ने इस सिद्धान्त का अनुसरण किया। वह प्रजा की बौद्धिक, सामाजिक एव आर्थिक दशा सुधारने के लिये दिन-रात प्रयत्नशील रहता था। उसके राज्य-प्रबन्ध की विशेषताएँ निम्नलिखित है —

साम्राज्य की विभक्ति:—शासन-सुविधा तथा प्रबध की श्रेष्ठता के लिए समस्त साम्राज्य ४७ भागो में विभक्त था। यह भाग अफगान सरदारो के सुपुर्द थे, जिससे कि उनकी स्व-शासनाकाक्षा सुप्त रहे। प्रत्येक विभाग कई सरकारो में विभक्त था। सरकार का मालिक मुख्य शिकदार होता था। एक सरकार में कई परगने होते थे, जिसमें एक शिकदार, एक अमीन, एक खजाची, एक मुन्सिफ तथा एक हिन्दी व फारसी का क्लर्क होता था। प्रत्येक परगने में बहुत से गाँव होते थे, जिनमें से प्रत्येक में एक मुकद्दम, एक चौधरी तथा एक पटवारी होता था। शिकदार एक फौजी अफसर होता था, उसका कार्य राजकीय नियमो का पालन कराना और कभी आवश्यकता हो तो अमीन को सैनिक सहायता देना था। अमीन माल-विभाग का अफसर होता था, जो अपने प्रबन्ध के लिये केन्द्र का उत्तरदायी होता था। मुख्य शिकदार और मुख्य मुन्सिफ सरकार के मुख्य अफसर थे जिनका कार्य अपने अधिकृत परगने के अफसरो के कार्य का निरीक्षण था। उनका मुख्य कार्य जनता के आचरण की देख-रेख करना तथा न्याय की सुव्यवस्था बनाये रखना था।

एक प्रात का अफसर सूबेदार कहलाता था, जो वर्तमान समय के गवर्नर के स्थान की पूर्ति करता था। वह अपने कार्य के लिये केन्द्र का उत्तरदायी भी था। समस्त साम्राज्य की व्यवस्था शेरशाह में केन्द्रीभूत थी। वह समस्त साम्राज्य के अधिकार का स्रोत था। भगवान् के अतिरिक्त वह किसी अन्य सासारिक, सामाजिक-सस्था अथवा व्यक्ति-विशेष को उत्तरदायी न था। इस प्रकार शेरशाह का शासन एक तन्त्र था।

भूमि-प्रबन्ध—अपने पिता की जागीर के प्रबन्धकाल में शेरशाह ने अनुभव कर लिया था कि साम्राज्य का अस्तित्व कृषकवर्ग के सतुष्ट होने पर है। अत उसने भूमि-प्रबन्ध को साम्राज्य का मुख्य कार्य समझा। उसने समस्त कृषि-भूमि की नाप-तौल करवाई और उसको बीघो में विभक्त कराया। फसल के अवसर पर प्रत्येक किसान की भूमि नापली जाती और उपज का भाग भूमि-कर में ले लिया जाता था। भूमि-कर कृषकवर्ग मुद्रा अथवा माल के रूप में दे सकते थे। किसान

अन्य बहुत से करो से मुक्त थ । उनके सुख व शांति का विशेष ध्यान रक्खा जाता था । शेरशाह को कृषि-क्षति पूर्णतया असह्य थी । स्थान-स्थान पर निरीक्षक इस बात का निरीक्षण करने के लिए रक्खे जाते थे कि खेतो को कोई क्षति तो नही पहुँचाई जाती । कृषि को बहुत प्रोत्साहन दिया जाता था । जगलो को काटकर कृषि के लिए और अधिक भूमि निकाली जाती थी । स्थान स्थान पर अन्न एकत्रित करने के लिए गोदामो का निर्माण कराया गया था, जहाँ दुर्भिक्ष अथवा विशेष अवसर के लिए अन्न एकत्रित कराया जाता था । भूमि कर एकत्रित करने वालो को विशेष आदेश था कि वे किसानो के साथ विशेष सहृदयता तथा सहानुभूति का वर्ताव करें। आपत्ति-काल में कृषको को आर्थिक सहायता प्रदान की जाती थी । इस प्रकार शेरशाह ने उचित भूमि-व्यवस्था कर कृषक-वर्ग के हित की रक्षा की । अकबर ने इसका अनुसरण कर अपने आपको सर्वहृदयग्राही बनाया तथा अग्रेजो ने भी रैय्यत-वाडी प्रथा के नाम से इसका विकास किया ।

न्याय-प्रबन्ध :—शेरशाह ने अपने समस्त साम्राज्य में न्याय का उचित प्रबन्ध किया । काजी और मीर अदल माल तथा फौजदारी के मुकदमे तय करने के लिए न्यायालयों में बैठते थे । उनको बिना किसी भेद-भाव के न्याय करने का अधिकार था । कोई भी व्यक्ति अपने धन तथा वर्ग के कारण दण्ड से मुक्ति प्राप्त न कर सकता था । दण्ड अत्यन्त कठोर था । क्योकि दण्डित व्यक्ति को दण्ड देने के अतिरिक्त दूसरो के सामने उसका आदर्श रखना था । हिन्दुओ में पचायत-प्रथा थी, वह प्राय अपने मामले पचायतो द्वारा ही तय कर लेते थे । परन्तु पचायत का क्षेत्र माल के मुकदमो अर्थात् उत्तराधिकार इत्यादि तक ही सीमित था । फौजदारी के मुकदमे राजकीय न्यायालयो में ही तय होते थे ।

पुलिस :—शेरशाह ने पुलिस-विभाग की बहुत अच्छी व्यवस्था की । उसने चोर डाकुओ तथा विद्रोही व शाति भग करने वालो को ही शाति का उत्तरदायी बनाया । उसने स्थानीय उत्तरदायित्व के सिद्धांतानुसार अपने साम्राज्य में शाति स्थापित की । प्रत्येक क्षेत्र में वहाँ की चोरी, डकैती तथा लूट-मार का उत्तरदायित्व वहाँ के मुकदमो पर था । यदि वह किसी चोरी अथवा डकैती का पता न लगा सकते तो उनको हानि की पूर्ति करनी पडती थी । इस प्रकार यदि वे अपने क्षेत्र में की हुई हत्या का पता न लगा सकते तो उनको बन्दी बना प्राण-दण्ड दे दिया जाता था । स्थानीय उत्तरदायित्व का यह सिद्धान्त यद्यपि वांछनीय नही था, तो भी शेरशाह के शासनकाल में इसके द्वारा पूर्ण-शान्ति तथा जान-माल की रक्षा का पूर्ण प्रबन्ध सम्भव रहा । यहाँ तक कि लोग रेगिस्तान तथा उजाड प्रदेश में नि.सकोच शयन कर सकते

थे और जमीदार स्वय अपनें उत्तरदायित्व के कारण उसकी रक्षा करते थे। पुलिस-विभाग की सहायता के लिए 'मोहतसिब' नामक चरित्र निरीक्षक पदाधिकारियो की नियुक्ति की गई। उन्होंने लोगो को उनके कर्तव्य की शिक्षा दे दुष्कर्मो से विमुख होने का सदुपदेश दे सुधार किया।

गुप्तचर विभाग :—इसके अतिरिक्त शेरशाह ने स्थायी गुप्तचर विभाग की स्थापना की, स्वेच्छाचारी शासन में इसकी अत्यन्त आवश्यकता थी। विश्वस्त गुप्तचरो का एक विशाल समुदाय राज्य के समस्त कार्यों की सूचना बादशाह को देता था।

चुगी :—शेरशाह ने अनेक अप्रिय-कर स्थगित कर दिए और केवल ऐसे ही करो को जारी रक्खा जो न्याय सगत तथा कम अप्रिय थे। अत समस्त प्रान्तरिक कर बन्द कर दिये गये। उसने साम्राज्य की सीमाओं तथा व्यापारिक स्थानो पर 'चुङ्गी' नामक कर लागू किया। इस प्रकार स्थान स्थान पर चुगी स्थापित कर उसने आजकल की सी व्यवस्था की। जजिया स्थगित न किया गया परन्तु हिन्दुओं के प्रति सदव्यवहार तथा सहानुभूति प्रदर्शित की गई।

यातायात के साधन :—शेरशाह ने यातायात के साधनो तथा सड़कों की ओर विशेष ध्यान दिया। उसने कई सडकें बनवाई, जिसमें एक बगाल से सिन्ध नदी तक जाती थी। वर्तमान ग्राड ट्रक रोड इसी के स्थान पर बनाई गई है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रमुख सडकें सब मुख्य केन्द्रो को एक दूसरे से सम्बन्धित करती थी। इसमें से एक आगरा से बुरहानपुर तक दूसरी आगरा से बियाना होती हुई मारवाड की सीमा तक, तीसरी मुलतान से लाहौर को जाती थी। इन सडको पर छोटे-छोटे नगरो को जोडने के लिए अनेक सड़कें बनवाई गई थी। सडका के दोनो ओर छायादार वृक्ष लगवाए गये, और यात्रियों की सुविधा के लिए सराऐं बनवाई गई। प्रत्येक सराय में एक कुआँ, एक मस्जिद तथा एक बगीचा होता था, वहाँ एक इमाम, एक अजान देने वाला और पानी देने वाला राज्य की ओर से रक्खा जाता था। सराय के अन्दर हिन्दुओ तथा मुसलमानो के लिए पृथक्-पृथक् स्थान होते थे। हिन्दुओ की सुविधा के लिए ब्राह्मण तथा हिन्दू सेवक रक्खे जाते थे। इन सरायों की महत्ता को प्रकट करते हुए शेरशाह का इतिहासकार कानूनगो लिखता है कि "यह सराय साम्राज्य की नाडियाँ थीं, जिनके द्वारा साम्राज्य में रक्त-सचार होता था। थोडे समय पश्चात् उनके चारो ओर मडियाँ बन गई जिनके परिणाम-स्वरूप वाणिज्य तथा व्यापार की वृद्धि दिन दूनी रात चौगुनी हुई।

डाक-विभाग :—शेरशाह डाक-विभाग में बहुत रुचि रखता था। अतः उसने इस विभाग को उत्तम बनाने का विशेष ध्यान दिया। उपरोक्त सराएँ डाक-चौकियों का कार्य करती थी, जिसके द्वारा सुदूर प्रदेशों की सूचना बादशाह को शीघ्रातिशीघ्र पहुँचती थी। प्रत्येक सराय में डाक-विभाग के लिए दो घोड़े होते थे। पैदल तथा ये घुड़सवार साम्राज्य के प्रत्येक भाग में डाक पहुँचाने का कार्य करते थे। इस प्रकार देश के कोने-कोने में डाक का समुचित वितरण होता था।

सैनिक-सुधार :—शेरशाह ने सेना में कई महत्वपूर्ण सुधार किए। प्रथम उसने सामन्त प्रथा का अन्त कर दिया, तथा सिपाहियों से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित किया। वेतन-वितरण का वह स्वयं सचालन करता था। वह स्वयं पदाधिकारियों तथा सिपाहियों को वेतन देता था और उनको शिक्षा देता था कि वह अपने से उच्च अधिकारी की आज्ञा मानें और आज्ञा इस विचार से मानें कि वह साम्राज्य के सैनिक है। यदि वह राज-विद्रोह की आज्ञा दें तो उनका उल्लघन करना कोई दोष नही है। शेरशाह नें अनुभव किया था कि सेना गवर्नर को अपना स्वामी समझती थी। अतएव वह बादशाह के विरुद्ध उसका साथ देती थी। शेरशाह ने इस कुप्रथा पर प्रतिबन्ध लगाया और आदेश दिया वे पदाधिकारियों से पहले राज-आदेशों का पालन करें। इस प्रकार शेरशाह ने अपनी बुद्धिमत्ता द्वारा विद्रोहों की सम्भावना को दूर किया। शेरशाह ने अलाउद्दीन की भाँति सिपाहियों की धोखेबाजी से बचने के लिए घोड़ो को दाग देने तथा हुलिया लिखाने आरम्भ किए, जिससे कि वह घोड़ों को बदल न सकें। इसी प्रकार सिपाहियो का हुलिया लिखाने की भी प्रथा लागू की गई। समय-समय पर हुलिया मिलाकर सिपाहियों तथा घोड़ो का निरीक्षण किया जाता था। सम्राट स्वयं सेना की भरती करता और स्वयं वेतन नियुक्त करता था। वेतन जागीर के रूप में नही वरन् धन के रूप में देना आरम्भ किया। सैनिक अधिकारी दो वर्ष से अधिक एक स्थान पर नही रह सकते थे इसके अतिरिक्त साम्राज्य की आतरिक सुरक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण दुर्ग बनवा तथा वहाँ छावनियाँ स्थापित कर उसने अपने समस्त साम्राज्य की रक्षा का प्रबन्ध किया। सैनिकों के नैतिक स्तर को ऊँचा रखने के लिए उन्हें अपनी प्रजा के साथ अच्छा बर्ताव करने की आज्ञा दी गई। एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते समय कृषि को क्षति न पहुँचाने की उन्हें कठोर राजाज्ञा थी। इस प्रकार शेरशाह ने अपनी सेना को सुसगठित कर साम्राज्य में शान्ति स्थापित की।

दानशीलता तथा धार्मिक कार्य :—शेरशाह अपनी दानशीलता तथा सहृदयता के कारण प्रसिद्ध है। उसने जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, कृषि

को विशेष प्रोत्साहन दिया । उसने अनेक दानशालाएँ, औषधालय और कारवाँसराएँ निर्मित्त कराईं । उसने कला तथा साहित्य को विशेष उन्नति प्रदान की । अनेक मकतब, मस्जिदें तथा साधु-गृह बनवाये, और भूमि दान दे उन्हें आर्थिक सकट से मुक्त किया । निर्धन छात्रो को अनेक छात्रवृत्तियाँ दे उसने शिक्षा को प्रोत्साहन दिया । बहुत से सदाव्रत खुलवाये, जहाँ गरीब लोगो को बिना पैसे भोजन मिलता था । इस प्रकार अपनी प्रजा के हित के लिए अनेक कार्य कर शेरशाह अमर कीर्ति को प्राप्त हुआ ।

शेरशाह का राज्यवाद :—शेरशाह का राज्यवाद अत्यन्त उच्चकोटि का था । वह कहा करता था कि राजा का धर्म है कि वह सदैव प्रजाहित में व्यस्त रहे । राजकीय व्यक्तियों की प्रत्येक बात को स्वय देखे, अपने सैनिक तथा माल अधिकारियो का स्वय निरीक्षण करे और अपनी प्रजा के हित के लिए खूब परिश्रम करे । वास्तव में शेरशाह ने इस आदर्श को समक्ष रख इसकी पूर्ति का भरसक प्रयत्न किया । वह कहा करता था कि बादशाह का कार्य अपनी प्रजा की जान-माल की रक्षा करना तथा बिना किसी भेद-भाव के उसकी सुख-शान्ति तथा समृद्धि का ध्यान रखना, तथा पक्षपात रहित न्याय व्यवस्था स्थापित करना है । शेरशाह ने सदैव ऐसा ही किया । अत हिन्दू तथा मुसलमान प्रजा ने सदा उसको आदर तथा श्रद्धा की दृष्टि से देखा ।

शेरशाह का चरित्र :—शेरशाह का चरित्र बहुत ऊँचा था । उसने अपने विचारो को क्रियात्मक रूप देने का सदैव प्रयत्न किया । एक सैनिक से सम्राट पद पर पहुँचना उसकी योग्यता का प्रतीक है । वह सर्वथा स्वावलम्बी था । अपने कर्तव्य के लिए वह निम्न से निम्न कार्य करने में भी सकोच न करता था । उसने अपनी प्रजा तथा राज्य की भलाई के निमित्त अपना पूर्ण जीवन अर्पित कर दिया । वह स्वय राज्य के प्रत्येक विभाग का निरीक्षण करता था । वह बहुत सवेरे उठता और स्नान इत्यादि से निवृत्त हो प्रार्थना करता था । फिर ४ घटे तक राज कार्य में व्यस्त रहता था इसके पश्चात् सेना का निरीक्षण करता था । तब नाश्ते के कुछ समय पश्चात् विश्राम कर पुन राज-कार्य में सलग्न हो जाता था । सध्या समय कुरान का अध्ययन तथा सामूहिक प्रार्थना में लगाता था । वह अन्याय तथा पक्षपात से घृणा करता था और ऐसे आचरण करने वाले लोगो को कठोर दण्ड देता था । कृषक वर्ग का वह विशेष ध्यान रखता था ।

वह बहुत अच्छा सैनिक था । रण-कौशल में मुगल उसका सामना न कर सकते थे । उसके सिपाही उसमें विश्वास करते थे तथा श्रद्धापूर्वक उसके लिए अपना जीवन अर्पित करने को उद्यत रहते थे ।

यद्यपि वह कट्टर सुन्नी था, तो भी वह अन्य धर्मावलम्बियों को आदर की दृष्टि से देखता था। हिन्दुओं से जजिया लिया जाता था, परन्तु उनके साथ न्याय तथा सहृदयता का बर्ताव किया जाता था। हिन्दुओं में शिक्षा का प्रचार करने के लिए उसने उन्हें भूमि दी तथा उनको स्वतन्त्रता प्रदान की। इसी कारण वह हिन्दुओं को अत्यन्त प्रिय सिद्ध हुआ।

इन सम्पूर्ण बातों पर दृष्टिपात करते हुए शेरशाह भारतीय इतिहास में एक बहुत ऊँचा स्थान रखता है।

"सलीम शाह सूर" सन् १५४५ से ५५ ई० तक

शेरशाह के पश्चात् उसका पुत्र जलालखाँ गद्दी पर बैठा। बादशाह होने के पश्चात् उसने सलीमशाह की उपाधि ग्रहण की। थोड़े ही समय के बाद अफगान सरदारों ने उसे कठोर शासक बनने के लिए बाध्य किया। उसने उन अमीरों को जो उसके विरुद्ध थे, बन्दी बना लिया तथा प्राण-दण्ड तक दिया। यद्यपि वह शेरशाह जैसा योग्य न था तथापि उसने शासन का कार्य भली भाँति सचालन किया।

मालवा तथा पंजाब :—सलीमशाह के शासन काल में मालवा के गवर्नर शुजाअतखाँ ने स्वतन्त्र होने की घोषणा कर दी। धन की अधिकता ने उसके विचारों में भ्रान्ति उत्पन्न कर दी थी। सलीमशाह ने उस पर आक्रमण की तैयारी करनी आरम्भ कर दी। इसकी सूचना मिलते ही शुजाअतखाँ बहुत चिन्तित हुआ और सुल्तान की सेवा में भेंट भेज उसने अपने व्यवहार के लिए क्षमा याचना की।

तत्पश्चात् पंजाब के गवर्नर आजमखाँ ने सम्राट की अवहेलना की। सलीमशाह ने उसकी उद्दण्डता देख उसे अपने दरबार में उपस्थित होने की आज्ञा दी, परन्तु उसने स्वयं न जा अपने पदाधिकारी को उसकी सेवा में भेजा। सम्राट् ने इसको अपमान जानकर उसके विरुद्ध सेना भेजने का आदेश दिया। आजम ने जो पहिले ही इस व्यवहार की आशा करता था, विद्रोह कर दिया। वह अम्बाला के स्थान पर परास्त हुआ, तथा भाग खड़ा हुआ। काश्मीर में उसे एक व्यक्ति ने मार डाला। इस प्रकार सलीमशाह के अधिकार में पंजाब आ गया।

सलीमशाह के राज्य काल की अन्य प्रमुख घटना शेख अलाइ की धार्मिक आलोचना थी। उसने अपने ओजस्वी भाषण द्वारा लोगों की धार्मिक प्रवृत्तियों को अपनी ओर आकर्षित कर लिया था। उसका आन्दोलन इतना बढ़ गया कि इससे शान्ति-भंग होने का भय उत्पन्न हो गया। बादशाह ने उसे पकड़ने तथा प्राण-दंड देने की आज्ञा दी। ऐसा ही हुआ और आन्दोलन समाप्त हो गया।

सलीमशाह का राज्य-प्रबन्ध :—सलीमशाह को अपना आधिपत्य स्थापित रखने के लिए कठोरता से काम लेना पडा। उसने एक अच्छी स्थायी सेना का आयोजन किया और उसकी सहायता से विद्रोहियो तथा उद्दंड अमीरो को दड दे अपना प्रभाव रखा। उसने उनकी सेना, हाथी तथा घोडो की सख्या कम कर दी। एक अच्छे गुप्तचर-विभाग द्वारा साम्राज्य की सम्पूर्ण परिस्थिति का ज्ञान प्राप्त किया। उसने कुछ नवीन नियम बनाये और काजियो तथा मुफतियो के स्थान पर मुंसिफो को कार्य करने की आज्ञा दी। इस प्रकार समस्त शासन-कार्य बादशाह के हाथ में आ गया।

सलीमशाह का देहान्त १५५३ ई० में हुआ। उसके पश्चात् उसका पुत्र फीरोजशाह गद्दी पर बैठा परन्तु उसके चचा मुबारिकखाँ ने उसका वध कर दिया और स्वय मुहम्मद आदिलशाह के नाम से गद्दी पर बैठा, परन्तु आदिल बहुत ही निकम्मा निकला। उसने राज्य-कोष भोग-विलास में नष्ट करना आरम्भ कर दिया, और समस्त राज्य-कोष अपने मन्त्री तथा सेनापति हेमू के सुपुर्द कर दिया। हेमू योग्य तथा वीर आदमी था। अतः उसने व्यवस्था स्थापित करने का प्रयत्न किया, परन्तु फिर भी चारो ओर विद्रोह की अग्नि दहकने लगी। आदिल के चचेरे भाई ने आगरा और देहली पर अपना अधिकार कर लिया, परन्तु इसके भाई सिकन्दर सूर ने उसको परास्त कर दिया और स्वयं गगा-सिन्धु के प्रदेश पर अधिकार प्राप्त कर बैठा। ऐसे समय में हुमायुँ ने भारतवर्ष पर आक्रमण किया। सरहिंद के स्थान पर सिकन्दर ने उसका सामना किया, परन्तु बुरी तरह परास्त हुआ और समस्त पंजाब हुमायूँ के अधिकार मे आ गया।

प्रश्न

१. शेरशाह ने किस प्रकार अपने साम्राज्य को विस्तृत करने का प्रयत्न किया ?
२. शेरशाह के राज्य-प्रबन्ध के विषय में तुम क्या जानते हो ?

अध्याय ४

जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर

(१५५६—१६०५ ई०)

हुमायूँ की मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर, जो अपनी सर्वोन्मुखी प्रतिभा के कारण इतिहास में महान् अकबर के नाम से प्रसिद्ध है, गद्दी पर बैठा। उसने लगभग ५० वर्ष तक राज्य किया। उसकी नीति-कुशलता, सैन्य-सचालन तथा उदारता सराहनीय थीं। यही कारण है कि इतिहासकारों ने उसकी एक मत से प्रशंसा की है।

प्रारम्भिक जीवन :—२३ नवम्बर १५४२ ई० में जब उसका पिता हुमायूँ शेरशाह सूरी से परास्त हो सिंध में मुगल सत्ता स्थापित करने का प्रयत्न कर रहा था, तब अमरकोट नामक स्थान पर हमीदा बानो बेगम नामक उसकी नव विवाहिता पत्नी ने अकबर-सरीखे पुत्र-रत्न को जन्म दिया। पुत्र-जन्म की प्रसन्नता में मित्र आदि को भेंट देने के लिए हुमायूँ के पास उस समय एक कस्तूरी के थैले के अतिरिक्त कुछ नहीं था। उसने उसे वितरण कर भगवान् से प्रार्थना की इस मुश्क की खुशबू की भांति अकबर की ख्याति दूर तक फैले। कैम्प में ही पालन पोषण होने लगा। जब अकबर केवल एक वर्ष का अबोध बालक था, हुमायूँ उसे कन्धार में अपने भाई कामराँ की सरक्षता में छोडने को बाध्य हुआ, क्योंकि बेघरबार निरन्तर यत्र-तत्र जाने वाले हुमायूँ के लिए एक नवजात शिशु विपत्ति का कारण ही था। कामराँ ने अकबर की शिक्षा-दीक्षा का कोई प्रबन्ध नही किया, बल्कि ८ वर्ष के अनन्तर जब हुमायूँ ने फारस की सेना सहित कामराँ को उसकी धृष्टता तथा विश्वासघात का मजा चखाने के लिए कन्धार का घेरा डाला तो उसने आठ वर्षीय अकबर को किले की दीवार पर रख दिया जिससे कि पुत्र-प्रेम से प्रेरित हुमायूँ अपने तोपखाने का प्रयोग न कर सके। हुमायूँ ने तोपखाने का प्रयोग किया, परन्तु भगवान् की कृपा से अकबर का बाल भी बाँका न हुआ और हुमायूँ कन्धार विजय करने में सफल हुआ। अब उसकी सैनिक शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया गया और बारह वर्ष की अवस्था में ही वह हाथी, ऊँट, घोडे की सवारी तथा युद्ध-कला में प्रवीण हो गया। जब वह अपने पिता के इष्ट मित्र तथा विश्वासपात्र एव सम्बन्धी

परिस्थिति में गद्दी पर बैठा। परन्तु वह अपने अदम्य साहस और धैर्य से परिस्थिति पर विजय प्राप्त कर जीर्ण-शीर्ण अव्यवस्थित मुगल-साम्राज्य को विशाल तथा सुदृढ़ साम्राज्य का रूप देने में सफल हुआ।

पानीपत का दूसरा युद्ध :—उपरोक्त विवरण से हम देखते हैं कि सबसे पहला कार्य जो अकबर के संरक्षक बैरामखां के सामने था वह हेमू को परास्त करना था। एक विशाल सेना सहित बैरामखां का सामना करने के लिए हेमू देहली से चल पड़ा। इसे देखकर मुगलों के होश उड़ गए और सबने बैरामखां को यह सलाह दी कि वह काबुल लौट चले परन्तु उसने इसे अस्वीकार कर दिया और युद्ध-स्थल पर प्राणों की बलि देने का व्रत ले लिया। पानीपत के विस्तृत रणक्षेत्र में दोनों सेनाओं का सामना हुआ। हेमू की वीरता से मुगल सेना के होश उड़ गए। उनमें भगदड़ मच गई परन्तु इसी समय हेमू की आँख में एक तीर लगा और वह बेहोश होकर अपने हाथी से नीचे गिर पड़ा। इस घटना से हेमू की विजय पराजय में परिणत हो गई। वह बन्दी बना लिया गया और अकबर के सामने लाया गया। बैरामखां ने उसे हेमू का वध कर गाजी पद प्राप्त करने की मन्त्रणा दी। परन्तु अकबर ने पराजित शत्रु के साथ ऐसा घृणित व्यवहार करने से मना कर दिया, जिस पर बैरामखां ने अपनी तलवार से हेमू का वध कर दिया। अल्पावस्था में अकबर का यह कार्य प्रगट करता है कि जन्म से ही उसमें महानता के अणु विद्यमान थे।

पानीपत की इस विजय से १५०० हाथी तथा असंख्य द्रव्य मुगल सेना के हाथ लगा और देहली व आगरा तथा उसके निकटवर्ती प्रदेश पर उनका अधिकार हो गया। हिन्दू राज्य-स्थापना के हेमू के स्वप्न सदैव के लिए मिट्टी में विलीन हो गये और मुगलों का प्रभुत्व भारत में स्थापित हो गया।

सिकन्दर सूर की पराजय :—पानीपत के युद्ध के पश्चात् अकबर और बैरामखां ने सिकन्दर सूर की ओर ध्यान दिया। हेमू संघर्ष से पहले भी उसके विरुद्ध एक सेना भेजी गई थी। परन्तु वह बिना युद्ध किये ही शिवालिक पर्वत की ओर चला गया था और मानकोट के दुर्ग में शरण ले ली थी। उस किले का घेरा डाल दिया गया। जिससे तंग आकर सिकन्दर सन्धि करने को उद्यत हो गया। उसने आत्म-समर्पण कर दिया और किले पर मुगल सेना ने अधिकार कर लिया। सिकन्दर को पूर्व में जागीर दे दी गई, जहाँ १५६९ ई० में उसका देहान्त हो गया। मुहम्मदशाह आदिल तथा दूसरे अफगान प्रतिद्वन्द्वी १५५७ ई० में ही बंगाल शासक से युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हो चुके थे। इस प्रकार एक ही वर्ष के अल्पकाल में बैरामखां मुगल-साम्राज्य को सुदृढ़ तथा सुरक्षित बनाने में सफल हुआ।

१५५८ ई० में उसने अजमेर, ग्वालियर और जौनपुर को मुगल-साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया।

बैरामखाँ का उत्थान तथा पतन :—बैरामखां जन्म से तुर्कमान तथा धर्म से शिया था। वह हुमायूँ का अत्यन्त विश्वासपात्र साथी था। हुमायूँ के साथ उसने जीवन के सब उतार-चढाव देखे थे और प्रत्येक परिस्थिति में उसने हुमायूँ का साथ दिया था। सम्भव है कि बैरामखां जैसे योग्य, अनुभवी और विवेकशील मित्र के अभाव में हुमायूँ फिर भारत में पुनः मुगल-साम्राज्य स्थापित न कर सकता। अकबर के प्रति उसकी स्वामिभक्ति अगाध थी। उसी के कारण पानीपत के दूसरे युद्ध में विजय—श्री अकबर के हाथ लगी। सिंहासनारूढ होने के समय मुगल साम्राज्य नाममात्र को ही था। अपनी प्रतिभा से बैरामखां देहली आ गया और उसके निकट-वर्ती प्रदेश पंजाब तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश को मुगल साम्राज्य में सम्मिलित करने में सफल हुआ। हेमू आदिल तथा सिकन्दर सूर अकबर के प्रतिद्वन्दियों को उसके मार्ग से दूर करना उसी का काम था। अपनी योग्यता, अनुभव तथा आयु के कारण मुगल-वर्ग में उसने विशेष प्रभाव प्राप्त कर लिया था। वह उच्चकोटि का राजनीतिज्ञ तथा कठोर नियन्त्रक था। परन्तु उसके गर्वयुक्त व्यवहार के कारण बैरामखां के अनेक शत्रु हो गये। राजमाता हमीदाबानो बेगम, अकबर की सौतेली माँ महम अनगा उसका सौतेला भाई आदमखां, तथा देहली का गवर्नर शाहबुद्दीन—सब अपने व्यक्तिगत कारणों से उससे घृणा करते थे, इसलिए वह प्रत्येक अवसर पर अकबर और बैरामखां के सम्बन्धों को अधिकाधिक बुरा करने का प्रयत्न करने लगे। इसी बीच में बैरमखां ने भावावेश में अकबर के निर्दोष व्यक्तिगत सेवक पीर मुहम्मद नामक एक सभासद को प्राणदण्ड दे इन सम्बन्धों को और भी बुरा कर लिया। अन्य दरबारी भी उसके विरोधी हो गए। शिया होने के कारण जब उसने शिया लोगों को उच्चपद-प्रदान कर योग्य व्यक्तियों की अवहेलना करनी आरम्भ कर दी तो सुन्नी वर्ग उसके विरुद्ध हो गया। इसी बीच अकबर को सूचना मिली कि बैरामखां कामरां के पुत्र अब्दुलकासिम को गद्दी पर बैठने का षड्यन्त्र रच रहा है। यह सुनकर वह क्रोधान्ध हो उठा और बैरामखां की संरक्षता समाप्त कर राजसत्ता स्वयं अपने हाथ में लेने का प्रयत्न करने लगा। आखेट के बहाने बियाना नामक स्थान पर जा एक योजना बनाई गई, जिसके अन्तर्गत अकबर अपनी बीमार माता को देखने के बहाने देहली आया और वहाँ पहुँच राज्य की बागडोर स्वयं हाथ में लेने तथा बैरामखां के मक्का जाने की घोषणा की।

बैरामखां अपने पतन की सूचना प्राप्त कर सहम गया और दो विश्वस्त

दाधिकारियों को अकबर की सेवा में अपनी स्वामिभक्ति का विश्वास दिलाने भेजा। कबर ने इन दोनों पदाधिकारियों को बन्दीगृह में डाल दिया और पीर मुहम्मदखाँ ामक बैरामखाँ के आश्रित को उसे मक्का प्रस्थान कराने के लिए भेजा। यह देखकर रामखाँ के क्रोध की सीमा न रही। उसने विद्रोह कर दिया। परन्तु वह परास्त हुआ ौर बन्दी बनाकर अकबर के सामने, जो उस समय लाहौर में था, लाया गया। उसकी छली सेवाओं को ध्यान में रखते हुए अकबर ने उसे क्षमा कर दिया। परन्तु जब से किसी प्रान्त का गवर्नर बनने अथवा दरबार में रहने या मक्का जाने के लिए कहा या तो उसने मक्का जाना ही श्रेयस्कर समझा। क्योंकि एक बार संदिग्ध होने के श्चात् उसका उचित व्यवहार भी संदेहपूर्ण समझा जाकर उसके लिए घातक सद्ध हो सकता था। बादशाह ने उसके निर्णय को बहुत पसन्द किया और उसे पेंशन दे क्का जाने का प्रबन्ध किया। परन्तु जनवरी १५६० ई० में पाटन के स्थान पर सके एक शत्रु ने उसका वध कर दिया।

खानजमा का विद्रोह:—सत्ता हस्तान्तरित होने के कुछ ही दिन पश्चात् अकबर को बगाल तथा मालवा के विद्रोह शान्त करने पड़े। पानीपत के द्वितीय युद्ध ं अद्भुत पराक्रम दिखाने के कारण अकबर ने अपने एक उजबेग सरदार को ानजमा की उपाधि से विभूपित किया। १५६० ई० में बगाल के अफगान सरदारों मुहम्मदशाह आदिल के पुत्र शेरशाह द्वितीय के नेतृत्व में देहली पर अधिकार करने ी चेष्टा की। उक्त खानजमा इस अफगान-विद्रोह को शान्त करने के लिए बंगाल ेजा गया। यह उक्त कार्य में सफल हुआ। परन्तु उसने लूट का माल तथा हाथी, ो इस विजय-स्वरूप प्राप्त हुए थे अकबर की सेवा में भेजने से इन्कार कर दिया और जौनपुर में एक स्वतन्त्र शासक की भाँति राज्य करने लगा। अकबर स्वयं उसके विरुद्ध सेना लेकर जौनपुर गया। जब खान को यह विदित हुआ तो उसने समस्त माल सहित आत्म-समर्पण कर दिया। अपनी स्वाभाविक उदारता के वश अकबर ने उसे क्षमा-प्रदान कर जौनपुर का शासक बना दिया।

आदमखाँ का विद्रोह:—१५६१ ई० में अकबर ने बाजबहादुर नामक मालवा के शासक पर विजय प्राप्त करने के लिए अपने सौतेले भाई महम, अनगा के पुत्र आदमखाँ को भेजा। वह शीघ्र ही विजय प्राप्त करने में सफल हुआ। परन्तु खानजामा की भाँति उसने भी लूट का माल बादशाह की सेवा में न भेज विद्रोह कर दिया। जनता तथा सैनिकों की सहानुभूति अपनी ओर करने के लिए उसने उन्हें अमूल्य भेंट दी तथा उनमें अथाह धन वितरण किया। अकबर को जब यह

सूचना मिली तो वह तुरन्त एक विशाल सेना ले मालवा पहुँचा और अकस्मात् आदमखाँ ने समस्त माल पर अधिकार कर लिया। आदमखाँ को क्षमा कर दरबार में ही रहने की आज्ञा दे दी गई और पीर मुहम्मदखाँ को मालवा का गवर्नर बना दिया गया। कुछ ही दिनों पश्चात् १५६२ ई० में एक रात को आदमखाँ ने शमसुद्दीन नामक एक उच्च पदाधिकारी का जिसे अकबर मन्त्री बनाना चाहता था, वध कर दिया। जिससे क्रोधित हो अकबर ने उसे किले की दीवार से नीचे दो बार गिरवा कर मरवा डाला। महम अनगा को जब अपने इकलौते पुत्र की मृत्यु की सूचना मिली तो उसे बहुत दुःख हुआ और कुछ ही दिन पश्चात् उसकी भी मृत्यु हो गई।

पीर मुहम्मद की मृत्यु—जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, आदमखाँ के पश्चात् पीर मुहम्मद मालवा का गवर्नर नियुक्त किया गया। पीर एक विद्वान् पुरुष था, सैनिक नहीं। उसके दुर्व्यवहार से असन्तुष्ट होकर जनता बाजबहादुर के नेतृत्व में विद्रोह करने के लिए संगठित हो गई। बहादुर ने खानदेश के सुल्तान की सहायता से मुगलों को प्रान्त छोड़ने को बाध्य कर दिया। पीरमुहम्मद स्वयं जब अपनी पराजित सेना सहित नर्मदा नदी पार कर रहा था, तो नदी में डूब कर मर गया। अब अकबर ने अब्दुल्लाखाँ उजबेग को एक सेना लेकर मालवा भेजा। उसने बाजबहादुर को पूर्णतया परास्त किया। अब्दुल्ला मालवा का गवर्नर बना दिया गया। आगे चलकर बाजबहादुर भी मुगल सेना में भर्ती हो गया।

परन्तु किंचित्कालोपरात अब्दुल्ला ने स्वयं विद्रोह कर दिया। अकबर स्वयं उसे दबाने के लिए मालवा पहुँचा, अब्दुल्ला गुजरात की ओर भाग गया। अकबर ने भी उसका पीछा किया। अब्दुल्ला जौनपुर चला गया, और वहाँ खानजमाँ से मिल-कर मुगल साम्राज्य को नष्ट कर उजबेग राज्य की स्थापना करने के लिए विद्रोह कर दिया। बाबर के समय के पश्चात् उसके शत्रु उजबेगों की मुगलों के विरुद्ध यह अंतिम चेष्टा थी। जब १५६५ ई० में उजबेग मुगल सेना को परास्त करने में सफल हुए तो सम्पूर्ण देश में विद्रोह की आग भड़क उठी। बंगाल में अफगानों ने विद्रोह कर दिया। उत्तर की ओर अकबर के भाई मिर्जा हकीम ने पंजाब पर आक्रमण कर हुमायूँ के भाई कामराँ की तरह विश्वासघात किया। इस विकट परिस्थिति में अकबर ने बड़े धैर्य से काम लिया। उसने तुरन्त पंजाब पर आक्रमण कर मिर्जा को वापिस काबुल लौट जाने को बाध्य किया। पंजाब में शान्ति स्थापित कर वह तूफानी चाल से पूर्व की ओर गया और इलाहाबाद के निकट उसने उजबेगों को परास्त किया। खानजमाँ मारा गया और उसके साथियों को कठोर दण्ड दिया गया।

१५६७ ई० की स्थिति :—बैरामखाँ के पदच्युत होने के पश्चात् अकबर कुछ दिन दरबारी दल के प्रभाव में रहा, जिसकी नेता महम अनगा उसकी सौतेली माँ थी। परन्तु धीरे धीरे वह उसके अनुचित प्रभाव से मुक्त होता गया। यह प्रभाव पूर्णतया समाप्त हो गया, जब उसने महम के पुत्र आदमखाँ को किले की दीवार से गिरवा कर मरवा डाला।

इस प्रकार १५६७ ई० तक अकबर की स्थिति सर्व प्रकार से दृढ हो गई। उसके प्रतिद्वन्दी अफगान, हेमू, उसका सरक्षक बैरामखाँ तथा दरबारी दल सबका पतन हो चुका था। उजबेगो तथा मालवा की समस्याओ को हल करने तथा आन्तरिक-शान्ति स्थापित करने के बाद साम्राज्यवादी अकबर समस्त भारत विजय की योजना बनाने लगा। परन्तु उसने समझ लिया कि एक विशाल साम्राज्य का निर्माण बहुसंख्यक हिन्दुओं के सहयोग बिना सम्भव नहीं हो सकता।

अकबर और हिन्दू :—प्रकृति से उदार तथा सहनशील अकबर ने अपने राज्य-काल के आरम्भ में ही अनुभव कर लिया था कि बिना बहुसंख्यक हिन्दुओ के सहयोग के भारत में एकछत्र राज्य स्थापित करना बहुत कठिन है। राजपूत इस बहुसख्यक हिन्दू-दल की सैन्यशक्ति तथा राजनैतिक नेता थे। अतः हिन्दू-सहानुभूति तथा राजपूत सहयोग पर्यायवाची शब्द से ही थे। राजपूतो की रणचातुरी तथा सैनिक कुशलता से अकबर पहिले ही बहुत अधिक प्रभावित था। अतः हिन्दुओ, विशेषतया राजपूतो के निकट आने के लिए उसने उनसे सम्बन्ध स्थापित करने, हिन्दू मान-मर्यादा तथा सभ्यता को उचित स्थान प्रदान करने की सोची। इस दृष्टिकोण से उसे अपने पूर्ववर्ती देहली सुल्तानो की हिन्दू-विरोधी नीति सर्वथा अनुचित प्रतीत हुई। राजपूतो के साथ अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने का यह भी एक विशेष कारण बतलाया जाता है कि मुगल दरबार में विदेशी दल अधिक प्रभावशाली था और यह भय था कि यदि इससे अधिक प्रभावशाली देशी विरोधी दल नही बनाया जायगा तो उक्त दल के महत्वाकाक्षी अमीर सदैव सम्राट् को अपने हाथो की कठपुतली बनाये रखेंगे और उसका स्वतन्त्र निर्णय कुछ न होगा। इससे भी और एक पग आगे बढकर वह मुहम्मद तुगलक के अमीरो की भाँति एक नवीन राज्य की स्थापना कर साम्राज्य को निर्बल बना सकते थे और चूँकि उक्त देशी विरोधी दल राजपूतो की सहायता से अधिक दृढ तथा सफल बनाया जा सकता था अत. उनका सहयोग प्राप्त करना अनिवार्य था। मुगल राजधानियाँ देहली तथा आगरा की भौगोलिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए भी राजपूतो को पूर्णतया परास्त करना या मैत्रिक-पाश में बाँधना सर्वथा अनिवार्य था। देहली तथा आगरा के निकट राजपूताने में राजपूतों का प्राबल्य था।

अतएव उन्हें स्वतन्त्र अवस्था में छोड़ सुदूर दक्षिण अथवा पूर्व में विजय प्राप्त करने के लिए चले जाना संकट से खाली न था। साथ ही साथ राजपूतों को पूर्णतया परास्त करना जीवन के अधिकतर भाग को नष्ट करना था जबकि वह आसानी से ही अल्पकाल में मित्रता के सूत्र में बाँधे जा सकते थे। महत्वाकांक्षी अकबर ने राजपूत मित्रता में ही अपनी इच्छा-पूर्ति का आशा-स्वप्न देखा। अन्यथा उसने सोचा कि जीवन-पर्यन्त इनमें ही संघर्ष करता रहूँगा और इस संकुचित वृत्त से बाहर न निकल सकूँगा। यही कारण थे जिन्होंने अकबर को राजपूतों की ओर आकर्षित कर दिया।

विवाह-सम्बन्ध:—अपनी उद्देश्यपूर्ति के लिए उसने राजपूताने की प्रमुख रियासतों को सन्धि-सन्देश भेजे। बहुत-सी रियासतों ने इन्हें स्वीकार कर अकबर से सन्धि कर उसके साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये। आमेर के राजा भारमल ने १५६२ ई० में अपनी बड़ी पुत्री का विवाह अकबर से कर दिया, फलस्वरूप एक प्रभावशाली राजपूत वर्ग का सहयोग प्राप्त हुआ। डाक्टर बेनीप्रसाद लिखते हैं कि यह विवाह-सम्बन्ध भारत के इतिहास में एक विशेष महत्त्व रखता है। इसने भारत में एक नवयुग का सूत्रपात किया। इससे एक ओर यदि चार पीढ़ियों तक मुगल सम्राटों को राजपूतों का सहयोग प्राप्त हुआ तो दूसरी ओर देश में अत्यन्त योग्य सम्राटों का प्रादुर्भाव हुआ। राजपूताने की अन्य रियासतों ने भी आमेर का अनुकरण किया। १५७० ई० में सम्राट् ने जैसलमेर तथा जोधपुर की राजकुमारियों से विवाह कर राजपूत-सम्बन्ध को दृढ़ता प्रदान की। १५८४ ई० में जहाँगीर का विवाह आमेर के राजा भारमल के पुत्र भगवानदास की पुत्री से हुआ।

पद-प्रदान:—राजपूतों के प्रति उसने विशेष सहृदयता तथा सहिष्णुता का बर्ताव किया। उसने उन्हें तथा अन्य हिन्दुओं को प्रत्येक विभाग में उच्च तथा विश्वसनीय पद-प्रदान कर उनकी गुण-ग्राहकता का परिचय दिया। माल-विभाग में राजा टोडरमल माल-मन्त्री बनाये गए। राजा भारमल, भगवानदास तथा मानसिंह को पाँच हजारी मनसबदार बना सेना में सर्वोच्चपद प्रदान किया गया। बीरबल के सर्वप्रिय चुटकुले अकबर और बीरबल की मित्रता के परिचायक हैं। इसी प्रकार अकबर की सेवा में आधे के लगभग हिन्दू पदाधिकारी तथा सैनिक थे।

धार्मिक स्वतन्त्रता:—उदारता तथा धार्मिक-सहिष्णुता अकबर की हिन्दू नीति के विशेष आधार थे। उसने अपनी समस्त जनता को धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान कर अपने मानव प्रेम का परिचय दिया। उसने जजिया तथा अन्य धार्मिक कर जो हिन्दुओं तथा अन्य धर्मावलम्बियों से अपने तीर्थ-स्थान पर जाने में लिये जाते थे,

एकदम स्थगित कर दिये और अपनी हिंदू-प्रजा से उतना ही अच्छा वर्ताव करना प्रारम्भ कर दिया जितना मुसलमानो से। यही नही वरन् अपनी हिन्दू जनता को प्रसन्न करने के लिए उसने कभी-कभी उनके रीति-रिवाज तथा त्योहार इत्यादि भी मनाना प्रारम्भ कर दिया था। जैसा कि वह हिन्दू देवी-देवताओ का उपासक हो। वह कभी-कभी तिलक लगाकर हिन्दू-वेष भी धारण करता था।

सामाजिक सुधार :— धीरे-धीरे अपनी हिन्दू-जनता के सुधार में अकबर का विशेष रुचि हो गई। उसने उन समस्त बुराइयो को, जिन्होने हिन्दू समाज को खोखला बना दिया था, जड से उखाडना चाहा। उसने बाल-विवाह निषेध कर दिया और विधवा-विवाह को प्रोत्साहन दे सती की प्रथा पर वज्रपात किया। यही नही उसने अन्तर्जातीय-विवाह का प्रचार कर हिन्दू समाज को मानव-श्रेष्ठता तथा समानता का पाठ दिया। उसने अपनी समस्त जनता में भ्रातृभाव जागृत किया और सब लोगो की शिक्षा का उचित प्रबन्ध किया। फल यह हुआ कि हिन्दू, मुसलमान बिना किसी धार्मिक तथा सामाजिक भेद-भाव के एक-दूसरे के साथ-साथ कन्धे से कन्धा भिडा मदरसे तथा पाठशाला में शिक्षा प्राप्त करने लगे।

हिन्दू-नीति का परिणाम :— अकबर की हिन्दू-नीति यद्यपि महत्वाकांक्षा पर निर्धारित थी तथापि वह और मुसलमान शासको की अपेक्षा अधिक उदार तथा मानवता-पूर्ण थी। जबकि उसके पूर्ववर्ती मुसलमानो की नीति अत्याचार पर अवलम्बित थी। राजपूत शासको तथा हिन्दू-वर्ग का निरादर उनकी सभ्यता का विनाश, उनके भवनो, नगरो तथा मन्दिरो का विध्वस उनका उद्देश्य था। इस प्रकार भावनाओ पर कुठाराघात कर कुछ ही समय के लिए शान्त बैठा जा सकता था। क्योंकि उससे हिन्दू जनता में प्रतिशोध की भावना जागृत होती थी जो उचित अवसर पा किसी प्रकार इस निर्दयी शासक जाति को क्षमा करने को तैयार न थी। अकबर ने उसे मैत्री-पाश में बांध तथा समता प्रदान कर उनका सहयोग प्राप्त करना ही श्रेयस्कर समझा। फल यह हुआ कि हिन्दुओ को अकबर में एक ऐसे सम्राट् का आभास हुआ जिसमें हिन्दू सिद्धान्तानुसार प्रजा के लिए वात्सल्य-प्रेम कूट-कूट कर भरा हो और वह तथा उनकी नेता-जाति राजपूत उसके लिए अपने प्राण न्योछावर करने के लिए उद्यत रहने लगी। इसका परिणाम यह हुआ कि अकबर का राजपूत भय जाता रहा। अब वह निश्चिन्तता पूर्वक सुदूर दक्षिण तथा पूर्व विजय प्राप्त करने के लिए स्वतन्त्र हो गया। यही नही वरन् उसे अपने विदेशी प्रभावशाली दल की रीढ तोडने के लिए एक वीर-जाति का सहयोग प्राप्त हो गया। उसका दरबार प्रतिष्ठित राजपूत शासको व वीर सैनिको से भरा रहने लगा। अकबर की नीति से

वे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने अपने सम्प्रदाय के विरुद्ध भी युद्ध करने में सकोच नही किया। इस नीति का दूसरा बडा प्रभाव यह हुआ कि सम्राट के हृदय में हिन्दू-मुस्लिम सस्कृति-सम्मिश्रण की भावना सजग हो उठी जो आगे चलकर दीने-इलाही के नाम से प्रस्फुटित हुई। सम्भव है कि उसके उत्तराधिकारी भी अकबर की भाँति धार्मिक तथा जातीय भेद-भाव के मिटाने का प्रयत्न करते तो भारतवर्ष में एक अनुपम राष्ट्रीयता का विकास होता।

अकबर की विजय :—हिन्दुओं की सहानुभूति प्राप्त कर अजमेर, ग्वालियर जौनपुर और मालवा को जीत अपनी स्थिति दृढ करने के पश्चात् अकबर ने भारत दिग्विजय की सोची। छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्य उसकी आँखो में खटकने लगे और वह उन्हे किसी-भी बहाने जीतकर अपने साम्राज्य में मिलाने की सोचने लगा।

गोंडवाना—१५६४ ई० मे साम्राज्य-प्रिय अकबर ने एक फौज कड़ा के गवर्नर आसफखाँ की अध्यक्षता में गोडवाना विजय करने भेजी। आक्रमण का कारण साम्राज्य विस्तार के अतिरिक्त और कुछ न था। यहाँ का राजा वीरनारायण अभी बालक ही था। अतः उसकी माता दुर्गावती उसकी सरक्षक बनकर शासन कर रही थी। वह एक नीति-निपुण राजपूत रमणी थी। उसने स्वयं सैन्य-सचालन कर वीरता-पूर्वक मुगलो का सामना किया और उनके दाँत खट्टे कर दिए। उसकी वीरता तथा अद्भुत पराक्रम को देखकर मुगल सेना आश्चर्य चकित हो गई। अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए हजारो स्त्री-पुरुषो और बच्चो ने हँसते-हँसते प्राण अर्पण कर दिए। दुर्गावती तथा उसका पुत्र वीरनारायण स्वयं युद्धस्थल में काम आये और गोडवाना पर अकबर का अधिकार हो गया।

चित्तौड़-विजय:—समस्त भारत पर राज्य करने का इच्छुक अकबर अपनी सीमा के निकट चित्तौड तथा रणथम्भोर जैसे सुदृढ राज्यो के अस्तित्व को किसी प्रकार सहन न कर सकता था। उनकी स्वतन्त्र-सत्ता उसे खटकती थी। राणा का आत्माभिमान, जिसके कारण वह अकबर से विवाह सम्बन्ध तो दूर रहा उसकी अधीनता स्वीकार करने को भी तैयार न था, सम्राट् को असह्य हो उठा। स्वाभिमानी अकबर उसके इस गर्व को चूर्ण करने के लिए विह्वल हो उठा। इसके अतिरिक्त उसे यह भी डर था कि राजधानी के निकट इतनी बलवान रियासतें किसी समय संकट का कारण हो सकती हैं। दूसरे प्रसिद्ध राणा साँगा की मृत्यु हो चुकी थी और अब उसका तीसरा पुत्र राणा उदयसिंह मेवाड पर राज्य करता था। वह अपने पिता की भाँति वीर योद्धा न था। अकबर का विश्वास था कि ऐसे समय मेवाड-विजय करना सरल भी होगा। अतः इस स्वर्ण अवसर को हाथ से खोना उचित न होगा।

मेवाड पर आक्रमण करने के लिये अकबर को एक बहाना भी मिल गया। वह यह था कि उदयसिंह ने मालवा के हाकिम बाजबहादुर को शरण दी थी। इन सब कारणों से अकबर एक विशाल सेना ले १५६७ ई० में चित्तौड विजय करने को निकल पडा। शिवपुर, कोटा और मण्डलगड के दुर्गों को जीतकर उसने चित्तौड का घेरा डाल दिया। यह देखकर राणा दुर्जेय दुर्ग को अपने चाचा तथा सेनापति जयमल और फत्ता को सोपकर बाल-बच्चो सहित उदयपुर की पहाडियो में जा छिपा। वीन सेनापति बडी वीरता-पूर्वक लडते रहे। जब अकबर को घेरा डाले कई मास व्यतीत हो गये तो उसने किले को सुरग से उडाने की आज्ञा दी। उसके इजीनियरो ने दो सुरगें किले तक पहुँचाकर तीन वुर्ज बारूद से उडा दिये, परन्तु राजपूतो ने उन्हे पुन बना लिया। अपनी समस्त अकाट्य योजनाओ को निष्फल करने वाले जयमल और फत्ता की अपूर्व वीरता को देख, जो केवल ८००० सैनिको से असख्य मुगल सेना से लोहा ले रहे थे, अकबर मुग्ध हो उठा। इसी बीच में एक रात को उसने जयमल को दुर्ग की मरम्मत कराते देखा। अकबर ने तुरन्त उसको गोली का निशाना बनाया। जयमल घायल होकर गिर पडा। जयमल की इस असामयिक दुर्घटना से सेना का साहस टूट गया। उधर दुर्ग में भोजन सामग्री भी कम हो चली थी और मृत्यु सैनिको की आँखो के सामने नग्न नृत्य कर रही थी। यह देख उन्होने जौहर करने का दृढ सकल्प किया। स्त्रियाँ और बच्चे दहकते हुए अगारो पर सुलाकर वीर राजपूत केसरिया बाना पहन युद्ध-स्थल में कूद पडे, और मुगलो के दाँत खट्टे कर दिये, परन्तु मुट्ठी भर राजपूत असख्य सेना पर पूर्ण विजय किस प्रकार प्राप्त कर सकते थे। अन्त में वह अपने वीर सेनापतियो सहित वीर गति को प्राप्त हुए और चित्तौड पर मुगलो का अधिकार हो गया।

रणथम्भौरः—चित्तौड विजय के थोडे ही समय पश्चात् अकबर ने एक सेना रणथम्भौर विजय के लिये भेजी और स्वय भी फरवरी १५६९ ई० में वहाँ जा पहुँचा। इस अजेय किले को देखकर अकबर चकित रह गया और उसने एक निकटवर्ती पहाडी से किले के अन्दर गोलाबारी करने की योजना बनाई जो सफल हुई। राजपूत राजा सुर्जनहार इस गोलाबारी से निराश हो गया। उसने अकबर के सामने सन्धि-प्रस्ताव रखा और अपने दो पुत्र सम्राट् की सेवा में भेजे। अकबर ने उनके साथ बहुत अच्छा बर्ताव किया और उन्हे सम्मानसूचक पोशाक भेंट दे वापिस अपने पिता के पास भेज दिया। राजा बादशाह की इस उदारता से इतना प्रभावित हुआ कि उसने अकबर की सेवा की इच्छा प्रकट की। वह पहले गढ कटक का किलेदार और तत्पश्चात् बनारस व चुनार का गवर्नर बना दिया गया।

कालिंजर विजय —फरवरी सन् १५६९ ई० में जब अकबर स्वय रणथम्भौर-विजय के लिये चला तब उसने एक सेना मजनूखां क्ला के नेतृत्व में कालिंजर के प्रसिद्ध किले को जीतने के लिये भी रवाना कर दी थी। इस सेना ने किले का घेरा डाल दिया। इसी बीच रणथम्भौर का पतन हो गया। जब इस पतन की सूचना कालिंजर के राजा रामचन्द्र को मिली तो वह निराश हो गया। मेवाड़ पतन पहिले ही हो चुका था। यह सब देख राजा ने सधि करने में ही अपना हित समझा। अत बिना युद्ध किये ही कालिंजर दुर्ग मुगल-सेना के सुपुर्द कर उसने आत्म-समर्पण कर दिया राजा को इलाहाबाद के निकट जागीर दे दी गई और कालिंजर मजनूखां के सुपुर्द कर दिया गया।

अन्य राजपूत-रियासतें.—मेवाड़-पतन, रणथम्भौर-विजय तथा कालिंजर-समर्पण से अन्य राजपूत राजा बहुत प्रभावित हुए। दूसरी ओर अकबर का सद्-व्यवहार तथा उसकी उदारता उनके हृदय में घर कर रही थी। अत उन्होंने भी कालिंजर के राजा रामचन्द्र की भांति आत्म-समर्पण कर मुगल सेना में भरती हो अकबर की अधीनता स्वीकार करने की सोची। फलस्वरूप अनेक छोटी छोटी रियासतें मुगल साम्राज्य में विलीन हो गई।

महाराणा प्रताप :—केवल मेवाड का राणा उदयसिंह ही, जो चित्तौड़-आक्रमण के समय अरवली की पहाड़ियों की ओर चला गया था स्वतन्त्र रह गया। वहा उसने वर्तमान उदयपुर नामक नगर बसाया और एक स्वतन्त्र शासक की भांति राज्य करने लगा। १५७२ ई० में उसका देहान्त हो गया और उसकी जगह राणा प्रतापसिंह गद्दी पर बैठा। जिसने हिन्दुत्व तथा स्वतन्त्रता की रक्षार्थ अपने जीवन की बलि देने की दृढ प्रतिज्ञा की। इसमें सन्देह नहीं कि मुगल-साम्राज्य के साधन तथा उसके असख्य-दल को दृष्टि में रखते हुए सफलता की अधिक आशा न थी, परन्तु फिर भी यह महान् वीर अपने जीवन पर्यन्त मुगलों से सघर्ष करता रहा और मेवाड राज्य के अधिकतर भाग पर अधिकार प्राप्त करने में सफल हुआ।

राणा एक स्वतन्त्र प्रकृति का मनुष्य था। अकबर को किसी की स्वतन्त्रता सहन न थी। यही युद्ध का सबसे बड़ा कारण था। इसी बीच १५७६ ई० में एक दिन गुजरात से लौटते हुए राजा मानसिंह उदयपुर गये। महाराणा प्रताप ने उनका बहुत आदर सत्कार किया परन्तु भोजन के समय स्वय उनके साथ भोजन करने न आये वरन् अपने पुत्र अमरसिंह को भेज दिया। न आने का कारण राजा मानसिंह को नीचा समझना था। क्योंकि उसकी बूआ का विवाह अकबर से हुआ था। मानसिंह यह बात ताड़ गये। वह भोजन छोड़कर उठ खड़े हो गये और तुरन्त

उदयपुर से चल दिये। इसी बीच किसी राजपूत ने वाक्य-बाण-प्रहार किया "कुंवर साहब! जब आप मेवाड़ लौटकर आयें तो अपने साथ अपने फूफा अकबर को भी लेते आना।" यह बात मानसिंह को बहुत बुरी लगी। उसने सारी घटना अकबर को सुनाई जिसे सुनकर वह क्रोधाध हो उठा। तुरन्त ही उसने राजा मानसिंह तथा आसफखाँ को एक शक्तिशाली सेना लेकर राणा प्रताप से बदला लेने मेवाड भेजा। मडलगढ होती हुई मुगल-सेना हल्दीघाटी के स्थान पर पहुँची। यहाँ मुगलो और राजपूतो मे घोर युद्ध हुआ। भीषण मार काट के पश्चात् प्रताप परास्त हुए, और कुछ साथियो को लेकर पहाडियो की ओर चले गये। एक-एक करके मुसलमानो ने उनके सभी किलो पर अधिकार कर लिया, परन्तु उदयपुर राणा के अधिकार में ही रहा। महीनो तक गोगूंदे नामक गाँव में पडे रहने के अनन्तर मानसिंह और आसफखाँ अजमेर लौट गये। जैसे ही उन्होने पीठ मोडी, प्रताप पर्वतो से उतर आए और अजमेर, चित्तौड तथा मडलगढ के अतिरिक्त समस्त मेवाड़ पर पुनः अधिकार कर लिया। इस प्रकार हल्दीघाटी की लड़ाई से मुगलों को कोई विशेष लाभ नही हुआ। इस युद्ध के पश्चात् अकबर ने महाराणा प्रताप को बन्दी बनाने के लिये कई बार सेना भेजी परन्तु वह स्वतन्त्र ही रहे। इस आपत्ति-काल में उनका हृदय तनिक भी विचलित न हुआ। अकबर केवल नाममात्र की अधीनता स्वीकार करने पर ही सतुष्ट हो जाता, परन्तु राणा ने अपने महान् आदर्श की रक्षा के लिए जीवन-पर्यन्त युद्ध करना ही श्रेयस्कर समझा। अपने इस स्वतन्त्रता-प्रेम के लिये राणा प्रताप सदैव अमर रहेगे, और उनकी देशभक्ति का उज्ज्वल आदर्श सदैव हमारे लिए गौरव का कारण रहेगा।

गुजरात :—जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि कुछ समय के लिए हुमायूँ ने गुजरात पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। परन्तु शेरशाह सूर के सघर्ष के समय यह प्रात पुन स्वतन्त्र हो गया था। अत. अकबर गुजरात को मुगल साम्राज्य का गया हुआ भाग समझता था। इसके अतिरिक्त उसके राज्य-काल में भी असन्तुष्ट मिर्जा, उजबेग अथवा अन्य क्षुब्ध राजवंशीय राजकुमार वहा जाकर शरण लेते थे और साम्राज्य विरोधी योजनाएँ बनाते रहते थे। दूसरे, गुजरात समुद्री व्यापार का केन्द्र था, वहाँ का व्यापार राजकीय आय का बहुत बडा साधन हो सकता था। इससे अकबर को गुजरात पर विजय का और भी प्रोत्साहन मिला। अवसर भी अच्छा था, क्योकि गुजरात में अराजकता फैली हुई थी। मुजफ्फरशाह द्वितीय और असतुष्ट मिर्जा, जो हुमायूँ के समय देहली से क्षुब्ध हो यहाँ भाग आये थे, गृह-युद्ध में तल्लीन थे—अराजकता से दुखी हो इसी समय मुजफ्फरशाह के मत्री

ऐतमादखाँ ने अकबर को गुजरात विजय कर इसे अराजकता से मुक्त करने की प्रार्थना की। तुरन्त अकबर ने गुजरात पर आक्रमण कर दिया जब मुजफ्फरशाह को यह सूचना मिली तो वह भाग खडा हुआ। इस प्रकार बिना युद्ध किये ही गुजरात मुगल-साम्राज्य मे आ गया। उसकी राजधानी अहमदाबाद को अपने सौतेले भाई खान-ए आजम मिर्जा अजीज कोका को सुपुर्द कर अकबर ने सूरत का घेरा डाला। शीघ्र ही इसका पतन हो गया। इस प्रकार सम्राट् पुर्तगालियो के सम्पर्क में आया। तत्पश्चात् गुजरात मे कुछ शासन-सम्बन्धी सुधार करने के बाद अकबर फतहपुर सीकरी चला आया, परन्तु लौटते ही मिर्जाओ ने विद्रोह कर दिया। इसपर ९ दिन में ६०० मील की यात्रा कर वह शीघ्रातिशीघ्र अहमदाबाद पहुँचा और विद्रोहियो को पूर्णतया परास्त किया। गुजरात में पुनः शाति स्थापित हो गई और यह प्रान्त देहली साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया।

राजा टोडरमल को वहाँ की आर्थिक व्यवस्था ठीक करने के लिए नियुक्त किया गया। गुजरात-विजय से राजकोप में ५० लाख रुपया वार्षिक की वृद्धि हुई जिससे आर्थिक दशा दृढ हुई। इस विजय से अकबर पुर्तगालियो के सम्पर्क मे आया। यह सम्पर्क आगे चलकर बडा महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। तीसरे गुजरात विजय ने दक्षिण-विजय का द्वार खोल दिया।

बंगाल :—समय की गति को पहिचान सन् १५६४ ई० में सुलेमान कर्रानी नामक सरदार ने, जो बगाल में एक स्वतन्त्र शासक की भाँति राज्य करता था, अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली। उसकी मृत्यु के पश्चात् १५७२ ई० में उसका पुत्र दाऊदखाँ गद्दी पर बैठा। उसने अपने नाम का खुतबा पढवाना तथा अपना सिक्का चलाना प्रारम्भ कर दिया। यह देखकर अकबर स्वय एक विशाल सेना लेकर बगाल की ओर अग्रसर हुआ और दाऊद को पटना व हाजीपुर से निकाल बाहर किया। तत्पश्चात् उडीसा में वह पूर्णतया परास्त हुआ और उसने आत्म-समर्पण कर दिया। बंगाल मुगल-साम्राज्य में मिला लिया गया और मुनइमखाँ वहाँ का गवर्नर नियुक्त हुआ। १५७५ ई० में मुनइम का देहान्त हो गया, इससे लाभ उठा कर दाऊदखाँ ने फिर बगाल पर अधिकार कर लिया। जिसकी सूचना पाकर अकबर क्रोधान्ध हो उठा। उसने तुरन्त एक सेना उसके विरुद्ध भेजी। वह परास्त हुआ और १५७६ ई० में 'राजमहल' के स्थान पर बन्दी बना लिया गया। बगाल पुनः मुगल-साम्राज्य में सम्मिलित हो गया और खाँनजहाँ वहां का गवर्नर नियुक्त हुआ। १५८० में खाँनजहाँ की मृत्यु हो गई। उसके पश्चात् विद्रोह के कारण बहुत दिन तक बंगाल मे अशाति तथा अराजकता का साम्राज्य रहा। इस विद्रोह के कई कारण

थे—सर्वप्रथम मुजफ्फरखाँ तुर्बती नामक नया गवर्नर, जो खाँनजहाँ की मृत्यु के अनन्तर नियुक्त हुआ था, कुछ कठोर प्रकृति का मनुष्य था। इसके अतिरिक्त उसने भूमि-कर-सम्बन्धी कुछ ऐसी विज्ञप्तियाँ निकाली थी जिससे कृषक-वर्ग को अधिक कर देना पडे। इससे बहुत असन्तोष फैला। उसने जागीरदारो के—जिनमें काजी व उलमा भी थे—अधिकारो और पदो की जाँच कराई जिससे वह बहुत भयभीत हुए। इसी समय सेना में भी एक कारण से असन्तोष फैल गया। बगाल के अस्वस्थ जलवायु के कारण अकबर ने इस प्रान्त के सैनिको का भत्ता बढा दिया था। परन्तु जब मनसूर अर्थमन्त्री हुआ तो उसने यह भत्ता आधा कर दिया। इससे सैनिक वर्ग भी क्षुब्ध हो उठा। उधर इसी समय अकबर ने अपने नये धर्म दीने-इलाही की घोषणा की, जिसे सुनकर मौलवियो तथा मुल्लाओ ने उसे धर्म से विमुख कह फतुआ दे दिया, कि सम्राट् मुसलमान नही है। अतः उसके विरुद्ध विद्रोह करना प्रत्येक मुसलमान का कर्त्तव्य है। इस प्रकार विद्रोह की पूर्ण सामग्री एकत्रित हो गई। सर्वप्रथम चगताई ककशालो ने 'दाग कर' देने से मना कर दिया, और बाबाखाँ के नेतृत्व में राजधानी पर चढ आये। दूसरे लोगो ने उसका साथ दिया। राजा टोडरमल को विद्रोह शान्त करने के लिए भेजा गया, परन्तु विद्रोही शक्तिशाली हो गये थे और स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। प्रान्तीय गवर्नर मुजफ्फरखाँ का वध कर उन्होंने समस्त बगाल और बिहार पर अधिकार कर लिया था। यह सुन सम्राट् ने अजीज कोका को टोडरमल की सहायता के लिए भेजा। दोनो सेनापतियो ने मिलकर ककशाला वर्ग को परास्त कर दिया। इसी बीच जौनपुर में विद्रोह की आग भडक उठी। वहाँ के जागीरदार मासूम फरखदी ने अपने आपको स्वतन्त्र घोषित कर दिया। शाहबाजखाँ ने उसे परास्त कर हिमालय की पहाडियो की ओर भगा दिया; परन्तु अजीज कोका की सिफारिश से उसे क्षमा कर दिया गया; जिसके थोडे समय पश्चात् उसके निजी सेवक ने उसका वध कर डाला।

काबुल :—कट्टर मुसलमानो ने विशेषतया पूर्वी प्रान्त के निवासियो ने बादशाह के विरुद्ध फतुआ सुनकर विद्रोह कर दिया और उसे गद्दी से उतार कर उसके सौतेले भाई मिर्जा हकीम को जो काबुल का शासक था, गद्दी पर बैठाने की सोची—हकीम को भी इससे बहुत प्रोत्साहन मिला। उसने स्वय एक सेना पजाब पर आक्रमण करने के लिये भेजी। परन्तु जब यह आक्रमण विफल रहा तो उसने अपने सेनापति शादमान के नेतृत्व में दूसरी बार पजाब पर चढाई की। राजा मानसिंह ने उसे परास्त कर उसका वध कर डाला। १५८१ ई० में हकीम स्वय पजाब पर चढ आया, भारतीय जनता ने उसका साथ न दिया। अकबर ने उसे परास्त कर काबुल

तक उसका पीछा किया और उसकी जागीर जब्त करली परन्तु अन्त में उसने हकीम को क्षमा कर काबुल उसे वापिस दे दिया। १५८५ ई० में मिर्जा हकीम का देहान्त हो गया और काबुल का सूबा राजा मानसिंह के सुपुर्द कर दिया गया, परन्तु वह अनुशासनहीन अफगानो को अपने काबू में न रख सका। इसपर उसने राजा बीरबल को काबुल का हाकिम नियुक्त किया। वह युसुफजाई वर्ग के साथ युद्ध करता हुआ मारा गया। काबुल विजय ने सुन्नी वर्ग की कमर तोड दी। उनका स्वप्न-कि अकबर को गद्दी से उतारकर हकीम को बादशाह बनाएँ, मिट्टी में मिल गया। दूसरे उससे भारत के विद्रोहियो तथा क्षुब्ध वर्ग को पाठ मिल गया कि अकबर के साहस तथा वीरता के सामने यह छोटे-मोटे विद्रोह कोई महत्त्व नही रखते। वह उन्हें एक क्षण में शान्त कर सकता है। इस प्रकार उनका साहस टूट गया। विद्रोही वर्ग के शान्त तथा निर्बल होने के कारण अकबर को शान्त जीवन व्यतीत करने का अवसर मिल गया। अब वह बे-खटके धार्मिक तथा राजनैतिक सुधार में व्यस्त हो सकता था। उससे वह बाधा हट गई जिसके कारण अफगानिस्तान तथा उसके निकटवर्ती प्रदेश के वीर सिपाही उसकी सेना में भर्ती होने से रुक गये थे। इन सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह हुई कि भारतवर्ष की उत्तरी पच्छिमी सीमा सुरक्षित हो गई।

उत्तरी-पश्चिमी सीमा —उत्तरी पश्चिमी सीमा की सुरक्षा भारतीय सम्राटो के सामने सदैव एक जटिल-समस्या रही है। देहली के सुलतानों ने मगोल आक्रमणों से इस सीमा की रक्षा करने के लिए अनेक दुर्ग बनाये तथा वहाँ अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित विशाल सेनाएँ रखी। बलबन, गाजी मलिक तथा अलाउद्दीन ने इस सीमा को दृढ बनाने का पूर्ण प्रयत्न किया। अकबर ने अपने राज्यकाल में काबुल पर अधिकार कर इस समस्या को हल किया। इस सीमा पर अधिक ध्यान देने के लिए उसने १५८५-१५९८ तक लाहौर को ही राजधानी बनाया। इस काल में वह अफगानो को दबाने में लगा रहा क्योंकि अब्दुल्ला के नेतृत्व में उन्होंने काबुल पर आधिपत्य स्थापित करने का विचार किया था, परन्तु अकबर ने स्थिति पर विजय प्राप्त की और इन सबको शान्त करने में सफल हुआ।

रोशनआई आन्दोलन :–रोशनाई मुसलमानो के एक नये वर्ग का नाम था। यह रोशन नामक एक व्यक्ति को अपना पैगम्बर मानते थे। रोशन स्वय कुरान को कोई विशेष महत्व न दे अपने स्वतन्त्र धार्मिक नियमो का प्रचार करता था। परन्तु अकबर ने इन्हे परास्त किया। १६०० ई० में इनका नेता जलाल गजनी के युद्ध में मारा गया। रोशनआई लोगो को दबाने के पश्चात् उसने युसुफजई पठानों के आन्दोलनो को शान्त करना चाहा, क्योंकि भय था कि वे अब्दुल्ला से मिलकर

साम्राज्य के सकट का कारण न हो जावें। तेईस (२३) लडाइयों के पश्चात् वह युद्ध में परास्त हुए। युद्ध की गम्भीरता को देखकर अकबर ने राजा बीरबल और अब्दुल फतह को सेना लेकर अपने पहले सेनापति जैनखाँ की सहायता के लिए भेजा। इन सेनापतियों में पारस्परिक झगडा हो गया। जिससे लाभ उठाकर शत्रु ने शाही सेना को बडी क्षति पहुँचाई। राजा बीरबल ८००० सिपाहियों के साथ मारे गये। जैनखाँ बाल-बाल बचा। अब सम्राट् ने राजा टोडरमल को तथा अपने पुत्र मुराद को एक विशाल सेना ले विद्रोह को दबाने के लिए भेजा। वह इस उद्देश्य में सफल हुए। युसुफजई और अब्दुल्ला पर सम्राट् की शक्ति का ऐसा आतक छा गया कि उन्होंने भारत का विचार छोड दिया, इस प्रकार अपनी दृढता से अकबर उत्तरी-पश्चिमी सीमा समस्या को हल करने में सफल हुआ।

काश्मीर :—काश्मीर का मुसलमान शासक अत्यन्त क्रूर तथा निर्दयी था वह अपनी हिन्दू जनता के साथ बुरा बर्ताव करता था। अत अकबर ने काश्मीर पर आक्रमण करने की सोची। काश्मीर की जलवायु तथा वहाँ के प्राकृतिक दृश्य आक्रमण के विशेष कारण बने। सम्राट् ने भगवानदास को काश्मीर नरेश यूसुफशाह के विरुद्ध भेजा यूसुफशाह ने सन्धि का प्रस्ताव रखा। परन्तु अकबर ने उसे अस्वीकार कर दिया। इस पर शाही सेना ने युद्ध प्रारम्भ कर दिया जिसके कारण यूसुफशाह को आत्म-समर्पण करना पडा। उसे एक मनसबदार बना दिया गया और काश्मीर काबुल प्रान्त में मिला लिया गया। १५८६ ई० में अकबर स्वय काश्मीर गया और वहाँ का प्रबन्ध योग्य तथा अनुभवी पदाधिकारियो को सौंपा गया। तबसे काश्मीर मुगल-सम्राटो का निवास एव परिभ्रमण स्थान बन गया।

सिन्ध व बिलोचिस्तान :—१५७४ ई० से मुल्तान मुगल बादशाहो के अधिकार में था। वहाँ का गवर्नर अब्दुररहीम खानखाना था। उसे सिन्ध तथा बिलोचिस्तान पर विजय प्राप्त करने का कार्य-भार सौंपा गया। मिर्जा जानीबेग, जो सिंध का शासक था, १५९२ ई० में दो बार परास्त हुआ। उसने अकबर की अधीनता स्वीकार की। सहवान तथा ठट्टा उसने मुगलो को दे दिये। परन्तु खानखाना की सिफारिश पर ठट्टा वापिस कर दिया गया और उसे पाँच हजारी मनसबदार बना दिया गया। आगे चलकर दक्षिण विजय में उसने अपनी स्वामि भक्त का प्रमाण दिया। १५९५ ई० में मुगलो ने बिलोचिस्तान-स्थित सिबि तथा मीर मासुम के किले जीत लिये जिसका परिणाम यह हुआ कि समस्त बिलोचिस्तान मुगल आधिपत्य में आ गया।

कन्धार : सिन्ध और बिलोचिस्तान पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् अकबर ने कन्धार पर अधिकार प्राप्त करने की इच्छा की। कन्धार की स्थिति भी

ऐसी थी, जिसके कारण इसका भारतीय आधिपत्य में होना साम्राज्य के लिए आवश्यक था। उधर कन्धार के शासक मिर्जा मुजफ्फर हुसैन की स्थिति भी तुर्कों से निरन्तर संघर्ष करने के कारण बहुत शोचनीय थी। अतः उसने स्वयं अकबर को कन्धार पर अधिकार प्राप्त करने के लिए निमन्त्रित किया। इस प्रकार १५६५ ई० में बिना रक्तपात के कन्धार मुगल साम्राज्य में मिल गया। इस विजय ने सीमा-समस्या को और भी दृढता प्रदान की।

दक्षिण :—उत्तरी भारत में अपने साम्राज्य को पूर्णतया दृढ कर लेने के पश्चात् अकबर ने दक्षिण के मुसलमान-राज्यों अर्थात् अहमदनगर, बीजापुर, गोलकुण्डा, बीदर, बरार को जीतने का संकल्प किया। अकबर की साम्राज्यवादी नीति आक्रमण का प्रमुख कारण थी। अकबर को दक्षिण में पुर्तगाल-प्रभुत्व का निरन्तर बढना सह्य न था और वह सोचता था कि यदि दक्षिण पर उसका आधिपत्य हो जावे, तो वह पुर्तगालियों की शक्ति आसानी से कम कर सकता है। उक्त रियासतों की दशा भी अच्छी न थी। विजयनगर के हिन्दू-राज्य की समाप्ति के कारण उनकी कोई संयुक्त-योजना न थी। अब वह आपस में लडती-झगडती रहती थीं; जिसके कारण वह निर्बल हो गई थीं, और अकबर के लिए उन पर विजय प्राप्त करना सरल था। आक्रमण करने से पहले अकबर ने इन राज्यों के पास अपना प्रभुत्व स्वीकार कराने के लिए सन्धि-पत्र भेजा। परन्तु केवल खानदेश ने प्रस्ताव को स्वीकार किया। अतः शेष भाग के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया गया।

अहमदनगर :—भौगोलिक स्थिति के कारण सर्व-प्रथम अहमदनगर पर आक्रमण हुआ। अकबर को इस पर आक्रमण करने का बहाना भी मिल गया। अहमदनगर की गद्दी के दो अधिकारी थे। उनमें से एक ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर, उससे सहायता माँगी। तुरन्त अकबर ने अपने पुत्र मुराद तथा खानखाना अब्दुर्रहीम को एक विशाल सेना दे, अहमदनगर भेजा, उन्होंने १५६५ ई० में किले का घेरा डाल दिया। परन्तु अहमदनगर के सुल्तान की बहिन चाँदबीबी ने, जो बीजापुर की रानी थी, और जो अहमदनगर-सुल्तान की अल्पायु के कारण स्वयं राज्य-प्रबन्ध करती थी, बड़ी वीरता से मुगलों का सामना किया। मुगल-सेनापति, जो मिलकर कार्य नहीं करते थे, सन्धि करने पर विवश हो गये। चाँदबीबी ने बरार का प्रदेश तथा वार्षिक कर देना स्वीकार किया, जिसके बदले में मुगल-सम्राट् ने चाँदबीबी के भाई बहादुरशाह को अहमदनगर का सुल्तान मानना स्वीकार किया। परन्तु थोड़े ही दिनों बाद अहमदनगर में गृह-कलह होगया। जिसमे चाँदबीबी के ... उसकी हत्या करवा दी। अबकी बार अकबर स्वयं एक सेना लेकर

पहुंचा, और १५९९ ई० में बुरहानपुर को जीत लिया। परस्पर दलबन्दी के कारण अहमदनगर के लोग अपनी रक्षा का उचित प्रबन्ध न कर सके जिसके कारण मुगल-सेना ने अहमदनगर पर अधिकार कर लिया।

खानदेश :—खानदेश के सुल्तान रजाअली ने अकबर का सन्धि-प्रस्ताव तथा उसकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। उसकी मृत्यु के अनन्तर सन् १६०० ई० में मीरांबहादुर जो बहादुरशाह के नाम से प्रसिद्ध था, खानदेश की गद्दी पर बैठा। उसने मुगल आधिपत्य स्वीकार करने से मना कर दिया, और स्वतन्त्र बादशाह की भाँति आचरण करने लगा। अकबर स्वयं उसके विरुद्ध हो गया, और असीरगढ के सुदृढ दुर्ग का घेरा डाला। कई महीने तक घेरा चलता रहा, और अकबर इस दुर्ग का कुछ भी न बिगाड सका। विजय की कोई आशा न देखकर अकबर ने किलेदार को रिश्वत देकर उस पर विजय प्राप्त की। इस प्रकार खानदेश मुगल-आधिपत्य में आया। दक्षिण का यह विजित-क्षेत्र तीन सूबों में विभक्त कर दिया गया—बरार खानदेश तथा अहमदनगर, और वह राजकुमार दानियाल के सुपुर्द कर दिये गये।

साम्राज्य विस्तार :—अब अकबर के साम्राज्य में सम्पूर्ण उत्तरी हिन्दुस्तान, उत्तर-पश्चिम में अफगान देश से लेकर पूर्व में आसाम और उत्तर में काश्मीर से लेकर दक्षिण में बीजापुर और गोलकुण्डा की सरहद तक सम्मिलित था। इस प्रकार सम्राट् ने अपनी मृत्यु के समय तक सुदृढ तथा व्यवस्थित साम्राज्य छोडा, जो १५ सूबों में विभक्त था—(१) काबुल (२) लाहौर (३) मुल्तान, (४) देहली (५) आगरा (६) अवध (७) अजमेर (८) गुजरात (९) मालवा (१०) इलाहाबाद (११) बगाल (१२) बिहार (१३) खानदेश (१४) बरार (१५) अहमदनगर। सन् १६०२ ई० में इनसे १७ करोड ४५ लाख रुपये की आय होती थी।

अकबर के अन्तिम दिन :—अकबर के जीवन के अन्तिम दिन बडी निराशा तथा दुख से व्यतीत हुए। उसके पुत्र दुख का प्रथम कारण हुए। उसके तीन बेटे थे मुराद और दानियाल, प्रत्येक मदिरा के कारण क्रमश १५९९ और १६०४ में मर गये थे। उसका बडा बेटा सलीम भी बहुत शराब पीता था। बहुत दिन सिंहासन पाने की प्रतीक्षा करते-करते वह ऊब गया था। अत जिस समय अकबर दक्षिण में असीरगढ का घेरा डाले पडा था, उस समय उसने इलाहाबाद में स्वतन्त्र होने की घोषणा कर दी। यह समाचार पाकर अकबर को बहुत दुख हुआ। वह तुरन्त दक्षिण को चल दिया। सम्राट् के दुख को और बढाने के लिए उसने १६०२ ई० में ओरछा के राजा वीरसिंह बुन्देला के हाथ अब्दुलफजल का वध करा दिया। क्योंकि सलीम समझता था कि अब्दुलफजल अकबर को उसके विरुद्ध भडकाता है। इस घटना से अकबर इतना अप्रसन्न हुआ कि वह सलीम से अत्यन्त घृणा करने लगा। बेगमों के प्रयत्न से फिर बाप-बेटे में मेल हो गया। सलीम के समस्त अपराध क्षमा कर दिए गये और अकबर ने उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। सन् १६०५

ई० में अकबर को सग्रहणी का रोग हो गया, और कुछ महीने पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई। मृत्युशय्या पर उसने सकेत द्वारा अपने दरबारियों को आदेश दिया कि सलीम को उसका उत्तराधिकारी स्वीकार किया जाय। इसी समय सलीम को गद्दी से वचित करने और उसके बेटे खुशरो को राजसिंहासन पर बैठाने का षडयन्त्र रचा गया। परन्तु यह निष्फल सिद्ध हुआ और सलीम जहाँगीर के नाम से गद्दी पर बैठा।

अकबर की धार्मिक नीति तथा दीन-इलाही

अकबर के धार्मिक विचारो को समझना कठिन है। सिंहासनारूढ होने के समय कट्टर सुन्नी यह सम्राट् ज्यों ज्यो समय व्यतीत होता गया, अन्य धर्मों की ओर प्रवृत्त होता गया और जितना यह अन्य धर्मों के सम्पर्क में आता गया, उतना ही उसे यह अनुभव होता गया कि प्रत्येक धर्म में कुछ न कुछ अच्छे सिद्धान्त विद्यमान है। अत उसकी प्रबल इच्छा हुई कि प्रत्येक धर्म में से इन मान्य बातो को सगृहीत कर एक आदर्श मानव-धर्म की रचना की जाय जो सबको मान्य हो। अपनी इसी विचार-धारा को उसने दीनें-इलाही धर्म द्वारा क्रियात्मक रूप दिया। उसका विचार था कि सर्वमान्य सिद्धान्तो का मिश्रित यह धर्म-धार्मिक एव साम्प्रदायिक झगडो को समाप्त कर विश्व को शाति का सन्देश देगा। यदि हम अकबर के समकालीन युग की धार्मिक तथा राजनैतिक परिस्थिति तथा उसके वैयक्तिक जीवन का अध्ययन करें तो इस प्रकार का धार्मिक विकास हमें स्वाभाविक प्रतीत होगा। अकबर से पूर्व अनेक महात्मा धार्मिक एकता के विचार प्रकट कर चुके थे। धर्म के नाम पर भीषण रक्तपात से खिन्न मानव समाज ने कबीर, नानक, चैतन्य महाप्रभु जैसे अनेक महात्माओ को जन्म दिया था। जिन्होने धार्मिक तथा साम्प्रदायिक भेदभाव के दुखद परिणाम को देखकर प्रेम और भक्ति का उपदेश देकर भिन्न भिन्न मतो की मौलिक एकता का सन्देश दिया था। भगवान एक है और सब धर्म उसकी प्राप्ति के साधन है; अत अनैसर्गिक असमानता जो मनुष्यमात्र में दृष्टिगोचर होती है, अमानुषिक है। इसके अतिरिक्त सोलहवी शताब्दी में योरप और एशिया दोनो महाद्वीपो में धार्मिक क्रान्ति का युग था। योरप में इस समय एक धार्मिक आन्दोलन प्रगति पर था। लोग ईसाई धर्म की कुरीतियाँ तथा मिथ्या अन्ध-विश्वासो का बहिष्कार कर उसे श्रेष्ठ पवित्र और सरल करने म प्रयत्नशील थे। भारत में भी उपरोक्त महात्माओ ने धार्मिक आडम्बरो को मिथ्या बताकर जनता की भाषा में लोगो को उपदेश दिया कि 'सब धर्म ईश्वर के पास पहुँचने के भिन्न-भिन्न मार्ग स्वरूप है।"

कबीर जैसे महात्मा—

"जात-पाँत पूछे नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि को होई।"

जैसे मर्मस्पर्शी पदों द्वारा साम्प्रदायिक भिन्नता तथा जातीय भेद पर कुठाराघात कर चुके थे। जिज्ञासु तथा उदार हृदय अकबर इस विचार-धारा से प्रभावित हुए बिना कैसे रह सकता था। दूसरे, जैसा कि हमने पहिले उल्लेख किया है, अकबर एक महत्वाकांक्षी मनुष्य था। वह समस्त भारतवर्ष में अपना साम्राज्य स्थापित करना चाहता था। भारतवर्ष जैसे विशाल देश में जहाँ अनेकों धर्म तथा सम्प्रदाय प्रचलित हों, अनेको रीतिरिवाज तथा भाषाएँ हो, जहाँ के निवासी अपनी भिन्न-भिन्न संस्कृति से इतने सम्बद्ध हो गये हो कि उसकी रक्षा के लिए प्राणों की बलि देने के लिए सदैव उद्यत रहते हो, एक सुदृढ तथा स्थायी साम्राज्य की स्थापना धार्मिक सहिष्णुता के अभाव में सम्भव नहीं थी। अकबर ने गद्दी पर बैठते ही इसे भलीभाँति समझ लिया था। इस प्रकार राजनैतिक आवश्यकता ने भी धार्मिक कट्टरता के आगे घुटने झुका दिये थे और अन्य धर्मों के प्रति सम्मान एव श्रद्धा का व्यवहार आवश्यक हो गया था। तीसरे, उस समय ईसाई तथा मुसलमान देशो में जनता पर प्रभाव डालने वाली दो शक्तियाँ सर्वोपरि थी।

एक बादशाह, जो राजनैतिक नेता था, दूसरा धार्मिक गुरु, जिसे ईसाई देश में लाट पादरी तथा मुसलमान देश में मुजाहिद अथवा मौलवी वर्ग कहते थे और उनमें ऊपर ईसाई ससार का नेता पोप तथा मुस्लिम विश्व का नेता खलीफा होता था। इस प्रकार एक ही देश में दो बादशाह थे। एक धार्मिक दूसरा राजनैतिक। किसी परिस्थिति में उनमें संघर्ष भी हो सकता था। ऐसे समय में यदि यह धार्मिक वर्ग बादशाह के विरुद्ध आज्ञा दे तो उसे अपनी स्थिति सँभालनी कठिन हो सकती थी। भारतवर्ष का मुस्लिम इतिहास इसका परिचायक है कि जिस बादशाह ने उक्त वर्ग की ओर तनिक भी उदासीनता दिखाई, उसकी स्थिति इन्होंने शोचनीय करने तथा जड खोखला करने का प्रयत्न किया। फलस्वरूप प्रत्येक शासक यह प्रयत्न करता रहा कि इस वर्ग को सन्तुष्ट रक्खे। सम्भव है कि विचारशील अकबर ने शीघ्र ही इस दुर्बलता को समझ लिया हो, और इसी हेतु अपने अन्दर राजनैतिक तथा धार्मिक सत्ता निहित करने की चेष्टा-स्वरूप दीन-इलाही की स्थापना की हो। ऐसा करना ससार के इतिहास में सर्वथा नवीन बात न थी। इग्लैण्ड के बादशाह हैनरी अष्टम ने भी इसी प्रकार पोप को अपने मार्ग में रोडे अटकाते देखकर उससे सम्बन्ध विच्छेद कर एक ऐसा नियम बनाया था जिसके अनुसार इग्लैंड का बादशाह ही इग्लैंड का धार्मिक नेता हो गया था।
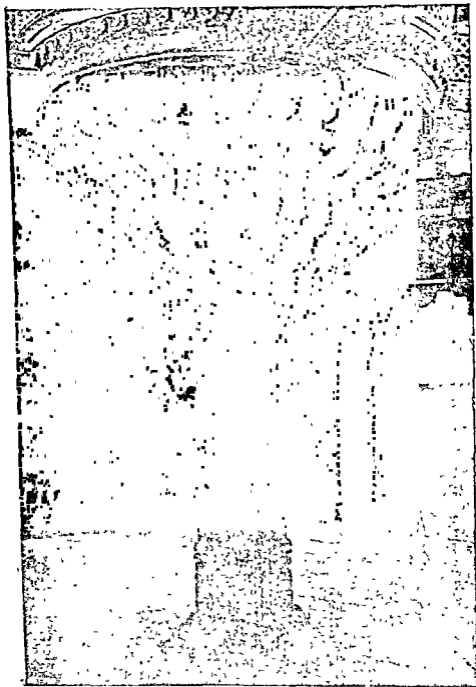
दीवान ए खास (फतहपुर)

हिन्दू राजकुमारियों के साथ विवाह होने के कारण भी उसकी मनोवृत्ति में बड़ा परिवर्तन हो गया था, और उसके हृदय में हिन्दू धर्म के प्रति आदर पैदा हो गया था। दूसरे शेख मुबारिक तथा उसके पुत्र फैजी और अब्दुलफजल जैसे विद्वान् सूफियों की संगति से, जो सदैव धार्मिक भेद-भाव से ऊपर मानव श्रेष्ठता का उपदेश देते थे, उसके विचारों में परिवर्तन हो गया। तीसरे, सत्य का अनुभव करने की प्रबल इच्छा, जो उसने 'इबादतखाने' की स्थापना कर पूर्ण करनी चाही, उसकी धार्मिक सहिष्णुता में बहुत सहायक हुई। इबादतखाने के दैनिक वाद-विवाद ने स्पष्ट कर दिया कि प्रत्येक धर्म में अच्छी तथा ग्राह्य बातें है, जो प्रत्येक मनुष्य को ग्राह्य होनी चाहिएँ। अतः उन्हें एक जगह संकलित कर एक मानव धर्म की रचना करना ही श्रेयस्कर होगा। उपरोक्त कारणों से इस्लाम-धर्म का पुजारी अकबर शनैः शनैके मानव-प्रेमी हो गया। उसके धार्मिक विकास को समझने के लिए हम अकबर के धार्मिक जीवन को तीन भागों में विभक्त कर सकते है।

१५५६ ई० से १५७५ ई० पर्यन्त कट्टर मुसलमान :—इस भाग में अकबर अपने पूर्वजो की भाँति इस्लाम-धर्म का कट्टर अनुयायी रहा। इस काल में वह शरम के अनुकूल आचरण करता रहा। वह ठीक समय पर नमाज पढ़ता, रोजे रखता, मुल्लाओं और उल्माओं का सम्मान करता था। उनकी छोटी-से-छोटी आज्ञा का कभी उल्लंघन न करता था। वह प्रतिवर्ष शेख सलीम चिश्ती की दरगाह के

शेख सलीम चिश्ती का मकबरा (फतहपुर सीकरी)

दर्शनार्थ अजमेर जाता था, और उसकी कई बार परिक्रमा कर घण्टों उसके समीप नत-मस्तक बैठा रहता था। इस काल में वह मुस्लिम फकीरों तथा साधुओं का बहुत आदर करता रहा। इस प्रकार धर्मानुकूल आचरण कर उसने मुस्लिम वर्ग की सहानुभूति अपनी ओर आकृष्ट कर ली।

१५५५ ई० से १५८० ई० पर्यन्त अन्य धर्मों की ओर प्रवृत्ति:— उपरोक्त काल में कट्टर सुन्नी मुसलमान की भांति वह आचरण करता रहा। अतः वह धार्मिक दल, अर्थात् मुल्ला, मौलवियों तथा उलमा के अधिक सम्पर्क में आया। उसे उनकी मनोवृत्ति अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ। उसे उनके विचार संकुचित प्रतीत हुए। उदारता इन्हें स्पर्श तक नहीं कर गई थी। वे रूढ़ियों के दास थे, और उसके विरुद्ध साधारण-सी बात भी वे सहन नहीं कर सकते थे। एक बार अपनी वर्षगांठ के अवसर पर अकबर केसरिया-वस्त्र पहिन शेख अब्दुल नबी नामक एक धार्मिक व्यक्ति की, जिसकी विद्वता का बादशाह बहुत सम्मान करता था, सेवा में गया। वेशभूषा में इस हिन्दू प्रभाव को देखकर शेख क्रोधान्ध हो उठा और उतावला हो इस प्रकार बेंत उठाई कि बादशाह को लग गई। बादशाह को यह मान-हानि अत्यन्त असह्य हुई, और वह धर्म-समुदाय की इस संकुचित मनोवृत्ति को, जिसके कारण वह मुस्लिम वेशभूषा के अतिरिक्त किसी पोशाक तक को सहन नहीं कर सकते थे, परिवर्तन करने के लिये उद्विग्न हो उठा। इसके अतिरिक्त उसने यह अनुभव किया था कि वह धार्मिक विषयों में तनिक-सा भी मतभेद, चाहे वह कितना ही न्याय संगत क्यों न हो सहन न कर सकते थे।

सत्ता, गर्व और पक्षपात ने उन्हें इतना अन्धा बना दिया था कि छोटी-से-छोटी बातों पर भी कुफ्र का फतवा दे योग्य-से-योग्य विद्वान् को भी प्राण-दण्ड दिलाने में वह तनिक-सा भी संकोच नहीं करते थे। एक बार उन्होंने शेख मुबारिक जैसे योग्य विद्वान् को बन्दी बनाने का आज्ञापत्र प्राप्त कर लिया था। बड़ी कठिनाई से उसने विदेश में भाग कर अपने सम्मान की रक्षा की। उपरोक्त वर्णन प्रकट करता है कि वह एक उदार-हृदय मुसलमान को कितनी घृणा की दृष्टि से देखते थे। जहाँ तक विधर्मी अर्थात् हिन्दुओं का सम्बन्ध है, उनकी तो वह जान लेने को उतारू थे। अकबर उनकी इस संकुचित विचारधारा से खिन्न हो उठा, और उसने उनके विशेषाधिकारों तथा मुस्लिम सिद्धान्तों की सत्यता का विश्लेषण करने के लिये गुजरात विजय के पश्चात् १५७५ ई० में फतहपुर सीकरी में इबादतखाना अर्थात् पूजा-गृह नामक एक वाद-विवाद-भवन का निर्माण कराया, जहाँ अनेक धर्मों के प्रतिनिधि एकत्र होकर शास्त्रार्थ करते थे। सत्य की खोज तथा सर्वमान्य सिद्धान्तों का निर्णय

शास्त्रार्थ का वास्तविक उद्देश्य था। शेख मुबारिक और उसके बेटे भी इस वाद-विवाद में भाग लेते थे। ब्राह्मण पण्डित उसे हिन्दू धर्म की बातें बतलाते और आवागमन के सिद्धान्त की व्याख्या करते थे। इसी प्रकार पारसी, जैनी, ईसाई तथा अन्य धर्मावलम्बी अपने-अपने धार्मिक सिद्धान्त बादशाह के समक्ष रखते थे। इनको सुनकर बादशाह की यह धारणा हो चली थी कि सब धर्मों में अच्छी बातें हैं। मनुष्य केवल धर्मान्धता तथा कट्टरता के कारण उन्हे उदारता-पूर्वक ग्रहण नही करता और अन्य धर्मों को घृणा की दृष्टि से देखता है। इन वाद-विवादो में अकबर ने यह भी देखा कि मुसलमान उल्मा छोटी-छोटी बातो पर जैसा कि किसका स्थान पीछे तथा किसका स्थान आगे हो, आदि पर लड़ते-झगड़ते हैं किसी तर्क का उत्तर न पाकर वे अपने विपक्ष की बात मानने के स्थान पर उसे कुफ्र के फतवे से विभूषित करते हैं। कभी-कभी वह शिष्टाचार से इतने गिर जाते थे कि बादशाह तो क्या किसी साधारण दर्शक को आश्चर्य होता था कि धर्म का ठेकेदार विद्वत्समाज दैनिक व्यवहार में इतनी पतितावस्था को पहुँच सकता था।

बादशाह को यह देख बड़ा दुःख होता था, कि इस प्रकार के सकीर्ण एव सकुचित विचारधार मुल्ला तथा मौलवी विशेषाधिकारी के पात्र नही। इनकी शक्ति का ह्रास कर शासन-प्रबन्ध को उनके हस्तक्षेप से मुक्त रखना ही श्रेयस्कर होगा, विधर्मियो का दुर्दान्त-दमन इन्ही सकुचित विद्वानो की विचार-धारा का परिणाम है। इसी बीच, इन लोगो के दो दलो में एक धार्मिक विषय पर मतभेद इस सीमा पर पहुँच गया कि किसी प्रकार भी निर्णय न किया जा सका कि कौन सत्य तथा कौन असत्य है। भावावेश में दोनो दल क्रोधान्ध हो पाशविकता पर आ गये। अब सबको यह आवश्यक प्रतीत हुने लगा कि ऐसी संघर्षमय परिस्थिति में कौन निर्णय करे कि अमुक दल सत्य तथा अमुक असत्य पर है। अवसर से लाभ उठाकर शेख मुबारिक ने कहा कि ऐसी परिस्थिति में बादशाह का निर्णय सर्व-मान्य हो। अबुल-फजल ने तुरन्त एक अधिकार-पत्र सर्व सम्मति से पास करा दिया। जिसके अनुसार सम्राट् को इमाम-ए-आदिल स्वीकार किया गया, और उसका पद मौलवी अर्थात् 'मुजतहिद' से उच्च रखा गया।

सन् १५७६ ई० में उसने यह घोषणा की कि "सम्राट् का पद मुजताहिदो के पद से ऊँचा है। अत. ऐसे समय जब कोई ऐसी बात आ जाये जिस पर मुजताहिद एक मत न हो तो सम्राट् की सम्मति सर्व मान्य समझी जायेगी।" यह घोषणा Infallibility Decree के नाम से प्रसिद्ध है। इसके अनुसार अकबर हैनरी अष्टम की भाँति भारत का राजनैतिक तथा धार्मिक दोनो क्षेत्रो में सर्वोच्च अधिकारी हो गया।

घोषणा का महत्त्व :—उक्त घोषणा-पत्र इस्लाम धर्म के इतिहास में विशेष स्थान रखता है। शरग्र सिद्धान्त से पूर्णतया जकडे हुये इस्लाम धर्म में एक सम्राट् का अंतिम निर्णय निर्धारित करना अत्यन्त आश्चर्य-जनक प्रतीत होता है। आश्चर्य होता है कि तनिक सी बात पर 'इस्लाम खतरे में' का नारा लगाने वाली मुसलमान जाति ने यह घोषणा स्वीकार कैसे कर ली ? यह घोषणा अकबर की असीम नीति-कुशलता की परिचायक है। उनसे स्वय ही ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कराई। उनमे ही एक प्रस्ताव रखवाया, तथा उन्ही के हस्ताक्षरो से इसे प्रकाशित कराया। क्योकि इस पर शेख मुबारिक के अतिरिक्त मखदूम-उल-मुल्क तथा अब्दुलनबी जैसे कट्टर मौलवियो के हस्ताक्षर भी थे। उलमा द्वारा प्रस्तुत यह प्रस्ताव उन्ही की शक्ति पर वज्रघात था, क्योकि इसने धार्मिक मामलो में भी सम्राट् को प्रथम स्थान दे उन्हें उससे निम्नकोटि में रख दिया। इसने बादशाह् को राजनैतिक नेता के अतिरिक्त धार्मिक नेता भी बना दिया। इस प्रकार राजनैतिक क्षेत्र में उलमा का स्थान निम्न हो गया, तथा उनका प्रभाव दिन पर दिन क्षीण होता गया। इसके द्वारा सम्राट् को जनता के लाभार्थ उदार धार्मिक आज्ञायें तथा विज्ञप्तियाँ निकालने का अधिकार हो गया यदि वे किसी कुरान अथवा हदीस की आयत के अनुसार पुष्ट की जा सकें। उलमा के बन्धन से मुक्त अधिकार पूर्ण सम्राट् अब अधिक उदार नीति का अनुसरण कर अपनी जनता को लाभान्वित कर सकता था।

परन्तु इस घोषणा को समस्त मुस्लिम वर्ग ने सरलता से स्वीकार नही किया। क्षोभ एव असतोष अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया। जब १५८० ई० में शुक्रवार को अकबर ने स्वय एक इमाम का अभिनय कर खुतबा पढा इसलामी भारत में सम्राट् की इस क्रियापर तहलका मच गया। मुल्ला मुहम्मद याजदी ने अकबर पर कुफ्र का फतवा पास कर मुसलमानो को सम्राट् के विरुद्ध विद्रोह कर उस गद्दी से उतार कर उसके भाई मिर्जा हकीम को बादशाह बनाने की विज्ञप्ति निकाली। फलस्वरूप बगाल, बिहार, जौनपुर में विद्रोह हुये। मिर्जा हकीम स्वय एक सेना ले पजाब पर चढ आया, परन्तु अकबर ने स्थिति पर विजय प्राप्त कर जनता तथा उलमा-वर्ग को घोषणा स्वीकार करने के लिये बाध्य किया। इस प्रकार घोषणा द्वारा स्वीकृत अधिकार को सैन्य-बल से सुरक्षित कर अकबर ने अपनी स्थिति को दृढता प्रदान की।

१५८१ ई० से मृत्यु पर्यन्त —सन् १५८१ ई० में अकबर अपनी धार्मिक नीति में एक पग और आगे बढा, जब उसने समस्त धर्मो के विरोधी तत्वो का बहिष्कार कर उनके मूल सिद्धान्तो को एकत्रित कर एक नवीन धर्म प्रचलित करना

चाहा। इसका नाम उसने दीने-इलाही अर्थात् ईश्वरीय धर्म रखा। सब धर्मों की अच्छी अच्छी बातें इसमें सम्मिलित कर उसने उसे सर्वप्रिय बनाना चाहा, किन्तु उसमें पीर-पैगम्बरो तथा देवी-देवताओ को स्थान नही था। इन सबका स्थान सम्राट् ने ग्रहण कर लिया था। इस प्रकार के संयुक्त-धर्म की रूप-रेखा तैयार कर उसने इबादतखाने में धार्मिक नेताओ, सेनापतियो तथा अन्य विद्वानो का एक विराट् सम्मेलन किया और उन्हे सम्बोधित करके बोला–

"धार्मिक वाद-विवादो के संघर्ष को देखकर हमारी इच्छा है कि हम एक ऐसे धर्म की स्थापना करें जिसमें सब धर्मो की अच्छी-अच्छी बातें सम्मिलित हो, और जो इस कारण सर्वप्रिय तथा सर्वमान्य हो, क्योंकि इससे समस्त देश में ही नही, वरन् समस्त विश्व में शान्ति तथा सन्तोष की वृद्धि होगी ।" उक्त प्रस्ताव सर्व सम्मति से पास हुआ।

दीने-इलाही का सिद्धान्तः—"भगवान् एक है, तथा अकबर उसका सर्वोच्च पुजारी तथा पैगम्बर है", इसका प्रथम सिद्धान्त था। इस्लाम को ऐक्यवाद के सिद्धान्त को नवीन धर्म में प्रथम स्थान दे, अकबर ने इस्लाम को ही दीने-इलाही का आधार स्तम्भ बनाया। जो कोई नवीन धर्म का अनुयायी बनना चाहता था, उसे उक्त सिद्धान्त तथा सम्राट् के लिये तन, मन, धन, धर्म तथा मान आदि सभी अर्पण करने की शपथ लेनी पडती थी। दूसरे नवीन धर्म के अनुयायियो को मास न खाने तथा सबके साथ भलाई करने का व्रत लेना पडता था। सम्राट् को साष्टाग प्रणाम, अथवा सिजदा करना इस धर्म का तीसरा नियम था। सूर्य्य तथा अग्नि की उपासना सबके लिये अनिवार्य थी। रविवार का दिन इस धर्म का पवित्र दिवस ठहराया गया। इस धर्म के अनुयायी जब कभी एक दूसरे से मिलते थे तो, 'अल्लाहो अकबर' अथवा 'जल्ले जलालहू' कहकर अभिवादन करते थे।

दीने-इलाही की समालोचना—उपरोक्त नियमो का विचारात्मक विश्लेषण प्रत्येक व्यक्ति पर अकबर की नीति-निपुणता प्रकट कर देता है दीने-इलाही के सिद्धान्तो का निर्वाचन उसने ऐसी विधि से किया कि भारत के प्रमुख धर्मों को यह अपने धर्म का प्रतिबिम्ब स्वरूप प्रतीत हुआ। ऐकेश्वरवादी मुसलमान पहिले सिद्धान्त के कारण इसे मुसलमान धर्म का संशोधित रूप समझते, शाकाहारी तथा अहिंसावादी हिन्दुओ ने इसे अपने धर्म का परिवर्तित रूप समझा, सूर्य तथा अग्नि-उपासक पारसियो को यह अपना धर्म प्रतीत हुआ, और इतवार को सर्व-श्रेष्ठ दिन समझने वाले ईसाइयो को यह ईसाई मत दिखाई दिया। इस प्रकार अकबर का "दीने-इलाही" तत्कालीन प्रचलित सभी धर्मों का समन्वय था। इससे अकबर की दूरदर्शिता

प्रकट होती है क्योंकि निश्चय रूप से भारत का नायक वही हो सकता है जो समन्वयवादी हो। अकबर के समकालीन प्रातःस्मरणीय तुलसीदास ने भी हिन्दू धर्म में प्रचलित मत-मतान्तरों का समन्वय कर आज के हिन्दू धर्म को जन्म दिया। अकबर उनसे कुछ और आगे बढ़ कर विश्वनायक बनना चाहता था। यह सब होते हुए भी इसके अनुयायियों की सख्या केवल १८ ही रही। परन्तु यह आश्चर्य की बात नही, क्योंकि सम्राट् किसी को बरबस इस धर्म का अनुयायी नही बनाना चाहता था। दूसरे, उसका उद्देश्य किसी धर्म का सचालक होने का न था। उसका उद्देश्य, धार्मिक सहिष्णुता स्थापना करना था। उसका उद्देश्य लोगो के हृदयो से धार्मिक भेद-भाव दूर कर एक-दूसरे के प्रति समानता की भावना उत्पन्न करना था। इसके अतिरिक्त उसका एक राजनैतिक उद्देश्य था कि भिन्न-भिन्न धर्म के अनुयायी विशेषतया हिन्दू सम्राट् में अपनत्व तथा धार्मिक भ्रातृत्व अनुभव कर उसके लिए प्राण अर्पण करने को कटिबद्ध रहे, जिससे उसकी स्थिति निरन्तर दृढ हो जावे। सम्राट् के लिए सब कुछ न्यौछावर करने के सिद्धान्त का अर्थ कुछ ऐसे सम्राट् भक्त-व्यक्तियो को प्राप्त करना था जो सब प्रकार विश्वसनीय हो और जो प्रत्येक परिस्थिति में राज-भक्त रहने को तैयार रहे। सिजदा अथवा साष्टाग प्रणाम की प्रथा सम्मिलित कर अकबर ने राजत्व-पद में देवत्व-पद का समावेश किया, जिससे जनता उसे देवतुल्य समझ उसके अनन्य-तम भक्त बन विद्रोह का स्वप्न भी न देखे। इस प्रकार 'दीने-इलाही' अकबर की धार्मिक उदारता से अधिक उसकी राजनीतिज्ञता का द्योतक है, अथवा यो कहा जा सकता है कि उसने धर्म की आड ले अपने साम्राज्य को दृढ बनाया। इस प्रकार डाक्टर स्मिथ की यह आलोचना कि 'दीने-इलाही' अकबर की मूर्खता का स्मारक है' सर्वथा निर्मूल है। इस धर्म प्रसार में अकबर की बहुत उच्च भावना तथा नीति-पटुता निहित है। वह राष्ट्रीयता का विकास करना चाहता था, यदि अगले मुगल सम्राट् भी यह प्रयत्न करते तो भारतीय इतिहास की रूप-रेखा कुछ और ही होती और १५ अगस्त १९४७ को भारत दो भागो में विभक्त हो द्विजातीय सिद्धान्त का आखेट न होता।

बदायूनी का आक्षेप :—'दीने-इलाही' के सचालन के कुछ ही दिन पश्चात् अकबर ने कुछ इस्लाम-विरोधी विज्ञप्तियाँ निकाली, जिनके आधार पर बदायूनी ने अकबर पर विधर्मी तथा काफिर होने का दोषारोपण किया। सम्राट् को सिजदा करना, सूर्य तथा अग्नि की उपासना, शाही महल में सूअरो का पालना, गाय के गोश्त, लहसुन तथा प्याज का निषेध, मुल्लाओ तथा शेखो का बहिष्कार इत्यादि-इत्यादि बहुत-सी आज्ञाएँ है, जिनमें कुछ को स्वय बदायूनी ने किसी विश्वस्त-सूत्र से प्राप्त न होने के कारण असत्य ठहराया है।

उपरोक्त आरोपों तथा आज्ञाओं की व्याख्या करने के लिए हम उन्हें एक-एक करके लें :—

साष्टांग प्रणाम या सिजदा :—सिजदा एक धार्मिक क्रिया के रूप में नहीं, वरन् एक अभिवादन के रूप में दीने-इलाही में, अथवा दैनिक-व्यवहार में सम्मिलित किया गया। हिन्दू-धर्म में इस प्रकार अभिवादन सम्राट् को देव तुल्य बना, साधारण जन-वर्ग से श्रेष्ठता तथा उच्चता प्रदान कर, उसके प्रति आदर तथा श्रद्धा की वृद्धि करता था। इस्लामी दुनियां में भी यह नवीन बात न थी। फारिस के बादशाहों को भी सिजदे द्वारा अभिवादन की प्रथा थी। अब्बासी खलीफा भी इसी प्रकार अभिवादन कराते थे। अत सिजदा आरम्भ कराना अप्रचलित क्रिया नहीं कही जा सकती जिसके कारण अकबर पर विधर्मी होने का आरोप लगाया जा सके।

सूर्य तथा अग्नि-उपासना :—जैसे कि दीने-इलाही की व्याख्या के समय उल्लेख किया गया था, सूर्य तथा अग्नि उपासना हिन्दू तथा पारसी जनता की सहानुभूति आकृष्ट करता था। राजनैतिक दृष्टिकोण से इस प्रथा की व्याख्या बदायूनी द्वारा लगाये गए आरोप को सर्वथा असत्य सिद्ध करती है। 'सूअर का-पालना' भी इसी प्रकार वाराह अवतार से सम्बन्धित हिन्दू-भावना का आदर था। 'गाय' का आदर तथा उसका वध, हिन्दू-मुस्लिम एकता में सर्वथा बाधक रहा है। इस साधारण बाधा को हटा, पारस्परिक-वैमनस्य को दूर कर, दोनों जातियों में प्रेम भाव उत्पन्न कर, राष्ट्रीय विकास करने के हेतु अकबर ने गाय के गोश्त तथा लहसुन इत्यादि वस्तुओं के प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगा दिया। इन सबके पीछे राजनैतिक दृष्टिकोण कार्य कर रहा था। इस्लाम के निरादर अथवा अपमान का इससे कोई सम्बन्ध न था।

धार्मिक दृष्टि से अकबर पूर्णतया मुस्लिम था। परन्तु उसे केवल एक उदार मुस्लिम कहा जा सकता है। जो समय तथा उसकी महत्वाकांक्षा की देन है। स्पष्ट शब्दों में अकबर एक कट्टर मुसलमान न था, और उसका उदारतापूर्ण व्यवहार राजनीतिक परिस्थितियों की सामयिक देन थी। मृत्यु-शय्या पर पड़ी हुई दशा में उसका कलमा पढ़ना, तथा अपने दफन करने के लिए अपने जीवन-काल में मकबरे का बनवाना इसकी पुष्टि करते हैं।

केन्द्रीय शासन : अकबर का शासन केन्द्रीय था जिसमें सम्राट् स्वयं समस्त नागरिक तथा सैनिक शासन का सर्वोच्च पदाधिकारी था। वह राजनैतिक तथा धार्मिक सब मामलों में सर्वोपरि था, उसके अधिकार अपरिमित, तथा उसका शब्द

नियम था। इसमें सन्देह नही कि वह बहुत मन्त्री रखता था, परन्तु वह उनका शिष्य नही वरन् शिक्षक था। आश्चर्य-जनक सुप्रबन्ध, जो उसने अपने साम्राज्य में लागू किया, उसकी ही प्रकाण्ड-बुद्धि का परिणाम था। वह एक स्वेच्छाचारी शासक था, परन्तु उसकी निरकुशता मानवता तथा भ्रातृभाव से परिपूर्ण थी। भिन्न-भिन्न विभागो को उसने योग्य पदाधिकारियो के सुपुर्द किया। इनमें 'वकील' अर्थात् प्रधान-मन्त्री सर्वोच्च अधिकारी था। वह किसी भाग विशेष का उत्तरदायी नही था, वरन् सब विभागो और समस्त साम्राज्य के सुप्रबन्ध का निरीक्षण उसका कार्य था। प्रत्येक गभीर स्थिति में उसकी सलाह ली जाती थी। प्रधान-मन्त्री के नीचे 'दीवान' अर्थात् माल मन्त्री होता था तो राजकोष तथा साम्राज्य की आय व व्यय का उत्तर-दायी था। वह बादशाह की सम्मति से साम्राज्य की आर्थिक नीति का सचालन करता था। उसका एक पृथक कार्यालय था, जहाँ आय व व्यय सम्बन्धी सब कार्यवाही होती थी।

'बख्शी' नामक एक तीसरा अधिकारी राजकीय-सेना का अध्यक्ष होता था, उसका कर्त्तव्य था कि सेना के वेतन का उचित वितरण करे, सैनिकों का वेतन नियुक्त करे, सेना को अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित रखे। युद्ध में जाने से पूर्व सेनापतियों तथा युद्ध-स्थल में भिन्न-भिन्न सेनाओ की स्थिति नियुक्त करे। चौथा उच्च पदाधिकारी 'खान-ए-सामान' नामक था, जो राजकीय गोदाम का मन्त्री कहा जाता था। उसका कर्त्तव्य था कि राज-रसोई तथा बादशाह के अन्य गृह-सम्बन्धी आवश्यकताओ को पूर्ण करे। 'सदर-ए-सदूर' नामक एक अन्य पदाधिकारी न्याय तथा धर्म विभाग का अधि-ष्ठाता होता था। उसको हम अकबर का मुख्य न्यायधीश कह सकते है। मोहतसिब नामक एक अन्य उच्च पदाधिकारी का कर्त्तव्य था कि वह यह देखे कि जनता राज-कीय नियमो का पालन करती है या नही। जनता को मदिरापान, जुआ खेलना इत्यादि-इत्यादि बुरे व्यसनो से मुक्त रखना इसका कर्त्तव्य था। उपरोक्त अधि-कारियो के अतिरिक्त 'मुस्तौफी' अर्थात् अकपर्यवेक्षक, 'मुशरिफ' अर्थात् कोषाघ्यक्ष, 'मीर बहरी' अर्थात् जलसेनाध्यक्ष इत्यादि कई और अन्य पदाधिकारी थे जो जलसेना, वन-विभाग इत्यादि की देख-रेख करते थे।

प्रान्तीय शासन :—साम्राज्य को व्यवस्थित शासनसूत्र में सकलित करने के लिए अकबर ने जागीर-प्रथा बन्द करदी। उसने साम्राज्य को सूबो में विभक्त किया। प्रत्येक सूबा एक सूबेदार के अधिकार में रखा गया। सूबेदार को 'सिपह-सालार' भी कहते थे। सम्राट् का प्रतिनिधि होने के कारण अपने सूबे के लिए उसके अधिकार असीम थे। प्रान्त के माल तथा सेना दोनो विभाग उसके अधिकार में होते

थे। वह प्रान्तीय-सेना का सेनापति और प्रान्त का अन्तिम न्यायाधीश होता था। वह स्वेच्छानुसार पदाधिकारियों को नियुक्त अथवा पदच्युत कर सकता था, परन्तु वह स्वेच्छा से युद्ध अथवा संधि घोषणा नहीं कर सकता था। उसे प्राण-दण्ड देने का अधिकार न था और न धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप ही कर सकता था। यह केन्द्रीय प्रश्न थे, जिनमें सम्राट के आदेशानुसार कार्य करना आवश्यक था। केन्द्र की भांति प्रान्त में भी एक 'दीवान' अर्थात् माल-मन्त्री होता था वह सूबेदार से सम्बन्धित न हो सीधा केन्द्र से सम्बन्ध रखता था। वह आयकर तथा माल-सम्बन्धी समस्त विषयों का निर्णायक था। इस विभाग की पद-नियुक्ति- तथा परिवर्तन और संशोधन उसके अधिकार में थे। वर्तमान कलक्टरों की भांति वह भूमि अथवा माल-सम्बन्धी मामलात का निपटारा भी करता था। जब किसी विषय पर उसमें और सूबेदार में मतभेद होता था, तो विवाद-ग्रस्त, प्रश्न केन्द्र के निर्णय के लिये भेज दिया जाता था। इसी प्रकार प्रान्तीय बख्शी, सेना-विभाग का अध्यक्ष होता था। इसके अतिरिक्त 'आमिल' नामक एक अफसर का कर्त्तव्य था कि वह राज-कर राजकोष में जमा कर दे। भूमि, कृषि तथा व्यापार सम्बन्धी समस्त व्यवस्था उसके अधिकार में थी। सूबे की सब घटनाएँ लिखना तथा केन्द्र को उनसे सूचित रखने के लिए एक घटना लेखक अर्थात् वाकानवीस होता था। वह सूबे के जिलों के समस्त कार्य तथा सूबे की समस्त घटनाओं की सूचना केन्द्र को देता था।

जिले का प्रबन्धः—प्रत्येक सूबा कई जिलों में विभक्त था, जिसे 'सरकार' कहते थे। प्रत्येक सरकार कई 'परगनों' अर्थात् महाल में विभक्त थी। 'सरकार' का प्रबन्ध 'फौजदार' नामक पदाधिकारी के सुपुर्द था। वह सेना तथा माल दोनों का पदाधिकारी था। नागरिक पदाधिकारी की दृष्टि से उसका कार्य सिपहसालार अर्थात् प्रान्तीय गवर्नर को नियमों का पालन तथा शांति स्थापित करने में सहायता देना था; सैनिक अधिकारी की हैसियत से उसका कर्तव्य था कि छोटे-छोटे विद्रोह जो 'सरकार' में हों उन्हें शांत करे। अपनी 'सरकार' को डाकुओं से सुरक्षित रखे, और यदि माल-विभाग को अपने कार्य के लिए शक्ति की आवश्यकता हो, तो उसे सैनिक सहायता दे। यद्यपि उसकी नियुक्ति तथा पदच्युत करना सूबेदार के हाथ में था, उसके लिए आवश्यक था कि वह केन्द्र से उतना ही सम्बन्ध रखे, जितना प्रान्त से। नगर का प्रबन्ध 'कोतवाल' नामक पदाधिकारी के सुपुर्द था। वर्तमान पुलिस की भाँति कोतवाल का कार्य अभियोग का पता लगाना, रात को चोरी तथा डाकों को रोकना, अजनबी अर्थात् अपरिचित आदमियों की कार्यवाही का विवरण रखना, बाट व तौल का निरीक्षण करना, तथा लावारिस जायदादों का प्रबन्ध करना था। प्रान्तीय आमिल

की भाँति 'सरकार' में राज करों को वसूल करने के लिए 'वितिक्ची' नामक एक अधिकारी होता था। उसका मुख्य कार्य कानूनगो के कार्य की जाँच करना था, जिस से पता चले कि राज-कर उचित रूप से लागू है या नही। सरकार का कोषाध्यक्ष खजीनदार कहलाता था। कानूनगो की सहायता के लिए प्रत्येक ग्राम में एक पटवारी तथा मुक्द्दम अर्थात् मुखिया होता था, जिनके काम वर्तमान पटवारी और मुखिया जैसे ही थे।

शाही नौकरी —राजकीय नौकरी के लिए अनेक कर्मचारियों की आवश्यकता थी और अकबर जागीर-प्रथा के दोषो को अच्छी प्रकार समझता था। अत इन कर्मचारियो को प्राप्त करने के लिए अकबर ने मनसवदारी प्रथा प्रचलित की। मनसब का अर्थ दर्जा है। समस्त कर्मचारियो को उसने ३३ दर्जो अर्थात् मनसबो में विभक्त किया। इस प्रकार ३३ प्रकार के उच्च तथा निम्न मनसबदार अर्थात् पदाधिकारी उसके शासन-काल में थे। सेना-विभाग अलग न होने के कारण प्रत्येक मनसवदार माल तथा सेना दोनो का काम करता था। मनसवदार को अपने दर्जे के अनुसार निश्चित सिपाही रखने आवश्यक थे। परन्तु वह कभी निश्चित सिपाही न भी रखते थे। आवश्यकता पडने पर मनसबदारो को अपनी सेना राज्य-सेवा के लिए देनी पडती थी। इस प्रकार १० से लेकर दस हजार सवार तक के मनसब होते थे। दसहजारी मनसवदार का दर्जा सबसे प्रतिष्ठित होता था और यह पद प्रायः राजवंश के ही लोगो को प्रदान किया जाता था। सरकारी नौकरियाँ बिना जातीय अथवा धार्मिक भेद-भाव के सबके लिए खुली थी कोई भी योग्य व्यक्ति अपनी योग्यतानुसार उसमे प्रवेश कर सकता था। बादशाह स्वय किसी व्यक्ति का मनसब निर्धारित करता था वे मनसबदारो का वेतन राजकीय-कोप से नकद दिया जाता था। कभी-कभी उन्हे भूमि की मालगुजारी भी बता दी जाती थी, किन्तु ऐसा कम होता था।

गुप्तचर विभाग :—यद्यपि बादशाह किसी भी पदाधिकारी के कार्य का किसी समय निरीक्षण कर सकता था, तो भी साम्राज्य की विशेष घटनाओं की सूचना देने के लिए अकबर ने गुप्तचर-विभाग का आयोजन किया। इस विभाग के अधिकारी, सरकारी कर्मचारियो तथा जनता के प्रभावशाली व्यक्तियों के कार्य तथा व्यवहार की सूचना सम्राट् को देते थे। इसी प्रकार जिले के कर्मचारियों में भ्रष्टाचार रोकने के लिए सूबेदार एक गुप्तचर-विभाग का आयोजन करता था। समस्त व्यवस्था इतने सुचारु रूप से चलती थी कि पदाधिकारी स्वतः ही ईमानदारी से काम करते थे और सम्राट् तथा जनता के प्रति आदर की भावना से प्रेरित हो अपना कर्तव्य पालन करते थे।

न्याय-विभाग :—अकबर स्वयं अन्तिम न्यायाधीश था। वह दरबारे-आम में बैठकर स्वयं मुकदमों की अपील सुनता था और प्रत्येक व्यक्ति को स्वतन्त्रता-पूर्वक किसी निर्णय के विरुद्ध अपील करने का अधिकार था। उसके अतिरिक्त 'सदर-ए-सदर' अर्थात् मुख्य न्यायाधीश माल तथा धर्म-सम्बन्धी मामलों का निर्णय करता था। मुख्य काजी देश के अनेक स्थानों पर स्थित अदालतों द्वारा इस्लाम के नियमानुसार न्याय की व्यवस्था करता था। प्रत्येक अदालत में काजी मुकदमे को सुनता था, और 'मीरअदल' तथा मुफ्ती कानून की व्याख्या करते थे। कानून की कोई लिखित नियमावली न होने के कारण काजी को न्याय करने में कुरान की सहायता लेनी पडती थी। मुकदमों की समस्त कार्यवाही अलिखित होती थी; आज-कल के से व्यावसायिक वकील आदि मुकदमों की पैरवी करने को न थे। हिन्दुओं के अभियोगों में उनके रीति-रिवाज का भी ध्यान रखा जाता था। प्राय दण्ड कठोर दिये जाते थे और जुर्माने भी भारी होते थे। छोटे-छोटे अपराधों के लिए कोडे लगवाना अथवा हवालात में बन्द करना आदि दण्ड दिये जाते थे। विद्रोह तथा कत्ल के अभियोग में प्राण-दण्ड दिया जाता था। ग्राम में स्थानीय मामलों के फैसले करने के लिए ग्राम-पचायत थी।

डाक-विभाग :—अकबर ने डाक की भी अच्छी व्यवस्था की। सडकों के किनारे स्थित सरायों में डाक की व्यवस्था के लिए घोडे रक्खे जाते थे। सम्राट् को साम्राज्य की मुख्य घटनाओं से परिचित करने के लिए 'घटना-लेखक' अर्थात् 'वाकै-नवीस' प्रतिदिन डाक भेजते थे, जो घोडों तथा हरकारों द्वारा ले जाई जाती थी। प्रत्येक छ. या सात मील पर एक चौकी अर्थात् डाक-घर होता था। एक हरकारा एक चौकी से दूसरी चौकी तक केवल ६ या ७ मील का फासला तय कर अगली चौकी अर्थात् डाक-घर पर डाक पहुँचा देता था, जहाँ दूसरा हरकारा तैयार मिलता था और तुरन्त डाक का थैला लेकर चल देता था। यह डाक चौबीस घण्टे चलती रहती थी, घुडसवार डाक के लिए एक निश्चित दूरी पर घोडे बदलने की व्यवस्था होती थी। परन्तु इस डाक की अपेक्षा हरकारा डाक अधिक विश्वस्त तथा तेज थी। क्योंकि हरकारा रात को भी तीव्र गति से चल सकता था जबकि घुडसवार केवल दिन को ही। समस्त विभाग ऐसा अच्छा काम करता था कि सम्राट् साम्राज्य के कोने-कोने मे सम्पर्क स्थापित रख सकता था।

यातायात के साधन : अच्छी डाक-व्यवस्था साम्राज्य की शान्ति के लिए अकबर ने साम्राज्य-व्यापी सडकों की व्यवस्था अत्यन्त अनिवार्य समझी। सार्वजनिक निर्माण-विभाग को आदेश दिया गया कि वह सडकों की ओर विशेष ध्यान दे।

उसनें यात्रियों की जान व माल की रक्षा का विशेष प्रबन्ध किया, निश्चित दूरी पर यात्रियो को ठहरने के लिए सरायें बनवाईं, जिनके चारो ओर बगीचे लगवाये। तालाब तथा दूकानों की व्यवस्था की, इनमें यात्रियों को सुविधा देने की चेष्टा की गई, हिन्दू तथा मुसलमान यात्रियो के भोजन का प्रबन्ध करने के लिए पृथक्-पृथक् भोजनालय स्थापित कराये गये।

सड़को के अतिरिक्त नदियो को भी यातायात का बहुत बड़ा साधन बनाया गया; मुगल भारत का अधिकतर व्यापार नावों द्वारा होता था।

शिक्षा :— ज्ञान-प्रेमी अकबर शिक्षा की ओर कैसे उदासीन रह सकता था? शिक्षा को प्रोत्साहन देने के लिए उसने अनेक विद्यालयो तथा महाविद्यालयो की
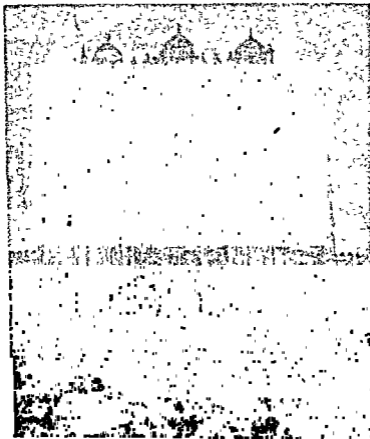
बुलन्द दरवाजा (फतहपुर सीकरी)

स्थापना की। इन विद्यालयो में योग्य अध्यापको की नियुक्ति कर उसने शिक्षा के स्तर को ऊँचा करने का प्रयत्न किया। विद्यार्थियो को नियमित तथा ध्येयानुसार उचित शिक्षा प्रदान करने के हेतु उसने प्रत्येक पाठशाला की प्रत्येक कक्षा का पाठ्य-क्रम निर्धारित कराया, जिससे वह अपने लक्षित व्यवसाय से सम्बन्धित विद्यालय में शिक्षा प्राप्त कर उचित ज्ञान प्राप्त कर सकें। शिक्षण-प्रणाली को उन्नत बनाने का भी उसने प्रयत्न किया, जिससे विद्यार्थियों को विद्योपार्जन रुचिकर तथा सुलभ हो जाये। विद्या को प्रोत्साहन देने के लिए उसने योग्य तथा प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति दी, तथा निर्धन विद्यार्थियो को नि शुल्क शिक्षा का प्रबन्ध किया। मुसलिम स्कूलों में हिन्दू-छात्रों की शिक्षा का भी प्रबन्ध किया गया। फारसी को अनिवार्य विषय बनाया गया। सम्राट् ने स्त्री-शिक्षा पर भी ध्यान दिया। फतहपुर सीकरी में उसने एक बालिका-विद्यालय की स्वय स्थापना की।

भूमि-प्रबन्ध :—सुयोग्य भूमि-व्यवस्था अकबर की शासन-प्रतिभा की अमर देन है परन्तु क्या स्वय अकबर अथवा उसके मन्त्री इस व्यवस्था के जन्मदाता है ? निष्पक्ष इतिहास शेरशाह सूरी को भूमि प्रबन्ध का उचित श्रेय दिये बिना नही रह सकता। वास्तव में अकबर का भूमि-प्रबन्ध शेरशाह के प्रबन्ध का ही विकसित रूप था। इस प्रतिभाशाली बादशाह को शीघ्र ही मृत्यु होने के कारण वह इसे स्थायी रूप न दे सका, और उसकी मृत्यु के पश्चात् शीघ्र ही यह व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई। अत हुमायूँ ने भूमि-व्यवस्था अस्त व्यस्त पाई। अकबर ने फिर शेरशाह के कार्य की पुनरावृत्ति की। इस कार्य में उसे 'इतमादखाँ', 'मुजफ्फरखाँ तुरबती' तथा राजा 'टोडरमल' से विशेष सहायता मिली, राजा टोडरमल शेरशाह के माल-विभाग का पदाधिकारी रह चुका था, अत उसे भूमि-प्रबन्ध का विशेष अनुभव था।

उचित भूमि-व्यवथा के लिए कृषि-भूमि की ठीक-ठीक पैमायश, प्रत्येक बीघा की औसत उपज का निश्चित ज्ञान, प्रत्येक बीघे की उपज में राज-भाग का निर्णय तथा राजभाग का नकद मूल्य आदि चार बातों का जानना आवश्यक था। भूमि की ठीक नपत कराने के लिए अकबर ने नापने के यन्त्रो में सशोघन किया। उसने निश्चित लम्बाई के बाँसो को कडी द्वारा शृखलाबद्ध कर एक जरीब बनवाई। यह जरीब घट-बढ़ न सकती थी। अकबर ने इससे समस्त भूमि की नाप करा यह निश्चित किया कि कितनी भूमि कृषि में है, और इस नाप को पटवारी के कागजो में अकित कराया तथा उसकी एक प्रति-लिपि माल विभाग में रखी। प्रत्येक बीघे की औसत उपज का निश्चय करने के लिए उसने भूमि को चार श्रेणियों में विभक्त किया।
"पोलज" जो सदा से कृषि में चली आती थी और कभी पडी न छोडी

द्वितीय "पड़ौती" यह वह भूमि थी जो कुछ निश्चित समय कृषि करने के उपरान्त कुछ समय के लिए पड़ी रखी जाती थी। तीसरी "छोछर" जिसे एक बार कृषि करने के बाद चार वर्ष तक खाली पड़ा रखा जाता था। चौथी "बजर" जो पाँच वर्ष से बिल्कुल खाली पड़ी थी। प्रथम दो प्रकार को श्रेष्ठ, मध्यम तथा निम्न तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया।

इन तीन श्रेणियों की उपज का औसत निकाल उस प्रकार की भूमि की उपज निश्चत की गई। उदाहरणस्वरूप यदि श्रेष्ठ की उपज १६ मन प्रति बीघा मध्यम की १२ मन प्रति बीघा तथा निम्न की ८ मन प्रति बीघा थी, तो तीनों की पैदावार का औसत अर्थात् १२ मन प्रति बीघा उसकी उपज ठहराई गई। अन्तिम दो श्रेणियों अर्थात् 'छोछर' और 'बजर' उपज के विचार से इतनी अच्छी न होने के कारण उनकी औसत उपज निश्चित करने में सिंचाई के साधन इत्यादि का भी ध्यान रखा गया। इस प्रकार की प्रत्येक श्रेणी की उपज निर्धारित करने के पश्चात् राज भाग, उपज का ⅓ ठहराया गया और उसे नकद रुपये में परिणत करने के लिए अनेकों गाँव, कस्बों तथा नगरो के दस वर्ष के भावों का औसत निकाला गया। इस प्रकार जो औसत भाव आया उसी भाव पर राज-भाग का मूल्य लगा उसे नकदी में परिणत किया गया। इस तरह प्रत्येक कृषक की मालगुजारी निश्चित कर उसको पटवारी के कागजात में दर्ज कराया गया और उसकी एक प्रतिलिपि माल-विभाग के कार्यालय में तथा एक स्थानीय कार्यालय में भिजवाई गई। 'मुजफ्फरखाँ तुरवती' तथा 'राजा टोडरमल' ने सर्वप्रथम १५७३-७५ ई० में गुजरात में बन्दोबस्त कर उक्त व्यवस्था लागू कर दी। तत्पश्चात् साम्राज्य के अन्य प्रान्तों में बन्दोबस्त कर वहाँ की भूमि-व्यवस्था ठीक की गई। प्रतिवर्ष नपत की कठिनाई के कारण दसवर्षीय बन्दोबस्त की प्रथा चालू की गई। अर्थात् प्रति दस वर्ष पश्चात् भूमि को नाप कर यह निश्चत किया जाता, कि पहिली कृषि-भूमि में कितनी और सम्मिलित कर ली गई है और इस प्रकार मालगुजारी में कितनी वृद्धि अथवा कमी होनी चाहिय। इस प्रकार की मालगुजारी निश्चिय करने के पश्चात् अकबर ने मालगुजारी एकत्रित करने के लिये ठेके देने की प्रथा को भी बन्द कर दिया, जैसी कि पहिले प्रचलित थी। अब सरकारी कर्मचारी ही मालगुजारी एकत्रित करते। प्रायः मालगुजारी नकद रुपये के रूप में ली जाती थी, परन्तु यदि कोई कृषक अधिक आग्रह करे तो वह उपज के रूप में भी ली जा सकती थी। दुर्भिक्ष अथवा अन्य प्राकृतिक तथा अप्राकृतिक संकट के समय मालगुजारी में कमी कर दी जाती थी। विशेष परिस्थिति में वह पूर्णतया क्षमा भी की जा सकती थी। यह नहीं वरन्

जनता की सहायतार्थ ऐसे सकट-काल में 'तकावी' इत्यादि भी दी जाती थी। प्रत्येक प्रान्त के माल-विभाग में 'दिवान,' 'सरकार' में 'ग्रामिल', परगने में 'कानूनगो' और गाँव में 'पटवारी' तथा 'मुकद्दम' की नियुक्ति कर अकबर ने अपनी भूमि-व्यवस्था को सुचारु रूप दिया।

अकबर का भूमि-प्रबन्ध उसकी महानता का सूचक है। वर्तमान भूमि-व्यवस्था एक प्रकार से उसकी देन है। इससे राजा तथा कृपक दोनों वर्गों को लाभ हुआ। राज्य की आय निश्चित हो गई; उसमें धोखे का कोई स्थान न रह गया। कृपक-वर्ग को अपनी मालगुजारी ज्ञात होने के कारण कर्मचारी उससे अधिक वसूल करने के अधिकारी न रहे। परिणाम यह हुआ कि राजा तथा कृपक दोनों समृद्ध तथा श्रीसम्पन्न हो गये।

सेना:—अकबर ने नाममात्र के राज्य पर शासन आरम्भ कर भारतवर्ष के प्रमुख भाग पर अपना आधिपत्य जमाया। यह सब सुसंगठित सेना के बिना किस प्रकार सम्भव हो सकता था। अतः अकबर ने अपनी सेना की ओर विशेष ध्यान दिया। शाही सेना के तीन भाग थे; (१) बादशाह का आधिपत्य स्वीकार करनेवाले राजा तथा सरकारों की सेना, (२) मनसबदारों की सेना, (३) बादशाह की स्थायी-सेना, जिसका वेतन सीधा सरकारी खजाने से दिया जाता था। स्थायी सेना की संख्या अधिक न थी। उसकी सेना चार भागों में विभक्त थी, पैदल, घुड़सवार, तोपखाना तथा जलसेना। पैदल सेना में बन्दूकची शमशीरबाज अर्थात् तलवार चलानेवाले, दरवान तथा कुली इत्यादि सम्मिलित थे।

तोपखाना :—'मीर आतिश' अथवा दरोगा के अधिकार में तोपखाना था। उसकी सहायता के लिये 'मुशरिक' नामक एक अन्य पदाधिकारी होता था। मीर आतिश स्वयं अपने विभाग की आवश्यकताएँ बादशाह के समक्ष रखता था, और उन्हें स्वीकृत कराता था। वह स्वयं तोपखाने का निरीक्षण करता था। तथा रणस्थल में उसकी उचित स्थिति निर्धारित करता था।

घुड़सवार :— यह विभाग सेना का सबसे महत्त्वपूर्ण अङ्ग था। मनसबदारी प्रथा द्वारा सेना के इस अङ्ग को सुव्यवस्थित किया गया था। अकबर ने सैनिक पदों के लिए इस प्रथा का प्रयोग किया। उसने इन पदों को १० सवारों के अफसर से लेकर १० हजार तक के ३३ पदों में विभक्त किया। परन्तु सात से दस हजार तक के मनसब केवल शाही घराने के लोगों को मिलते थे। विशेष अवस्था में स्वामि-भक्त लोगों को भी यह पद दे दिये जाते थे। राजा टोडरमल, राजा मानसिंह, मिर्जा शाहरुख, सात हजार के मनसबदार थे। मनसबदारों को राजकोष से वे—

मिलता था। उनके लिये आवश्यक था कि वह जिस कोटि के मनसवदार हो उतने ही घुड़सवार रखें। परन्तु कभी कभी व्यक्तिगत मनसब अर्थात जत तथा वास्तविक मनसब में अन्तर था। ऐसी दशा में यदि किसी व्यक्ति का जत ५ हजार का है और सवार मनसब ५ हजार का तो उसे वेतन तो दसहजारी मनसब का मिलता था, किंतु वह केवल ५ हजार घुड़सवार रखता था। यह मनसवदार सैनिक अधिकारी के अतिरिक्त शासनाधिकारी भी होता था। अपने मनसवदार के अनुसार उसे प्रांत, सरकार, परगना अथवा कोई और कर्त्तव्य सौंप दिया जाता था।

मनसवदारों के अतिरिक्त एक और तरह के सैनिक थे जिन्हें 'दाखिली' और 'अहदी' कहते थे। दाखिली सिपाहियों की एक प्रकार की विशेष सेना थी जिसे राजकोष से वेतन मिलता था, और जो मनसवदारों की अध्यक्षता में काम करती थी। 'अहदी' बादशाह के अङ्ग-रक्षक होते थे। इन्हें साधारण सिपाहियों से अधिक वेतन मिलता था। अलाउद्दीन खिलजी की भांति सैनिक-स्तर को ऊंचा रखने के लिये बादशाह मनसवदारों के घोड़ों को दाग लगवाता था, तथा सिपाहियों के हुलिये दर्ज कराता था।

जलसेना।—अकबर ने एक अच्छी जलसेना की भी व्यवस्था की। उसने एक पृथक् विभाग स्थापित कर उसे अमीर-जल-बहर को सौंप दिया। उसने आठ लाख चालीस हजार रुपया इस विभाग के लिये अलग कर दिया। इलाहबाद, लाहौर, बंगाल, और ठट्टा में जलयान निर्माण केन्द्र खोले गये, जहाँ छोटे-बड़े कई प्रकार के जलयान बनाये गये।

हाथी:—उपरोक्त चार विभागों के अतिरिक्त उसने हाथियों की भी सेना का आयोजन किया, जिसे उसने दस-दस, बीस-बीस के समूह में विभक्त कर रिसालों का रूप दिया, कुछ मनसवदारों को निश्चित घुड़सवारों के अतिरिक्त कुछ हाथी भी रखने की आज्ञा दी गई।

साहित्य—अकबर के शासन काल में साहित्य की बहुत उन्नति हुई। प्रत्येक विषय पर अमूल्य ग्रंथ रचे गये। इतिहास साहित्य में इस समय विशेष प्रगति हुई। अब्बुलफजल का अकबरनामा, जिसमें भारतवर्ष के रीति रिवाजों का अत्यन्त सुन्दर वर्णन है, सदैव इतिहास-साहित्य की अमूल्य निधि रहेगी। इससे भी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'आईने-अकबरी' है। अब्बुलफजल की प्रतिभा इसमें पराकाष्ठा पर पहुँच गई है। अकबर की राजनैतिक तथा सैनिक व्यवस्था का विस्तृत वर्णन होने के कारण इसका महत्त्व अकबरनामा से भी अधिक है। 'तारीखे अलफी' नामक प्रसिद्ध पुस्तक जिसमें इस्लाम धर्म के प्रारम्भ से अकबर के समय तक १००० वर्ष

न्का पूर्ण इतिहास स्वयं अकबर ने प्रसिद्ध विद्वानों से संकलित कराया, इतिहास-साहित्य की तीसरी प्रसिद्ध पुस्तक है। उपरोक्त पुस्तको के अतिरिक्त अब्दुल-कादिर बदायूँनी रचित तारीखे बदायूँनी तथा निजामुद्दीन रचित तबकात अकबरी तथा अन्य महत्त्वपूर्ण इतिहास इसी तरह की देन है। फारसी अनुवाद के लिये भी अकबर का समय बहुत प्रसिद्ध है इसी समय कई ग्रन्थो का फारसी भाषा में अनुवाद किया गया। अब्दुर्रहीम खानखाना ने दरबारनामा तथा बदायूँनी ने जामाए-रशीदी का फारसी अनुवाद किया। इनके अतिरिक्त फैजी तथा अन्य विद्वानों ने हिन्दुओं के धार्मिक ग्रन्थ वेद, रामायण, महाभारत तथा श्रीमद्भगवद्गीता का बहुत अच्छा और सरल अनुवाद फारसी में किया। सम्राट् की आज्ञा से नल-दमयन्ती, पंचतंत्र, कादम्बरी, वेताल-पच्चीसी और लीलावती का अनुवाद भी फारसी में हुआ। फारसी के प्रसिद्ध कवियो में उर्फी, नासिरी, गजाजी और फैजी के नाम खासकर उल्लेखनीय है। उनकी गजलें ईश-प्रेम में रगी हुई है, परन्तु हिन्दू-कवियों के प्रतिकूल उन्होंने अपने ग्रन्थों में यही उपदेश दिया है कि ईश्वर से मिलना दुष्कर नही, बल्कि असम्भव है। हिन्दी-कवियो तथा महात्माओं में सबसे प्रसिद्ध सूरदास, तुलसीदास, रहीम, केशवदास तथा नन्ददास हैं। सूरदास नेत्रहीन थे। उन्होने श्री कृष्ण जी का बाल-चरित्र बड़ी सरल तथा भावपूर्ण भाषा में वर्णन किया है। यही कारण है कि सूरसागर के पद अभी तक हिन्दुस्तान में गाँव तथा शहर वालो की जबान पर है। गोस्वामी तुलसीदास जी की रामायण की प्रशंसा करना, मानो सूर्य को दीपक दिखाना है। रामायण का साम्राज्य प्रत्येक हिन्दू के हृदय पर उतना ही है, जितना इंजील का ईसाइयों के हृदयों पर अथवा कुरान का मुसलमानों के हृदयों पर है। इसी युग के प्रसिद्ध कवि केशवदास भी हैं। उन्होंने अपनी पुस्तकों में हिन्दी कविता के अलकारों तथा नियमो का विस्तृत प्रयोग किया है।

संगीत :—अकबर को सगीत से भी बहुत प्रेम था। उसके संगीत प्रेम को सुनकर अनेक संगीतज्ञ 'फारिस' काश्मीर, और तूरान इत्यादि देशों से उसकी सेवा मे उपस्थित हुए। उसके दरबार में अनेकों सगीतरत्न रहते थे जो रागानुसार सात भागो में विभक्त थे, हर एक भाग के लिये सप्ताह में एक दिन नियत था। इस प्रकार अकबर सिलसिले से सबका गाना सुनता था। सबसे प्रसिद्ध गायक तानसेन था जो प्रारम्भ में हिन्दू था और ग्वालियर में रहा करता था। ग्वालियर में अब भी उसकी कब्र पर गायको का मेला लगता है। उसके स्वर में ऐसी मिठास थी कि वह अपने रागो द्वारा मुर्दा दिलो में जान डाल देता था। उसके अतिरिक्त बैजू बावरा, रामदास व हरिदास नामक हिन्दू गायक भी अकबर के काल में हुए।

चित्रकारी—अकबर के शासनकाल में चित्रकारी की भी बहुत उन्नति हुई। अब्बुलफजल ने 'आईने-अकबरी' में १७ चतुर चित्रकारों के नाम दिये हैं जिनकी कारीगरी के अद्भुत नमूने अभी तक लन्दन के अजायबघर में मौजूद हैं। इनमें सबसे योग्य चित्रकार अब्दुस्समद दसवन्त तथा बसावत थे। अब्दुस्समद अपने कार्य में इतना दक्ष था कि वह पोस्त के दाने पर कुरान की पूरी आयत लिख देता था। अकबर के समय की चित्रकारी में फारिस की चित्रकारी की पूरी झलक थी। चित्रों में रंगों का प्रयोग बहुत कम करते थे। सम्राट् की आज्ञा से चित्रकारों ने रामायण, अयार दानिश, नल-दमयन्ती और कई अन्य पुस्तकों को सुन्दर चित्रों से सुसज्जित करके उनकी प्रतिभा को बढ़ाया था।

भास्कर-शिल्प :—अकबर के समय की बहुत इमारतें मिलती हैं। उसने कुछ इमारतें मुसलमानी ढंग पर और कुछ हिन्दुस्तानी ढंग पर और कुछ दोनों को मिलाकर बनवाईं। प्रथम का सर्वश्रेष्ठ नमूना दिल्ली में हुमायूँ का मकबरा है जो सन् १५६५ ई० में एक ऊँचे चबूतरे पर फारसी शैली के आधार पर बना था। उस की बनावट इतनी सुन्दर तथा चकित कर देनेवाली है कि उसे देखकर आगरे के ताजमहल का दृश्य आँखों के सामने आ जाता है। हिन्दुस्तानी ढंग की कई इमारतें फतहपुर सीकरी में पाई जाती हैं। इनमें बुलन्द दरवाजा और जोधाबाई के महल हिन्दू शैली के अद्भुत नमूने हैं। बुलन्द दरवाजे की ऊँचाई सड़क से १७६ फीट है। भारतवर्ष में उसके समान ऊँचा कोई अन्य दरवाजा नहीं है। आगरे के किले में जहाँगीर के महल, मथुरा का सती बुर्ज और राजपूताने के अनेकों मन्दिर भी हिन्दुस्तानी ढंग पर बनवाये गये थे। सम्मिलित शिल्प के नमूने हमें अधिकतर फतहपुर सीकरी में मिलते हैं। यही कारण है कि इतिहासकारों ने इस कस्बे को सम्राट् के विचारों का जीता जागता उदाहरण बतलाया है। इन इमारतों में राजा बीरबल का महल, इबादतखाना और दीवाने खास सबसे प्रसिद्ध हैं।

छापा और सुन्दर लेख :—अकबर के समय तक इंगलैंड में छापाखानों का आविष्कार हो चुका था। परन्तु भारतवर्ष में अभी तक उनका प्रचार न हुआ था। ईसाई धर्म के पादरी बहुधा हरफों को छापे की भाँति लिखते और बेल-बूटों से सुसज्जित करके सम्राट् को दिखाते थे, परन्तु वह उनकी ओर ध्यान न देता था। इसके प्रतिकूल सम्राट् को सुन्दर लेख से विशेष प्रेम था। अब्बुलफजल ने लिखा है कि इस समय भारतवर्ष में आठ प्रकार की लिपि प्रचलित थी। अकबर के दरबार में सैकड़ों योग्य खुशखत लिखने वाले थे। इसमें मुहम्मदहुसैन काश्मीरी का स्थान सबसे ऊँचा है। उसका लेख इतना चित्ताकर्षक तथा हृदय को लुभाने वाला था कि

अकबर ने उसे जरी-कलम अथवा अथवा 'स्वर्ण लेखनी' की उपाधि प्रदान की थी
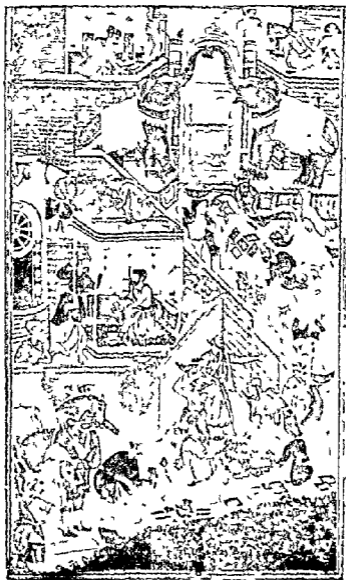
आगरे किले के हाथी द्वार का निर्माण कार्य

अकबर के नवरत्न :—अकबर के दरबार में नौ महापुरुष थे जो उसके 'नवरत्न कहलाते हैं। इनके नाम इस प्रकार है—मुल्ला दुप्याजा, हकीम
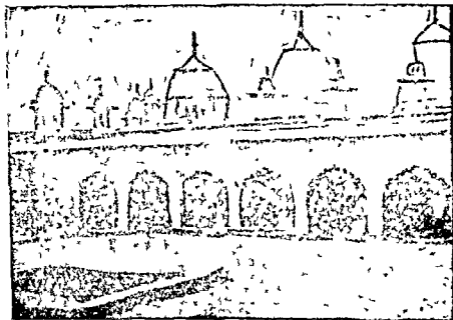
मोती मसजिद (आगरा किला)

जहाँगीर महल (आगरा किला) का भीतरी भाग

अब्दुर्रहमान खानखाना, अब्दुलफजल, फैजी, मिर्जा तानसेन, राजा मानसिंह, राजा भगवानदास और बीरबल, इनमें से प्रथम छ मुसलमान थे और अन्तिम तीन हिन्दू। मुल्ला दुप्याजा अरब का निवासी था और एक बहुत बडा विद्वान् था। हकीम हुम्माम अकबर के बावर्चीखाने का अफसर था। बीरबल बहुत हँसमुख था और अपने चुटकलो और लतीफो के लिये प्रसिद्ध है। शेष छ का हाल पहिले आ चुका है। अत उनका फिर से दिया जाना आवश्यक नही मालूम होता।

अकबर का चरित्र :—अपनी अलौकिक प्रतिभा, अदम्य साहस, अथक परिश्रम, धर्म-सहिष्णुता, साहित्य एव कलाप्रियता, तथा राजनीति-पटुता के कारण अकबर ससार के महान् सम्राटो में गिना जाता है। समकालीन इतिहासकार एवं विदेशी यात्रियो ने उसकी मुक्तकण्ठ से प्रशसा की है। अकबर ५ फीट ७ इन्च लम्बा था। स्वस्थ एव प्रशस्त ललाट, विशाल चक्षु, गेहुँआ रग, ऊँची गम्भीर आवाज, हँस-मुख चेहरा, नम्र तथा शिष्ट स्वभाव वाला अकबर सर्वप्रकारेण महान् ही था। जिस स्तर का व्यक्ति हो उससे उसी स्तर का वार्तालाप करने की उसमें क्षमता थी। अपनी कुशाग्रबुद्धि द्वारा वह विषम समस्याओ को तुरन्त सुलझा लेता था। हिन्दू मित्र-मण्डल से प्रभावित होने के कारण उसने गो मांस, लहसुन, प्याज आदि तामसिक पदार्थों का परित्याग कर दिया था। मास में उसकी पहिले ही वृत्ति नही थी; जीवन के अन्तिम समय में उसने उसका सर्वथा बहिष्कार कर दिया। दिन में राजकार्य की देख-रेख, रात्रि में धार्मिक चर्चायें, उसे सोने के लिये थोडा ही अवकाश देनी थी। अपनी विलक्षण स्मरणशक्ति की सहायता से वह गहन विषयो का ज्ञान साधारणतया प्राप्त कर लेता था। वह कला एव कलाकोविदो को सम्मानसूचक दृष्टि से देखता था। अपने सम्बन्धियो के प्रति तथा कुटुम्बियो के प्रति वह सदैव दया तथा करुणा का बर्ताव करता था। सलीम की धृष्टता को क्षमा करना इसका ज्वलन्त उदाहरण है। उसकी साहित्य, कला, गान विद्या, गुण-ग्राहिता एव चित्रकला-विषयक अभिरुचि उसकी महा-नता के उदाहरण है। उसका हृदय प्रेम का अनन्त स्रोत था। असीम शारीरिक बलधारी, भयङ्कर जीव जन्तुओ का आखेट-प्रिय, मनोविनोद के लिये पुरुष एवं पशुओ का युद्ध-दर्शक, अकबर स्वय भी वीरता तथा पराक्रम के कार्य करने के हेतु सदैव कटिबद्ध रहता था। वह बिना किसी वर्ण या धर्म के भेद-भाव के सबके साथ समान रूप से न्याय करना चाहता था। हिन्दू-मुस्लिम-सम्मिश्रण तथा प्रजा को एकता के प्रेम-सूत्र में सकलित करने की उसकी बलवती इच्छा थी। उसके लिये उसने आजी-वन प्रयत्न भी किया। राजपूतो से ऐच्छिक वैवाहिक सम्बन्ध इसके प्रबल प्रमाण हैं।

अकबर विलास-प्रिय भी था। जहाँ जीवन का वह अद्भुत रूपक खेला गया, जहाँ कुछ काल के लिये समस्त संसार को विस्मृत कर अकबर ऐश्वर्य-सागर में डुबकी लगाने के हेतु विह्वल होकर कूद पड़ता था, जहाँ अकबर के मदमातियों की अक्षय कामनाओं और उद्दीप्त वासनाओं ने नग्न-नृत्य किया, जहाँ समस्त भारत विजयी महान् सम्राट् अपनी महत्ता एवं गौरव को ताक में रख साधारण मानव जनों से रंगरेलियाँ करता तथा आँख-मिचौनी खेलता था, वह सीकरी इन सबका वह ज्वलंत उदाहरण है जिसे देखकर विदित होता है कि मनुष्य कितना ही महान् और बड़ा क्यों न हो उसकी भी छाती में एक छोटा-सा कोमल भावुक हृदय धुक धुकाता है, उस हृदय में भी वासनाओं तथा आकांक्षाओं का तुमुल-युद्ध होता है, ऐसे महान् सम्राट् को भी मानवी दुःख दर्द सांसारिक कामनायें एवं भौतिक वासनायें अपना क्रीत दास बनाकर अभीष्ट अभिनय कराती हैं।

जिस समय यूरोप के ईसाई अपने धर्म-विरोधियों को अमानुषिकता के साथ संहार करने एवं जीवित ही अग्नि में भस्मीभूत करने में तल्लीन थे, भारत में धर्म-सहिष्णु अकबर ने धार्मिक स्वतन्त्रता की घोषणा कर, विभिन्न धर्मों की सच्चाई मान कर मनुष्य को ईश्वर की वास्तविक सत्ता का ज्ञान कराया। निस्सन्देह उसे अपने सदुद्देश्यों में सफलता मिली अतः विश्व-इतिहास में उसका स्थान सदैव ऊँचा रहेगा

प्रश्न

१. अकबर के गद्दी प्राप्त करने के समय भारत की राजनैतिक दशा कैसी थी ?
२. बैरमखाँ ने अपने संरक्षणकाल में अकबर की स्थिति को किस प्रकार दृढ़ किया और उसका पतन किस प्रकार हुआ ?
३ अकबर ने राजपूतों के साथ कैसा बर्ताव किया—इस बर्ताव की व्याख्या करो।
४. अकबर की हिन्दू-नीति पर प्रकाश डालो।
५. अकबर ने अपने साम्राज्य विस्तार के लिये क्या प्रयत्न किये ?
६. अकबर की सीमान्त-नीति का संक्षिप्त विवरण दो।
७ अकबर की धार्मिक नीति का विश्लेषण करो।
८ अकबर के राज्य-प्रबन्ध के विषय में तुम क्या जानते हो ?
९. अकबर ने किस प्रकार अपनी सेना को व्यवस्थित किया ?
१०. अकबर के समय में साहित्य व कला की क्या प्रगति हुई ?
११ अकबर के चरित्र पर एक टिप्पणी लिखो।

अध्याय ५

नूरुद्दीन मुहम्मद जहाँगीर

(१६०५–१६३७ ई०)

राज्यारोहण १६०५ ई० :—अकबर की मृत्यु के पश्चात् राजा मानसिंह के दल ने जहाँगीर के पुत्र खुसरो को सिंहासनारूढ करना चाहा। परन्तु वह अपने इस ध्येय मे सफल न हो सका और १६०५ ई० में सलीम 'जहाँगीर' की उपाधि धारण कर स्वयं गद्दी पर बैठा। इस समय उसकी अवस्था ३६ वर्ष की थी। उसका मदिरा-पान तथा अन्य इसी प्रकार के चाल-चलन को देखते हुए जनता को एक अच्छे राज्य की आशा न थी।

शासन-भार सँभालना :—अपनी उदार शिक्षा तथा विवेक-शीलता द्वारा उसने राज्य-प्रबन्ध को श्रेष्ठ किया। अपने सहधर्मियो को प्रसन्न करने के हेतु उसने मुसलमान धर्म की रक्षा करने का वचन दिया। स्मरण रहे कि अकबर की उदारता से मुस्लिम-वर्ग क्षुब्ध था। जिसके कारण उसे ऐसा करना पडा। अपने पिता के स्वामिभक्त तथा विश्वासपात्र पदाधिकारियों का सन्देह दूर करने के लिये उसने उन्हें उनके पदो पर ही स्थायी किया। हिन्दू-वर्ग की सहानुभूति तथा शुभकामनायें प्राप्त करने के लिये उसने राजा मानसिंह जैसे व्यक्तियो को भी, जिन्होने उसके विरुद्ध खुसरो का बादशाह बनाना चाहा था, क्षमा कर दिया। इसने बहुत-से कर स्थगित कर दिए। क्षुब्ध जनता की प्रार्थना सुनने तथा उचित न्याय करने के लिए उसने अपने महल के बाहर एक सोने की जंजीर लटकवाई, जिसमें एक घंटी बंधी हुई थी। जब कोई आदमी इस जंजीर को खींचता था तो तुरन्त घंटी बजने लगती थी। इस प्रकार उसने सर्वसाधारण के साथ न्याय करने की सुव्यवस्था की। इसमें सन्देह नहीं कि सम्राट् के भय से बहुत कम आदमी उस जंजीर को खींचते थे, परन्तु उसकी यह व्यवस्था उसकी न्याय-प्रियता की द्योतक है। इसमें कोई सन्देह नही। उसकी न्याय-विषयक किंवदन्तियाँ आज भी ग्रामो में प्रचलित हैं।

दस्तूर-उल-अमल :—गद्दी पर बैठने के थोडे समय पश्चात् ही उसने निम्न-लिखित १२ नियम बनाये जो दस्तूर-उल-अमल के नाम से प्रसिद्ध हैं।

(१) उसने कुछ अनधिकार कर, जो जमींदार अपने व्यक्तिगत लाभार्थ कृषको से वसूल करते थे, स्थगित कर दिये।

(२) उसने जागीरदारो से प्रार्थना की कि वह निर्जन सड़कों के किनारे बस्तियाँ बनाने का प्रोत्साहन दें और वहाँ विश्रामगृह, मस्जिद, कुएँ इत्यादि का निर्माण कर उन्हे सुविधापूर्ण बनाने तथा रास्तों को सुरक्षित करने का प्रयत्न करें।

(३) उसने व्यापारी लोगों के गट्ठर खोलने बन्द करा दिए, जो प्राय यातायात के बीच उनकी इच्छा के विरुद्ध चुगी के लिए खोल दिये जाते थे।

(४) उसने राजनियम, जिसके अन्तर्गत किसी मनुष्य की सम्पत्ति उसकी मृत्यु के पश्चात् बादशाह को पहुँच जाती थी, स्थगित कर दिया और नियम बनाया कि अब वह उचित उत्तराधिकारी को ही मिलेगी।

(५) उसने मदिरा तथा अफीम इत्यादि मादक द्रव्यों का बनाना निसिद्ध कर दिया।

(६) उसने अपने पदाधिकारियो को आज्ञा दी कि वह प्रजा की भूमि पर अनधिकार चेष्टा कर स्वय उसे अपनी कृषि में प्रयोग न करें।

(७) उसने साम्राज्य के प्रत्येक बड़े शहर में अस्पताल बनाने की आज्ञा दी, जिसमें राज्य की ओर से वैतनिक हकीम रक्खे जाते थे।

(८) उसने सिपाहियों का गृहस्थ में ठहरना निषेध कर दिया।

(९) उसने अङ्ग-भङ्ग करने का दण्ड स्थगित कर दिया।

(१०) वर्ष में कुछ दिन उसने कुछ विशेष जानवरो का आखेट तथा वध निषेध कर दिया।

(११) उसने परगने के अधिकारियो को आज्ञा दी कि वह अपने परगने में वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित नही कर सकते थे।

(१२) उसने अपने पिता की जागीर उसके विश्वस्त पदाधिकारियों को ही स्थायी कर दी तथा उन्हे और अधिकार प्रदान किये। जहाँगीर ने विज्ञप्ति निकाली कि उसके राज्य में सब उक्त नियमो का पालन करें।

इस प्रकार अपनी समस्त जनता को सन्तुष्ट कर जहाँगीर ने १६०६ ई० में आगरे में अपने शासन का प्रथम नौरोज बड़े शान के साथ मनाया, जो पन्द्रह दिन तक चलता रहा और अन्त में साम्राज्य के विश्वास-पात्र अमीरो को अमूल्य भेंट दे समाप्त हुआ।

खुसरो का विद्रोह :—अकबर की मृत्यु के पश्चात् १६०५ ई० में अमीरों के एक दल ने, जिसमें राजा मानसिंह, मुर्तजाखाँ, सैयदखाँ तथा मिर्जा अजीज कोका

सम्मिलित थे, जहाँगीर को गद्दी से वंचित कर, उसके पुत्र खुसरो को बादशाह बनाने का प्रयत्न किया था, परन्तु वह सफल न हो सके थे। तदुपरान्त यद्यपि पिता पुत्र में संधि होगई थी तथापि खुसरो की महत्वाकांक्षा कम न हुई थी। उसकी सुन्दरता तथा लोकप्रियता उसे पुनः सिंहासन प्राप्ति का प्रयत्न करने का प्रोत्साहन देती थी। राजा मानसिंह का भतीजा, मिर्जा अजीज कोका का दामाद तथा सम्राट् का पुत्र होने के कारण, साम्राज्य का कुछ प्रभावशाली वर्ग भी उसके साथ था। इन सब कारणों से प्रोत्साहित हो, खुसरो सन् १६०६ ई० में आगरे से निकल भागा और ३५० अश्वारोहियों के सहित लाहौर की ओर कूच किया। मथुरा में हुसैनबेग बदख्शानी ३००० घुड़सवारों सहित उससे मिल गया। पानीपत में लाहौर का दीवान अब्दुर्रहीम भी, जो किसी कार्यवश आगरे आरहा था। उसके साथ हो लिया। कहा जाता है कि सिक्ख गुरु अर्जुनसिंह ने उसे शुभ आशीर्वाद दिया तथा कुछ आर्थिक सहायता भी प्रदान की। परन्तु जब वह लाहौर पहुँच गया तो उसे घोर विरोध का सामना करना पड़ा। लाहौर के गवर्नर दिलावरखाँ ने नगर-द्वार खोलने से मना कर दिया। खुसरो ने घेरा डाला और शहर का एक द्वार जला डाला। इसी बीच में दिलावरखाँ को सहायता प्राप्त हो गई। एक सप्ताह बाद खुसरो को स्वयं जहाँगीर के आने की सूचना मिली। अतः वह उत्तरी पश्चिमी प्रदेश की ओर चल दिया। जहाँगीर यह देख अत्यन्त चिन्तित हुआ, क्योंकि उसे डर था कि कहीं वह उजबेग अथवा फारिस से पत्र-व्यवहार कर उन्हें अपना सहायक न बना ले। तदर्थ उसने खुसरो से पत्र-व्यवहार कर उसे वापिस बुलाना चाहा, परन्तु जब वह इस कृत्य में सफल न हो सका तो सम्राट् को उसका पीछा करना पड़ा। भैरोवल के स्थान पर पिता पुत्र में घोर युद्ध हुआ। खुसरो परास्त हुआ और युद्धस्थल से भाग खड़ा हुआ। उसका सब माल शाही सेना के हाथ लगा। जहाँगीर की सेना ने उसका पीछा किया और अन्त में उसे बन्दी बनाने में सफल हुई। जहाँगीर ने उसकी आँखें निकलवा दी और उसे बन्दीगृह में डलवा दिया और उसके साथियों को कठोर दण्ड दिया गया।

सिक्ख गुरु अर्जुन सिंह :—जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है कि सिक्ख गुरु अर्जुनसिंह ने खुसरो के प्रति सहानुभूति का प्रदर्शन किया था। अपने व्यवहार की व्याख्या करने के लिए उसे राज दरबार में बुलाया गया। उसकी चलाचल सम्पत्ति जब्त कर ली गई और उस पर भारी जुर्माना किया गया। गुरु ने जुर्माना देने से मना कर दिया। अतः उसे फाँसी का दण्ड दिया गया। इससे सिक्ख जाति सदैव के लिए मुगल साम्राज्य की शत्रु हो गई।

मेवाड़ विजय :—राणा प्रतापसिंह की मृत्यु के पश्चात् १५६७ ई० में उसका पुत्र अमरसिंह उदयपुर के सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। अपने पिता की भाँति

उसने भी मुगल-आधिपत्य स्वीकार करने से स्पष्ट शब्दों में मना कर दिया। इधर अकबर की भाँति जहाँगीर को भी अपने साम्राज्य के अन्दर एक स्वतन्त्र राज्य बिल्कुल असह्य था। अतः उसने पुत्र परवेज की अध्यक्षता में एक विशाल मुगल सेना मेवाड-विजय के लिए भेजी। राजपूत वीरता से लडे। परन्तु किसी को भी पूर्ण विजय प्राप्त नहीं हुई। दोनो में दो वर्ष के लिए विराम-सन्धि हो गई। जिसके बाद १६१४ ई० में खुर्रम को मेवाड विजय की आज्ञा दी गई। उसने बडी वीरता से मेवाड संघर्ष आरम्भ किया। अपने वीर साथियो से उसने मेवाड की सब रसद इत्यादि बन्द करा दी। राजपूत सेना में भुखमरी फैल गई जिससे तग होकर राणा सधि करने के लिए बाध्य हो गया। भूखा क्या नही करता। उसने मुगलो की अधीनता स्वीकार कर ली और अपने पुत्र कर्ण को मुगल-दरबार में भेज दिया जिसे वहाँ पर पञ्चहजारी मनसबदार बना दिया गया। इसके बदले चित्तौड का दुर्ग राणा को दे दिया गया। उसे मुगल-दरबार की उपस्थिति से भी मुक्त रखा गया, और न उससे विवाह सम्बन्ध स्थापित करने आग्रह किया गया। इस प्रकार उदारता का बर्ताव कर जहाँगीर ने मेवाड़-हृदय को जीत लिया। खुर्रम को भी इस विजय के उपलक्ष में शाह खुर्रम की उपाधि तथा तीसहजारी मनसब की पदवी से विभूषित किया गया।

कन्धार :—१५९५ ई० में अकबर ने कन्धार पर विजय प्राप्त की थी। परन्तु ईरानियो को कन्धार का पतन अत्यन्त असह्य था। अपने सम्राट् शाह अब्बास के नेतृत्व में उन्होने कन्धार प्राप्ति का प्रयत्न किया। परन्तु मुगल गवर्नर शाहबेगखाँ की वीरता के कारण सफल न हो सकी। सैन्य-बल में असफल होने के पश्चात् शाह ने चालाकी से काम लिया। उसने मुगल सम्राट् से सन्धि तथा मित्रता का बहाना किया। जहाँगीर धोखे में आगया और वह कन्धार की रक्षा की ओर से उदासीन रहने लगा। १६२२ ई० में शाह अब्बास ने कन्धार पर आक्रमण किया और बडी सरलता से उसे प्राप्त कर अपने साम्राज्य में मिला लिया। जहाँगीर ने अपने वीर पुत्र खुर्रम (भावी शाहजहाँ) को कन्धार की रक्षा के हेतु भेजना चाहा; परन्तु उसने राजधानी छोडना उचित न समझा; क्योंकि नूरजहाँ उसे राजगद्दी की प्राप्ति से वंचित करने का प्रयत्न कर रही थी। अत. उसकी अनुपस्थिति में उसका षड्यन्त्र अधिक सफल होने की सम्भावना थी।

कांगड़ा-विजय १६२० ई० :—जहाँगीर के राज्य-काल की एक महत्त्व-पूर्ण घटना पजाब में स्थित कागडा नामक स्थान की विजय थी। अपने प्रसिद्ध ज्वालामुखी के मन्दिर के कारण कागडा अत्यन्त प्रसिद्ध स्थान था। लाहौर का गवर्नर मुर्तजाखाँ कागडा पर आक्रमण करने के लिए भेजा गया, परन्तु राजपूतो की

वीरता के कारण मुर्तजा सफलता प्राप्त न कर सका। कुछ कालोपरात मुर्तजा का देहात हो गया, तब खुर्रम को कागडा आक्रमण का सेनापति बनाया गया। उसने किले का घेरा डाल उसके अन्दर खाद्य-सामग्री पहुँचने के सभी मार्ग रोक दिये। कॉंगडा के वीर सिपाहियो ने घास की रोटी खा-खाकर युद्ध जारी रक्खा, किन्तु भूख प्यास से ग्रस्त राजपूत एक वर्ष पश्चात् आत्म-समर्पण करने को बाध्य हो गए इस प्रकार १६२० ई० में कॉंगडा, जिसे अकबर न जीत सका था, मुगल साम्राज्य में विलीन हो गया।

दक्षिण :—अकबर ने अहमदनगर, खानदेश तथा बरार पर विजय प्राप्त कर ली थी। असीरगढ विजय के पश्चात् उसे सलीम-विद्रोह के कारण आगरा लौट आना पडा। वह पुन अपने साम्राज्य को दक्षिण की ओर बढाने का प्रयत्न न कर सका। उसकी अनुपस्थिति में मुगल सेना दक्षिण में कोई प्रगति न कर सकी। इधर अहमदनगर के सुल्तान ने अपने योग्य मन्त्री मलिक अम्बर के नेतृत्व में अपनी खोई हुई शक्ति पुन प्राप्त कर ली।

मलिक अम्बर अबीसिनीया का निवासी था। अपनी योग्यता के कारण वह अहमदनगर की निजामशाही सेना का सेनापति तथा रियासत का प्रधान मन्त्री हो गया। अनुभव ने उसकी योग्यता को चार चाँद लगा दिए। वह बहुत अच्छा माल मन्त्री था। उसने अकबर के पद-चिन्हो पर अहमदनगर के भूमि-प्रबन्ध को उसी प्रकार सुव्यवस्थित किया। उसके शत्रुओ ने भी उसके शासन-प्रबन्ध, योग्यता तथा प्रखर बुद्धिमत्ता की मुक्त-कण्ठ प्रशसा की है। वह एक उच्च कोटि का सेना-नायक भी था, मरहठा जाति को अपनी सेना में भरती कर तथा उन्हे उचित सैनिक शिक्षा प्रदान कर, सैन्य-सबलता में आश्चर्य-जनक वृद्धि की। उन्हे गुरिल्ला-युद्ध की शिक्षा दे, मलिक अम्बर ने उनमें युद्ध कला-सम्बन्धी क्राति उत्पन्न कर दी। धीरे-धीरे उस ने अहमदनगर का सब भाग मुगलो से वापिस ले लिया। यह देख १६१० ई० में जहाँगीर ने अब्दुर्रहीम खानखाना को उसे परास्त करने के लिए भेजा, परन्तु मलिक अम्बर ने उसे बुरी तरह परास्त किया। इससे जहाँगीर को बडा दुख हुआ। १६११ ई० में उसने राजकुमार परवेज को खानदेश से और गुजरात के गवर्नर अब्दुल्ला को गुजरात की ओर से एक साथ अहमदनगर राज्य पर आक्रमण करने का आदेश दिया, परन्तु योजना सफल न हो सकी, क्योंकि दोनो सेनाओ ने एक साथ आक्रमण न किया १६१७ ई० में खुर्रम को दक्षिण-विजय के लिये भेजा गया। उसने निजाम शाही सुल्तान अली आदिलशाह को सन्धि करने के लिय बाध्य किया। उसने वह समस्त प्रदेश, जो मलिक अम्बर ने जीत लिया था, लौटाने का वचन दिया, और
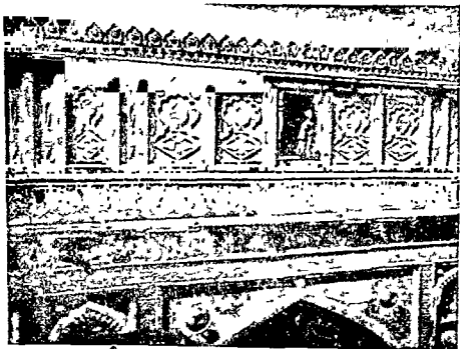
जहगीर महल आगरा की पच्चीकारी
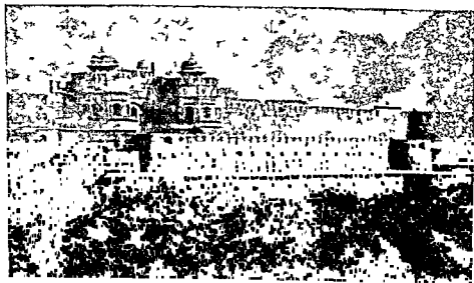
आगर का किला
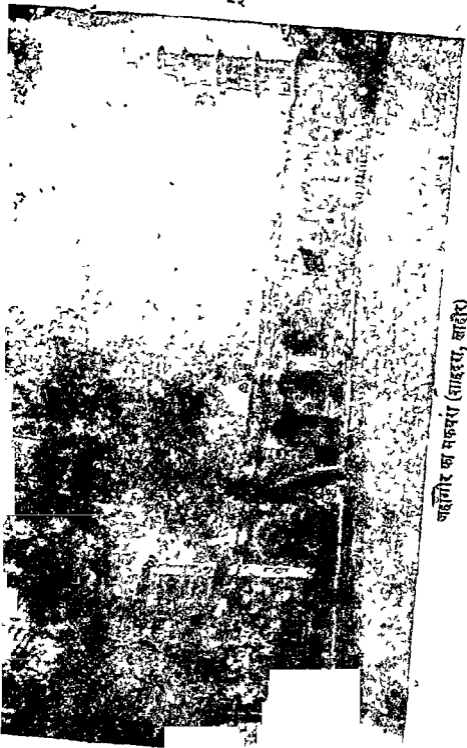
जहाँगीर का मकबरा (शाहदरा, लाहौर)

१५ लाख रुपये के मूल्य की भेंट बादशाह के लिये भेजी। सन्धि प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। इस प्रकार दक्षिण-संघर्ष समाप्त हो गया। यद्यपि सन्धि हो गई; मलिक अम्बर की महत्वाकाक्षायें ज्यों की त्यो बनी रही और उसने अपनी विजय जारी रक्खी। जहांगीर खुर्रम की इस सफलता से बहुत प्रसन्न हुआ और उसे शाहजहा की पदवी से विभूषित किया तथा उसे अमूल्य पुरस्कार भेंट कर उसका साहस बढाया।

खुसरो का वधः—जैसा की उल्लेख किया जा चुका है, अपने विद्रोह के फल-स्वरूप खुसरो को अधा कर बदीगृह में डाल दिया गया था। समय के साथ यह घटना विस्मृति में विलीन होती गई। खुसरो देखने में अत्यन्त सुन्दर था। उसका व्यवहार सबके लिये आकर्षण की वस्तु थी। उधर जहांगीर का वात्सल्य प्रेम जागृत हो उठा और वह उसकी ओर आकर्षण अनुभव करने लगा। एक योग्य हकीम से उसकी आखो का इलाज कराया गया तो उसकी आंखों की रोशनी भी ठीक हो चली। जहांगीर ने उसे प्रतिदिन अपनी सेवा में उपस्थित होने की भी आज्ञा प्रदान कर दी। जहांगीर का यह आकर्षण तथा जनता की सहानुभूति देख, जो सदैव से खुसरो के प्रति थी, लोग खुसरो को उत्तराधिकारी समझने लगे। अपने भाइयो में सबसे बडा होने के कारण लोगो का ऐसा समझना स्वाभाविक भी था। खुर्रम को यह बहुत अप्रिय लगा। उधर नूरजहां ने भी इसे पसंद न किया, क्योंकि वह जहांगीर के पुत्र तथा अपने दामाद शहरयार को, जिससे उसकी तथा शेर अफगन की पुत्री का विवाह हुआ था, बादशाह बनाना चाहती थी। दोनो के सयुक्त प्रयत्न से खुसरो पुनः जहांगीर की दृष्टि से गिर गया। १६१६ ई० में उसे उसके शत्रु आसफखां तथा १६२० ई० में शाहजहां के सुपुर्द कर दिया गया, जिसने १६२२ ई० में बुरहानपुर में उसका वध करा दिया। जब जहांगीर को इसका पता लगा तो उसे बहुत दुख हुआ। उसने उसके शव को, जो एक अपरिचित स्थान पर दफनाया गया था, उखड़वा कर मंगवाया और इलाहा-बाद में वर्तमान खुसरो बाग में उसे दफनाया। इस प्रकार यह सर्व-प्रिय राजकुमार इस संसार से सदैव के लिये चल बसा।

बंगाल-विद्रोहः—अकबर के शासन-काल में १५९९ ई० में उसमान नामक अफगान सरदार बगाल में विद्रोह कर अफगान सत्ता पुन. स्थापित करना चाहता था। राजा मानसिंह ने अफगान-शक्ति को क्षीण कर उन्हें मुगल आधिपत्य स्वीकार करने के लिये बाध्य कर दिया। परन्तु उसमान के हृदय से अफगान-साम्राज्य स्थापित करने की भावना समाप्त नही हुई। १६१२ ई० में उसने बगाल के अफगानो तथा क्षुब्ध जमीदारो का सगठित विद्रोह कर दिया। बगाल के गवर्नर इस्लामखां ने उसका सामना किया। युद्ध-स्थल में उसमान बड़ी वीरता से लडा और युद्ध-स्थल में घायल

होने के पश्चात् भी छः घण्टे पर्यन्त लड़ता रहा। अन्त में जब उसकी मृत्यु हो गई तो अफगान सेना भाग निकली। इस प्रकार अफगान साम्राज्य-स्थापना का अन्तिम प्रयत्न निष्फल हुआ। जहाँगीर इस्लामखां तथा उसके पदाधिकारियों से बहुत प्रसन्न हुआ और उन्हें उचित पुरस्कार दिया। अफगानों के साथ उसने उदारता का बर्ताव किया। वे क्षमा कर दिये गये और उन्हें सेना में उच्च पद पर आसीन किया गया। इससे अफगान इतने सन्तुष्ट हुए कि विद्रोह की भावना उनके हृदय से मिट गई।

प्लेग तथा महामारी :—१६१६ ई० में साम्राज्य को प्लेग का सामना करना पड़ा। चूहों से प्रारम्भ होकर यह भयानक रोग समस्त उत्तरी-भारत में फैल गया। जिसके कारण समस्त उत्तरी-भारत विशेषतया आगरा, लाहौर और काश्मीर में विशेष जन-क्षति हुई।

नूरजहाँ :—नूरजहाँ मिर्जा गयासबेग नामक तेहरान के एक अमीर की पुत्री थी। अपनी निर्धनता से दुखी हो वह अपनी पत्नी सहित अपने जन्म स्थान को त्याग भारतवर्ष की ओर चल पड़ा। मार्ग में उसके एक लड़की उत्पन्न हुई। मिर्जा की दशा उस समय इतनी शोचनीय थी कि वह एक लड़की के पालन-पोषण का भार न सम्भाल सकता था और उसने उसे भगवान् के नाम पर मार्ग में रख जाना चाहा। परन्तु जिस कबीले के साथ वह यात्रा कर रहा था उसके नेता मलिक मसऊद ने उसकी सहायता की और स्वयं लड़की के भार सम्भालने का वचन दिया। भारत आने पर उक्त व्यापारी की सहायता से गयासबेग को अकबर के दरबार में नौकरी मिल गई अपनी बुद्धिमत्ता तथा अथक परिश्रम के कारण वह दिनों-दिन उन्नति करता चला गया और शीघ्र ही काबुल की दीवानी उसके सुपुर्द कर दी गई। इधर मेहरुन्निसा अपनी माँ के साथ राजमहल में आती जाती रही। जब वह युवावस्था को प्राप्त हुई तो उसकी सुन्दरता पर मोहित होकर जहाँगीर उसे प्रेम करने लगा। जब अकबर को यह विदित हुआ, तो उसने शेर अफगन से, जो बर्दवान का जागीरदार था, उसका विवाह-सम्पन्न कर दिया।

की आज्ञा की अवहेलना की तो उसने बंगाल के गवर्नर को आज्ञा दी कि यदि आवश्यकता पड़े तो वह बल प्रयोग कर शेर अफगन को दरबार में उपस्थित करे। गवर्नर ने बुद्धिमत्ता से काम न लिया और शेर अफगन को उसकी जागीर में ही बन्दी बनाने का प्रयत्न किया। फलस्वरूप दोनों में लड़ाई हो गई जिसमें शेर अफगन मारा गया और महरुन्निसा राजधानी भेज दी गई। यहाँ जहाँगीर ने महरुन्निसा से विवाह का प्रस्ताव रक्खा। कुछ दिन तक उसने इसे स्वीकार नहीं किया, परन्तु १६११ ई० में उसने जहाँगीर से विवाह कर नूरजहाँ की उपाधि ग्रहण की।

नूरजहाँ का व्यक्तित्व तथा उसका प्रभाव :—नूरजहाँ अत्यन्त रूपवती, योग्य, विचारशीला, दानशीला तथा दूरदर्शी स्त्री थी। साहित्य तथा ललित कलाओं से उसे विशेष प्रेम था। अरबी और फारसी दोनों भाषाओं का उसे अच्छा ज्ञान था। वह एक अच्छी कवयित्री भी थी। उसकी काव्य-शक्ति ने जहाँगीर को मुग्ध कर दिया था। वह शिकार खेलने की भी शौकीन थी और प्रायः चीते का शिकार करती थी। उसका धैर्य अद्वितीय था। भय तथा संकट उसे तनिक भी विचलित नहीं कर सकते थे। जब जहाँगीर को महावतखाँ ने वन्दी बना लिया तो उसने असीम धैर्य तथा साहस का परिचय दिया। यही कारण था कि वह जहाँगीर को मुक्त कराने में सफल हुई। उसकी शासन-दक्षता अत्यन्त सराहनीय है। शासन-सम्बन्धी जटिल-से जटिल समस्या उसे विचलित न कर सकती थी। जहाँगीर की मादकता तथा काहिली के कारण उसे बहुधा शासन-कार्य स्वयं करना पड़ता था। इसमें उसने इतनी योग्यता का परिचय दिया कि अच्छे-अच्छे राजनीतिज्ञ भी चकित रह गये। परन्तु वह बहुत लालची तथा स्वार्थी थी, और अपने कुटुम्बियों को, चाहे वे योग्य हों अथवा अयोग्य, उच्च पद प्रदान करना चाहती थी। उसने अपने पिता को मन्त्री तथा भाई को आसफखाँ की उपाधि दे सेनापति नियुक्त किया। वह खुर्रम की प्रतिभा से परिचित थी। इस पर भी वह शहरयार को जिससे उसकी तथा शेर अफगन की पुत्री का विवाह हुआ था, बादशाह बनाना चाहती थी जिससे शासन-सत्ता उसके हाथ में रह सके।

नूरजहाँ का प्रभाव :—जहाँगीर जैसे विलासप्रिय शासक के शासनकाल में नूरजहाँ जैसी प्रतिभाशाली बेगम का प्रभुत्व बढ़ जाना स्वाभाविक था। एक सेर शराब तथा आध सेर कबाब में उसने जहाँगीर से शासन-सत्ता हस्तगत कर ली। फल यह हुआ कि सम्राट् प्रायः मदिरा की मादकता में मदहोश रहता तथा नूरजहाँ शासन-सम्बन्धी कार्यों की देख-रेख करती। प्रत्येक विभाग पर उसने अपनी योग्यता की छाप लगाई। सब कार्य सुचारु रूप से चलता रहा। परन्तु जब से उसने उत्तरा-

धिकार-प्रश्न में उलझ जहाँगीर के पश्चात् जहाँगीर के छोटे बेटे शहरयार को गद्दी पर बैठाने का विचार किया तभी से साम्राज्य में गड़बड़ी पैदा हो गई।

खुर्रम का विद्रोह :—जहाँगीर के चार पुत्र थे—खुसरो परवेज, खुर्रम और शहरयार। अपने प्रारम्भिक विद्रोह के कारण खुसरो जहाँगीर की दृष्टि से गिर चुका था। आगे चलकर जब उसने पुनः खुसरो की ओर आकृष्ट होना प्रारम्भ किया तो खुर्रम, जो अत्यन्त महत्वाकांक्षी तथा योग्य होने के कारण बादशाह होना चाहता था, क्षुब्ध हो उठा। इधर नूरजहाँ शहरयार को उत्तराधिकारी बनाना चाहती थी, क्योंकि वह उसका दामाद था। शहरयार योग्य नहीं था। उसको बादशाह बनाने में वह सोचती थी कि जैसे जहाँगीर के समय में सारा शासन-भार वह चलाती रही है उसी प्रकार उसके काल में भी चलती रहेगी। अत. नूरजहाँ को भी जहाँगीर का खुसरो के प्रति आकर्षण अवाछनीय रहा। दोनों के प्रयत्न से खुसरो जहाँगीर की दृष्टि से पुनः गिर गया, तथा उसका वध कर दिया गया, जिसका पहले उल्लेख कर दिया गया है। खुसरो को अपने मार्ग से हटाकर अब नूरजहाँ ने खुर्रम के प्रभाव को कम करना चाहा। मेवाड़ तथा दक्षिण विजय से उसकी ख्याति बहुत अधिक बढ़ गई थी। नूरजहाँ ने उसे कम करने के लिये खुर्रम को राजधानी से दूर भेजना चाहा। इसी समय फारिस सम्राट् ने कन्धार पर विजय प्राप्त कर, उसे अपने साम्राज्य में विलीन कर लिया, तो उसने जहाँगीर से खुर्रम को वहाँ भेजने का आग्रह किया। परन्तु खुर्रम स्वयं अपनी अनुपस्थिति में होने वाली क्षति से परिचित था। अतः उसने वहाँ जाने से मना कर दिया। इस पर नूरजहाँ ने खुर्रम की उपाधियाँ तथा पद छीनने की आज्ञा निकलवा दी, जिससे खुर्रम विद्रोह करने के लिये बाध्य हुआ और १६२३ ई० में वह एक सेना लेकर आगरे पर चढ़ आया। बिलोचपुर के स्थान पर पिता पुत्र में युद्ध हुआ जिसमें खुर्रम परास्त हुआ। शाही सेनापति महाबतखाँ उसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर भगाता हुआ दक्षिण तक पहुँच गया। ऐसी दशा में खुर्रम ने मलिक अम्बर से सहायता याचना की। जब उसने सहायता देने से मना कर दिया, तो उसने गोलकुण्डा में शरण लनी चाही, क्योंकि मुगल सेनापति महाबतखाँ तथा परवेज उसका पीछा कर रहे थे। परन्तु मुगल-सेना के भय से गोलकुण्डा के सुल्तान ने भी उसे सहायता देने से मना कर दिया। तत्पश्चात् वह बंगाल पहुँचा वहाँ के गवर्नर ने उसका साथ दिया। उसकी सहायता से वह बिहार को विजय कर इलाहाबाद तक चला आया। परन्तु यहाँ उसे मुगल-सेना ने परास्त किया। अब वह रोहतासगढ़ होता हुआ। पुनः दक्षिण चला गया। वहाँ इस बार मलिक अम्बर ने उसकी सहायता की। दोनों ने बुरहानपुर के दुर्ग पर आक्रमण किया,

परन्तु वे परास्त हुए और अन्त में वह जहाँगीर से अपने अपराध की क्षमा-याचना के लिये बाध्य हो गया। इधर इस बीच में महावतखाँ तथा परवेज की सफलता से उनका प्रभाव अधिक होता जा रहा था, और नूरजहाँ को भय था कि कही महावतखाँ परवेज को बादशाह बनाने का प्रयत्न न करने लगे। अत महावतखाँ की शक्ति क्षीण करने के हेतु नूरजहाँ को खुर्रम की सहायता की आवश्यकता थी। फलस्वरूप उसने जहाँगीर से खुर्रम को क्षमा-पत्र लिखवा दिया। खुर्रम ने अपने दो पुत्र दारा और औरगजेब को एक लाख रुपये की भेंट सहित मुगल दरबार में भेज दिया और वह रोहतास तथा असीरगढ को छोड नासिक में रहने लगा।

महावतखाँ का विद्रोह :—खुर्रम से समझौता करने के पश्चात् नूरजहाँ ने महावतखाँ के प्रभुत्व को कम करने की सोची। खुर्रम का विद्रोह शान्त हो चुका था। अत उसने महावतखाँ को सेनापतित्व का पद त्याग बगाल की सूबेदारी ग्रहण करने की आज्ञा दिलवाई। परवेज ने इस आज्ञा का विरोध किया, परन्तु उसमें परिवर्तन की आशा न देख महावतखाँ को उसे स्वीकार करना पडा और वह बगाल चला गया। परन्तु यह उसके लिये पर्याप्त न था। उस पर शाही माल के गबन का अभियोग लगाया गया। महावतखाँ इससे अत्यन्त क्षुब्ध हुआ। वह इस अन्याय को सहन न कर सका अत अपने ५००० राजपूत सैनिको सहित चुपके-से आ उसने सम्राट् तथा नूरजहाँ दोनो को, जब वह झेलम नदी पार कर रहे थे, बन्दी बनाने की सोची। नूरजहाँ तथा शहरयार कैद से निकल भागे, परन्तु जहाँगीर कैद हो गया। मुगल सेनापति ने सम्राट् के छुडाने का प्रयत्न किया, परन्तु असफल रहा। नूरजहाँ ने जब सैन्य बल को सफल होते न देखा तो चालाकी से काम लिया। उसने महावतखाँ को आत्मसमर्पण कर दिया और जहाँगीर के पास पहुँच ऐसी बुद्धिमत्ता तथा नीतिज्ञता से काम किया कि महावतखाँ को विश्वास हो गया कि सम्राट् तथा बेगम दोनो वास्तव में उसके बन्दी हैं। अब वह निर्भीक आचरण करने लगा तथा अपनी रक्षापक्ति भी ढीली कर दी। नूरजहाँ, जिसने स्वयं यह परिस्थिति उत्पन्न की थी, इस अवसर से लाभ उठाये बिना कैसे रह सकती थी? उसने तुरन्त उसे परास्त कर बन्दी बनाने की आज्ञा निकलवाई। अब महावतखाँ को अपनी वास्तविक परिस्थिति का ज्ञान हुआ और घोर अपमान से बचने के लिये उसने वहाँ से भाग निकलने में ही भला समझा। वह मेवाड होता हुआ दक्षिण पहुँचा, जहाँ उसने शाहजहाँ से गठबन्धन कर लिया। चूँकि १६२६ ई० में परवेज का देहान्त हो चुका था। अत महावतखाँ ने भी खुर्रम को ही सहायता प्रदान कर उसे बादशाह बनाने का प्रयत्न करना चाहा।

जहाँगीर की मृत्यु तथा उत्तराधिकार युद्ध :—१६२६ ई० में काश्मीर से आते हुए जहाँगीर की मृत्यु हो गई, और लाहौर के दिलकुशा नामक नूरजहाँ के बाग में उसको दफनाया गया। तुरन्त उत्तराधिकारी का प्रश्न उपस्थित होगया। जहाँगीर के अब दो पुत्र शेष थे, एक खुर्रम दूसरा शहरयार। खुर्रम उस समय दक्षिण में था। नूरजहाँ के भाई आसफखाँ ने जो उसका ससुर था उसे बादशाह की मृत्यु की सूचना दी, और वह तुरन्त आगरे की ओर चल पड़ा। इस बीच में खुर्रम के लिये गद्दी सुरक्षित करने के विचार से उसने खुसरो के पुत्र दावरबख्श को सम्राट् घोषित कर, गद्दी पर बैठा दिया। क्योकि अशक्त दावर तुरन्त गद्दी से उतारा जा सकता था, शहरयार लाहौर में ही था। नूरजहाँ ने उसे वहाँ सम्राट् घोषित कर दिया। जिस पर आसफखाँ ने लाहौर पर आक्रमण कर शहरयार को परास्त किया और उसे बन्दी बनाकर उसकी आँखें निकलवा ली। इसी समय खुर्रम दक्षिण से आगया, और दावरबख्श को गद्दी से उतार ६ फरवरी सन् १६३२ ई० को स्वयं सिंहासनारूढ़ हुआ।

नूरजहाँ का अन्त :—नूरजहाँ ने यह देख कर, कि शहरयार का साथ देना व्यर्थ है, शासन-सत्ता को तिलाञ्जलि देना अच्छा समझा। शाहजहाँ ने भी उसके साथ अच्छा बर्ताव किया और २ लाख रुपये वार्षिक पेंशन उसके लिये नियत कर दी। अब वह राजनीति से पृथक् हो शान्त जीवन व्यतीत करने लगी। १६४५ ई० में उसका देहान्त होगया।

जहाँगीर और पुर्तगाली :—शासनकाल के आरम्भ से अपने अधिकार को सुदृढ़ बनाने के लिये जहाँगीर ने सुन्नी लोगों को प्रसन्न रखना उचित समझा। अत: उसने अन्य धर्मावलम्बियो के प्रति कट्टरता का प्रदर्शन किया। उसने पुर्तगालियों से समस्त सम्बन्ध-विच्छेद कर दिये, परन्तु जब उसका प्रभुत्व भली भाँति स्थापित हो गया, तो उसने अपने पिता की भाँति ईसाई पादरियो के साथ अच्छा व्यवहार करना आरम्भ कर दिया। उसने उन्हें आगरा तथा लाहौर में अपने गिर्जे बनवाने तथा अपना धर्म प्रसार करने की आज्ञा दी; और स्वयं भी ईसाई धर्म का आदर करने लगा। ईसाई सन्तो के चित्र उसके निवास स्थान में लगाये गये। उसकी इस उदारता को देख पुर्तगाली पादरियो ने यह समझना आरम्भ कर दिया, कि जहाँगीर ईसाई हो गया है। १६१३ ई० में पुर्तगाली मल्लाहो ने चार शाही जहाज पकड़ लिये, और उनका सब माल-असबाब लूट लिया। यह पुन: बादशाह क्रोधान्ध हो उठा। उसने दामन नामक पुर्तगाली बस्ती पर आक्रमण कर दिया, और उसका विध्वस कर डाला। उनके सब गिर्जे बन्द करा दिये, और ईसाई-धर्म-प्रचार पर प्रतिबंध लगा दिया।

जहाँगीर और अंग्रेज :—भारतीय व्यापार विदेशियों के लिये सदैव एक आकर्षण की वस्तु रहा है। १४६८ ई० में पुर्तगाली लोगो ने अफ्रीका के दक्षिण में 'केप आफ गुड होप' अर्थात् आशा अंतरीप का चक्कर लगाकर भारत के लिए एक जलमार्ग का पता लगाया था, और इस मार्ग से भारतवर्ष से व्यापार करने लगे थे। उनके इस व्यापारिक लाभ को देखकर योरुप के अन्य देशो की उत्कट इच्छा हुई कि वह भी भारतवर्ष से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करें। अंग्रेज लोगों ने भी १६०० ई० में उक्त आश्रय से एक व्यापारिक कम्पनी स्थापित की, जिसका नाम ईस्ट इण्डिया कम्पनी रखा और अपनी साम्राज्ञी मल्का ऐलिजबैथ से इसकी स्वीकृति ले ली। कम्पनी का कार्य चालू करने के हेतु, १६०० ई० से १६०८ ई० तक, कम्पनी के तीन दूत भारत आये, और उन्होंने मुगल सम्राट् से व्यापारिक संधि का प्रस्ताव रक्खा परन्तु पुर्तगाली प्रभाव के कारण उनका प्रस्ताव स्वीकृत न हो सका।

कप्तान हाकिंस और विलियम एडवर्ड्‌स :—१६०८ ई० में कप्तान हाकिंस भारत आया। उसने इंग्लैंड के बादशाह जेम्स प्रथम का पत्र मुगल-सम्राट् जहाँगीर को भेंट किया और भारत से व्यापार करने की आज्ञा माँगी, तथा सूरत में कोठी बनाने की प्रार्थना की। हाकिंस की बडी आवभगत की गई, और व्यापार की आज्ञा दे दी गई। परन्तु तत्पश्चात् पुर्तगालियो के प्रभाव से यह आज्ञा वापिस ले ली गई। हाकिंस के पश्चात् विलियम एडवर्ड्‌स नामक अंग्रेज भारत आया। उसको भी व्यापारिक आज्ञायें स्वीकृत कर दी गईं। लेकिन पहिले की भांति पुर्तगालियो ने इस बार भी उन्हें रद्द करा दिया।

सर टामसरो १६१५ ई० :—सन् १६१५ ई० में इंग्लैंड के बादशाह जेम्स-प्रथम का राजदूत सर टामस रो भारत आया। पहिले दो अंग्रेजो की अपेक्षा यह अधिक योग्य तथा अनुभवी आदमी था। इसके अतिरिक्त राजदूत होने के नाते इसका प्रभाव तथा पद भी ऊँचा था। यहाँ आकर उसने नूरजहाँ, आसफखाँ और शाहजहाँ को अमूल्य भेंट दे अपनी ओर आकृष्ट कर लिया, और फिर सम्राट से सन्धि-प्रस्ताव रक्खा। संधि पूर्णतया स्वीकार न हो सकी, परन्तु अंग्रेजों को व्यापार करने की सुविधा तथा सूरत में कोठी बनाने की आज्ञा प्राप्त हो गई। इस आज्ञा पत्र की स्वीकृति इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इसने अंग्रेजो के मान को उचित स्थान दे, पुर्तगालियों के गौरव को क्षति पहुँचाई, आगे चलकर यही आज्ञा-पत्र ब्रिटिश साम्राज्य का शिलान्यास सिद्ध हुआ।

सर टामस रो तथा अन्य यो०पियन यात्रियो ने, जो उस समय भारत आयें, यहाँ का विस्तृत वर्णन लिखा है। 'रो' लिखता है, कि "व्यापारिक आज्ञा-पत्र प्राप्त

करने के लिये उसे बहुत-से आदमियों को रिश्वत देनी पड़ी। बंदरगाहों पर स्थानीय गवर्नर बड़ी निरंकुशता का व्यवहार करते थे। कभी कभी वह वहां व्यापारी-माल अपने लिये लेते थे और जो जी में आता उसका वही मूल्य देते थे।" सूबेदारों के विषय में वह लिखता है कि "वे अपनी प्रजा के साथ अत्यन्त क्रूरता का व्यहार करते थे।" मुगल दरबार की शान-शौकत का वर्णन करते हुये वह लिखता है "वह अकथ-नीय एवं वर्णनातीत है। यात्रा सुरक्षित न थी। मुगल भारत में कोई विधान न था, बादशाह का शब्द ही नियम था।"

जहांगीर के विषय में वह लिखता है, कि "सम्राट् अत्यन्त शराबी था; परन्तु, दिन में वह मदिरा-पान न करता था। वह एक उदार हृदय शासक था।" भारतीय कला का वर्णन करते हुए 'रो' लिखता है कि "भारतीय कला समुन्नत थी।" एक बार उसने एक अंग्रेजी तस्वीर बादशाह को भेंट की। बादशाह ने अपने चित्रकारों को इसकी एक प्रतिलिपि तैयार कराने का आदेश दिया। जब प्रतिलिपि चित्रित हो गई, तो बादशाह ने, टामस रो को दिखाई। परन्तु वह स्वयं भली-भांति देखने के अनन्तर यह न पहचान् सका, कि उनमें कौन-सा मूल चित्र है।

जहाँगीर का शासन :—शासन-प्रबन्ध में जहाँगीर ने अपने पिता का अनुकरण किया। 'दस्तूर-उल अमल' को छोड़कर, जिसका आरम्भ में ही उल्लेख किया गया है, जहाँगीर ने शासन-सम्बन्धी कोई सुधार नहीं किया।

साहित्य-प्रेम :—जहाँगीर एक साहित्यिक व्यक्ति था, मदिरा ने उसकी प्रतिभा को कुण्ठित कर दिया था, अन्यथा वह साहित्य-क्षेत्र में बहुत चमकता। कप्तान हाकिंस, जो तुर्की भाषा का अच्छा विद्वान् था, लिखता है, कि "उसने जहाँगीर को तुर्की भाषा का अच्छा विद्वान् पाया। उसने 'बाबरनामा' मूल पुस्तक में पढ़ा और उसमें अपनी ओर से टिप्पणी जोड़ी। अन्य मुगल बादशाहों की भांति वह इतिहास-साहित्य का बड़ा प्रेमी था। बाबर की भांति उसने भी अपनी जीवनी लिखी, जो 'तुजके-जहांगीरी' के नाम से प्रसिद्ध है। जहांगीर ने विद्वानों के प्रति आदर तथा श्रद्धा का बर्ताव किया। फल-स्वरूप मुगल-दरबार विद्वानों से परिपूर्ण रहने लगा; जिसमें नियामतउल्ला, मिर्जा गयासबेग, तथा अब्दुलहक देहलवी बहुत प्रसिद्ध हैं। साहित्य-प्रेम के कारण उसने शिक्षा-प्रसार की ओर बहुत ध्यान दिया। उसने हजारों मदरसे, जो बहुत दिनों से नष्ट-भ्रष्ट पड़े थे, पुन. चालू किये।"

चित्रकला :—जहांगीर को चित्रकला से विशेष प्रेम था। वह स्वयं एक अच्छा चित्रकार था। अतः उसकी छत्र-छाया में भारतीय चित्रकला

प्रोत्साहन मिला। टामस रो के द्वारा दी गई तस्वीर की ऐसी प्रतिलिपि उन्होंने तैयार की कि स्वय यात्री पहचान न कर सका। इस समय के चित्रकार आदमी के कद के चित्र बनाने लगे थे। प्रभावशाली अमीरों तथा राजवश के चित्र जो अब प्राप्य है उनकी उन्नत कला के द्योतक है। इसके अतिरिक्त उनका दृश्य-चित्रण भी उच्च-कोटि का था। उस्ताद 'मन्सूरी' चित्रकला का महारथी था। उसके मूक जानवरों के चित्र, इतनी वास्तविकता को लिये हुए हैं, कि वर्णन नहीं किया जा सकता। विशनदास नामक एक दूसरा प्रसिद्ध चित्रकार इसके दरबार को सुशोभित करता था।

भास्कर-कला :—सिकन्दरा-स्थित अकबर का मकबरा, आगरे के किले में जहाँगीरी महल तथा आगरे में मिर्जा गयासबेग अर्थात् इतमादउद्दौला का रोजा उसके भवन-निर्माण-प्रेम को पूर्णतया प्रदर्शित करते हैं।

इनके अतिरिक्त जहाँगीर गायन-विद्या का भी बहुत प्रेमी था। बाग, लगवाना उसे बहुत प्रिय था। लाहौर का 'दिलकुशा' बाग, काश्मीर का 'शालामार' तथा 'निशात बाग', उदयपुर का 'शाही बाग' उसके सर्वप्रसिद्ध बागो में है।

जहाँगीर का चरित्र :—अगणित सन्ध्या-व्रत तथा सैकड़ो प्रार्थनाओं की भेंट सलीम का पालन-पोषण अत्यन्त लाड-चाव से हुआ। फल यह हुआ, कि वह बहुत विलास-प्रिय और जिद्दी प्रकृति का मनुष्य हो गया परन्तु वह अत्यन्त नम्र तथा दयालु था, यदि उसकी इच्छा के प्रतिकूल आचरण न हो। उसका क्रोध भी अपार था। वह बहुत न्याय-प्रिय और बुद्धिमान सम्राट् था। जटिल से जटिल राजनैतिक समस्याओ को आसानी से समझ लेता था। यद्यपि वह स्वय मदिरापान करता था, वह उसके अवगुणो को भली-भाँति समझता था, अतः उस ने शराब बनाना तथा जन-साधारण से उसका प्रयोग निषेध कर दिया। वह सुन्दरता का उपासक था। नूरजहाँ की सुन्दरता ने उसे प्रेम-पाश में बाँध लिया। प्रत्येक सुन्दर वस्तु उसके लिए इतना ही आकर्षण रखती थी। उसका कला तथा साहित्य-प्रेम उच्च कोटि का था। उसकी धार्मिक नीति उदारता पर अवलम्बित थी उसके शासन-काल में भी अकबर की भाँति, सबकी धार्मिक स्वतन्त्रता दी गई। इस प्रकार हम देखते है कि जहाँगीर एक अच्छा तथा प्रशसनीय शासक था।

प्रश्न

१. गद्दी प्राप्त करने के समय जहाँगीर ने अपने शासन में क्या सशोधन किये ?

२. जहाँगीर के शासन काल में खुसरो ने किस प्रकार गद्दी प्राप्त करने का प्रयत्न किया उसका क्या परिणाम हुआ ?

जहाँगीर ने किस प्रकार अपने साम्राज्य को दृढ़ करने का प्रयत्न किया ?

४. जहाँगीर के साहित्य व कला प्रेम का वर्णन करो।

५ नूरजहाँ ने किस प्रकार शहरयार के लिये गद्दी सुरक्षित करने का प्रयत्न किया, उसका क्या परिणाम हुआ ?

६. जाँहगीर के शासन काल में महावतखां का क्या महत्व है ?

७ जहाँगीर के समय कौन कौन अग्रेज यात्री भारत आये उन्होने भारत तथा मुगल दरबार के बारे में क्या लिखा है ?

अध्याय ६

शहाबुद्दीन मुहम्मद शाहजहाँ

राज्याभिषेक।—जहांगीर की मृत्यु के पश्चात अपने ससुर आसफउद्दौला की सूचना प्राप्त कर शाहजहा दक्षिण मे आगरे आया। खुसरो के पुत्र दावरबख्श को, जो उसकी अनुपस्थिति में 'बादशाह' बना दिया गया था फारिस जाने की आज्ञा दी गइ। परन्तु उसके अन्य भाई तथा उनके साथियों को प्राण दण्ड दे फरवरी सन् १६२७ ई० में खुर्रम शहाबुद्दीन मुहम्मद शाहजहा के नाम से आगरे की गद्दी पर बैठा। इस भीषण रक्तपात को देखकर लोगो के रक्तपात अभ्यस्त हृदय भी दहल गये। शाही महल में तहलका मच गया। कुछ बेगमो ने आत्म हत्या कर ली।

प्रारम्भिक कार्य—शाहजहाँ ने अपने शासन-काल को, कुछ महत्त्वपूर्ण नियमो म प्रारम्भ किया। उसने 'सिजदा की प्रथा को जो अकबर ने अभिवादन-स्वरूप प्रारम्भ कराई थी और जिसे जहांगीर ने स्थिर रखा था, स्थगित कर दिया। क्योंकि शरअ' के अनुसार सिजदा केवल खुदा को ही किया जाना चाहिये। उसके बदले अभिवादन के लिये 'जमीन बोस' अर्थात् 'भूमि चुम्बन' की प्रथा आरम्भ की, जैसा कि खलीफाओ के दरबार में प्रचलित थी। शेख तथा सैयद अर्थात धार्मिक नेता तथा विद्वान् इससे मुक्त रखे गये। उसने सौर सम्वत् के बदले चन्द्र सम्वत् तथा हिजरी सन् का प्रचार किया। अकबर के नाम पर आगरे का नाम अकबराबाद रखा। उसने उन समस्त आदमियो के पद तथा मनसब में वृद्धि की जिन्होंने उसके प्रति महानुभूति तथा स्वामि भक्ति प्रदर्शित की थी। आसफखाँ को अत्यन्त आदर तथा सम्मान से विभूषित किया गया।

बुन्देला विद्रोह।—१६२८ ई० में शाहजहाँ को बुन्देला विद्रोह का सामना करना पड़ा। वीरसिंह बुन्देला के पश्चात् उसका पुत्र जोहरसिंह बिना सम्राट की आज्ञा प्राप्त किये ही राजधानी छोड़कर चला गया। अत शाहजहाँ उससे अप्रसन्न हो गया। जोहरसिंह ने यह सोचकर कि उसे अनुशासन भग करने के अभियोग में दरबार में उपस्थित हो अपने व्यवहार की क्षमा याचना करनी होगी, अन्यथा दण्ड भुगतना पड़ेगा, स्वतंत्र आचरण करना प्रारम्भ कर दिया।

पर्वतीय प्रदेश ने उसे ऐसा करने के लिये और भी प्रोत्साहित कर दिया। क्योंकि वह समझता था कि शाही सेना पहाडी मार्गों से अपरिचित होने के कारण उसको क्षति न पहुँचा सकेगी। यह सब सोचकर जोहूरसिंह ने अपनी राजधानी ओरछा में युद्ध की तैयारियाँ प्रारम्भ कर दी। शाहजहाँ इसे कैसे सहन कर सकता था ? तुरन्त उसने इनायतखाँ, फिरोजजंग तथा महावतखाँ के नेतृत्व में एक विशाल सेना बुन्देलखण्ड भेजी, ओरछा चारों ओर से घेर लिया गया। शाही तोपखाने के सम्मुख बुन्देले न ठहर सके। जोहूरसिंह ने आत्म-समर्पण कर दिया। उसे १५ लाख रुपये हर्जाना तथा एक हजार मोहरें शाहजहाँ को भेंट स्वरूप प्रस्तुत करनी पडी।

खानजहाँ लोदी का विद्रोह :—जहाँगीर की मृत्यु के पश्चात् जब उत्तराधिकार का प्रश्न उठा तब खानजहाँ लोदी ने, जो दक्षिण का गवर्नर था, शाहजहाँ का विरोध किया था। परन्तु जब शाहजहाँ गद्दी प्राप्त करने में सफल सिद्ध हुआ तो उसने उससे क्षमा याचना की। वह क्षमा कर दिया गया और दक्षिण का ही गवर्नर रखा गया। कुछ कालोपरान्त शाहजहाँ को विदित हुआ कि वह अब भी उससे घृणा करता है, अतः उसे आगरे बुला लिया गया। यद्यपि वह यहाँ सात-आठ मास तक रहा तथापि कभी प्रसन्न-मुद्रा प्रतीत न हुआ। इसी बीच उसे कुछ अमीरों ने सूचना दी कि कुछ ही दिनों के पश्चात् उसे तथा उसके पुत्रों को बंदी बना लिया जावेगा। इससे वह और भी अधिक भयभीत तथा उदासीन रहने लगा। यद्यपि सम्राट् तथा उसके मंत्री आसफखाँ ने विश्वास दिलाया कि ऐसा न होगा तो भी उसे विश्वास न हुआ और उसने राजधानी छोड किसी सुरक्षित स्थान में जाने में ही अपना कल्याण समझा। फलस्वरूप वह आगरे से निकल भागा, और बुन्देलखण्ड पहुँचा। जब सम्राट् ने उसका पीछा करने के लिये सेना भेजी तो उसने गोलकुण्डा में जाकर शरण ली। शाही सेना ने वहाँ भी उसका पीछा किया, और उसे दो तीन छोटी लडाइयों में परास्त किया। अब वह नर्वदा पार कर फिर बुन्देलखण्ड में आ गया। अन्त में कालिंजर के निकट तालसिंधा के स्थान पर वह पूर्णतया परास्त हुआ, और मारा गया।

दुर्भिक्ष (१६३०—३२ ई०) :—१६३०—३२ ई० तक गुजरात, खानदेश तथा दक्षिण में भयंकर दुर्भिक्ष पडा। अन्नाभाव में लाखों भूखे प्राणी तडप-तडप कर मरने लगे। अब्दुल हमीद लाहौरी, तथा पीटरमंडी, जिन्होंने इस दुर्भिक्ष को स्वयं देखा है, इसका वर्णन करते हुए कहते हैं —"गाँव के गाँव खाली हो गये।" दुर्भिक्ष के पश्चात् महामारी ने नगर के नगर उजाड दिये। दुर्भिक्ष का सामना करने के लिये शाहजहाँ ने सरकारी लंगर खुलवाये, जहाँ बिना मूल्य के भोजन वितरण होता था।

इसके अतिरिक्त प्रति सप्ताह ५००० रुपये दुर्भिक्ष-ग्रस्त प्रदेश में दानस्वरूप वितरण करने की भी व्यवस्था की गई। अहमदाबाद में जहाँ दुर्भिक्ष अधिक विकराल रूप धारण किये हुए था, उपरोक्त धन के अतिरिक्त ५००० रुपया और वितरण किया गया। खालसा भूमि की मालगुजारी का $\frac{1}{3}$ भाग क्षमा कर दिया गया। प्रांतीय गवर्नरों ने भी इसका अनुकरण किया और अपने-अपने प्रांत में दुर्भिक्ष पीड़ित जनता की अधिकाधिक सहायता करनी चाही। परन्तु तो भी यातायात के साधनों के अभाव में, उस समय दुर्भिक्ष का तत्कालिक सामना आजकल की भाँति नहीं किया जा सकता था।

शाहजहाँ तथा पुर्तगाली:—अकबर तथा जहाँगीर दोनों ने पुर्तगालियों के साथ सहानुभूति दिखलाई थी, जिसके फलस्वरूप उन्होंने हुगली तथा अन्य स्थानों पर कोठियाँ स्थापित कर ली थी। इन कोठियों को उन्होंने अस्त्र-शस्त्र से पूर्णतया सुसज्जित कर, दुर्ग का रूप दे दिया था। यह लोग केवल व्यापार में व्यस्त रह, शांतिपूर्वक जीवन व्यतीत न करते थे; वरन् बहुत से अमानुषिक कृत्य कर, जनता को दुःखी करते थे। वे अपने व्यापारिक अधिकारों का दुरुपयोग करते थे। प्रायः हिन्दू-मुस्लिम बच्चों को उठाकर ले जाते थे और दास के रूप में विदेशों में बेच देते थे। हुगली के समीपस्थ फैक्ट्री के निकटवर्ती गाँव उन्हें पट्टे पर दे दिये गये थे। इन ग्रामवासियों के साथ यह अत्यन्त निर्दयता एवं क्रूरता का व्यवहार करते थे। उनके धार्मिक नेता बलपूर्वक लोगों को धर्म-परिवर्तन करने के लिये बाध्य करते थे। शाह-जहाँ को इन सब बातों की खबर थी; अतः वह पुर्तगालियों को दण्ड देने का बहाना ढूँढ ही रहा था, कि इसी बीच में उन्होंने मुमताज महल की दो दासियों को रोक लिया। शाहजहाँ ने तुरन्त पुर्तगालियों को नष्ट करने की आज्ञा दी। उसने कासिमखाँ को बंगाल का गवर्नर नियुक्त किया, और उसे आदेश दिया कि पुर्तगालियों की शक्ति क्षीण करना, उसका सर्वप्रथम कर्तव्य होगा। तुरन्त मुगल-सेनाओं ने पुर्तगाली कोठियों को घेर लिया। उन्होंने युद्ध-सामग्री एकत्रित करने के लिये एक लाख रुपये की भेंट सम्राट् की सेवा में भेज, सन्धि का बहाना भी किया, जो सफल हुआ, और सैनिक तैयारियाँ भी पूर्ण रूप से हो गई, परन्तु मुट्ठी-भर व्यापारी विशाल मुगल सेना का क्या सामना कर सकते थे? फैक्ट्री-की-फैक्ट्री धराशायी कर दी गई। दस हजार पुर्तगाली या तो मारे गये, या हुगली में डूब गये, या मुसलमान बन गये। इस विजय ने पुर्तगालियों की शक्ति पूर्णतया नष्ट कर दी, तथा उनकी क्रूरता का उचित प्रति-रोध ले उन्हें शांत कर दिया।

मुमताज महल की मृत्यु (१६३० ई०):—१६३० ई० में शाहजहाँ की प्राणप्रिय बेगम मुमताज महल का देहान्त हो गया। मुमताज आसफखाँ की पुत्री

एवं नूरजहां की भतीजी थी। वह जितनी सौन्दर्य-सम्पन्ना थी उतनी ही राजनीति में सुदक्षा भी थी। शाहजहाँ उसकी प्रतिभा से भली-भाँति परिचित था, इसलिये प्रत्येक मुख्य शासन-सम्बन्धी कार्य में वह उससे मन्त्रणा करता था। शाहजहाँ से उसे अगाध प्रेम था। उसके विद्रोहकाल में वह छाया की भाँति उसके साथ रही, और कभी विपत्ति से पराङ्मुख न हुई। १६३० ई० में शाहजहाँ की यह योग्य बेगम नव-जात-शिशु के प्रसव में इस असार संसार से चल बसी। शाहजहाँ को अत्यन्त दुःख हुआ। उसने उसकी स्मृति में ताजमहल निर्माण कर, उसको अमर कर दिया और प्रेम को स्थायी बना दिया।

दक्षिण:—दक्षिण की शिय्या रियासतें मुगलो को सर्वदा खटकती रही। १६०५ ई० तक अकबर दक्षिण-विजय में सलग्न रहा, और खान देश तथा अहमद नगर व बरार का अधिकतर भाग मुग़ल-साम्राज्य में सम्मिलित करने में सफल हुआ। जहाँगीर ने भी अपने पिता की नीति का अनुकरण किया, परन्तु अहमद नगर के प्रसिद्ध सेनापति मलिक अम्बर की योग्यता के कारण सफल न हो सका। अब शाहजहाँ की बारी आई। यहाँ यह कहना उचित होगा, कि अकबर और जहाँगीर केवल राजनैतिक उद्देश्य से ही प्रेरित होकर दक्षिण-विजय की आकाक्षा, रखते थे, परन्तु शाहजहाँ का दक्षिण-संघर्ष उक्त उद्देश्य के अतिरिक्त धार्मिक परिछाया भी लिये हुए था। एक सुन्नी सम्राट् के नाते वह अपनी निकटवर्ती शिय्या सल्तनत को शान्तिपूर्वक संचालित न देख सकता था। इस प्रकार धार्मिक भावना से ओत-प्रोत शाहजहाँ ने इन शिय्या रियासतो को परास्त करना अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया। इसमें उसे सफलता भी प्राप्त हुई। सौभाग्यवश इस समय दक्षिण की स्थिति भी उसके अनुकूल थी। मलिक अम्बर का देहान्त हो चुका था और कोई ऐसा योग्य व्यक्ति न था जो उसका रिक्त स्थान ग्रहण कर सके। दूसरे दुर्भिक्ष ने अपार जन तथा धन-क्षति द्वारा उक्त रियासतो की कमर तोड दी थी।

अहमद नगर से युद्ध:—परिस्थिति की अनुकूलता देख शाहजहाँ को अहमदनगर पर आक्रमण करने का बहाना शीघ्र प्राप्त हो गया। अहमदनगर के निजामशाही सुल्तान ने विद्रोही खानजहाँ लोदी को सहायता दी थी। अत. शाहजहाँ ने उसके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। १६३० ई० में, मुग़ल सेना ने पारिन्दा का किला घेर लिया, परन्तु घोर विरोध के कारण शीघ्र ही घेरा उठा लेना पडा। इसके कुछ समय पश्चात् अहमदनगर में गृह-कलह हो गई। जिसके कारण सुल्तान मुर्तजाशाँ ने मलिक अम्बर के पुत्र फतहखाँ को बन्दी कर बंदी-गृह में डाल दिया। कुछ दिनों पश्चात् वह मुक्त कर दिया गया। परन्तु उसके हृदय में बदले की अग्नि प्रज्वलित

हो चुकी थी। अतः उसने निजामशाही वंश को नष्ट करने का व्रत ले लिया। शाहजहाँ ने इस अवसर से लाभ उठा फतहखाँ को अपनी ओर तोड़ लिया। शाहजहाँ की सहायता प्राप्त कर उसने एक दिन अवसर पा मुर्तजाखाँ को बन्दी कर लिया, तथा उसका वध करवा दिया। अब उसने हुसैनशाह नामक एक अल्पवयस्क राजकुमार को गद्दी पर बैठा दिया, और स्वयं उसके संरक्षण का कार्य करने लगा। परन्तु फतहखाँ शाहजहाँ का भी स्वामिभक्त सिद्ध न हुआ, क्योंकि थोड़े समय पश्चात् अहमदनगर की यह दशा देख तथा फतहखाँ पर विश्वास कर जब शाहजहाँ ने महाबतखाँ के नेतृत्व में मुगल सेना को दौलताबाद विजय करने को भेजा, तो उसने बड़ी वीरता से उसका सामना किया और फतहखाँ को एक अमूल्य भेंट का लालच देकर ही शाही सेना दौलताबाद पर विजय प्राप्त कर सकी। सुल्तान हुसैनशाह बन्दी बना लिया गया और ग्वालियर के दुर्ग में भेज दिया गया। फतहखाँ को निजामशाही वंश से विश्वासघात करने के उपलक्ष में बहुत अच्छा वेतन तथा आदरणीय पद प्राप्त हुआ। इस प्रकार अहमदनगर का पतन हुआ, और वह मुगल साम्राज्य का अङ्ग हो गया। शिवाजी के पिता शाहजी भोंसले ने एक बार पुनः अहमदनगर राज्य को स्थापित करने का प्रयास किया, परन्तु वह सफल न हो सका। इस प्रकार, 'बहमनी राज्य' की दो रियासतें मुगल साम्राज्य में विलीन हो गईं। बरार की इमादशाही रियासत अकबर ने सम्मिलित कर ही ली थी। अहमदनगर की रियासत अब शाहजहाँ ने समाप्त कर दी। बीदर एक छोटी रियासत होने के कारण स्वतन्त्र सत्ता स्थापित न रख सकी। अब केवल बीजापुर तथा गोलकुण्डा रह गईं। इनमें बीजापुर अधिक शक्तिशाली तथा अहमदनगर के निकटवर्ती थी, अतः शाहजहाँ ने अब अपना ध्यान इसकी ओर केन्द्रित किया।

बीजापुर —जब शाहजहाँ ने अहमदनगर पर आक्रमण किया, तो बीजापुर के सुल्तान मुहम्मद आदिलशाह ने अहमदनगर का साथ दिया था, क्योंकि उसे भय था कि अहमदनगर के पतन के पश्चात् मुगल सम्राट् उसे परास्त करने का प्रयत्न करेगा। वास्तव में ऐसा ही हुआ। शाहजहाँ ने आसफखाँ को बीजापुर के विरुद्ध भेजा। उसने बीजापुर का घेरा डाला परन्तु आदिलशाह ने मरहठों की सहायता से मुगल सेना की खाद्य सामग्री रुकवानी आरम्भ कर दी। खाद्य संकट से क्षुब्ध मुगल सेनापति घेरा उठाने के लिये बाध्य हो गया, परन्तु मुगल सेना ने समस्त बीजापुर रियासत को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। इसी बीच मुमताज महल की मृत्यु हो गई, और शाहजहाँ उसका स्मारक अर्थात् ताजमहल के निर्माण कराने में व्यस्त रहने के कारण दक्षिण की ओर ध्यान न दे सका।

गोलकुण्डा:—१६३६ ई० में दक्षिण-संघर्ष पुनः प्रारम्भ हुआ। इस बार पहिले शाहजहाँ ने बीजापुर तथा गोलकुण्डा को एक पत्र भेजा, जिसमें उक्त रियासतों से प्रार्थना की गई कि वे मुगलों की अधीनता स्वीकार करें, मुगल सम्राट् को कर दें, शाहजी भोंसले की सहायता न करें, तथा अहमदनगर के मामलों में हस्तक्षेप न करें। गोलकुण्डा ने सन्धि की शर्तें मान लीं। परन्तु बीजापुर ने इन्हें अस्वीकार कर दिया। अतः उसके विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया।

बीजापुर:—तीन ओर से मुगल सेनाओं ने बीजापुर में प्रवेश किया। खान-जहाँ ने शोलापुर की ओर से, खानजमां ने इन्द्रपुर की ओर से, तथा खानदौरां ने बीदर की ओर से। बीजापुर चारों ओर से घेर लिया गया। इस पर भी मुगल सेना बीजापुर दुर्ग को विजय न कर सकी। हाँ, उसने समस्त रियासत को इतना नष्ट-भ्रष्ट कर दिया कि सुल्तान को सन्धि करनी पड़ी। सन्धि के अनुसार उसने शाहजहाँ की अधीनता स्वीकार की। उसने २० लाख की भेंट सम्राट् की सेवा में प्रस्तुत की, तथा वचन दिया कि वह अहमदनगर तथा गोलकुण्डा सीमा का आदर करेगा। अहमदनगर राज्य का पुनः विभाजन किया गया। तदनुसार उसके पचास परगने बीजापुर को मिले, और उसने शाहजी भोंसले को सहायता न देने का वचन दिया।

इस प्रकार दक्षिण-समस्या को हल कर शाहजहाँ आगरे लौटा।

शाहजहाँ और मध्य एशिया:—दक्षिण विजय के पश्चात् शाहजहाँ की प्रबल इच्छा हुई, कि अपने पूर्वजों की भाँति कन्धार, बलख और बदख्शाँ को जीत अपने पूर्वज तैमूर के साम्राज्य को पुनर्जीवित करे।

कन्धार:—सर्वप्रथम उसने कन्धार पर आक्रमण करने की सोची। यह बलख तथा बदख्शाँ विजय के लिये एक महत्त्वपूर्ण स्थान था, दूसरे वह फारिस तथा योरुप से होने वाले व्यापार की बहुत बड़ी मण्डी थी। सौभाग्यवश उस समय अलीमरदानखाँ कन्धार का ईरानी गवर्नर अपने बादशाह के व्यवहार से सन्तुष्ट न था। अतः वह कन्धार रक्षा के लिए दत्तचित्त न था। परिणाम यह हुआ कि ज्यों ही मुगल सेना ने कन्धार का घेरा डाला, त्यों ही उसका पतन हो गया, और बहुत-सा माल शाहजहाँ के हाथ लगा। अलीमरदानखाँ को एक लाख रुपया पुरस्कार स्वरूप मिला, तथा उसे मुगल सेना में उच्च पद दिया गया।

बलख और बदख्शाँ:—अब शाहजहाँ ने बलख और बदख्शाँ की ओर अपना ध्यान आकृष्ट किया, उस समय बुखारा का राजवंश पारस्परिक झगड़ों के

ताजमहल

दीवान ए-आम (लाल किला देहली)
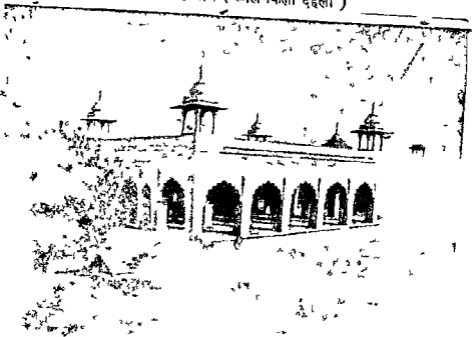
दीवान ए-खास (लाल किला, देहली)

एक विशाल सेना अपने पुत्र मुराद के नेतृत्व मे भेजी और कई प्रसिद्ध सेनापति तथा अलीमरदानखाँ, जो इस देश से परिचित था, उसके साथ भेजे। बलख पर बिना किसी आपत्ति के अधिकार प्राप्त कर लिया गया। परन्तु उजबेगो की निर्बलता के कारण बलख अधिक दिनो तक मुगल आधिपत्य में न रह सका। विलास-प्रिय मुराद भी इस देश में ठहरना न चाहता था। अत उसने बार बार शाहजहाँ से प्रार्थना की, कि उसे भारत वापिस आने की आज्ञा प्रदान की जावे, और अन्त में बिना आज्ञा प्राप्त किये ही वह यहाँ चला आया। अब औरगजेब और शुजा को वहाँ भेजा गया यद्यपि मुगल सेना सख्या में बुखारा सेना से कम थी फिर भी औरगजेब के धैर्य तथा पराक्रम से बलख पुन मुगलो के हाथ में आ गया। उसे एक वीर राजपूत सरदार माधोसिंह के सुपुर्द कर औरगजेब आगे बढा। परन्तु उस प्रदेश की प्राकृतिक कठिनाइयो के कारण मुगल सेना को बहुत यातनाएँ झेलनी पडी। इसी बीच उसे सूचना मिली कि बलख पर आक्रमण करने के लिये उजबेग एक विशाल सेना लेकर आ रहे है। ऐसी दशा में औरगजेब ने वापिस आ बलख की रक्षा करना ही उचित समझा। घोर युद्ध के पश्चात् बुखारा के बादशाह ने सन्धि का प्रस्ताव भेजा, परन्तु कोई स्थायी सन्धि न हो सकी।

कंधार का हाथ से जाना (१६४६ ई०) :—इसी बीच फारिस के नये बादशाह शाह अब्बास द्वितीय ने, जो कन्धार की क्षति को न भूला था, एक विशाल सेना ले उस पर आक्रमण कर दिया, और उस पर विजय प्राप्त कर ली। औरगजेब, जो उस समय मुल्तान का वायसराय था, कन्धार की रक्षा हेतु भेजा गया, परन्तु अपने भरसक प्रयत्न करने पर भी वह कन्धार वापिस न ले सका। शाहजहाँ को इस पर बडा आश्चर्य हुआ। उसने औरगजेब को वापिस बुला, दारा को काबुल का गवर्नर बना कन्धार विजय के लिये भेजा, परन्तु सात मास पर्यन्त कन्धार का घेरा डाले रहने के पश्चात् वह भी वापिस लौट आया। इस प्रकार मध्य एशिया विजय पर १२ करोड रुपया व्यय तथा अपार जन-क्षति का कोई परिणाम न हुआ। केवल निकटवर्ती देशो को मुगल-सेना की अयोग्यता का पता लग गया। मुगल सम्राट् *फारिस की शक्ति से इतने प्रभावित हुए कि वह सदैव फारिस के आक्रमण से भयभीत* रहे। हिन्दुस्तान की मैदानी सेनाओ के लिये पहाडी प्रदेश में, जिससे वह परिचित नही थे, विजय प्राप्त करना अत्यन्त कठिन कार्य था। शाहजहाँ ने इसे न सोचा। अत उसे मुँह की खानी पडी।

औरगजेब —अपने शासन के आरम्भ काल में औरगजेब को दक्षिण का वायसराय नियुक्त किया गया था। उस समय उसने बलगाना प्रदेश को जीत सालिर

और मालिर दो प्रसिद्ध किलों पर अपना अधिकार किया। १६४४ ई० में औरंगजेब ने दक्षिण के वायसराय पद से त्यागपत्र दे दिया। क्योंकि अपने ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह के बहकाने पर सम्राट् उसे अविश्वास तथा सन्देह-भरी दृष्टि से देखता था। इससे अप्रसन्न होकर शाहजहाँ ने उसके सब पद तथा पेंशन स्थगित कर दी। कुछ दिनों पश्चात् अपनी बड़ी जहानआरा बेगम के कहने से शाहजहाँ पुनः औरंगजेब की ओर आकृष्ट हुआ।

औरंगजेब और दक्षिणः—अब कुछ दिन वह काबुल व मुल्तान का वाइसराय रहा, परन्तु सन् १६५३ ई० में वह पुनः दक्षिण भेजा गया। वहाँ उसने मुरशिद-कुलीखाँ नामक एक योग्य माल-पदाधिकारी की सहायता से भूमि-व्यवस्था ठीक कर, राजकीय आय की वृद्धि की।

इस प्रकार व्यवस्था ठीक करने के पश्चात् औरंगजेब ने कई कारणों से बीजापुर और गोलकुण्डा को पूर्णतया समाप्त करना चाहा। प्रथम यह सुल्तान एक स्वतन्त्र शासक की भाँति आचरण करते थे; दूसरे वह फारिस के बादशाह को ही अपना सम्राट् मानते थे, मुगल बादशाह को नहीं; तीसरे वह शिय्या धर्मावलम्बी थे; चौथे वह दारा से मिले रहते थे। औरंगजेब को अवसर भी अच्छा प्राप्त हो गया। इस समय गोलकुण्डा का मन्त्री मीर जुमला अपने सुल्तान से अप्रसन्न था। उसने औरंगजेब से मिलकर कुतुबशाही वंश का सर्वनाश करना चाहा। औरंगजेब ने उसका स्वागत किया और शाहजहाँ ने उसकी सिफारिश कर उसे पाँच-हजारी मनसबदार बनवा दिया। मीर जुमला की शिकायतों की एक सूची तैयार कराई गई और उन्हीं के बहाने औरंगजेब ने १६५६ ई० में गोलकुण्डा पर आक्रमण कर दिया। बहुत सरलता से रियासत विजय हो गई। सुल्तान ने सन्धि की प्रार्थना की, जिसके अनुसार उसने एक करोड़ रुपया तथा खिराज देने का वचन दिया, और उसने फ़ारिस के बादशाह के बदले शाहजहाँ को अपना सम्राट् मानना स्वीकार कर लिया।

बीजापुरः—गोलकुण्डा विजय के पश्चात् औरंगजेब ने बीजापुर पर अधिकार करने की सोची। फरवरी सन् १६५७ ई० में २७ दिन के घेरे के पश्चात् बीदर के किले पर अधिकार कर लिया गया। तत्पश्चात् कल्याणी पर आक्रमण हुआ, जो शीघ्र ही मुगल आधिपत्य में आ गई। अब मुगल सेना बीजापुर की ओर अग्रसर हुई। सम्भव है शीघ्र ही उस पर भी अधिकार हो जाता; परन्तु इसी समय सम्राट् ने सूचना भेजी कि बीजापुर का घेरा उठा लिया जावे, तदनुसार औरंगजेब ने बीजापुर से संधि कर ली और संघर्ष की इतिश्री कर दी।

इस प्रकार तीनो शाहजादे अपनी अपनी सेनायें लेकर राजधानी की ओर अग्रसर हुए। शुजा, जो बगाल से दिल्ली की ओर आ रहा था, दारा की भेजी हुई सेना द्वारा बनारस के समीप बहादुरपुर में पराजित हुआ और बगाल की ओर भाग गया। दूसरी सेना जसवन्तसिह तथा कासिमखाँ की अध्यक्षता में औरगजेब तथा मुराद को परास्त करने भेजी गई, परन्तु दोनो शाहजादो की सयुक्त सैन्य-सवलना के समक्ष १५ अप्रैल सन् १६५८ ई० को शाही सेना उज्जैन के समीप धरमत नामक स्थान पर बुरी भाँति पराजित हुई। अपनी विजय से प्रोत्साहित दोना भाई चम्बल पार हुये। इस बार उनका हौसला पस्त करने के लिये दारा ने स्वय शाही सेना का नेतृत्व सभाला। किन्तु २९ मई सन् १६५८ ई० को वह सामूगढ में परास्त हुआ। सामूगढ की पराजय ने दारा और शाहजहाँ, दोनो के भाग्य को सदा के लिये सुला दिया। औरगजेब विजयी सेना सहित आगरे में प्रविष्ट हुआ, और जमुना नदी से किले में जाते हुये जलमार्ग को बन्द कर शाहजहाँ को किला समर्पण करने के लिये बाध्य किया।

मुराद से छुटकारा.—जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है औरगजेब और मुराद में सन्धि हो गई थी। इस सधि का ईश्वर ही एकमात्र साक्षी था। अब आगरे पर अधिकार प्राप्त कर शाह को बन्दी बना औरगजेब के सम्मुख मुराद से पीछा छुडाने का प्रश्न था। इसलिये, मथुरा में विजयोपलक्ष में एक प्रीति-भोज का आयोजन किया गया। उसमें मुराद आमन्त्रित किया गया। जब वह मदिरा में मदहोश हो गया तो स्वर्ण जजीरो में जकड कर ग्वालियर भेज दिया गया। कुछ कालोपरान्त १६६१ ई० में दीवान अली नकी की हत्या का अभियोग चलाकर उसे फाँसी लगा दी गई।

औरंगजेब का सिंहासनारोहण:—इस प्रकार अपने मार्ग को साफ कर २१ जुलाई सन् १६५८ ई० को औरगजेब दिल्ली के सिंहासन पर आरूढ हुआ। उसने आलमगीर की उपाधि धारण की।

दारा का अन्तिम असफल प्रयास.—दारा आगरे से भागकर दिल्ली आया, किन्तु वहाँ भी अधिक समय न ठहर सका। वह पजाब को भागा, किन्तु औरगजेब की सेना ने उसे वहाँ से खदेड गुजरात में शरण लेने को बाध्य किया। अहमदनगर के शासक से १० लाख रु० भेंट स्वरूप प्राप्त कर, राजा जसवन्तसिंह के निमन्त्रण पर अजमेर आने पर दारा धौकारी में पुन पराजित हुआ। स्थान-स्थान पर टक्कर मारता हुआ बेचारा दारा दादर के बल्लूची चीफ मलिक जीवन की शरण में पहुँचा। लेकिन मलिक ने विश्वासघात कर दारा को औरगजेब के सुपुर्द कर दिया।

दिल्ली में, २३ अगस्त सन् १६५६ ई० को दारा को फटे पुराने वस्त्र पहिनाकर हाथी पर घुमाया गया, और तत्पश्चात् मौत के घाट उतारा गया।

शुजा को सजा:—दिल्ली के सिंहासन पर आरूढ़ होने के अनन्तर औरंगजेब ने शुजा को बन्धु प्रेम से ओत-प्रोत, पत्र लिखा। परन्तु शुजा बुद्धिमान था। वह न आया। उसके न आने पर दोनों में घोर युद्ध हुआ। खजुआ की समर-भूमि में शुजा बुरी तरह परास्त हुआ। वह अराकान की ओर भाग गया, तथा वहाँ के निवासियों द्वारा मार डाला गया।

औरंगजेब की विजय के कारण:—पाठकों को शाहजादों के चरित्र-चित्रण के समय कुछ आभास दिया गया था कि औरंगजेब में ही वह गुण विद्यमान थे, जो तत्कालीन समस्याओं को शान्त कर जनता को अपने पक्ष में ले आते थे। वह एक वीर सेनानायक था, और युद्ध-कला में प्रवीण था। उसकी सेना सुव्यवस्थित एवं पूर्णतया स्वामि भक्त थी। इसके विपरीत दारा की सेना विश्वासघात एवं लालच से परिपूर्ण थी। दारा के धार्मिक प्रगतिवाद एवं सहिष्णुता ने औरंगजेब के कट्टर सुन्नीपने को वाञ्छित सहायता प्रदान की।

इस प्रकार पिता को वन्दीगृह में डाल, अपने भाइयों के रक्त रंजित करों में औरंगजेब ने दिल्ली की शासनडोर संभाली, और आलमगीर के नाम से मुगल-भारत का सम्राट् बना।

शाहजहाँ के अन्तिम दिवस:—शाहजहाँ वन्दी होकर आगरे के किले में रहता था। उसने अपना शेष जीवन कुरान शरीफ के अध्ययन एवं 'खुदा की इबादत' में व्यतीत किया। औरंगजेब ने उसके निरीक्षण का उचित प्रबन्ध किया। इस स्थान पर पितृ-भक्ति-रत पुत्री के प्रति भी श्रद्धांजलि अर्पित करना अनुचित न होगा। जहाँनारा बेगम भग्न-हृदय पिता के वृद्ध जीवन में लकड़ी की भाँति सहायक रही। जनवरी सन् १६६६ ई० में ७४ वर्ष की आयु में ताजमहल की ओर निहारता हुआ शाहजहाँ इस संसार को छोड़कर चला गया।

शाहजहाँ का शासन-प्रबन्ध:—शाहजहाँ की शासन-प्रणाली का ढांचा अकबर से मिलता जुलता था। सुविधा के लिये शाहजहाँ ने उसमें कुछ परिवर्तन किये थे। समस्त साम्राज्य २२ प्रान्तों में विभक्त था। जिनसे २२ करोड़ रुपये की वार्षिक आय होती थी। प्रजा सुखी और समृद्ध थी। प्रान्तीय गवर्नर ईमानदारी से कार्य करते थे। न्याय की व्यवस्था उचित थी।

साहित्य:—स्वयं योग्य विद्वान् होने के कारण शाहजहाँ ने साहित्यिक प्रगति की ओर विशेष ध्यान दिया। उसने उचित पुरस्कार वितरण कर योग्य व्यक्तियों को

साहित्य की ओर आकृष्ट किया। एक बार अब्दुल हकीम स्यालकोटी को उसके तोल के बराबर चादी पारितोषिक स्वरूप प्रदान की गई। काजविनी ने बादशाहनामा इसी समय लिखा। उसने सैकडो नये मदरसे खोले तथा पिछले मदरसो को आर्थिक सहायता प्रदान कर शिक्षा का प्रसार किया।

भवन निर्माण —शाहजहाँ का राज्यकाल भारतीय इतिहास में भवन-निर्माण के लिए विशेष प्रसिद्ध है। भारत की अद्वितीय इमारत ताजमहल है, इसे शाहजहाँ ने अपनी प्रिय बेगम मुमताजमहल की स्मृति में उसके शव के विश्रामार्थ बनवाया। सगमरमर के चबूतरे पर स्थित इस भव्य भवन का वर्णन लेखनी की शक्ति से बाहर है। इसका विशाल गुम्बद तथा पच्चीकारी दर्शको तथा शिल्पकारो को विस्मित करती है।

ताज के अतिरिक्त शाहजहाँ ने आगरे के किले की ससार प्रसिद्ध मोती मस्जिद बनवाई। देहली स्थित लालकिले का दीवाने-आम तथा दीवाने-खास और देहली की जामा मस्जिद अपार विस्मय उत्पन्न करती है। इनके अतिरिक्त शाहजहाँ ने मोर की आकृति का एक रत्न-जडित सिंहासन बनवाया था, जिसे 'तख्ते-ताऊस' कहते थे। उसमें लगे हुए लाल, हीरे तथा जवाहरात, शाहजहाँ के ऐश्वर्य, प्रेम तथा साम्राज्य-समृद्धि के पूर्णतया परिचायक है।

चित्र कला तथा गायन-विद्या :—शाहजहाँ को चित्रकारी से भी विशेष प्रेम था। चित्रो को फूलो के किनारो से सुसज्जित करना इसके समय से आरम्भ हुआ। मुहम्मद नादिर समरकन्दी शाहजहाँ का प्रसिद्ध चित्रकार था। कहा जाता है कि जहाँगीर की भाँति शाहजहाँ भी स्वय चित्रकार था। शाहजहाँ स्वय एक अच्छा गायक भी था, अत गायन-विद्या को उसने विशेष प्रोत्साहन दिया। रामदास और महापात्र उसके समय के प्रसिद्ध गायनाचार्य थे।

शाहजहाँ को बाग लगवाने का भी बहुत शौक था। उसने अपनी सब इमारतो को सुन्दर तथा रमणीक बागो से सुशोभित किया। लाहौर तथा देहली के शालीमार बाग तथा काश्मीर स्थित दाराशिकोह के बाग देशी तथा विदेशी यात्रियों के लिए सदैव विस्मय की वस्तु रहे है।

शाहजहाँ का चरित्र :—शाहजहाँ मुगल वश का सबसे बडा सम्राट् था। यद्यपि उसने कुटुम्बियो का रक्तपात करके सिंहासन प्राप्त किया था तथापि उसमें सहानुभूति तथा दान-शीलता का अभाव न था। निर्धन तथा दुखी लोगो पर सदैव उसकी कृपा-दृष्टि रहती थी। वह अत्यन्त न्याय प्रिय शासक था। न्याय की दृष्टि में

छोटे-बड़े तथा अमीर-गरीब सबको वह समान-दृष्टि से समझता था। शान-शौकत उसे प्रिय थी। उसकी इमारतें उसके उद्यान तथा उसका सिंहासन इसको प्रमाणित करते हैं। गान-विद्या तथा चित्र-कला से उसे विशेष प्रेम था। अपने परिवार, विशेषतया अपनी पत्नी से उसे विशेष प्रेम था। धार्मिक मामलों में वह कट्टर सुन्नी था। यद्यपि अकबर जैसी उदारता उसमें न थी तथापि उसने हिन्दुओं के प्रति कोई दुर्व्यवहार नहीं किया। उसके सब गुणों पर दृष्टिपात करते हुए हम कह सकते हैं कि वह एक योग्य सम्राट् था।

प्रश्न

१. शाहजहाँ ने पुर्तगालियों के साथ कैसा वर्ताव किया ?

२. शाहजहाँ की सीमान्त नीति पर प्रकाश डालो।

३. शाहजहाँ की दक्षिण नीति के विषय में तुम क्या जानते हो।

४. शाहजहाँ का समय मुगल काल के वैभव की पराकाष्ठा थी—क्यों ?

५. शाहजहाँ के समय उत्तराधिकार युद्ध का वर्णन करो।

अध्याय ७

औरङ्गजेब

(१६५८—१७०७ ई०)

राज्यारोहण:—अपने प्रतिद्वन्द्वी भाइयो को मार्ग से हटा २२ जौलाई सन् १६५८ ई० को औरङ्गजेब गद्दी पर बैठा। ५ जून १६५६ ई० को बडे ठाट-बाट से उसका राज्याभिषेक हुआ। सिंहासनारूढ होने समय उसने स्वय अब्बुल मुजफर आलमगीर बादशाह-ए गाजी की उपाधि धारण की और अपने अन्य वशजो को भी इसी प्रकार उचित उपाधियो से विभूषित किया। राज्य-कर्मचारियो को पदानुसार उचित उन्नति तथा पुरस्कार वितरण कर उसने इस समारोह में हर्ष तथा उल्लास का सचार किया। अन्य मुस्लिम देशो ने तथा डच और फ्रासीसियो ने भी उक्त अवसर पर अपने प्रतिनिधि भेज कर समारोह को भव्यता प्रदान की। प्रीतिभोज तथा आमोद प्रमोद दो महीने तक चलते रहे। इस अपूर्व हर्ष व आनन्द के साथ अपने पिता शाहजहाँ के जीवन-काल में ही औरगजेब भारत का सम्राट् बन बैठा।'

प्रारम्भिक कार्य—उत्तराधिकार युद्ध के कारण प्रबन्ध अस्त व्यस्त हो गया था। समस्त देश में अशान्ति, असन्तोष तथा अनियमित करो से जनता की आर्थिक दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई थी। औरगजेब ने इस प्रकार के ८० कर क्षमा कर दिए। अन्य का भाव कम करने के लिए उसने अनाज पर से चु गी हटा दी। मिलो तथा तीर्थों पर लिए जाने वाले सब कर उसने हटा दिए। उसने सौर सम्वत् के स्थान पर, जो उस समय प्रचलित था, मुस्लिम चन्द्र सम्वत् लागू किया। नौरोज की फारसी प्रथा उसने सर्वथा बन्द कर दी। उसने उन मस्जिदो की, जो जीर्ण शीर्ण अवस्था में पडी थी, मरम्मत कराई और वहाँ वैतनिक इमाम तथा मुअज्जम नियुक्त किये। उसने मुहातसिब नामक धार्मिक पदाधिकारियो को आदेश दिया कि जनता को शरअ के अनुकूल आचरण करने के लिए बाध्य करें। साराश यह है कि औरगजेब ने अपने शासन के प्रारम्भ में ही प्रगट कर दिया कि कट्टर मुसलिम यातनाओ से ओत-प्रोत उसका राज्य-काल सर्वत्र धार्मिक परिछाया लिये हुए होगा।

मीर जुमला:—मीर जुमला फारिस का रहने वाला एक अत्यन्त साहसी तथा प्रतिभाशाली व्यक्ति था। शाहजहाँ के शासन-काल में वह अपनी योग्यता के बल

पर गोलकुण्डा का प्रधान मन्त्री बन गया। अपने उच्च पद तथा प्रभाव से लाभ उठाकर उसने अपने मन्त्रि-काल में कर्नाटक में एक स्वतन्त्रत राज्य स्थापित कर लिया था। गोलकुण्डा के शासक को उसका यह आचरण अत्यत अप्रिय लगा। अत उसने उसकी शक्ति तथा प्रभाव नष्ट करना चाहा, परन्तु औरगजेब से मिलकर, जो उस समय दक्षिण का वाइसराय था, उसने अपनी रक्षा की। शाहजहां ने भी मीर जुमला का स्वागत किया, क्योकि वह समझता था कि उससे दक्षिण-विजय मे बडी सहायता मिलेगी। उत्तराधिकार युद्ध में मीर जुमला ने औरगजेब की बडी सहायता की थी, जिससे प्रसन्न होकर औरगजेब ने उसे बगाल का गवर्नर बना दिया। उसके पद-काल में आसाम तथा कूच बिहार के राजा ने बगाल में प्रवेश कर मुगल प्रदेश पर अधिकार कर लिया। जब औरगजेब को यह सूचना मिली, तो वह क्रोधान्ध हो उठा, और उसने मीर जुमला को आज्ञा दी कि वह राजा को उचित दण्ड दे। तुरन्त मीर जुमला ने एक विशाल सेना ले कूच बिहार और आसाम पर आक्रमण दिया, और समस्त प्रदेश को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। वह आसाम के अन्दर प्रवेश करता चला गया। सम्भव है कि वह इस मार्ग से चीन पर आक्रमण करना चाहता हो, परन्तु अत्यधिक वर्षा में सेना को खाद्य-सामग्री पहुँचाना बन्द हो गया। इसी बीच सेना में महामारी का प्रकोप हो गया। अत मीर जुमला को अपना विचार स्थगित करना पडा; और वह राजा से असख्य धन, तथा उसके राज्य का बहुत-सा भाग ले, वापिस चल दिया। परन्तु वृद्धावस्था के इस कठिन परिश्रम ने उसके स्वास्थ्य को बहुत क्षति पहुँचाई; और लौटती बार कूच बिहार स्थित खिजरपुर स्थान पर सन् १६६३ ई० में उसका देहान्त हो गया। औरंगजेब को मीर जुमला की मृत्यु का बडा दुख हुआ। उसने उसके पुत्र मुहम्मद अमीन को उच्च पद प्रदान कर तथा मीर जुमला की समस्त उपाधियों से विभूषित कर अपने हृदय को शान्त किया।

शाइस्ताखाँ:—मीर जुमला की मृत्यु के पश्चात् शाइस्ताखां बगाल का गवर्नर हुआ। उसने मीर जुमला की नीति का अनुकरण किया। उसने देखा कि चटगांव के समुद्री डाकू अराकान के राजा की सरक्षता में प्रायः व्यापारी जहाजो को लूट भारतीय व्यापार को क्षति पहुँचाते हैं, शांति-साधनो को असफल देख, शाइस्तखा ने अराकान पर आक्रमण कर दिया। उसने १६६६ ई० में चटगांव पर अधिकार कर लिया। इसका नाम इस्लामाबाद रख इसे एक फौजदार के सुपुर्द कर दिया गया। इसके पश्चात् बंगाल की खाडी स्थित सोन द्वीप पर अधिकार कर समुद्री डाकुओ के अड्डों को नष्ट कर दिया। शाइस्ताखां ने बहुत से नये जहाज बनवा कर मुगल-सेना को सशक्त बनाया जिससे वह अवसरानुकूल साम्राज्य के तट की रक्षा कर सके।

औरंगजेब की बीमारी (१६६४ ई०):—१६६४ ई० में औरंगजेब रोग-ग्रस्त हुआ, परिस्थिति से लाभ उठा राजा जसवन्तसिंह, महाबतखाँ तथा अन्य प्रभावशाली अमीरों ने शाहजहाँ को मुक्त कर फिर सिंहासनारूढ़ करना चाहा; परन्तु औरंगजेब के द्वितीय पुत्र मुअज्जम को, दूसरा, जो उसके तृतीय पुत्र अकबर को उत्तराधिकारी बनाना चाहता था। जब औरंगजेब को स्थिति का ज्ञान हुआ तो उसने बड़े धैर्य से काम लिया। पांचवें दिन बीमारी की दशा में ही वह दरबार में आ गया और अपने पदाधिकारियों से भेंट की। उसने शाही मुहर भी, जो उसकी विश्वासपात्र बहिन रोशनआरा के पास थी, अपने अधिकार में कर ली। जिससे कि उस पर अधिकार कर षड्यन्त्रकारी उससे कोई लाभ न उठालें। षड्यन्त्रकारी भी यह सब देख घबड़ा गये इस प्रकार औरंगजेब ने अपनी बुद्धिमत्ता तथा धैर्य से अपनी रक्षा की। ज्योंही वह कुछ-कुछ ठीक हुआ, वह स्वास्थ्य लाभकरने काश्मीर चला गया।

सीमान्त-समस्या—भारतवर्ष के उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त-प्रदेश की रक्षा तथा शान्ति सदैव भारत की एक जटिल समस्या रही है। मुगल सम्राटों ने कई बार इस प्रदेश में शान्ति तथा व्यवस्था स्थापित करने का प्रयत्न किया, परन्तु वे स्थायी सफलता प्राप्त न कर सके। १६६७ ई० में इस प्रदेश के यूसुफजाई वर्ग ने भागू नामक एक व्यक्ति के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया और सिन्ध नदी पार कर हजारा पर चढ़ आये। यहाँ उन्होंने अपना आधिपत्य स्थापित कर, कृषक वर्ग को बहुत भारी भेंट देने को बाध्य किया। तत्पश्चात् उन्होंने मुगल छावनी पर आक्रमण कर साम्राज्य के अन्दर प्रवेश करना चाहा। औरंगजेब इसे कैसे सहन कर सकता था। उसने अटक के फौजदार तथा काबुल के गवर्नर को आज्ञा दी कि वे यूसुफजाइ जाति को पूर्णतया परास्त करें। यही नहीं, वरन् उनकी सहायतार्थ मीर जुमला के पुत्र अमीनखाँ को एक विशाल सेना ले काबुल भेजा। तीनों मुगल सेनापतियों ने बड़े सहयोग से काम किया और कई युद्धों में युसुफजाई वर्ग को पूर्णतया परास्त किया। औरंगजेब ने राजा जसवन्तसिंह को जमरूद का गवर्नर नियुक्त किया और उसे आदेश दिया कि अफगान प्रान्त की शांति का विशेष ध्यान रखें।

अफरीदी विद्रोह:—१६७१ ई० में इस प्रदेश में अफरीदी वर्ग ने विद्रोह का झण्डा खड़ा कर अपने नेता अकमलखाँ को बादशाह बनाना चाहा। मीर जुमला के पुत्र अमीनखाँ ने उन्हें दबाने का प्रयत्न किया, परन्तु परास्त हुआ। बहुत से मुगल सैनिक पकड़े गये और मध्य एशिया में दास के रूप में बेचने के लिये भेज दिये गये। अमीनखाँ स्वयं बाल-बाल बचा। उसकी स्त्री तथा बच्चे बन्दी बना लिये गये और

बहुत रुपया देने पर मुक्त किये गये। इस विजय से अफरीदियों का साहस और भी बढ़ गया, और लूट तथा ख्याति की इच्छा से अन्य अफगान वर्ग भी उनमें सम्मिलित हो गये।

खट्टक विद्रोह—अफरीदी विद्रोह से कही भयकर विद्रोह खट्टक वर्ग ने किया। खट्टक नेता खुशहालखाँ एक बार पेशावर दरबार में निमन्त्रित किया गया था। परन्तु जब वह वहाँ आया तो उसे बन्दी बना लिया गया था। वह देहली भेज दिया गया, परन्तु १६६६ ई० में मुक्त कर दिया गया और युसुफजाई-विद्रोह में सहायतार्थ भेजा गया। अपने भाइयो को देख उसके हृदय में स्वतन्त्र प्रेम जागृत हो उठा और वह स्वय अकमलखाँ से मिल गया। जब मुगल-सेनापति इस सीमान्त सघ को परास्त करने में असफल रहे तो औरगजेब स्वय वहाँ गया। उसने स्वय सैन्य सचालन किया। कई वर्गो को जागीर तथा पेंशन प्रदान कर उसने अपनी ओर मिला लिया। इस प्रकार साम, दाम, दण्ड, भेद से अफगान सेना न्यून करने के पश्चात उसने इन्हे खैबर-दर्रे के युद्ध में परास्त किया। परन्तु १६७५ ई० में अफगानो ने मुगल सेनापति फिदाईखाँ को चारो ओर से घेर लिया। ऐसे समय यदि अगरखाँ नामक सेनापति गडमक से आ उसकी सहायता न करता तो सम्भव है कि उसकी सम्पूर्ण सना युद्ध में समाप्त हो जाती।

अन्य स्थानो पर भी मुगल सेनायें सफल न हो सकी, औरगजेब ने अपने योग्य-से-योग्य सेनापतियो को सैन्य सचालन के लिये भेजा, परन्तु पर्वतीय प्रदेश में मार्ग आदि से अनभिज्ञ होने के कारण वह सफलता प्राप्त न कर सके। १६७५ ई० के अन्तिम चरण में स्थिति कुछ सुधर गई। अगले वर्ष उसने मुअज्जम को सीमान्त प्रदेश भेजा और अमीरखाँ को उसके साथ कर दिया। अमीरखाँ इस प्रदेश में इतना सफल हुआ कि औरगजेब ने उसे काबुल का गवर्नर बना दिया। अपनी बुद्धिमत्ता तथा नीतिपटुता से उसने अफगान प्रान्त में पूर्ण शान्ति स्थापित रक्खी।

औरंगजेब तथा हिन्दू

पहले मुगल बादशाहो की नीति उदारता तथा प्रजा वात्सल्य पर निर्धारित थी। वे शासक (अर्थात् मुसलमान) तथा शासित (अर्थात् हिन्दुओं) में कोई भेदभाव न समझते थे। माल तथा सेना दोनों विभागो में निस्सकोच हिन्दुओं को उच्च पदो पर नियुक्त किया जाता था। उन्हें पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता थी। यही कारण था कि वे मुगल साम्राज्य के लिये प्राण न्यौछावर करने के लिये उद्यत रहते थे। भेद-भाव तथा आतक पर साम्राज्य अवलम्बित करने वाले १२०० ई० से १५२६

ई० तक के देहली सुल्तान, जो सहयोग हजारों लाखों हिन्दुओं को प्राण-दण्ड दे प्राप्त न कर सके वह अकबर ने अपनी उदारता तथा सहृदयता की नीति से अल्पकाल ही प्राप्त कर लिया। यही सहयोग सैकड़ों वर्ष पर्यन्त चलता रहा। औरंगजेब ने उस नीति का परित्याग कर मुगल साम्राज्य की जड़ें खोखली कर दी।

औरंगजेब की हिन्दू नीति का पूर्ण परिचय प्राप्त करने तथा उसकी निष्पक्ष समालोचना करने के लिये उसके हिन्दुओं के प्रति किये गये कार्यों को एक-एक करके लें।

आरम्भ से ही औरंगजेब अपने धर्म का कट्टर अनुयायी था। सिंहासनारूढ़ होते समय बादशाह ए गाजी की उपाधि ग्रहण करना तथा शरअ-प्रतिकूल समस्त करों का स्थगित करना उसकी धार्मिक कट्टरता का प्रतीक है। ऐसे बादशाह के शासन में धार्मिक दल का प्रभाव बढ़ जाना अनिवार्य था। औरंगजेब की धार्मिक रुचि देख उस दल ने औरंगजेब से हिन्दुओं पर जजिया लगाने की प्रार्थना की क्योंकि शरअ अनुसार इस कर का लगाना प्रत्येक मुसलमान बादशाह का धार्मिक कर्त्तव्य है। शरअ के शब्द शब्द पर जान न्योछावर करने वाला औरंगजेब उलमा की इस प्रार्थना को कैसे अस्वीकार कर सकता था? उसने तुरन्त जजिया लागू करने तथा उसे वसूल करने के लिये विशेष पदाधिकारी नियुक्त किये। जजिया लागू करने में धार्मिक वृत्ति के अतिरिक्त आर्थिक प्रलोभन भी था। शरअ विरुद्ध कर स्थगित करने के पश्चात् साम्राज्य के सामने आर्थिक संकट उत्पन्न हो गया था। औरंगजेब, जिसके लिये धर्म शब्द ही उक्त कर लागू करने के लिये पर्याप्त था, इस संकट के कारण इसे लागू करने के लिये और भी अधिक प्रोत्साहित हुआ। परन्तु यह कहना, कि जजिया केवल आर्थिक कारणों से लागू किया गया, सर्वथा भूल है। क्योंकि यदि यह बात होती तो औरंगजेब जनता के अधिकतर भाग में क्षमता तथा असंतोष उत्पन्न करने वाले उत्सव, वे चाहे अपने शासन के प्रारम्भ में स्थगित किये जाते चाहे अनेक वर्षों में, वे जिन्हें प्रथा तथा समय ने औचित्य प्रदान कर दिया था कुछ को स्थगित न करता। इस प्रकार इसमें कोई सन्देह नहीं कि जजिया एक धार्मिक प्रतिक्रिया थी। जिसमें औरंगजेब की हिन्दू विरोधी नीति स्वतः निहित थी।

हिन्दू पदाधिकारियों को पदच्युत करना:—१६७० ई० में औरंगजेब ने एक विज्ञप्ति निकाली कि माल-विभाग के हिन्दू क्लर्क, दीवान, आमिल जो बेईमान हो पदच्युत कर दिये जावें और उनके स्थान पर मुसलमान पदाधिकारी नियुक्त किये जावें। इस विज्ञप्ति के अनुसार बहुत से हिन्दू कर्मचारी नौकरियों से पृथक् कर दिये गये। इस विज्ञप्ति में हिन्दू शब्द प्रत्येक निष्पक्ष विद्यार्थी को खटकता है। यदि केवल

बेईमान पदाधिकारियों को निकालने का उद्देश्य होता तो उससे पूर्व 'हिन्दू' शब्द जोड़ने की तथा आगे 'मुसलमान पदाधिकारी' शब्द लगाने की आवश्यकता न होती। औरंगजेब के पक्ष में कुछ इतिहासकारों ने दो युक्तियाँ दी हैं कि उक्त विज्ञप्ति केवल माल-विभाग के लिये थी। यदि औरंगजेब का आशय हिन्दू पदाधिकारियों को निकाल, मुसलमानों को रखने का होता तो वह सेना के लिये भी इसी प्रकार की आज्ञा देता, तथा आगे चलकर जैसा कि उसने किया इस विज्ञप्ति को इस प्रकार संशोधित न करता कि माल-विभाग में एक मुसलमान तथा एक हिन्दू रखा जावे। इन इतिहासकारों को औरंगजेब की नीति का उक्त बचाव देते समय यह ध्यान न रहा कि मनुष्य का व्यक्तित्व इतना सादा नहीं होता कि उसकी सब क्रियायें तथा आचरण एक सिद्धान्त से नापे जा सकें वह एक अत्यन्त जटिल प्राणी है। अतः उसके प्रत्येक व्यवहार की व्याख्या करते समय हमें उसके पूरे व्यक्तित्व पर दृष्टि डालना उचित होगा। औरंगजेब धर्मान्ध होने के साथ-साथ अविश्वासी भी प्रथम श्रेणी का था। वाह्य मनुष्यों का तो दूर रहा वह अपने पुत्रों का भी विश्वास नहीं करता था। अतः सेना में एक हिन्दू तथा एक मुसलमान का होना अथवा आगे चलकर माल-विभाग में भी इसी सिद्धान्त के अनुसार आचरण करना उसके अविश्वास का परिचायक है। उसने ऐसा इसलिये किया कि हिन्दू तथा मुसलमान दोनों एक दूसरे के आचरण पर दृष्टि तथा उसकी समालोचना कर दुर्व्यवहार और अनाचार से मुक्त रहें। युद्धस्थल में एक हिन्दू तथा एक मुसलमान सेनापति को अनिवार्य रूप से भेजा जाता था। यह भी हमारी धारणा की पुष्टि करता है। उसके आचरण को हिन्दू मुस्लिम समानता में परिवर्तित करना सत्य से सर्वथा दूर हो जाना होगा। प्रथम विज्ञप्ति को माल-विभाग तक सीमित रखने की एक और भी व्याख्या की जा सकती है। वह यह कि सेना में प्राय. राजपूत जाति के लोग थे। औरंगजेब समझता था कि यदि सेना से उन्हें पृथक् कर दिया गया तो वे मरहठों से मिलकर मुगल साम्राज्य को क्षति पहुँचायेंगे। अतः उसने किसी अवसर की प्रतीक्षा में इसे सेना में लागू करने से रोक लिया। परन्तु दुर्भाग्यवश यह अवसर उसके जीवन में कभी नहीं आया।

मंदिरों का विध्वंसः—औरंगजेब की हिन्दू-विरोधी नीति की तीसरी पुष्टि हिन्दू मन्दिरों का विध्वंस बताया जाता है। इस प्रसंग में हम पहिले औरंगजेब की दो विज्ञप्तियों का उल्लेख करना उचित समझते हैं। इनमें से प्रथम, उसने १६५९ ई० में बनारस के गवर्नर को भेजी। जिसमें लिखा था कि 'मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट न किया जावे, परन्तु नवीन मन्दिर न बनने दिये जायें।' इस विज्ञप्ति के बीच में यह

भी बताया गया है कि यह एक शिकायत के आधार पर निकाली गई थी, जिसमें ब्राह्मणों पुजारियों की जीविका छीनने की शिकायत की गई थी।

दूसरी विज्ञप्ति महाराजाधिराज राजा रामसिंह की शिकायत पर, जिसमें उसने कुछ पदाधिकारियों पर आरोप लगाया था कि वे उसके गुरु भगवत गुसाई को तंग कर उसके भजन पूजा को भंग करते हैं। इसमें औरंगजेब ने गवर्नर से प्रार्थना की कि वह ऐसा आचरण न होने दें। उन विज्ञप्तियों का विश्लेषण स्वयं ही सत्य को प्रकट कर देता है कि पहिली विज्ञप्ति के अनुसार पुराने मन्दिरों का विध्वंस निषेध था परन्तु नये मन्दिरों के निर्माण पर प्रतिबन्ध था। इस प्रकार पुराने मन्दिरों को धीरे धीरे काल कवलित होने को तो स्वयं विज्ञप्ति ही कहती है, और नये बनने से रोकती है। इस प्रकार धीरे धीरे एक ऐसे युग की ओर ले जाने का संकेत है कि जिसमें कोई मन्दिर न हो। दूसरे विज्ञप्ति में कहा गया है कि यह किसी सूचना अथवा शिकायत के आधार पर निकाली गई और इसमें पुजारियों की जीविका को ठेस न पहुँचाने की प्रार्थना की गई, अर्थात कोई ऐसा घटना घटित हुई थी जिससे उनके जीविकोपार्जन में बाधा पड़ती थी। क्योंकि इनकी जीविका मन्दिर से सम्बन्धित
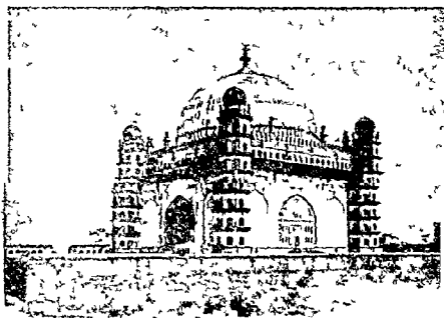
सुलतान मोहम्मद का मकबरा (बीजापुर)

है। अतः मन्दिरों का विध्वंस ही इनकी जीविका का छीनना है। इस प्रकार हम इस परिणाम पर पहुँचते है कि मन्दिरो का विध्वस थोडा बहुत अवश्य हुआ। एक महाराजा का अपने गोसाईं की पूजा की रक्षा का प्रबन्ध भी बादशाह से प्रार्थना करके कराना यह प्रगट करता है कि साधारण मुसलमान हिन्दुओ को तग करने के मामले में बडे से बडे हिन्दू की भी परवाह न करते थे। कहा जाता है कि जो मन्दिर गिराये गये वह ऐसे थे जो मसजिदो को तोडकर बनाये गये थे। परन्तु यह आक्षेप किसी प्रकार भी प्रमाणित नही होता।

पाठशालाओं का विध्वंस:—म-आसर-अ-आलमगीरी में एक उल्लेख मिलता है कि ठट्टा, मुल्तान और बनारस में ब्राह्मण अपनी पाठशालाओं में कुछ अपवित्र पुस्तकें पढाते थे और हिन्दू तथा मुसलिम दोनो प्रकार के छात्र उनमें पढने जाते थे। अतः सम्राट् ने एक विज्ञप्ति निकाली कि उक्त प्रान्तो के गवर्नर इस प्रकार के मन्दिरो तथा शिक्षालयों को नष्ट-भ्रष्ट कर दें और इस्लाम-विरोधी बातों को पढ़ाने पर प्रतिबन्ध लगायें। किन्तु किसी समकालीन फारसी लेखक ने कोई उक्त प्रकार की बात नही लिखी। अत: इसकी सत्यता पर सदेह होता है, दूसरे उस समय की कुछ परिपाटी भी ऐसी थी कि मुसलमान लेखक धार्मिक मामलो में अतिशयोक्ति बहुत करते थे। दोनो बातो को उचित स्थान देते हुये हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कुछ मुसलमान विद्यार्थी हिन्दू पाठशालाओ में पढने जाते थे, जहां अन्य विषयों के अतिरिक्त हिन्दू-धर्म की शिक्षा भी दी जाती होगी। औरगजेब ने इस प्रकार के स्कूल बन्द करा दिये तथा सर्वत्र इस बात पर प्रतिबन्ध लगा दिया कि कोई मुसलमान विद्यार्थी हिन्दुओं की पाठशालाओ में पढने न जावे। सम्भव है कि कुछ पाठशालायें नष्ट-भ्रष्ट भी करा दी हो। उपरोक्त विवरण के पश्चात हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि औरगजेब के समय में अकबर की उदारता समाप्त हो चुकी थी और इसके स्थान पर हिन्दू विरोधी नीति का अनुसरण किया जा रहा था, जिसका दुष्परिणाम उसके जीवनकाल में ही दृष्टिगोचर हो गया।

जाट-विद्रह:—हिन्दुओ, विशेषतया मथुरा के निकटवर्ती जाटों के प्रति अकबर ने अत्यन्त सहानुभूति प्रदर्शित की थी। उसने मथुरा, वृन्दावन में गोविन्ददेव, जुगलकिशोर और गोपीनाथ के मदिर बनवाये थे। इसके फलस्वरूप वह मुगल-पसीने के बदले अपना रक्त बहाने के लिये उद्यत रहते थे। इस प्रकार का स्वर्ण-युग देखने के पश्चात् उन्हें औरंगजेब का शासन-काल अत्यन्त असह्य हो चला और जब मथुरा के फौजदार सैय्यद अब्दुल नबी ने १६६७ ई० में हिन्दू-तीर्थ स्थान मथुरा के बिल्कुल मध्य में हिन्दू मन्दिरो की सामग्री से एक जामा ममजिद बनवाई, तो

उनका धैर्य जाता रहा। तिलपत के एक जमीदार गोकुल जाट के नेतृत्व में उन्होंने विद्रोह कर दिया और मथुरा के फौजदार का वध कर दिया। नये फौजदार हसन-अली ने १६६७ ई० में जाटों को पूर्णतया परास्त किया। कठोर दण्ड ने विद्रोहियों की कमर तोड दी, परन्तु १६८१ ई० में, जब औरंगजेब दक्षिण में शिवाजी के वीर पुत्र राजाराम से लोहा ले रहा था, तब जाट लोग भरतपुर के उत्तर-पश्चिम में सासनी नामक स्थान पर एकत्रित हुए, और विद्रोह का झंडा खडा कर दिया, परन्तु वे पुन. परास्त हुए। १६६१ ई० में उन्होने फिर विद्रोह कर दिया। इस बार उन्होने सम्राट् अकबर के मकबरे सिकन्दरे को लूटने का जघन्य कृत्य कर जाट जाति के मुख पर कालिमा लगा दी।

सतनामी विद्रोह:—सन् १६७२ ई० में मेवात और नारनौल के एक ब्राह्मण सम्प्रदाय ने, जो 'सतनामी' के नाम से प्रसिद्ध था, विद्रोह कर दिया। झगडा एक तुच्छ-सी बात पर खडा हो गया। एक दिन एक मुगल सिपाही ने एक सतनामी किसान को कोई अवाछनीय बात कह दी। इस पर समस्त सतनामी जाति क्षुब्ध हो उठी। उन्होने उस सिपाही को पीटते-पीटते मार डाला। अब दोनो ओर से सैनिक तैयारी होनी प्रारम्भ हो गई। आरम्भ में सतनामियो ने कुछ मुगल सेना को, जो उनके विरुद्ध भेजी गई थी, परास्त कर दिया। अन्त में एक भीषण युद्ध के उपरांत यह विद्रोह शात हुआ। इस प्रकार की घटनायें सिद्ध करती थी कि मुगलो के राजनैतिक क्षितिज पर पतन के काले बादल मडरा रहे थे। औरंगजेब जैसा धर्मांध, उन्हें देख सकट से पूर्व सचेत न होना चाहता था। फल यह हुआ कि उसके शासनकाल मे ही साम्राज्य का पतन प्रारम्भ हो गया।

राजपूतों के साथ युद्ध—औरंगजेब की अनुदार नीति से समस्त हिन्दुओ विशेषतया मुगल वश के आधार स्तम्भ राजपूतो को उसके विरुद्ध कर दिया। अब उनकी सहानुभूति तथा स्वामि-भक्ति इतनी उच्च आदर्श की न थी, जितनी कि अकबर काल में। १६७९ ई० में राजा जसवतसिंह की, जिसको औरंगजेब ने खैबर दर्रे के मुहाने जमरूद में नियुक्त किया था, मृत्यु से स्थिति और गम्भीर हो गई। राजा के कोई पुत्र न था। अत: औरंगजेब के लिये अच्छा अवसर था कि वह अपने अधिकृत किसी मनुष्य को मारवाड की गद्दी पर बिठा राजपूताने के एक भाग पर अपना आधिपत्य स्थापित कर ले, परन्तु जब उसकी विधवा रानियाँ वापिस लौट रही थी तब, उनके दो पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें से एक तो मर गया परन्तु एक मारवाड़ की गद्दी का उत्तराधिकारी बनने को जीवित रह गया। इस प्रकार औरंगजेब

का स्वर्ण-स्वप्न कल्पना बनकर ही रह गया, परन्तु सम्राट् इतनी आसानी से अपने विचार स्थगित करने वाला व्यक्ति न था। उसने मारवाड़ को मुगल साम्राज्य में सम्मिलित करने अथवा किसी अन्य अपने कुटुम्बी को उसे सुपुर्द करने के बहाने ढूंढने प्रारम्भ कर दिये। राजा का परिवार बिना सम्राट् की अनुमति के जमरूद से चल पड़ा था और जब अटक में उनसे प्रवेश पत्र मांगा गया तो उन्होंने एक अफसर का वध कर दिया था। जिसकी आड लेकर औरंगजेब जोधपुर को अपने अधिकार में कर सकता था, परन्तु जोधपुर को मुगल साम्राज्य में सम्मिलित करने के कई वास्तविक कारण भी थे। प्रथम, मुगल साम्राज्य से अहमदाबाद, सूरत, इन्दौर. जाने वाली सडक मारवाड में से होकर जाती थी, अतः भारत का समस्त समुद्री माल इसी सडक से आता जाता था। कोई बुद्धिमान् सम्रा् इसको पसन्द नही कर सकता कि किसी मुख्य सडक पर कोई स्वतन्त्र अथवा अर्ध-स्वतन्त्र रियासत रहे, जो किसी अवसर पर समस्त व्यापार को अस्त-व्यस्त कर सके। दूसरे, जैसा कि स्मिथ लिखता है कि 'उत्तरी भारत का कोई सम्राट् अपने आपको सुरक्षित न समझ सकता था यदि चित्तौड़ और रणथम्भौर जैसे दुर्जेय दुर्ग किसी स्वतन्त्र सत्ता के अधिकार में हों।' तीसरे सम्राट् स्वयं जसवंतसिह से प्रसन्न न था। उसने कई अवसरो पर औरंगजेब से विश्वासघात किया था। उत्तराधिकार संघर्ष में खजवाह के युद्ध के समय वह अपनी राजपूत सेना सहित उसका साथ छोडकर चला गया था। वह शिवाजी से साज़-बाज रखता था। उसने मुअज्जम से विद्रोह कराया था। इन कारणो से औरंगजेब जोधपुर की गद्दी किसी अपने आदमी को सुपुर्द करना चाहता था। उसने यह सोचकर कि राजा का नवजात पुत्र कही मुस्लिम विरोधी न बन जावे, मारवाड का प्रबन्ध मुस्लिम अधिकारियों के सुपुर्द कर दिया और १६७६ ई० में वह स्वयं समस्त प्रबन्ध कराने तथा विरोध को शान्त करने के लिये अजमेर गया। इस प्रकार खानजहां को जोधपुर सुपुर्द कर आलमगीर २५ अप्रैल १६७६ को देहली आया। कुछ दिन पश्चात् उसने जसवन्तसिंह के एक पोते इन्द्रसिंह को जोधपुर का राजा घोषित कर दिया। घोषणा के एक महीने पश्चात् राजा जसवन्तसिंह की रानियाँ देहली पहुँचीं। उन्होंने सम्राट् से नवजात अजीतसिंह को राजा घोषित करने की प्रार्थना की, सम्राट् ने प्रार्थना की अवहेलना की, और कहा कि 'अजीतसिंह का पालन-पोषण राजमहल में हो और जब वह युवा हो जाए, तब उसका अधिकार निश्चित किया जाए; परन्तु यह सोचकर कि सम्राट् अजीतसिंह का पालन-पोषण मुस्लिम वातावरण में करवाकर उसकी मनोवृत्ति मुस्लिम-संस्कृति में ढाल देगा, रानियाँ वेश बदल कर अजीतसिंह के साथ देहली छोड़कर निकल

चली। जब सम्राट को यह पता लगा तो उसने तुरन्त एक सेना उनका पीछा करने के लिये भेजी, परन्तु मुट्ठीभर राठौरो ने जो दुर्गादास के नेतृत्व में रानी तथा राजकुमार को ले जा रहे थे, उन्हें मार भगाया और वह रानियो तथा राजकुमार को जोधपुर लाने में सफल हुये, वहाँ अन्य राजपूत राजाओ ने भी उनका साथ दिया, परन्तु सम्राट् ने उसे असली राजकुमार मानने से इकार कर दिया और उस लडके को जिसे रानियाँ अजीतसिंह के, बदले देहली छोडकर निकल भागी थी वास्तविक राजकुमार घोषित किया। परन्तु कुछ कालोपरान्त जब चित्तौड के राणा ने अपने वश की कन्या का विवाह उसी कर दिया तो लोगों का भ्रम दूर हो गया और जोधपुर आया हुआ राजकुमार ही वास्तविक राजकुमार ठहराया गया। अब औरगजेब को बहुत पश्चाताप हुआ, उसने पहिले अपने उन पदाधिकारियो को दड दिया, जिनको धोखा देकर रानियाँ निकल भागी थी। फिर उसने मारवाड पर आक्रमण करने की आज्ञा दी और आक्रमण का सचालन करने के लिये स्वय अजमेर पहुँचा। राजकुमार अकबर को मुल्तान से बुलाकर उसे आक्रमण का भार सुपुर्द किया। राठौर परास्त हुये और मारवाड मुगल अधिकार में आ गया। उसे जिलो में विभक्त कर प्रत्येक जिले में एक मुगल फौजदार नियुक्त हुआ। अब राठौरो ने मेवाड से सहायता याचना की जो, तुरन्त मिल गई। फलस्वरूप घोर युद्ध प्रारम्भ हो गया, जो १६७६ से १६८१ ई० तक चलता रहा। इसी बीच में कई बार उदयपुर लूट लिया गया तथा चित्तौड जीत कर मुगलो ने अपने अधिकार में कर लिया। राजपूतो ने अर्वली पर्वत में शरण ली और वहाँ से गुरिल्ला युद्ध कर मुगल सेना को भारी क्षति पहुँचाई। सम्राट् का ध्यान राजपूताने से हटाने के लिये मेवाड के राजकुमार भीमसिंह ने गुजरात पर आक्रमण कर उसे नष्ट भ्रष्ट कर दिया। इसी प्रकार दयालसिंह नामक मालमत्री ने मालवा पर आक्रमण कर उसे अस्त व्यस्त कर दिया। राजकुमार अकबर राजपूतो का कुछ न बिगाड सका, अत वह वापिस बुला लिया गया और राजकुमार आजम उसकी जगह सेनापति नियुक्त हुआ। गुजरात के गवर्नर को आज्ञा दी गई कि वह मरहठा राजपूत सम्पर्क विछिन्न कर दे और दक्षिण की ओर से राजपूताने पर आक्रमण करे। इस प्रकार राजपूत चारो ओर से घेर लिये गये। सफलता होने वाली थी कि—

अब राजपूतो ने युक्ति से काम लिया। वे राजकुमार मुअज्जम से मिले और उसे सम्राट् घोषित करने का लालच दिलाया, परन्तु अपनी माता के आग्रह-वश उसने वह स्वीकार न किया। अब वह राजकुमार अकबर की ओर आकृष्ट हुए और उसे अपनी ओर मिला लिया। जनवरी १६८१ ई० में उसने विद्रोह

कर दिया। राजपूतों ने उसे सम्राट् घोषित कर दिया और उसकी छत्र-छाया में सम्राट् से युद्ध करने अजमेर की ओर चल दिये औरंगजेब ने अजमेर की स्थापित दृढ़ करली। उसके अपनी बुद्धिमत्ता द्वारा अकबर तथा राजपूतों में मत भेद उत्पन्न कर दिया। उसने राठौर कैम्प के निकट ऐसे जाली पत्र डलवा दिये कि "बेटा अकबर तुमने राजपूतों को खूब मूर्ख बनाया, कि उन्हें अपनी ओर मिलाने का विश्वास दिला दिया। अब हम उनका अन्त कर सकेंगे।" इनसे प्रभावित हो, राजपूत अकबर का साथ छोड़कर चले गये। यद्यपि अकबर ने उन्हें बहुत आश्वासन दिया; तो भी उन्हें विश्वास न हुआ। उसके अन्य साथी भी सम्राट् ने अपनी ओर तोड़ लिये। अब अकबर अकेला रह गया। वह बिना युद्ध किये ही दक्षिण की ओर भाग गया और सम्भाजी के यहाँ शरण ली। वहाँ से वह फारिस चला गया, जहाँ १७०४ ई० में उसका देहान्त होगया।

राजपूत :—मुगल-संघर्ष १६८१ ई० तक चलता रहा, परन्तु अब दोनो दल युद्ध से तंग आगये थे इसके अतिरिक्त दक्षिण की परिस्थिति सम्राट् का ध्यान आकृष्ट कर रही थी, परिणाम यह हुआ कि उदयपुर के स्थान पर संधि हो गई। जिसके अनुसार जयसिंह को राणा स्वीकार कर लिया गया और ५००० का मनसबदार बना दिया गया। राणा ने इसके बदले तीन परगने मुगल सम्राट् को दे दिये। राणा जजिया से मुक्त रक्खा गया। इस प्रकार राजपूत पूर्णतया परास्त न हुये और इतने दिन के संघर्ष का कोई महत्वपूर्ण परिणाम न हुआ।

औरंगजेब व मरहठे

महाराष्ट्र व मरहठे :—मरहठा जाति की जन्म-भूमि महाराष्ट्र-प्रदेश नर्वदा नदी के दक्षिण में विन्ध्याचल व सतपुडा के पहाडो के समानान्तर फैली हुई पर्वत-मालाओं का प्रदेश है। पश्चिमी घाट इसको दो भागों में विभक्त करता है। अपनी प्राकृतिक रचना के कारण यह प्रदेश प्राय मुस्लिम आक्रमणों से मुक्त रहा। पर्वत-शिखाओं पर बने हुये सुदृढ़ दुर्ग इसे प्राय सुरक्षा प्रदान करते रहे। यहाँ के टेढ़े-तिरछे तथा संकुचित पर्वतीय मार्गों ने उन्हें गुरिल्ला-युद्ध में सिद्ध-हस्त कर दिया, जिससे वह अपने शत्रुओं पर छापा मार कहीं भी जा छिप सकते थे। प्रकृति ने उन्हें बलिष्ठ तथा सहनशील बनाया था। व्यवसाय से कृषक होने के कारण वह कोई कार्य करने से सकोच न करते थे। अपने छोटे-छोटे टट्टुओं पर सवार, भुने चने अथवा मक्का के दानों पर निर्वाह कर वे शत्रु से कई दिन निरन्तर युद्ध कर सकते थे। बीजापुर व गोलकुण्डा नरेशों की सेना में प्रवेश कर उन्होने युद्ध-कला में प्रवीणता प्राप्त कर

सी। भक्ति-आन्दोलन जिसको भारत का धार्मिकसुधार-आन्दोलन कहा जा सकता है, महाराष्ट्र में प्रवेश कर चुका था और उसने मरहठा जाति का वर्ण-भेद मिटाकर उसे राष्ट्रीयता की शृङ्खला में बाँध दिया था। सत रामदास, तुकाराम, एकनाथ जैसे धार्मिक नेताओं ने हिन्दुओं की विभाजनशक्ति के विरुद्ध मोरचा खोल दिया। उन्होंने मरहठा जाति को एकता के सूत्र में सकलित कर, सुदृढ बनाया और वे एक प्रगतिशील जाति के रूप में ससार में प्रविष्ट हुये।

भोंसला वश :—सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में, जब अहमदनगर का पतन हुआ और वह मुगल साम्राज्य में विलीन हुआ तो, बीजापुर तथा गोलकुण्डा को भी अपनी स्वतत्रता की रक्षा की चिंता हुई। ऐसी परिस्थिति में उन्होंने सम्पूर्ण साधन जुटा आत्म-रक्षा की सोची। अत वे मरहठों को सहायता के लिये, जो गुरिल्ला-युद्ध में प्रवीण हो चुके थे, लालायित रहने लगे। फल-स्वरूप इन रियासतों के शासन तथा सेना में मरहठों की वृद्धि होने लगी। राजनैतिक क्रांतियां तथा षड्यन्त्रों ने, जो इन रियासतों में प्राय होते रहते थे, मरहठों को अपने जातीय उत्थान का अच्छा अवसर प्रदान किया। उन्होंने कभी एक वर्ग तो कभी दूसरे वर्ग की सहायता कर अपना महत्त्व बढा लिया। जातीय विकास के इन कर्णधारों में शाहजी भोंसला नामक शिवाजी का पिता भी एक था। १६३२ ई० में उसने बीजापुर के सुल्तान के यहाँ नौकरी प्रारम्भ की और शीघ्र ही एक महत्त्वपूर्ण पद पर पहुँच गया। अपनी सेवाओं से पुरस्कार-स्वरूप उसे मैसूर में एक विस्तृत जागीर मिली।

शिवाजी :—शिवाजी का जन्म १० अप्रैल सन् १६२७ ई० को शिवनेर के प्रसिद्ध दुर्ग में हुआ। पिता की ओर उसकी वशावली उदयपुर के प्रसिद्ध सीसोदियावश से मिलती थी और माता की ओर वह देवगिरी के यादव वश से सम्बन्धित था। इस प्रकार शिवाजी की धमनियों में भारतवर्ष के दो प्रसिद्ध वशों का रक्त सचार कर रहा था। शिवाजी के पिता शाहजी भोंसला बीजापुर के सुल्तान के यहाँ सेनानायक थे। इसलिये वे अधिकतर अपनी जागीर से अनुपस्थित रहते थे। अत शिवाजी के पालन-पोषण तथा शिक्षण का भार जीजाबाई पर पडा। वह एक धनी जमींदार की पुत्री थी। धार्मिक-वृत्ति की स्त्री होने के कारण गीता, रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थ उसे अत्यन्त रुचिकर थे। वह शिवाजी को प्राय अपनी गोद में बिठाकर रामायण तथा महाभारत के वीर नायकों की कहानियाँ सुनाया करती थी। यह कहानियाँ शिवाजी के हृदय-पटल पर अङ्कित हो गई। भीम, अर्जुन, राम, लक्ष्मण के कृत्यों को सुनकर उसने उन जैसा बनने का व्रत ले लिया।

कुछ बडा होनें पर शाहजी ने शिवाजी की शिक्षा का भार दादाजी कोणदेव के ऊपर डाला। दादाजी अत्यन्त योग्य तथा अनुभवी ब्राह्मण थे। शाहजी की जागीर का प्रबन्ध भी इन्ही के सुपुर्द था। शिवाजी के व्यक्तित्व विकास तथा चरित्र-निर्माण में दादाजी का बहुत बडा भाग है। उन्होने उसे घुडसवारी, शस्त्र विद्या तथा आखेट खेलना सिखाया। अपने जीवन की घटनाओ, अपने अनुभवो तथा समय की आवश्यकताओ का रोचक वर्णन कर उन्होने शिवाजी को एक अद्भुत जीवन के लिए कटिबद्ध कर दिया। शिवाजी को महात्माओ, साधुओ तथा पण्डितो की सङ्गति का बडा प्रेम था। वह महाराष्ट्र के प्रसिद्ध सन्त रामदास के व्याख्यान बडे ध्यान से सुनता और उन पर मनन करता था। उसने रामदास को अपना गुरु बना लिया। उसने शिवाजी को दीक्षा दी, कि "शिवाजी ! बडे होकर समस्त मरहठा जाति को एकता के सूत्र में बांध, महाराष्ट्र-धर्म का प्रचार करना।" महाराष्ट्र धर्म का अर्थ एक सशोधित हिन्दू धर्म से था, जो जातीय तथा साम्प्रदायिक भेद-भाव से ऊपर उठ, मानवी एकता का पाठ देता था। गुरु ने अपने ओजस्वी भाषणो द्वारा यह विश्वास दिला दिया था कि उसने भारत में पुन हिन्दू-धर्म स्थापित करने के लिए जन्म लिया है। वह कहा करता था कि "माता और मातृ-भूमि स्वर्ग से भी प्रिय है। मान-मर्यादा स्वतन्त्रता तथा सस्कृति की रक्षार्थ जीवन की बलि देना ही श्रेयस्कर है। इनसे रहित जीवन मृत्यु से भी निम्न है।" इस प्रकार के उपदेश कैसे खाली जा सकते थे। उन्होंने शिवाजी का जीवन एक निश्चित साँचे में ढाल दिया और उसने अपने धर्म, जाति तथा देश की वेदी पर जीवन उत्सर्ग करने की ठान ली।

प्रारम्भिक विजय :—शिवाजी ने अपने जीवन के प्रारम्भ में ही महाराष्ट्र प्रदेश से परिचय प्राप्त कर लिया। १९ वर्ष की अल्पायु में उसने अपना सार्वजनिक जीवन आरम्भ किया। उसने महाराष्ट्र के किसानो की सेना तैयार की और अपने निकटवर्ती प्रदेश में चौथ वसूल करने लगा। चौथ के विषय में श्री यादुनाथ सरकार लिखते है कि 'यह लगान का चौथाई भाग होना था, इसके देने से कोई गाँव या कस्बा मरहठों की लूट-मार से बच जाता था।' सयोगवश इस समय बीजापुर का सुल्तान रोग शैया पर पडा था, और उसके राज्य में अशान्ति तथा अराजकता फैली हुई थी। इस अवसर का लाभ उठा कर शिवाजी ने सन् १६४६ ई० में तोरण तथा राजगढ के दुर्ग जीत लिए। इस समय दादा कोणदेव की अकस्मात् मृत्यु हो गई इससे शिवाजी बिल्कुल स्वतन्त्र हो गया और अपने पिता की जागीर पर पूर्ण अधिकार होने से उसकी शक्ति भी बढ गई, किले पर किले शिवाजी के अधिकार में आने लगे। उसने अपने चाचा शम्भूजी से सूपा का गढ ले लिया। तत्पश्चात् उसने चाकन,

सिंहगढ, पुरन्दर और कोंडाना के दुर्गों पर अधिकार कर लिया। यह देखकर बीजापुर का सुल्तान बहुत घबराया। वह शिवाजी के विरुद्ध सेना भेजना ही चाहता था कि उसके मन्त्रियो ने उसे यह कहकर समझाया कि शिवाजी ने यह विजय बीजापुर को क्षति पहुँचाने के विचार से नही वरन् अपनी जागीर की दक्षिणी सीमा को दृढ करने के लिए की है। शिवाजी ने अपनी कार्यवाही जारी रखी। उसने कोलाबा पर आक्रमण कर स्थानीय सरदारो को अपने साथ मिला लिया। परन्तु जब उसने अपनी सेना भेज कल्याणी दुर्ग पर अधिकार किया तब बीजापुर का सुल्तान सचेत हो उठा। उसने शिवाजी के पिता शाहजी को बन्दी बना लिया और उसकी जागीर जब्त करली। अपने पिता को मुक्त कराने के लिये शिवाजी ने मुगल राजकुमार मुराद के द्वारा शाहजहाँ से मैत्री-वार्ता आरम्भ करदी और वचन दिया कि यदि उसकी सहायता से शाहजी मुक्त हो गया तो वह स्वय दक्षिण विजय में सहायता करेगा। शाहजहाँ ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और उसे पचहजारी मनसबदार बना दिया। मुगल हस्तक्षेप के भय से बीजापुर सुल्तान ने शाहजी को मुक्त कर दिया। यह भी कहा जाता है कि शाहजी की मुक्ति मुगल-भय से नहीं वरन् बीजापुर के दो प्रभावशाली पदाधिकारियो के प्रयत्न स्वरूप हुई। उन्होंने बीजापुर के सुल्तान से आग्रह किया कि वह शाहजी को छोड दे। सम्भव है कि दोनो बातें शाहजी की मुक्ति मे सहायक हुई हो। कुछ भी हो, यह सत्य है कि शाहजी की मुक्ति इस शर्त पर की गई कि वह बीजापुर में रहे और अपने पुत्र को वश में रखे क्योकि शाहजी ने शिवाजी को यह आदेश दिया कि वह शान्त रहे जिसके फलस्वरूप वह १६५५ ई० तक पूरे छ वर्ष शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत करता रहा। इस काल में उसने अधिकृत प्रदेश को सुदृढ़ तथा समुचित शासन-व्यवस्था प्रदान करने का प्रयत्न किया। परन्तु ज्योही शाहजी मुक्त हो अपनी जागीर पर आया, शिवाजी ने अपना पुराना ढग पकडा और लूट मार आरम्भ कर दी।

जावली विजय (१६५५ ई०):—जावली दक्षिण कोकण प्रदेश में बीजापुर का एक सुदृढ दुर्ग था। वह उस समय चन्द्रराव के अधिकार में था जो बीजापुर सुल्तान की छाया में उस समस्त प्रदेश पर शासन करता था। शीवाजी ने उसके पास एक के बाद एक पत्र भेजा। जिसमें उसने यह प्रार्थना की कि वह उससे मिले तथा हिन्दू सत्ता स्थापित करने में उसे सहायता दे। जब राजा ने बिल्कुल मनाकर दिया तो उसने अपने दो आदमी शादी के प्रस्ताव के बहाने जावली भेज राजा का वध करा दिया। शिवाजी इस बीच में अपनी सेना ले जावली के निकट पहुँच गया था। जब उसे राजा के वध की सूचना मिली तो उसने तुरन्त दुर्ग पर आक्रमण कर उसे जीत लिया।

इस विजय के कुछ दिन पश्चात् १६५६ ई० में बीजापुर के सुल्तान अली आदिलशाह का देहान्त हो गया, जिससे लाभ उठा कर औरंगजेब ने बीजापुर पर आक्रमण कर दिया। अवसर से लाभ उठा शिवाजी ने औरंगजेब से सन्धि कर ली और बीजापुर के विरुद्ध उसका साथ देने लगा, परन्तु सन्धि शीघ्र ही टूट गई और शिवाजी ने अहमदनगर इत्यादि मुगल नगरो पर आक्रमण कर उन्हे खूब लूटा। औरंगजेब शिवाजी से इसका बदला लेता, परन्तु शाहजहाँ की बीमारी से उत्तराधिकार युद्ध प्रारम्भ हो गया, जिसके कारण उसे दक्षिण से लौटना पडा। इस युद्ध के समय शिवाजी ने मुगलो के कई दुर्ग जीत लिए और बीजापुर सेना से निकाले हुये बहुत से सिपाही अपनी सेना में भर्ती कर अपनी सेना को सुदृढ बना लिया।

अफजलखाँ—बीजापुर का सुल्तान शिवाजी की इस बढती हुई शक्ति को कैसे सहन कर सकता था। उसने शाहजी को लिखा कि वह शिवाजी को रोके। परन्तु जब उसने कह कर भेजा कि शिवाजी उसके अधिकार से बाहर है। तो बीजापुर नरेश न अपने प्रसिद्ध सेनापति अफजलखाँ को शिवाजी के विरुद्ध भेजा, कुछ दिनो तक दोनो सेनाओ में युद्ध चलता रहा परन्तु युद्ध की विफलता देख अफजलखा ने शिवाजी को जीवित पकडने के लिए योजना बनाई। उसने शिवाजी को प्रस्ताव भेजा कि सघर्ष करना व्यर्थ है, अत निरन्तर युद्ध को समाप्त करने के लिए वह उससे भेंट करे, जिससे बीजापुर की सीमा तथा अन्य प्रश्न तय हो जावें। विराम-सधि होने के पश्चात् दोनो सेनापतियों में जावली दुर्ग के सम्मुख एक टीले पर निःशस्त्र मिलने का निश्चय हुआ। शिवाजी को अफजलखाँ का विश्वास न था अत. उसने सावधानी के लिए एक कवच धारण कर लिया था और अपनी दाहिनी बाँह में बिछुआ नामक एक अस्त्र छिपा लिया था और अपने साथियो को आज्ञा दी कि सकट के समय वह बिगुल बजाएगा जिसको सुन कर बिना विचारे वह अफजलखाँ की फौज पर, जो पास में ही थी, टूट पड़ें। भेंट के समय जब अफजलखाँ शिवाजी से गले मिला, तो उसने शिवाजी की गर्दन दबोच ली और एक खजर से जो खान अपने पास छिपाये था शिवाजी का वध करना चाहा। परन्तु शिवाजी ने, जो पहिले से ही इस अदृश्य सकट के लिए तैयार होकर आया था, तुरन्त बिछुआ निकाल खान के बगल में भोक दिया और बिगुल बजा दिया। तुरन्त मरहठे अफजलखाँ की सेना पर टूट पडे और उनमें से अधिकतर को मौत के घाट उतार दिया।

इतिहासकार इस बात में एक मत नही कि पहिले अफजलखाँ ने वार किया अथवा शिवाजी ने। ग्राट-डफ तथा अन्य अग्रेज इतिहासकारो ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि शिवाजी ने पहला वार किया परन्तु यदुनाथ सरकार ने भली भाँति

सिद्ध कर दिखाया है कि पहले अफजलखाँ ने वार किया। राजगढ़ दुर्ग में कई लेख इस बात की पुष्टि करते हैं घटना के पश्चात् शिवाजी ने एक पत्र अपने गुरु रामदास को लिखा, इसमें उसने कहा है, कि जिस समय अफजलखाँ मेरी गर्दन दबोच रहा था उस समय मैंने आपके नाम का स्मरण किया। ऐसा करते ही मेरे शरीर में अपूर्व शक्ति का सचार हुआ और मैंने अफजलखाँ का वध कर दिया। इस प्रकार पूर्णतया सिद्ध हो जाता है कि पहले अफजलखाँ ने दुराचार अथवा अशिष्ट व्यवहार आरम्भ किया, जबकि शिवाजी ने केवल आत्म-रक्षा स्वरूप स्थान पर वार किया।

अफजलखाँ की मृत्यु तथा बीजापुर सेना की पराजय से शिवाजी को बहुत प्रोत्साहन मिला उसने तुरन्त बीजापुर प्रान्त को लूटने तथा नष्ट-भ्रष्ट करने की आज्ञा दी। मरहठा सेना ने पनहाला तथा अन्य कई दुर्गों पर अधिकार कर लिया और बीजापुर पर जा धमकी। यह देख बीजापुर के सुल्तान अली आदिलशाह को बड़ी चिन्ता हुई और उसने शिवाजी की शक्ति क्षीण करने का दृढ सकल्प किया।

१६६० ई० में उसने अपने सेनापति को पनहाला पर आक्रमण करने भेजा। उसने तीन ओर से आक्रमण कर ४ महीने तक किले का घेरा डाले रखा। अब शिवाजी ने नीतिपटुता से काम लिया। उसने बीजापुर सेनापति को भेंट सहित सधि प्रस्ताव भेजा। जिससे प्रसन्न हो वह उतावला हो गया और उसने रक्षा-पक्ति ढीली कर दी। शिवाजी, जिसने उक्त प्रस्ताव इसी आशय से भेजा था, यह देख रात्रि में पनहाला छोड विशालगढ जा पहुँचा। अलीआदिलशाह को अब यह पता लगा तो उसे शाही सेनापति जौहर पर बहुत क्रोध आया और उसे दण्ड देने का विचार किया, परन्तु शिवाजी से निपटने के लिए वह स्वय एक सेना ले शिवाजी के विरुद्ध गया और पनहाला इत्यादि कई दुर्ग जीत लिए, परन्तु इसी बीच एक तो वर्षा आरम्भ हो गई। दूसरे अपमान से भयभीत जौहर ने कर्नाटक में विद्रोह कर दिया। अत शिवाजी को अर्ध परास्त छोड उसे वापिस आना पडा। उसने स्थिति का पूर्ण अध्ययन कर शिवाजी से सधि करना ही श्रेयस्कर समझा। शिवाजी के पिता शाहजी को शर्तें तय करने के लिए भेजा। जिसके अनुसार शिवाजी एक स्वतन्त्र राजा मान लिया गया और उसकी राज्य-सीमा निश्चित करदी गई। शिवाजी ने इसके बदले वचन दिया कि शाहजी के जीवन पर्यन्त बीजापुर से झगड़ा न करेगा। शिवाजी ने रायगढ को राजधानी बनाया और स्वतन्त्र राज्य करने लगा।

शिवाजी और मुगल (१६६२ ई०):—अफजलखाँ के वध से शिवाजी के साहस तथा उत्साह में बहुत वृद्धि हो गई। अब वह मुगल साम्राज्य पर छापा मारने लगा। बीजापुर से सधि होने के कारण इस ओर विस्तार का द्वार बिल्कुल

बंद हो गया था। अत. शिवाजी ने मुगल-साम्राज्य पर दृष्टि डाली। यह देख औरंगजेब ने अपने मामा शाइस्ताखाँ को दक्षिण का सूबेदार बनाया और उसे शिवाजी को परास्त करने का आदेश दिया। वह एक विशाल सेना ले राजा जसवन्त-सिंह सहित दक्षिण-पश्चिम की ओर बढ़ा और कई दुर्गों पर अधिकार कर लिया। तत्पश्चात् बिना किसी संघर्ष के, उसने पूना पर विजय प्राप्त कर ली और रमजान के लिये उसी घर में ठहर गया, जिसमें शिवाजी का बचपन व्यतीत हुआ था। शिवाजी इसके कोने-कोने से परिचित था। उसने शाइस्ताखाँ को मजा चखाने की सोची। अपने परिचय का लाभ उठा एक शाम को ४०० सिपाहियों सहित बारात के रूप में उसने पूना में प्रवेश किया। शाइस्ताखाँ इस समय विश्राम कर रहा था, उसकी सेना अधिक सचेत न थी। यह देख शिवाजी अपने सिपाहियों सहित शाइस्ताखाँ के घर में प्रविष्ट हुआ और मार-काट मचानी आरम्भ कर दी। शाइस्ता-खाँ का पुत्र अब्दुलफतह काम आया और जैसे ही शाइस्ताखाँ प्राण बचाकर भागने लगा, शिवाजी ने उसपर ही वार किया, जिसमें उसकी अंगुली कट गई। यदि एक बुद्धिमती सेविका उस समय दीपक न बुझा देती तो शाइस्ताखाँ को प्राणों से हाथ धोने पड़ते। अँधेरे में भी मरहठों ने अनेक मुसलमान सैनिकों को मार गिराया। भीषण मार-काट के पश्चात् मरहठे बात की बात में आँखों से ओझल हो गये। जब औरंगजेब ने इस दुर्घटना का हाल सुना तो वह क्रोधान्ध हो उठा और उसने शाइस्ताखाँ को दक्षिण की सूबेदारी से पदच्युत कर बंगाल भेज दिया।

सूरत तथा अहमदनगर पर आक्रमण

शाइस्ताखाँ की इस पराजय से शिवाजी का साहस और भी बढ़ गया। सन् १६६४ ई० में उसने सूरत पर आक्रमण किया। मुगल सूबेदार भयभीत हो किले में जा छिपा। सूरत उस समय अत्यन्त धनी नगर था। शिवाजी ने इसे ५ दिन तक मनमाना लूटा और अहमदनगर को लूट असंख्य द्रव्य ले रायगढ़ वापिस हुआ।

शाहजी की मृत्यु (१६६४ ई०):—१६६४ ई० में शिवाजी के पिता शाहजी भौंसला का देहान्त हो गया। उसकी मृत्यु के पश्चात् शिवाजी ने राजा की, उपाधि धारण की, जो उसके पिता को अहमदनगर के सुल्तान से प्राप्त थी। यद्यपि उसका राज्याभिषेक दस वर्ष पश्चात् हुआ। अब उसने अपने राज्य का स्वतन्त्र सिक्का भी प्रचलित कर दिया।

मुअज्जम तथा राजा जसवन्तसिंह:—औरंगजेब को शिवाजी की निरन्तर बढ़ती हुई शक्ति से बड़ी चिन्ता रहती थी, अत. १६६४ ई० में उसने राजकुमार मुअज्जम को दक्षिण भेजा। राजा जसवन्तसिंह वहाँ पहले से उपस्थित था, दोनों ने

शिवाजी को परास्त करने का कई बार प्रयत्न किया, परन्तु असफल रहे और उनकी जगह १६६५ ई० में मिर्जा राजा जयसिंह तथा दिलेरखाँ को योग्य तथा अनुभवी सेना सहित दक्षिण भेजा।

राजा जयसिंह :—राजा जयसिंह तथा दिलेरखाँ ने बड़ी वीरता तथा धैर्य से काम लिया। उन्होंने आस-पास के सरदारों को मिलाकर मरहठों के विरुद्ध एक संघ बनाया और शिवाजी को परास्त करने का व्रत ले लिया। एक के पश्चात् दूसरे दुर्ग को विजय कर अन्त में उन्होंने सिंहगढ और पुरन्दर का घेरा डाला। राजा जयसिंह ने घेरे का संचालन इस योग्यता से किया कि शिवाजी निराश हो गया और उसने उससे पत्र-व्यवहार आरम्भ कर दिया तथा राजा से रक्षा तथा विशेष कृपा का वचन प्राप्त कर वह स्वयं राजा जयसिंह से मिलने पुरन्दर गया। फलस्वरूप दोनों में संधि हो गई। यह इतिहास में पुरन्दर की संधि के नाम से प्रसिद्ध है।

पुरन्दर की सन्धि :—संधि के अनुसार तय हुआ कि शिवाजी अपने २२ दुर्ग सम्राट् को देगा और केवल १२ अपने अधिकार में रक्खेगा। यदि शिवाजी को कोंकण प्रदेश तथा बीजापुर का बालाघाट प्रदेश दे दिया जावे तो वह औरंगजेब को १३ किश्तों में ४० लाख रुपया देगा। शिवाजी के ज्येष्ठ पुत्र को पचहजारी मनसब देने का वचन दिया गया—शिवाजी ने वचन दिया कि वह बीजापुर के विरुद्ध औरंगजेब की सहायता करेगा। संधि की धारायें तै करने के पश्चात् राजा जयसिंह ने उन्हें सम्राट् से स्वीकार करवा लिया। इस प्रकार राजा जयसिंह ने तीन महीने में शिवाजी को संधि स्वीकार करने के लिये बाध्य कर दिया।

संधि के पश्चात् राजा जयसिंह ने बीजापुर पर आक्रमण किया। शिवाजी ने इस संघर्ष में विशेष भाग लिया। उसने कई दुर्ग जीते, उसकी सफलता से प्रसन्न होकर औरंगजेब ने उसे एक रत्नजटित तलवार भेंट स्वरूप भेजी। अब उसने पनहाला पर आक्रमण किया, परन्तु सफल न हो सका, इसी समय उसे आगरे से एक निमंत्रण *प्राप्त हुआ जिसमें औरंगजेब ने उससे आगरे में भेंट करने की प्रार्थना की थी।* शिवाजी पहले तो आगरा जाने को उद्यत न था, परन्तु अन्त में राजा के समझाने बुझाने से वह वहां जाने को तैयार हो गया। शिवाजी क्यों राजी हो गया ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए महाराष्ट्र के प्रसिद्ध लेखक सर देसाई ने लिखा है कि 'शिवाजी चाहता था कि वह आगरा जाकर मुगलों की शक्ति का निरीक्षण करले जिससे भविष्य में उनसे युद्ध करने के लिये उनकी शक्ति का ज्ञान हो जावे या यह सम्भव है कि उसने राजा जयसिंह की बातों से यह अन्दाज लगाया हो कि उसे दक्षिण अथवा बीजापुर, गोलकुण्डा की सूबेदारी मिल जायेगी।' महाराष्ट्र का प्रबन्ध जीजाबाई को सुपुर्द

कर शिवाजी अपने ज्येष्ठ पुत्र शम्भाजी तथा ७० विश्वासपात्र सरदारों के साथ सन् १६६६ ई० में आगरा पहुँचा। भेंट के पश्चात् औरंगजेब ने शिवाजी को पचहजारी मनसबदार घोषित कर उसे उनकी श्रेणी में खड़ा कर दिया। शिवाजी को ऐसी आशा न थी, वह समझता था कि उससे उच्च से उच्च मनसबदार से भी अच्छा बर्ताव किया जावेगा। अतः जब उसे पचहजारी मनसबदारों की श्रेणी में, जो तृतीय थी, खड़ा होने की आज्ञा हुई तो वह लज्जित हुआ। अपने इस अपमान को सहने के बदले वह वहीं आत्महत्या करने को तैयार हो गया। उसके इस व्यवहार से असन्तुष्ट हो औरंगजेब ने उसे पुत्र सहित अगले दिन बंदी बना लिया। तत्पश्चात् यद्यपि शिवाजी ने कई बार औरंगजेब से अपनी मुक्ति की प्रार्थना की परन्तु वह सब अस्वीकृत हुई।

कारागार से निकल भागना: अपनी सब प्रार्थनाओं को निष्फल देख शिवाजी ने युक्ति से निकल भागने की सोची, वह रोगी का बहाना करके पड़ा रहने लगा। कई वैद्य तथा हकीम उसका इलाज करने भेजे गये, परन्तु शिवाजी ने किसी से भी स्वास्थ्य लाभ होना प्रकट न किया। अब उसने अपने अच्छा होने के लिये सम्राट् से दान पुण्य करने की आज्ञा प्राप्त की, फलस्वरूप वह मिठाई के टोकरे दीन-दुखियों को बँटवाने लगा। इस क्रिया को होते जब कई दिन हो गये तो वह और उसका पुत्र स्वयं टोकरों में बैठकर कारागार से निकल भागे। आगरा से छः मील की दूरी पर उनके लिये आयोजित घोड़े तैयार मिले उन पर सवार हो वह साधुओं का वेष धारण कर मथुरा पहुँचे और अपने पुत्र को एक सुरक्षित स्थान मथुरा में छोड़ वह बंगाल, उड़ीसा, गोंडवाना होता हुआ नौ महीने के अनन्तर महाराष्ट्र पहुँचा। कुछ काल के उपरान्त उसने शम्भाजी को भी मथुरा से बुला लिया। इस प्रकार शिवाजी बन्दी-गृह से मुक्त हो पुनः अपने साम्राज्य में जा पहुँचा। औरंगजेब को शिवाजी की इस सफल चेष्टा पर बहुत क्रोध आया, परन्तु अब क्या हो सकता था? उसने राजा जयसिंह के पुत्र रामसिंह को जिसका सम्भवतः शिवाजी के निकल भागने में हाथ था, पदच्युत कर दिया।

राजा जयसिंह का वापिस बुलाया जाना:—शिवाजी से संधि करने के पश्चात् मिर्जा राजा जयसिंह, जैसा कि पहिले उल्लेख किया गया है बीजापुर विजय की ओर आकृष्ट हुये। परन्तु बीजापुर की सेना ने बीजापुर की रक्षा इतनी सुयोग्यता से की कि दिलेरखाँ, दाऊदखाँ, राजा रामसिंह सीसोदिया जैसे सेनापतियों के होते हुये भी शाही सेना कुछ प्रगति न कर सकी। खाद्य-सामग्री अलग समाप्त हो चली थी। अतः सेना को दुर्भिक्ष तथा महामारी से बचाने के लिये ५ जनवरी सन् १६६६ ई० को

राजा जयसिंह ने अपनी सेना को पीछे हटने की आज्ञा दी। परन्तु बीजापुरी सेना ने इसका पीछा किया और उसे भारी जन तथा धन क्षति पहुँचाई। राजा की इस असफलता को देख उसे वापिस बुला लिया गया और राजकुमार मुअज्जम को राजा जसवन्तसिंह के साथ दक्षिण का सूबेदार बनाकर भेजा गया।

शिवाजी का राजपद प्राप्त करना।—राजा जयसिंह का परिवर्तन और उसकी जगह राजा जसवन्तसिंह का आना अधिक लाभप्रद न हुआ। जसवन्तसिंह मरहठों से सहानुभूति रखता था, अतः वह दृढता से उनके विरुद्ध युद्ध न कर सकता था और दिलेरखाँ को राजकुमार मुअज्जम पसन्द न करता था। उसने दिलेरखाँ को बीदर भेज दिया। इसी बीच फारिस की ओर से पंजाब पर आक्रमण होने की सम्भावना पैदा हो गई। सीमाप्रान्त में युसुफजई वर्ग ने विद्रोह कर दिया, अतः सम्राट् भी दक्षिण की ओर अधिक ध्यान न दे सका। इधर शिवाजी १६६८-६६ ई० में अपने शासन प्रबन्ध में व्यस्त रहा। इसी बीच राजा जसवन्तसिंह ने सम्राट् तथा शिवाजी में सन्धि करा दी, जिसके अनुसार शिवाजी महाराष्ट्र का स्वतन्त्र राजा स्वीकार कर लिया गया और उसे राजा की पदवी दे दी गई, उसे बरार में एक जागीर भी प्रदान की गई, तथा उसके पुत्र शम्भा जी का मनसब स्थायी कर दिया गया। पुरन्दर व सिंहगढ के अतिरिक्त उसके सब दुर्ग भी वापिस करने का वचन दिया गया। यह सन्धि मार्च १६६८ ई० में हुई और १६७० ई० तक क्रियान्वित रही।

बीजापुर से सन्धि:—शिवाजी की सन्धि से कुछ ही दिन पश्चात् सम्राट् ने सुल्तान बीजापुर से भी सन्धि कर ली, सुल्तान ने शोलापुर का जिला तथा कुछ और प्रदेश औरंगजेब को देने का वचन दिया। शिवाजी ने भी इस सन्धि के अवसर पर मरहठा चौथ का अधिकार प्रस्तुत किया। यह यद्यपि मान्य न था, फिर भी रियासत में शान्ति स्थापित रखने के लिये बीजापुर ने साढ़े-तीन लाख रुपया तथा गोलकुण्डा ने पांच लाख रुपया शिवाजी को चौथ-स्वरूप देने का वचन दिया।

सूरत पर आक्रमण:—राजा जसवन्तसिंह द्वारा की गई सन्धि १६७० ई० तक चलती रही। तदनन्तर शिवाजी अपने गृह-प्रबन्ध से मुक्त हो गया तो उसने फिर विजय पर विजय प्राप्त करनी आरम्भ कर दी। उसने सिंहगढ व पुरन्दर सहित अपने सब दुर्ग मुगलों से वापिस ले लिये। अनुशासनहीन, विलासप्रिय तथा द्वेष से भरपूर मुगल सेना उसका कुछ न बिगाड सकी और शिवाजी ने अपने निकटवर्ती मुगल प्रान्तों को भी चौथ देने के लिये बाध्य किया। १६७० ई० में उसने दूसरी बार सूरत पर आक्रमण किया और वहां से असंख्य द्रव्य लूट ले गया।

राज्याभिषेकः—१६७४ ई० तक समस्त महाराष्ट्र शिवाजी की छत्रछाया में आ गया। अब शिवाजी का भाग्यरूपी सूर्य मध्यान्ह पर था। चारों ओर से विजय पर विजय की सूचना आ रही थी। अतः इस वर्ष उसने अपने आपको महाराष्ट्र का स्वतन्त्र राजा घोषित कर, वैदिक रीति के अनुसार राज्याभिषेक कराया, जिसकी चहल-पहल से सम्पूर्ण महाराष्ट्र गूंज उठा। इस अपूर्व समारोह के बारह ही दिन पश्चात् जीजाबाई का देहान्त हो गया। जैसा कि वह यह दिन देखने के लिये ही जीवित थी।

शिवाजी की अन्य विजय—(१६७६—१६८० ई०) यह देखकर कि औरंगजेब सीमान्त समस्या में उलझा हुआ है, शिवाजी ने दक्षिण विजय में और प्रगति की। १६७६ से १६८० ई० तक उसनें जिंजी, अरनी, वैलौर आदि कई महत्वपूर्ण स्थानों पर अधिकार कर लिया। उसने मैसूर प्रान्त का बहुत सा भाग अपने अधिकार में ले लिया। इस प्रकार अपने साम्राज्य को बढाने के पश्चात् शिवाजी औरंगजेब से युद्ध करने की पूर्ण तैयारी करने लगा, परन्तु १६८० ई० में ५३ वर्ष की आयु में उसका देहान्त हो गया, अत उसकी योजनायें क्रियान्वित न हो सकी।

राज्य विस्तारः—शिवाजी का साम्राज्य समुद्र के किनारे-किनारे सूरत के दक्षिण से गोआ के दक्षिण तक फैला हुआ था, परन्तु इसकी चौडाई अधिक न थी। बगलाना, नासिक और पूना के प्रदेश इसमें सम्मिलित थे। इसके अतिरिक्त उसके राज्य में दक्षिण-पूर्व की ओर बहुत दूर हटकर बिलारी, कोलार, बंगलौर, तजौर, जिंजी, अरनी और वैलौर आदि प्रदेश भी सम्मिलित थे।

शिवाजी का राज्य प्रबन्धः—शिवाजी एक योग्य शासक तथा कुशल प्रबन्धक था। सेना और माल दोनों विभागों में उसने अपनी अपूर्व प्रतिभा का परिचय दिया। बेपढा होते हुए भी उसने अपने साम्राज्य को व्यवस्थित करने में अद्भुत बुद्धिमत्ता प्रदर्शित की। उसने आठ सदस्यों अथवा मन्त्रियों की एक सभा बनाई जिसका नाम अष्ट-प्रधान रक्खा। प्रधान मन्त्री पेशवा कहलाता था। वह अष्ट प्रधान का नेता अथवा मुख्य सदस्य था, उसके अतिरिक्त माल अमात्य, गृह तथा बाह्य मन्त्री अर्थात सचिव, युद्ध मन्त्री अर्थात् सुमन्त न्यायाधीश तथा दान अध्यक्ष अष्ट-प्रधान के सदस्य थे। इस प्रकार राजा में समस्त सत्ता केन्द्रित होने के बाद वह उपरोक्त आठ विभागों में विभक्त थी। प्रत्येक विभाग का अध्यक्ष शिवाजी की सलाह से अपने विभाग का संचालन करता था। साम्राज्य का उचित प्रबन्ध करने के हेतु उसने अपने साम्राज्य को सूबों में तथा जिलों में विभक्त किया। प्रत्येक

सूबे तथा जिले में केन्द्र की भाँति और सहायक पदाधिकारी थे। जो पृथक-पृथक विभागों की देखभाल करते थे।

भूमि-व्यवस्था:—शिवाजी ने भूमि-व्यवस्था की ओर विशेष ध्यान दिया। उसने प्रत्येक सूबे की भूमि की नाप कराई, और प्रत्येक बीघे की उपज का औसत निकलवाया तथा पैदावार का चालीस प्रतिशत लगान निर्धारित किया। भूमि सम्बन्धी पदाधिकारी केन्द्र द्वारा नियुक्त होते थे और उन्हें आदेश था कि निश्चित लगान से अधिक वसूल कर कृषकों को कष्ट न दें। लगान प्रतिवर्ष निर्धारित किया जाता था। लगान के ठेके देने तथा जागीर की प्रथा उसने सर्वथा बन्द कर दी। उसने सरकारी कर्मचारी लगान वसूल करने के लिये नियुक्त किये। कृषकों को बीज, बैल, हल तथा अन्य कृषि-सम्बन्धी यन्त्र वितरण कर उसने कृषि को प्रोत्साहन दिया। इसके अतिरिक्त दुर्भिक्ष के समय उन्हें विशेष सुविधायें तथा सहायता की सुव्यवस्था प्राप्त थी। भूमि-कर के अतिरिक्त शासन का कार्य अन्य कई करों से चलता था इनमें चौथ तथा सरदेशमुखी मुख्य थे। चौथ लगान का $\frac{1}{4}$ तथा सरदेशमुखी लगान का $\frac{1}{10}$ भाग ग्रामों तथा कस्बों के निकटवर्ती प्रदेश से वसूल किया जाता था, जिसका अर्थ था कि उन गाँवों, कस्बों अथवा नगरों पर मरहठे आक्रमण न करेंगे। धार्मिक कार्यों तथा सेना पर राजकीय आय का अधिकतर भाग व्यय किया जाता था।

न्याय-व्यवस्था:—जैसा कि पहिले उल्लेख किया गया है, न्याय-विभाग न्यायाधीश के अधीन था; परन्तु वर्तमान समय जैसी न्याय-व्यवस्था न थी, जिसमें एक के ऊपर दूसरी अपील की अदालत स्थापित है; न कोई लिखित कानून ही था। गाँव के झगड़े पंचायतों द्वारा तै होते थे। बड़े मुकद्दमों को पटेल या तहसीलदार तै करते थे। उनकी अपीलों को सुनने के लिए मुख्य न्यायाधीश के नीचे अनेक न्यायाधीश नियुक्त थे, जो समस्त प्रान्त में मुख्य-मुख्य स्थानों पर न्याय करते थे।

सेना:—शिवाजी की समस्त सफलता उसकी सुसंगठित तथा अनुशासन बद्ध सेना पर निर्भर थी। अतः वह सेना पर विशेष ध्यान देता था। उसकी स्थल सेना, पैदल तथा सवार दो भागों में बंटी हुई थी। पैदल सेना में प्रति नौ सिपाहियों के ऊपर एक नायक, पाँच नायकों के ऊपर एक हवलदार, प्रति तीन हवलदारों पर एक जमालदार, प्रति दस जमालदारों पर एक एकहजारी होता था। इस प्रकार हजारी नामक अफसर की अध्यक्षता में एक हजार तीन सौ पचास सिपाही होते थे। हजारी के ऊपर पैदल सेना का सेनापति था। अश्वसेना में श्रेणीकरण इससे भिन्न था। उसमें प्रति पच्चीस सिपाहियों पर एक हवलदार, प्रति पाँच हवलदारों पर एक

जमालदार, प्रति पाँच जमालदारो पर एक हजारी था। इस प्रकार हजारी अफसर के अधिकार में १२५० घुडसवार थे। इनके बाद अश्वसेना का सेनापति होता था। सेनापति और हजारी के बीच एक पचहजारी पदाधिकारी भी कभी-कभी नियुक्त किया जाता था। प्रति पच्चीस घुडसवारो पर एक भिश्ती और एक भगी रहता था। घुडसवारो के दो वर्ग थे एक वह जिनको सरकार द्वारा घोडे मिलते थे, वह बारगीर कहलाते थे। दूसरे वह जो अपने घोडे रखते थे जिन्हे सिलेदार कहते थे। सेना प्राय चुस्त तथा तेज घोडो की बनी होती थी, जो सकेतानुसार एकदम एकत्रित अथवा विग्रहित की जा सकती थी। सेना प्राय कृषकवर्ग की बनी थी जो प्राय कृषि-समय को छोडकर सदैव सैन्य-सेवा के लिए उद्यत रहते थे। गर्मी-सर्दी में भूख-प्यास को सह, कार्य करने वाले इन मरहठे वीरों को अधिक सामग्री की आवश्यकता न थी। एक मामूली कम्बल, एक चनो का थैला उनकी आवश्यकता पूर्ति के लिये पर्याप्त था। उसी पर निर्भर होकर वे महीनो युद्ध कर सकते थे। उसने धोखेबाजी से बचने के लिए घोडो को दाग देने की प्रथा प्रारम्भ कर दी। सेना में पदाधिकार वश परम्परागत न था। एक सेनानी के मरने पर योग्य सेनानी भरती किया जाता था। सेना के साथ स्त्रियाँ ले जाने की आज्ञा न थी। उसकी सेना में तीन हजार सवार तथा एक लाख पैदल थे।

जल-सेना —उक्त सेनाओ के अतिरिक्त शिवाजी ने एक जल सेना की भी व्यवस्था की थी। उसने बहुत से जलयान बनवाये और उन्हे सब सामग्री से सुसज्जित कर बेडे का रूप दिया, बेडा कोलावा में रक्खा गया। इससे दो लाभ थे एक तो इससे जजीरा के अबीसीनियन समुद्री डाकुओ की शक्ति क्षीण हो गई। दूसरे यह युद्ध के समय मुगल जहाजो पर आक्रमण कर उनके व्यापार को क्षति पहुँचाना था। उसकी जल सेना में २०० जहाज थे।

शिवाजी का चरित्र —भारतवर्ष के इतिहास में शिवाजी एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। एक मामूली जागीरदार के सुपुत्र से समस्त महाराष्ट्र का महाराजा होना एक साधारण कार्य न था। विशाल मुगल शक्ति तथा बीजापुर और गोलकुण्डा की शक्तिशाली रियासतो से लोहा ले, इतनी उन्नति पर पहुँचना अद्भुत पराक्रम तथा प्रतिभा का द्योतक है। उसकी रण कुशलता, सैन्य सचालन धैर्य तथा सहनशीलता अद्वितीय थी। वह अपनी जान हथेली पर रखकर अधिक से अधिक सकट का सामना करने में तनिक भी सकोच न करता था। समस्त मुगल सेना के बीच केवल मुट्ठी भर सिपाहियो से प्रवेश कर शाइस्ताखा को क्षति पहुँचाने का साहस अपार विस्मय उत्पन्न करता है। कभी-कभी वह अवसरानुकूल कार्य में

भी सकोच नहीं करता था। साहस तथा युद्ध की असफलता में यदि नीतिपटुता से कार्य चल सकता तो उसे यह करने में सकोच न होता था। जावली दुर्ग की विजय इसकी प्रतीक है। शिवाजी अत्यन्त बुद्धिमान् व्यक्ति था। उसका मुगल दरबार से निकल दक्षिण का सीधा मार्ग न ग्रहण कर बगाल के मार्ग से दक्षिण जाना उसकी सुरक्षा की अकट चाल थी। अपने व्यक्तिगत जीवन में वह बहुत सादा, स्पष्टवादी तथा धार्मिक था। कट्टर हिन्दू होते हुए भी उसके हृदय में धार्मिक पक्षपात न था। उसने कभी युद्ध के समय किसी मसजिद, मकबरे अथवा कुरान को तनिक भी क्षति न पहुँचाई। इसके अतिरिक्त उसने हिंदू व मुसलिम स्त्रिया तथा बच्चों की रक्षा करना अपना मुख्य धर्म समझा। इतना ही नहीं वरन हिन्दू मन्दिरो और शिक्षालयो के साथ-साथ वह मकबरो और दरगाहो के बनाने के लिये धन देता था। उसकी वीरता तथा साहस की जितनी भी प्रशसा की जावे उतनी कम है।

औरंगजेब की दक्षिण विजय—औरगजेब दक्षिण की शिया रियासतो को समाप्त करने का बहुत इच्छुक था उसके कारणो का पहिले उल्लेख किया जा चुका है, परन्तु उसके सब सेनापति दक्षिण में असफल रहे थे। उसे विश्वास हो गया था कि यदि दक्षिण पर विजय प्राप्त करनी है तो उसे स्वय सेनापतित्व ग्रहण करना चाहिये। शिवाजी की मृत्यु के कारण स्थिति भी विजय के अनुकूल ही थी। अतः राजपूतो से सन्धि कर वह स्वय अहमदनगर पहुँचा और सैन्य सगठन प्रारम्भ कर दिया।

अपनी सेना को दो भागो में विभक्त कर उसने एक भाग सहित राजकुमार मुअज्जम को मरहठो के तथा दूसरे भाग के साथ राजकुमार आजम को बीजापुर के विरुद्ध भेजा। मुअज्जम कोंकण प्रदेश में प्रवेश करने में असफल हुआ। मरहठो ने उसे पूर्णतया परास्त कर इस समस्त प्रान्त से निकाल बाहर किया। आजम ने शोलापुर पर अधिकार प्राप्त कर लिया परन्तु जब उसने बीजापुर पर आक्रमण किया तो उसे भी परास्त हो वापिस लौटना पडा। १६८४ ई० में राजकुमार मुअज्जम को बीजापुर का भार सौंपा गया परन्तु उसने बीजापुर के सुल्तान से सन्धि कर ली, जिससे औरङ्गजेब बहुत क्रोधित हुआ। युद्ध का कारण ढूँढने के लिये १६८५ ई० के प्रारम्भ में औरङ्गजेब ने बीजापुर के सुल्तान सिकन्दरअली आदिलशाह को एक विज्ञप्ति भेजी, जिसमें उसे आज्ञा दी गई कि वह अपने वजीर शरजाखाँ को, जो अत्यत योग्य सेनापति तथा राजनीतिज्ञ था, पदच्युत कर दे, मुगल सेना के लिये खाद्य सामग्री भेजे मुगल सेना को अपने प्रदेश में से जाने दे, मरहठो का बहिष्कार करे, तथा आवश्यकतानुसार मुगल सम्राट् की सहायता करे। सुल्तान ने इस विज्ञप्ति को

मानने से स्पष्ट शब्दो में मना कर दिया और मुगल सम्राट् से आग्रह किया कि वह बीजापुर प्रदेश में थानाबन्दी करदे और समस्त प्रदेश अथवा भेंट जो उसे अब तक, दी गई थी वापिस कर दे। औरङ्गजेब के पत्र का अर्थ युद्ध का बहाना ढूंढना था तो इस उत्तर का अर्थ युद्ध घोषणा थी। तनिक भी आत्माभिमानी राजा इसके अतिरिक्त कर ही क्या सकता था। अपनी स्थिति दृढ करने के हेतु उसने गोलकुण्डा के सुल्तान से सन्धि कर ली और मरेहटो से सहायता की प्रार्थना की। इस प्रकार अपनी स्थिति दृढ करने के पश्चात् उसने मुगल सेना पर आक्रमण कर दिया। सम्राट् स्वय एक विशाल सेना ले उसका सामना करने के लिये आया। अप्रैल १६८६ ई० में उसने बीजापुर का घेरा डाला। थोडे दिनो के पश्चात् खाद्य सामग्री समाप्त होने के कारण उसका पतन हो गया।

अली आदिलशाह ने आत्म-समर्पण कर दिया। बीजापुर मुगल-साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया, तथा अली आदिलशाह मनसबदार बना दिया गया।

गोलकुण्डा विजयः—बीजापुर-पतन के पश्चात् गोलकुण्डा की बारी आई। गोलकुण्डा के विरुद्ध औरङ्गजेब ने कई आरोप लगाये कि उसके दो मन्त्री, मदन्न और अकन्न हिन्दू है जो मुसलमानो के साथ अन्याय करते है। गोलकुण्डा का सुल्तान मुगलो के विरुद्ध शिवाजी के पुत्र शम्भाजी की सहायता करता है तथा उसने बीजापुर-मुगल-युद्ध में बीजापुर की सहायता की थी। उक्त आरोपो के आधार पर औरगजेब ने गोलकुण्डा पर आक्रमण कर दिया। गोलकुण्डा के सुल्तान ने अपने भोग-विलास को त्याग बडी वीरता से अपनी राजधानी की रक्षा करनी आरम्भ कर दी। उसके योग्य तथा वीर सेनापति अब्दुर्रज्जाक ने अपनी जान की बाजी लगा अन्तिम समय तक गोलकुण्डा की रक्षा करने का प्रण कर लिया। फल यह हुआ कि औरगजेब की सब योजनाएँ असफल हो गई। सैन्यबल को असफल होता देख औरगजेब ने उसके गोलकुण्डा के एक पदाधिकारी को अपार धन दे अपनी ओर तोड लिया। उसने मुगलो को दुर्ग में प्रवेश करने में सहायता दी। इस प्रकार एक विश्वासघात अफसर के बल पर गोलकुण्डा विजित हुआ। सुल्तान वन्दी बना लिया गया। और गोलकुण्डा मुगल साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया।

अब्दुर्रज्जाकः—गोलकुण्डा-विजय के साथ यहाँ के प्रधान सेनापति अब्दुर्रजाक के विषय में दो शब्द कहने उचित प्रतीत होते है। गोलकुण्डा का वीर सेनानी रज्जाक गोलकुण्डा सेना की जान थी। औरगजेब ने उसे पथ-भ्रष्ट करने का अथक परिश्रम किया, परन्तु कोई प्रलोभन उसे अपने कर्त्तव्य से विमुख न कर

सका। यह स्वामि-भक्त सेनानी युद्ध करता रहा। जब वह रणस्थल में भूमिशायी हुआ, तब उसके शरीर पर ७० घाव थे। औरंगजेब ,उसकी अपूर्व भक्ति तथा अद्भुत वीरता से इतना प्रभावित हुआ कि उसने अपने हकीमो से उसका इलाज करा, उसे स्वस्थ कराया और कहा कि "यदि गोलकुण्डा-सुल्तान के पास दो रज्जाक होते तो गोलकुण्डा कभी नतमस्तक न होता।"

बीजापुर तथा गोलकुण्डा विजय पर राजनीतिक-दृष्टिपात —बीजापुर तथा गोलकुण्डा की समाप्ति औरंगजेब की बहुत बडी भूल बताई जाती है। उसके निम्नलिखित कारण है प्रथम—उनकी विजय से उनकी सेनायें तोड दी गई, इन सिपाहियो ने मरहठो की सेना में प्रवेश कर मुगल शत्रुओ की शक्ति में वृद्धि की। दूसरे यह दोनों रियासतें मरहठो की शक्ति को कम करने का प्रयास करती रहती थी। उनकी समाप्ति पर मरहठे स्वतन्त्रतापूर्वक मुगल-प्रदेश पर खुल्लमखुल्ला आक्रमण कर उसे लूटने लगे। बीजापुर तथा गोलकुण्डा सघर्ष ने, जो औरंगजेब के शासन-काल-पर्यन्त चलता रहा मुगल साम्राज्य को बहुत जन तथा धन क्षति पहुँचाई। जिस कारण सिपाहियो को कई-कई महीने तक वेतन न मिल सका, वे क्षुब्ध हो मुगल सेनाओ को छोड, मरहठा सेनाओ में प्रवेश करने लगे। इन रियासतो के मिलने से मुगल-साम्राज्य इतना विस्तृत हो गया, कि उसका प्रबन्ध अत्यन्त कठिन हो गया। उपरोक्त कथन को उचित स्थान देते हुए, यह कहा जा सकता है कि यदि औरंगजेब बीजापुर और गोलकुण्डा को मरहठा सघर्ष के लिये स्वतन्त्र छोड देता, तो सम्भव था कि मरहठे ही उन्हे समाप्त कर अपने जन व धन के साधनो को इतना बढा लेते कि मुगल साम्राज्य को उनसे निबटना कठिन हो जाता। जहाँ तक बीजापुर व गोलकुण्डा की सैनिक सहायता प्रदान कर, उन्हे मरहठो के विरुद्ध मोरचा लेने के योग्य बनाने का प्रश्न है, अकबर के समय से निरन्तर सघर्ष चलते रहने के कारण, मुगल तथा उक्त रियासतो में इतनी कटुता आ गई थी कि वह किसी संयुक्त योजना के अन्तर्गत कार्य न कर सकते थे। दोनो पक्षो पर विचार कर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि विशाल धन व जन क्षति के अनन्तर विजय प्राप्त करने से कोई विशेष लाभ साम्राज्य को नही हुआ। अत इनकी विजय औरंगजेब की नीति-कुशलता तथा बुद्धिमत्ता की द्योतक नही।

शिवाजी के पश्चात् मरहठे और मुगल —बीजापुर और गोलकुण्डा को समाप्त करने के पश्चात् औरंगजेब ने मरहठों की शक्ति क्षीण करने की सोची। शिवाजी का देहान्त हो चुका था और उसकी जगह उसका पुत्र सम्भाजी राज्य करता था। सम्भाजी अत्यन्त निकम्मा और विलासप्रिय मनुष्य था। यदि वह

तो जिस समय सम्राट् बीजापुर तथा गोलकुण्डा संग्राम में व्यस्त था उस समय एक अच्छी मरहठा सेना संगठित कर उक्त विजय दुर्लभ बना देता, और इस प्रकार न केवल उन रियासतो की स्वतन्त्रता की रक्षा कर सकता वरन् अपने विनाश को भी टाल देता। परन्तु उसने ऐसा न किया। फल यह हुआ कि बीजापुर के उपरान्त गोलकुण्डा तथा उसके अनन्तर उसकी बारी आई। मुगलो ने समस्त मरहठा प्रदेश जीत लिया। सम्भाजी को, जिसने अपना समस्त कार्य अपने अयोग्य मन्त्री को सौंप रक्खा था, १६८९ ई० में सगमेश्वर के स्थान पर मुगल सेनापति द्वारा एक आमोद भवन में कैदी बना लिया गया। उसके सब साथी आसानी से परास्त कर दिये गये और सम्भाजी को प्राण-दण्ड दिया गया। सम्भाजी के पुत्र साहू के साथ सम्राट् ने अच्छा वर्ताव किया और उसे पालन-पोषण के लिये देहली भेज दिया जिससे किसी अवसर पर उससे लाभ उठाकर महाराष्ट्र-प्रदेश पर अधिकार करने में सहायता प्राप्त हो सके। पराजय पर पराजय करने से मरहठा-शक्ति क्षीण होती गई। उधर औरंगजेब की रणस्थल पर उपस्थिति मुगल-सेना में अपूर्व साहस का सचार करती थी। सम्भाजी की मृत्यु के पश्चात् मरहठो,ने शिवाजी के दूसरे पुत्र शिवाजी द्वितीय को, जो केवल बालक था अपना राजा घोषित किया और रायगढ में उस का राज्याभिषेक कर उसके चाचा राजाराम को उसका संरक्षक नियुक्त किया। मुगलो ने अब रायगढ पर आक्रमण कर उसपर भी अधिकार कर लिया, शिवाजी द्वितीय बन्दी बना लिया गया, परन्तु राजाराम भाग गया, और जिंजी में जाकर अपने प्राण बचाये। मरहठा सरदारो ने राजाराम को रिक्त मरहठा गद्दी का राजा घोषित किया। औरंगजेब ने अपने एक सेनापति जुलफिकारखाँ को जिंजी भेजा परन्तु वह जिंजी पर अधिकार प्राप्त न कर सका। जब उसने सैनिक सहायता की याचना की तो औरंगजेब उसे सहायता न दे सका। क्योकि समस्त मुगल सेना नवविजित साम्राज्य के दुर्गों पर अधिकार करने के लिए सैकडों भागो में तितर-बितर थी। इस दशा में जिंजी का घेरा ७ वर्ष तक चलता रहा।

इस दशा का लाभ मरहठो ने खूब उठाया। धन के अभाव से राजाराम के लिए किसी सेना का आयोजन करना कठिन था। अत उसने घोषणा कर दी कि *मरहठा सरदार अपने आप छोटी छोटी टुकडियां बना अपने सुलभ साधनों से प्रथक्* प्रदेश पर अधिकार कर लेंगे। वह उन्ही को दे दिया जायेगा। इस विज्ञप्ति के अनुसार सैकडो मरहठा दल भूमि-लालसा से लालायित हो मुगल सेना में खलबली मचाने लगे। परन्तु इस बीच में जिंजी का पतन हो गया। जिससे राजाराम जिंजी को छोड सितारा आ गया। अब मुगलो ने सितारा का घेरा डाला। सितारा एक

पहाड की चोटी पर स्थित था। वहाँ से अवसरानुकूल पत्थर ढकेल कर मुगल सेना को बहुत क्षति पहुँचाई गई, परन्तु खाद्य सकट उत्पन्न होने के कारण राजाराम को सिहगढ जाना पडा। जहाँ १७०० ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

राजाराम के पश्चात् उसका पुत्र कर्ण राजा हुआ, परन्तु थोडे ही दिनो में चेचक से उसका देहान्त हो गया। अब शिवाजी की दूसरी स्त्री ताराबाई ने अपने पुत्र शिवाजी तृतीय को गद्दी पर बैठाया, और क्योकि वह अल्पायु था, स्वय सैन्य सचालन करने लगी। इस योग्य स्त्री ने अपने अदम्य साहस तथा अपूर्व वीरता से मरहठा जाति में अपूर्व तथा नवीन स्फूर्ति का सचार किया। फल-यह हुआ कि मुगल-मरहठा सघर्ष प्रबल होता गया जब तक कि अन्त में मुगल-साधन बिल्कुल समाप्त हो गये तथा उनकी सेना अस्त-व्यस्त हो गई।

औरगजेब की मृत्यु—साम्राज्य के दूसरे भागो में भी इसी बीच आपत्ति उत्पन्न होने लगी। सिखो ने पजाब पर अधिकार कर लिया। बुरहानपुर के जाटो ने साम्राज्य के विरुद्ध एक मोर्चा खोल दिया। इस निराशाजनक वातावरण में १७०७ ई० में देहली की गद्दी को मुगल, राजपूत और सिक्ख मरहठो के बीच सघर्ष की वस्तु बना औरगजेब इस ससार से चल बसा।

औरंगजेब का चरित्र:—औरगजेब एक कट्टर सुन्नी मुसलमान था। वह कर्तव्य-शील कर्तव्य-कुशल तथा साहसी सैनिक था। बालपन से ही उसमें वीरता, शासकता तथा कूटनीतिज्ञता आदि गुण प्रकट होने लगे थे। वह अरबी और फारसी का विद्वान् तथा कुरान का हाफिज था; इस्लाम तथा इस्लामी कानून में पूर्णतया परिचित था, वह सादा तथा सयमी भी था। राष्ट्र-कोष से एक पाई भी न लेकर वह स्वय टोपियाँ बनाकर भोजन कमाता था। वह आदर्श-शासक तथा न्यायशील था और सदैव किसी न किसी राज्य-कार्य में निमग्न रहता था। पिता के साथ अन्याय पूर्ण व्यवहार करने का उसे सदैव दुख रहा। वह पञ्चनमाजी तथा पूर्णतया धार्मिक मुसलमान था। उसने असहनशीलता, अदूरदर्शिता तथा सकुचित विचारो के कारण हिन्दुओ को सदैव काफिर समझे रखा और इसी कारण वह सर्वप्रिय कदाचित न हो सका। उसने राज्य के सब कार्य स्वय करने के कारण समस्त कर्मचारियो को निकम्मा बना दिया था। उसके नये उच्च-पदाधिकारी तथा सेनापति अपने अपने कर्तव्यो से अनभिज्ञ थे। पुराने अधिकारियो पर उसे विश्वास ही न था। मुस्लिम इतिहासकार खफीखाँ उसके विषय में यो लिखता है —

"प्रत्येक योजना जो उसने की, निष्फल सिद्ध हुई। जिन कार्यो को उसने

आरम्भ किया, उनमें बहुत-सा समय लगा और अन्त में कुछ भी सफलता प्राप्त नही हुई।"

सिक्ख-उत्कर्ष :—सिक्ख शब्द शिष्य का ही दूसरा रूप है। इसका अर्थ सिक्ख धर्म के अनुयायी से है, जो अपने आपको उस धर्म के गुरु का शिष्य कहता है, जिस पन्द्रहवी शताब्दी में गुरु नानक ने ईश्वर की एकता, विचारो की पवित्रता और कर्म की शुद्धता का मूलमत्र संसार को देना आरम्भ किया, उसने जाति-पाँति के भेद-भाव पर कुठाराघात किया।

गुरु नानक के पश्चात् अङ्गददेव सिक्खो के गुरु घोषित हुए। इन्होने गुरु नानक के उपदेशो को एकत्रित कर ग्रन्थसाहब का रूप दिया, और गुरुमुखी भाषा की वर्णमाला निश्चित की। उन्होने अपने जीवनकाल में ही अपने प्रिय शिष्य अमरदास को अपना उत्तराधिकारी चुना। अमरदास ने पजाब के जाटो में अपने धर्म का प्रचार कर अपने अनुयाइयो की सख्या में विशेष वृद्धि की। उसने सिक्खो में से सती की प्रथा बन्द कर दी। १५७४ ई० में उनका देहान्त हुआ और उसके पश्चात् रामदास गुरु घोषित हुए। गुरु रामदास ने अकबर से वर्तमान अमृतसर की जगह थोडी भूमि ले एक तालाब की स्थापना की जो आगे चलकर अमृतसर अर्थात् अमृत का तालाब कहलाया। उनकी मृत्यु के अनन्तर १५८१ ई० में अर्जुनदेव गद्दी पर बैठे। उन्होने अमृतसर को सिक्खो का केन्द्र बनाया जिसके परिणामस्वरूप यह छोटा-सा गाँव सिक्खो के तीर्थ स्थान का रूप धारण कर बढना आरम्भ हो गया। उन्होने ग्रन्थ साहब को प्रकाशित किया और सिक्खो में व्यवसाय तथा व्यापार की उन्नति कर उनकी आर्थिक स्थिति दृढ की। दुर्भाग्यवश उन्होंने खुसरो के प्रति सहानुभूति प्रगट की, जिसके परिणामस्वरूप उन्हे कारागृह में डाल दिया गया, जहा उनकी मृत्यु हो गई।

अर्जुनदेव के अनन्तर उनका पुत्र हरगोविन्द "गुरु' हुआ। उन्होंने सिक्खो को सैनिक जाति बनाना चाहा। उन्होने पहिले स्वय एक अच्छा सैनिक तथा सत बन, अपने अनुयाइयो को अपना अनुसरण करने को कहा। ऐसा प्रतीत होता है कि अर्जुनदेव के दण्ड की प्रतिक्रिया स्वरूप-हरगोविन्द ने यह सगठन आरम्भ किया हो। उन्होने शिकार खेलना तथा गोश्त खाना आरम्भ कर दिया। उनके गुरुकाल में सिक्खो ने बडी उन्नति की और उनकी सख्या भी बहुत बढ गई। जहाँगीर ने उसे अपनी सेना में भर्ती कर लिया। परन्तु जब उसने सिपाहियों को वेतन न दे उसका स्वय उपभोग करना आरम्भ कर दिया तो उस पर जुर्माना किया और उसे बन्दीगृह में डाल दिया गया। १२ वर्ष की कैद के पश्चात् वह मुक्त कर दिये गये। उन्होंने

शाहजहाँ की सेना में प्रवेश कर लिया। परन्तु वहाँ वे शीघ्र ही विद्रोह कर सेना छोड भाग आये। मुगल सेना ने उन्हें परास्त किया, और वह पर्वतो की ओर चले गये। १६४५ ई० में करतारपुर में उनका देहान्त हो गया।

उनके उपरान्त गुरु हरकृष्ण के पोते हरिराय उत्तराधिकारी हुए। युद्ध में उन्होंने दारा का साथ दिया। परन्तु जब औरङ्गजेब सफल हुआ तो इन्होने उससे सधि करली और अपने पुत्र को अमानत-स्वरूप उसकी सेवा में भेजा। औरङ्गजेब ने उन्हें क्षमा कर दिया। १६६१ ई० में करतारपुर में इनका देहान्त हो गया। तदन्तर हरिकृष्ण गुरु पद पर नियुक्त हुए। उनके समय में एक दूसरे व्यक्ति ने गद्दी पर अधिकार प्रदर्शित किया परन्तु वह सफल न हो सका, गुरु हरिकृष्ण अधिक जीवित न रह सके। १६६४ ई० में चेचक के कारण उनकी मृत्यु हो गई। अपने जीवनकाल में ही गुरु हरिकृष्ण ने हरिगोविन्द के पुत्र तेगवहादुर को गुरु बना दिया था। परन्तु रामराय ने, जिसने हरिकृष्ण के समय भी गद्दी के लिए अधिकार प्रगट किया था, अव भी अपना प्रयत्न जारी रक्खा, वह गद्दी प्राप्त करने में सफल न हो सका। परन्तु उसने निरन्तर तेगवहादुर के विरुद्ध, औरङ्गजेब के कान भरने आरम्भ कर दिय जिसके फलस्वरूप औरगजेब को तेगवहादुर पर अविश्वास हो गया।

उसके कुछ कार्य भी ऐसे ही थे जिनसे सन्देह की पुष्टि होती है। उसे राज-दरबार मे बुलाया गया और १६७५ ई० में प्राण-दण्ड दिया गया।

गुरु तेगवहादुर के पश्चात् उनका पुत्र गोविंदसिंह केवल पन्द्रह वर्ष की अल्पायु में गद्दी पर बैठा। अपने पिता के वध से उसके हृदय को बहुत ठेस पहुँची थी। अत उसने गद्दी पर बैठते ही अपने पिता की मृत्यु का प्रतिशोध लेने की शपथ ले ली। अपने जीवन-काल में वह निरन्तर इस्लाम के विरुद्ध प्रचार करते रहे, परन्तु पहिले उन्होंने स्वय अपने लिए एक प्रदेश प्राप्त करना चाहा, जहाँ से मरहठा की भाँति वह अपने सैनिक-सघर्ष का सचालन कर सकें। अतः उन्होंने जम्मू, गढवाल तथा अन्य पर्वतीय राजाओ से सघर्ष आरम्भ कर दिया। क्योंकि पहाडी प्रात ही इस सघर्ष के लिए अधिक उपयुक्त सिद्ध हो सकता था, वहाँ अपनी थोडी शक्ति से भी वह विशाल मुगल-सेना से लोहा ले सकते थे। उन्होंने एक धार्मिक-सस्था को सैनिक-सस्था में पहले ही परिवर्तित कर लिया था। उन्होंने सिक्खो में शक्ति की उपासना करना अनिवार्य किया, उनके लिए किसी न किसी शस्त्र का धारण करना अनिवार्य कर दिया। उसने उन्हें खालसा (अर्थात् भगवान् के भेजे हुए) का नाम दिया। धर्म के पाँच चिन्ह कघा, कड़ा, केश, काछा और कृपाण इन्ही की

उन्होंने 'वाहगुरु जी का खालसा श्री वाह गुरु जी फतह' नामक अभिवादन का प्रचार किया। जाति-पाँति के बन्धन तोड उन्होने समस्त सिक्ख जाति को एकता के सूत्र में सम्मिलित किया। उन्होंने प्रत्येक सिक्ख को अपना नाम सिंह पर रखने का उपदेश दिया। इस प्रकार सिक्खों में सगठन कर वे उन्हें हल से तलवार पर ले आये, और उन्हें मुसलमानो से गुरु का बदला लेने की आज्ञा दी।

इस प्रकार सिक्खों को सुसगठित कर उसने पर्वतीय प्रदेश में अपनी सत्ता स्थापित करनी चाही। उसकी विजयो ने मुगल-सम्राट् को चिंतित कर दिया। उसने सिक्खो के उत्थान में मरहठो की भाँति एक नवीन सैनिक-जाति का अभ्युदय देखा। अत जब सिक्खो से क्षुब्ध राजाओ ने सम्राट से सैनिक सहायता माँगी तो उसने तुरन्त अपनी सेनायें गुरु के विरुद्ध भेज दी। गुरु परास्त हुए और उनके दो बेटे युद्ध में काम आये। मुगलो ने अब गुरु के दुर्ग आनन्दपुर का घेरा डाल दिया और उन्हें इतना दुखी कर दिया कि उन्हें फीरोजपुर के रेगिस्तान में शरण लेनी पडी। यहा भी मुगल सेना ने उनका पीछा किया। इस प्रकार गुरु गोविन्दसिंह एक स्थान से दूसरे स्थान पर चलते रहे। अन्त म उन्होने आनन्दपुर में ही निवास करना आरम्भ कर दिया। १७०७ ई० में औरगजेब की मृत्यु के अनन्तर उन्होने बहादुरशाह का साथ दिया और उसके साथ दक्षिण गये, जहा नन्देर के स्थान पर एक पठान ने जिस के साथ बाप को उन्होंने मार डाला था, उनका वध कर दिया।

औरंगजेब और अँग्रेज।—जहाँगीर के शासन-काल में अँग्रेजो को भारत-वर्ष मे व्यापार करने की आज्ञा मिल गई, जिसके फलस्वरूप उन्होंने भारतीय व्यापार में प्रगति करनी आरम्भ कर दी थी। शाहजहाँ ने भी अँग्रेजो के प्रति सहानुभूति का प्रदर्शन किया था। परिणाम यह हुआ कि अँग्रेज-लोगो ने सूरत मद्रास, हुगली, कासिम बाजार में कोठियाँ बना ली। १६६८ ई० में इगलैंड के बादशाह चार्लस द्वितीय ने बम्बई का टापू जो उसे अपने विवाह के उपलक्ष में पुर्तगाल से मिला था, अँग्रेज कम्पनी को दे दिया। इस प्रकार अँग्रेज कम्पनी उन्नति करती रही। सन् १६८५ ई० में शाइस्ताखाँ ने अँग्रेजी माल पर कुछ चुगी लगा दी। अँग्रेजो ने इसे देने से इन्कार कर दिया। इस पर एक युद्ध-सा हो गया। अँग्रेज बाद बादशाह जेम्स द्वितीय ने एक जहाज भेजकर चटगाँव पर अधिकार कर दिया। औरगजेब यह देखकर बहुत क्रोधित हुआ। उसने तुरन्त सूरत, मुसलीपट्टम और हुगली की कोठियों को नष्ट करने की आज्ञा दी परन्तु शीघ्र ही औरगजेब ने अँग्रेजों को क्षमा कर दिया और १६९० ई० में हुगली के निकट उपनिवेश बसाने की आज्ञा दी। यही

उपनिवेश अपने कालिकत्ता गाँव के नाम पर जो वहाँ उस समय था आगे चलकर वर्तमान कलकत्ता बन गया।

साम्राज-विस्तार तथा सूबे :—बीजापुर तथा गोलकुण्डा-विजय के उपरान्त मुगल साम्र ज्य अपनी पराकाष्टा पर पहुँच गया। दक्षिण में उसकी सीमा कावेरी नदी से आगे बढ गई और उसका साम्राज्य कुछ मरहठा किलो को छोडकर काश्मीर से दक्षिण में कुमारी अन्तरीप तक तथा काबुल से चटगाँव तक फैल गया। इस समस्त साम्राज्य को सूबो में विभक्त किया गया। अकबर द्वारा बनाये गये उत्तरी-भारत के सूबो का उसने निम्नलिखित सशोधन किया। काबुल के सूबे से काश्मीर और हजारा निकाल कर काश्मीर का अलग सूबा बना दिया। इसी प्रकार बंगाल से उडीसा और गोडवाना निकाल कर उडीसा का एक अलग प्रान्त कर दिया। दक्षिण-सिन्ध को मुल्तान से पृथक कर ठट्टा का प्रान्त घोषित किया।

दक्षिण में अकबर ने तीन सूबे बनाये थे। बीजापुर और गोलकुण्डा के जुडने से साम्राज्य की सीमा बढ गई थी। अतः उसने दक्षिण का राज्य छः सूबो में विभक्त किया।

शासन में धार्मिक-परिछाया :—औरंगजेब प्रथम-श्रेणी का धार्मिक व्यक्ति था। अतः वह शासन-सम्बन्धी मामलों में शरअ के अनुसार आचरण करता था। उसने जैसा कि पहिले उल्लेख किया गया है, सौर वर्ष को त्याग, चाँद वर्ष तथा हिजरी सन् ग्रहण किया। इसी प्रकार करों को भी उसने शरअ के अनुकूल किया। शरअ-विरुद्ध कर शासन के आरम्भ में ही स्थगित कर दिये गये और जजिया जिसकी शरअ आज्ञा देती थी, लागू कर दिया गया।

मुस्लिम पवित्रता की रक्षा :—मुस्लिम-सिद्धान्त के अनुसार मुसलमानों के आचरणों की रक्षा एक सम्राट् का धर्म है, अतः औरंगजेब ने आचरण-निरीक्षक नियुक्त किये जो मुस्लिम जनता को सद्व्यवहार की शिक्षा देते थे। उसने मदिरा-पान निषेध कर दिया। वेश्याओं को नगर से बाहर रहने तथा लाल वस्त्र धारण करने की आज्ञा दी गई। उसने अकबर-द्वारा आरम्भ की हुई, झरोखे से दर्शन देने की प्रथा बन्द कर दी क्योंकि इससे हिन्दुत्व का प्रभाव दृष्टिगोचर होता था। इस प्रकार नौरोज की फारसी-प्रथा भी उसने बन्द कर दी। —

दान-विभाग :—सम्राट् अपने आप को जनता का कोषाध्यक्ष समझता था। अतः उसने प्रत्येक विभाग में मितव्ययता से काम लिया। उसने एक विभाग खोला जिसमें वह समस्त माल जमा किया जाता था, जिसका कोई उत्तराधिकारी न हो।

इसी प्रकार वह समस्त रुपया जो किसी अमीर की जायदाद जब्त करने से प्राप्त होता था, वह भी इसी विभाग में जमा कर दिया जाता था।

इस प्रकार जो धन संचित होता उसे सम्राट् मुस्लिम संस्कृति के प्रचार करने में व्यय करता था।

केन्द्रीय-सत्ता :—अकबर द्वारा आरम्भ की हुई केन्द्रीय नीति का अनुकरण उसके उत्तराधिकारियों ने भी किया। औरंगजेब ने उसे पराकाष्ठा पर ही पहुँचा दिया। छोटी-छोटी बातों में भी प्रान्तीय गवर्नर स्वतन्त्र न रहे। फल यह हुआ कि उनकी शक्तियां कुण्ठित हो गईं, उनका विकास न हुआ और वह केवल सम्राट् के आदेश की प्रतीक्षा में रहने लगे। सम्राट् की मृत्यु के अनन्तर जब कोई बड़े साम्राज्य को संभालने वाला आदमी केन्द्र में न रहा तो यह पतन की ओर चल दिया।

न्याय :—औरंगजेब स्वयं बुद्धवार को आठ बजे से बारह बजे तक अपील सुनता तथा न्याय करता था। शेष न्याय-व्यवस्था जैसी पहले से चली आती थी, चलती रही।

शिक्षा :—औरंगजेब ने मुस्लिम-शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया। छोटे-छोटे कस्बों तथा गांवों में भी अनेक मदरसे खोल दिये गये जहाँ इस्लामी शिक्षा दी जाती थी। देहली, जौनपुर स्यालकोट और ठट्टा शिक्षा के मुख्य केन्द्र थे। इन स्थानों पर भिन्न-भिन्न प्रकार के अनेक कालिज थे। औरंगजेब ने सर्व-प्रथम राजकुमारों की विशेष-शिक्षा का विचार प्रकट किया—उसने सोचा कि उन्हें निकटवर्ती देश की भाषा राजनीति, अन्य देश के धर्म, रीति-रिवाज इत्यादि की शिक्षा देने की व्यवस्था की जावे।

भास्कर शिल्प.—औरंगजेब अपने राज्य-काल में युद्ध में इतना तल्लीन रहा कि उसे भवन-निर्माण की ओर ध्यान देने का अवसर ही न मिल सका। फिर भी लाहौर की बादशाही मसजिद तथा देहली-किले की मोती मसजिद जो औरंगजेब ने बनवाई, उसके भवन निर्माण-प्रेम को प्रकट करते हैं।

गायन-विद्या तथा चित्र-कला :—अपने पूर्वजों की भांति औरंगजेब ने इन कलाओं की ओर बड़ी उदासीनता दिखाई। गाना इत्यादि आमोद-प्रमोद सर्वथा स्थगित कर दिये। चित्रकला पर भी प्रतिबन्ध लगा दिये क्योंकि इससे मूर्ति पूजा का आभास होता है। फल यह हुआ कि जीवन नीरस हो गया।

बाग लगवाना :—सादा होते हुए भी औरंगजेब को बाग लगवाने का

बहुत शौक था । देहली का रोशनआरा बाग, लाहौर का चौबुर्जी बाग इत्यादि इसके प्रतीक हैं ।

प्रश्न

१. औरंगजेब ने हिन्दुओं के साथ कैसा बर्ताव किया ?
२. मरहठा कौन थे ? शिवाजी ने किस प्रकार उनकी शक्ति को संगठित किया ?
३. शिवाजी के राज्य प्रबन्ध के विषय में तुम क्या जानते हो ?
४. शिवाजी की मृत्यु के बाद किस प्रकार मरहठों ने संघर्ष जारी रखखा ।
५. औरंगजेब के समय जाट तथा सतनामियों ने क्यों विद्रोह किये । उनका क्या परिणाम हुआ ?
६. औरंगजेब-काल में हुये मुगल-राजपूत संघर्ष का वर्णन करो ।
७. सिक्ख कौन थे उनका अभ्युदय कैसे हुआ, औरंगजेब के समय उनसे कैसे सम्बन्ध रहे ।
८. औरंगजेब ने दक्षिण की शिया रियासतों के साथ कैसा बर्ताव किया ?
९. औरंगजेब के समय योरुपीय जातियों से क्या सम्बन्ध रहे ?
१०. औरंगजेब के चरित्र पर एक टिप्पणी लिखो ।

अध्याय ८

अन्तिम मुगल तथा पेशवा

बाबर द्वारा स्थापित तथा अकबर द्वारा सुप्रतिष्ठित एवं शाहजहाँ द्वारा अलंकृत भव्य मुगल साम्राज्य, आलमगीर औरंगजेब की कुटिल एवं धर्मान्ध नीति के कारण पतनोन्मुख हो चला। जहाँ तक सीमा-वृद्धि का सम्बन्ध है मुगल साम्राज्य औरंगजेब के शासन-काल में सर्वोच्च शिखर पर था, किन्तु सुप्रबन्ध एवं सुसगठन तथा शक्ति के दृष्टिकोण से इसकी जड़ें खोखली हो गई थी। औरंगजेब की मृत्यु होते ही साम्राज्य इतनी शीघ्रता से क्षीण होता गया कि कुछ ही कालोपरान्त उचित शब्दों म उसका अन्त हो गया।

औरंगजेब के उत्तराधिकारी:—औरंगजेब के पाँच पुत्रों में मुहम्मद ज्येष्ठ था। वह औरंगजेब की आखो के सामने ही अपनी आँखें बन्द कर चुका था। अकबर राजपूताने से भाग कर दक्षिण में सम्भाजी से जा मिला और तदुपरान्त वहाँ से फारस भाग गया। साम्राज्य-शतरंज के अब केवल तीन खिलाड़ी अवशेष थे—आजम, मुअज्जम और कामबख्श। औरंगजेब के मरते ही तीनों खिलाड़ी अपनी अपनी शातिर चालों में मस्त हो गये। आजम का आगरा में वध कर दिया गया। कामबख्श का सितारा हैदराबाद में विलीन हो गया। अतः बूढ़ा मुअज्जम बहादुरशाह के नाम से दिल्ली के सिंहासन पर आरूढ़ हुआ।

बहादुरशाह (१७०७—१२ ई०) :—बहादुरशाह दुर्भाग्यवश न तो वीर सेनानी ही था और न कुशल राजनीतिज्ञ, निरन्तर भोग-विलास का शिकार बनने के कारण उसका शरीर एवं मस्तिष्क दोनों ही निर्बल तथा कुण्ठित हो गये थे। ऐसे पुतले को सरहदें सिक्ख- राजपूत और जाट सत्ता कब सुख की नींद सोने देते। जो पहले से दसगुनी प्रबलता से उठ खड़े हुए और मुगल-साम्राज्य पर कुपित होकर आक्रमण कर अशान्ति की आँधियाँ चलाने लगे। विवश होकर बहादुर को साहू को छोड़ना पड़ा। राजपूतों से सन्धि करनी पड़ी और सिक्खों के मुँह की ओर देखना पड़ा। परन्तु सिक्खों के सामने उसकी दाल न गली, वे पंजाब से दिल्ली तक नित्य-प्रति उपद्रव की काली घटायें उठाते रहे। बूढ़ा बहादुरशाह उनसे युद्ध करते-करते

सन् १७१२ ई० में मर गया।

जहाँदारशाह (१७१२—१३) :—दिल्ली में फिर रुधिर की नदियाँ बहने लगी। अपने तीन भाइयो के खून में हाथ रंगकर जहाँदारशाह सिंहासनारूढ हुआ, परन्तु विलास-प्रियता में वह अपने बाप से भी बाजी ले गया। फल यह हुआ कि उसके भतीजे फर्रुखसियर ने जिसके पिता को उसने मरवा डाला था, उसका वध कर दिया और गद्दी का अधिकारी बन बैठा।

फर्रुखसियर (१७१३—१९) —राजपद इतना नशीला होता है कि उसमें प्रत्येक व्यक्ति अन्धा हो जाता है। अपने चचा को मारकर फर्रुखसियर गद्दी पर बैठा। वह विलास-प्रियता में अपने चचा से भी बाजी ले गया। अत राजभार सैयद-भाइयो के हाथ में आ गया, जिनकी सहायता से वह गद्दी पर बैठा था।

सैयद-भाई —इनके नाम अब्दुल्लाखा और हुसेनअलीखाँ थे, दोनो वाढ नामक कस्बे के निवासी थे। यह कोई नवीन वश न था। इनके पूर्वज अकबर महान् के समय से मुगलो की सेवा करते आये थे। किन्तु इन दोनो भाइयो के समान लब्ध-प्रतिष्ठ कोई भी इनके वश में न हुआ। अब्दुल्लाखा प्रधान मन्त्री बन बैठा और शासन-भार अपने भाई के परामर्श से वहन करने लगा। कठपुतली की भाँति नाचता हुआ फर्रुखसियर उनसे घृणा करता हुआ भी उनका कुछ न बिगाड सका। अन्त में दक्षिण की सूबेदारी देकर उसने हुसेन को दिल्ली से बाहर निकाला, किन्तु वह पेशवा बालाजी विश्वनाथ से मिलकर दिल्ली पर आक्रमणकारी हुआ और अपने भाई अब्दुल्ला की सहायता से फर्रुखसियर का वध करने में सफल हुआ।

फर्रुखसियर का शासन काल :—अपने राजत्व-काल में इसने भी औरगजेब की भाँति हिन्दुओ पर जजिया लगाया, किन्तु वसूल करने में नितान्त असफल रहा। उसने सिक्खो के नेता 'बन्दा' को एक हजार साथियो के साथ निर्दयता एव क्रूरता के साथ मौत के घाट उतार दिया। एक रोग से ग्रस्त फर्रुखसियर का अग्रेज डाक्टर हेमिल्टन ने उपचार किया। अच्छा होने पर इसके उपलक्ष-स्वरूप अग्रेजो को कल-कत्ता के समीपस्थ गाँव क्रय करने की आज्ञा मिल गई। इसी आज्ञा ने आगे चलकर अग्रेजो को उग्र रूप धारण करने की क्षमता प्रदान की।

मुहम्मदशाह सैयद भाइयों की सहायता से ही गद्दी पर बैठा था, परन्तु वह अन्दर ही अन्दर उनसे जलता था, और उनसे छुटकारा पाना चाहता था। सन् १७२२ ई० में सम्राट् के साथ दक्षिण-विद्रोह दबाने के लिये जाते हुए हुसेनअली के प्राण हर लिये गये। उधर अब्दुल्ला ने दिल्ली के सिंहासन पर एक दूसरे राजकुमार को बैठा दिया, परन्तु दक्षिण से लौटने पर उसे युद्ध में परास्त कर तथा कारागृह में डाल मुहम्मद शाह ने अब्दुल्ला के भी प्राण हर लिये। कई शहजादों को सिंहासन से उतारने चढ़ाने के कारण ये इतिहास में 'सम्राट्-निर्माता' के नाम से प्रसिद्ध है।

मुगल सल्तनत का अस्त-व्यस्त होना:—सैयद भाईयों के स्थान पर मुहम्मदशाह के एक वृद्ध तथा अनुभवशील मुगल सरदार निजामुलमुल्क को प्रधान मन्त्री नियुक्त किया। किन्तु मन्त्री के वृद्ध कर तथा पुराने अनुभव उस भीषण भ्रांति का दमन न कर सके, जो अन्दर ही अन्दर साम्राज्यों को निस्सार बना रही थी। बुड्ढा मन्त्री हैदराबाद लौट गया और वहां सन् १७२४ ई० में अपने आपको स्वतन्त्र घोषित कर बैठा। उधर रुहेलों ने अवध के पश्चिमोत्तर में स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया। बंगाल के सूबेदार ने भी दिल्ली पति को कर देना बन्द कर दिया। राजपूताने की वीरभूमि में राजपूतों ने भी अपनी स्वतन्त्र ध्वजा को समुन्नत कर दिया। मुहम्मदशाह अकर्मण्य की भांति सबकी स्वतन्त्रता को मान बैठा। इस भांति औरंगजेब के निधन के २१-२२ वर्ष पश्चात् ही मुगल राज्य क्षीणकाय हो गया।

नादिरशाह का आक्रमण (१७३९).—मुगल साम्राज्य के पतन एवं ह्रास का आभास ऊपर दिया जा चुका है। मुहम्मदशाह शासन कर ही रहा था कि फारस, काबुल और गजनी का स्वामी बनने के पश्चात् १७३९ ई० में लाहौर होता हुआ दिल्ली से १०० मील दूर करनाल युद्ध क्षेत्र में नादिरशाह आ धमका। दिल्लीपति हतोत्साह होकर युद्ध-क्षेत्र में विनय-पूर्वक अधीनता स्वीकार करने के लिए उपस्थित हुआ। नादिर मुहम्मदशाह के साथ बाबर, अकबर और शाहजहां की दिल्ली में महमान बनकर प्रविष्ट हुआ। एक दिन किंवदन्ती उड़ी कि नादिरशाह मर गया है। अतः दिल्ली निवासियों ने उसके कई सैनिक मार डाले। जब यह खबर नादिरशाह के पास पहुँची तो वह आग-बबूला हो गया, और उसने नगर को लूटने तथा नगरवासियों का वध करने का आदेश दे दिया। अन्त में ९ या १० घंटे के पश्चात् बहुत अनुनय-विनय करने पर नादिरशाह शान्त हुआ, और रक्त-शोषण की आज्ञा को बन्द किया। इसके बाद वह दो मास और दिल्ली में शाही महमान बन कर अपने साथ असंख्य द्रव्य, कोहेनूर, एवं तख्ते-ताउस को लेकर फ़ारिस वापस लौटा। सिंधु नदी के पश्चिम का देश भी सुल्तान को आक्रमणकारियों के हवाले करना पड़ा।

दिल्ली के उजड जाने के अतिरिक्त नादिर के आक्रमण के दो और भी महत्त्वपूर्ण परिणाम निकले। शक्तिहीन साम्राज्य को भारी धक्का लगा, दूसरे अन्य आक्रमणकारियों को भी भारत पर हमला करने का साहस होने लगा। सन् १७४८ ई० म अहमदशाह नादिर की हत्या कर भारत पर अग्रसर हुआ, किन्तु शाहजादा अहमद ने उसे सतलज नदी के तट पर सरहिन्द के मैदान में ऐसी बुरी तरह परास्त किया कि वह रणस्थली से भागने को ही मजबूर हुआ।

अहमदशाह (१७४८—५४) :—अहमदशाह के आक्रमण से एक मास पश्चात् मुहम्मदशाह दिवगत हुआ, और उसका पुत्र अहमदशाह गद्दी पर बैठ गया। उसके शासन काल में अहमदशाह दुर्रानी ने भारत पर दूसरा आक्रमण किया। आन्तरिक षड्यन्त्रो के कारण सुल्तान को मुलतान, पजाब और सिन्ध अफगानो को दे देने पडे। सन् १७५४ ई० में निजामुल्मुल्क के प्रपौत्र गाजीउद्दीन ने अहमदशाह का वध कर दिया और जहाँदारशाह के पुत्र आलमगीर द्वितीय को गद्दी पर आसीन किया।

आलमगीर द्वितीय (१७५४—५६ ई०) —गाजीउद्दीन तथा रुहेलो का सरदार नजीबुद्दौला दोनो आलमगीर द्वितीय को अपने वश में रखने का प्रयत्न कर रहे थे। गाजीउद्दीन ने अहमदशाह दुर्रानी के नियत किये हुए मुलतान के हाकिम को कारागार में डाल दिया। फलस्वरूप १७५६ ई० में अहमदशाह ने तीसरी बार भारत-भूमि पर आक्रमण किया और दिल्ली को मनमाना लूटा। उसके लौटते ही गाजीउद्दीन ने पेशवा के भाई राघोवा की मदद से आलमगीर द्वितीय का वध करवा दिया और कामवख्श के पुत्र को गद्दी पर बैठा दिया। अब की बार नजीबुद्दौला दिल्ली छोडकर भाग गया तथा गाजीउद्दीन पुन मन्त्री बन बैठा। राघोवा ने स्थिति अनुकूल पाकर अफगानो को पजाब से निकाल दिया और स्वय इस प्रान्त का शासक बन बैठा। इस प्रकार मरहठो ने समस्त महाराष्ट्र, गुजरात, मालवा, मध्य भारत, उडीसा तथा पजाब पर अधिकार कर लिया। किन्तु नजीबुद्दौला की कुमन्त्रणा से सन् १७५६ ई० में अहमदशाह पुन भारत पर आक्रमणकारी हुआ और चौथी बार आक्रमण कर मरहठो से पजाब छीनकर दिल्ली की ओर अग्रसर हुआ।

शाह आलम द्वितीय (१७५६—१८०६ ई०) :—पेशवा के पुत्र विश्वासराव तथा सदाशिवराव ने दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार कर कामवख्श के पुत्र को गद्दी से च्युत कर शाहआलम को बादशाह बना दिया। सन् १७६१ ई० में पानीपत के ऐतिहासिक क्षेत्र में अहमदशाह अब्दाली और मरहठो के मध्य तुमुल युद्ध हुआ।

पानीपत का तीसरा युद्ध (१७६१ ई०) :— अहमदशाह अब्दाली नादिरशाह का मन्त्री तथा सेनापति था। नादिरशाह के मरने के पश्चात् सन् १७४८ ई० में उसने काबुल तथा कन्धार पर अधिकार जमा लिया। अब्दाली अथवा दुर्रानी कबीले का सरदार होने के कारण वह अब्दाली तथा दुर्रानी नामों से प्रसिद्ध है। उसने भारत पर सात आक्रमण किये। इनमें सबसे प्रसिद्ध आक्रमण सन् १७६१ ई० का है। इसका कारण यह था कि राघोबा ने पंजाब से अहमदशाह अब्दाली के पुत्र को निकाल दिया था और उसके नियुक्त वजीर को भी देहली से भगा दिया। पानीपत के युद्ध-क्षेत्र में मरहठों ने उसका सामना किया। मरहठा फौजों का सेनापति सदाशिवभाऊ था। वह बहुत वीर था किन्तु मरहटे जिन्होंने गुरिल्ला युद्ध को छोड़ कर खुले मैदान में लड़ना अभी आरम्भ ही किया था, परास्त हुए। पराजय का कारण तोपचियों का विश्वासघात तथा उनकी आपस की ईर्ष्या थी। जब उनका शत्रु उनके सामने देश पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा था तब भी वह सेनापतित्व के लिए झगड़ रहे थे। फल यह हुआ कि वह परास्त हुए। पेशवा का भाई विश्वासराव और कई योग्य सेनापति मारे गये।

परिणाम :—युद्ध का परिणाम यह हुआ कि मरहठा शक्ति को बहुत धक्का लगा और उनकी भारत में हिन्दू साम्राज्य स्थापित करने की स्वर्ण कल्पना हवा हो गई। इससे अंग्रेजों ने अपना साम्राज्य स्थापित करना आरम्भ कर दिया और मरहठे उन्हें न रोक सके।

शाहआलम द्वितीय के समय की अन्य घटनायें—शाहआलम बहुत निकम्मा सम्राट् था। इसने बक्सर के युद्ध में अंग्रेजों से हार खाई। इस पराजय के बाद इलाहबाद की सधि से इसने अंग्रेजों को बिहार, उड़ीसा तथा बंगाल की दीवानी दे दी।

बहादुरशाह द्वितीय:—वह भारत का अन्तिम मुगल सम्राट् था। उसने भारत के प्रथम स्वतन्त्रता-युद्ध में भाग लिया, परन्तु वह सफल न हो सका फलस्वरूप वह कैद कर लिया गया और रंगून भेज दिया, जहाँ १८६२ ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

मुगल साम्राज्य के पतन के कारण:—औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता, उसका मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट करना, जजिया कर लगाना, राजपूतों तथा मरहठों के साथ बुरा व्यवहार उसके साम्राज्य की अवनति का विशेष कारण हुए। क्योंकि इससे हिन्दुओं में क्षोभ उत्पन्न हुआ, जिससे मरहठा व सिक्ख जाति का प्रादुर्भाव हुआ, जिन्होंने मुगल साम्राज्य को घोर पतन का संदेश दिया।

शिवाजी जब आगरा में थे, उस समय औरंगजेब ने उनके साथ बहुत बुरा बर्ताव किया, जिससे वह मुगल साम्राज्य को नष्ट भ्रष्ट करने का प्रण करके वहाँ से निकला।

दक्षिण में बीजापुर और गोलकुण्डा की मुसलमानी रियासतें थी। ये रियासतें दक्षिण की हिन्दू रियासतो से युद्ध करती थी। उनके राज्य को समाप्त कर देना औरंगजेब की बहुत बड़ी भूल थी क्योंकि उनकी समाप्ति के बाद मरहठो को मुगल साम्राज्य के भिन्न भिन्न भागों पर आक्रमण करने और लूट-मार करने की स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई, क्योंकि अब उनको रोकने वाली कोई स्थानीय शक्ति नही रही।

औरंगजेब प्रकृति से ही सन्दिग्ध था, वह अपने अधिक से अधिक योग्य व विश्वस्त सेनापति व पदाधिकारी का भी पूर्णतया विश्वास नही करता था, उसकी दोहरी सेनापतित्व की बुरी और दूषित प्रथा इसका ही परिणाम था। वह सोचता था कि अकेले सेनापति को अधिकार दे देने से कही ऐसा न हो कि वह स्वय शत्रु से मिल जावे और अधिक हानि पहुँचा दे। इसका बुरा प्रभाव यह होता था कि कोई भी अपना उत्तरदायित्व न समझता और इसलिये कोई भी युद्ध सफलता पूर्वक न चलता। राज्य-प्रबन्ध के मामले में भी वह इस प्रकार अपने उच्च से उच्च पदाधिकारी का विश्वास न करता था जिसके परिणाम होना अत्यधिक केन्द्रीयकरण-फलस्वरूप पदाधिकारियो की स्वय की निर्णय शक्ति नष्ट हो गई। इस प्रकार अत्यधिक केन्द्रीकरण ने राज्य की नींव खोखली कर दी।

सीमा-प्रदेश के युद्धो ने औरंगजेब को आर्थिक सकट में डाल दिया। इनमें जान व माल की अत्यन्त क्षति हुई। बार-बार दक्षिण से अच्छे-अच्छे सेनापति बुलवाये जाते, जिसके कारण दक्षिण में मरहठो को अपनी शक्ति बढ़ाने का अवसर प्राप्त हो गया।

राजा जसवन्तसिंह की मृत्यु के पश्चात् औरङ्गजेब ने उसके लड़को को बन्दी बनाकर मुस्लिम वातावरण में उनका पालन-पोषण करना चाहा। ऐसा करना बहुत बड़ी भूल थी। अपनी आन व मान पर मर जाने वाली राजपूत जाति औरङ्गजेब की हिन्दू-विरोधी नीति से अति क्षुब्ध थी अत क्रोधित हो उठी। वीर दुर्गादास अपने सैनिको की सहायता से राजपुत्रो को, बलात् मुगल शिविर से निकाल लेने में सफल हुआ। राजपूत रियासतें विद्रोही हो गईं विशेषतया मेवाड व मारवाड। इस प्रकार औरङ्गजेब ने राजपूत जैसी वीर व विश्वासपात्र जाति का सहयोग खो दिया।

मनसबदारी प्रथा, जो मुगल शासन का आधार थी, सैद्धान्तिक रूप से गलत

थी। माल और सेना-विभाग दोनों का कार्य एक ही पदाधिकारी को सौंपना सर्वथा भूल थी। एक मन्त्री माल-विभाग का अध्यक्ष, हो यदि दो वर्ष तक किसी युद्ध के लिए बाहर जा सकता था इस प्रकार की शासन-प्रणाली का असफल होना अवश्यम्भावी था। राजकर्मचारियों की विलासप्रियता और निर्दयता भी शासनव्यवस्था को छिन्न भिन्न करने में सहायक हुई। इसका ही परिणाम यह हुआ कि औरङ्गजेब के अन्तिम वर्षों में राजकोष रिक्त, युद्ध अविरामित, सेना अस्त-व्यस्त और पदाधिकारी राजद्रोही हो चले थे।

औरङ्गजेब के उत्तराधिकारी बहुत कमजोर थे, वे अपने मन्त्रियों के हाथ का खिलौना बन गये। बहादुरशाह, जहाँदारशाह, फर्रुखसियर और मुहम्मदशाह सब निर्बल और दुस्साहसी थे, वे मुगल-साम्राज्य का पतन न रोक सके।

पतन की ओर अग्रसर मुगल साम्राज्य नादिरशाह व अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों से और भी छिन्न-भिन्न हो गया।

उस समय यातायात के आधुनिक-से साधन न थे। इसलिये इतने बड़े साम्राज्य पर नियन्त्रण रखना असम्भव था, इस कारण भी इसका पतन हुआ।

पेशवाओं का अभ्युदय

बालाजी विश्वनाथ (१७१३—२०)—मुगल साम्राज्य के अन्त काल में मरहठे भारत की सबसे प्रभावशाली शक्ति रहे। औरङ्गजेब की मृत्यु के बाद बहादुर शाह प्रथम ने सम्भाजी के पुत्र साहू को दक्षिण भेज मरहठों को दो दलों में विभक्त करना चाहा, परन्तु सफल न हो सका। मरहठों में समझौता हो गया और साम्राज्य का बँटवारा साहू तथा उसकी सौतेली माँ में हो गया, परन्तु वह अत्यन्त विलासप्रिय था। राज्य का सारा कार्य उसने अपने प्रधानमन्त्री बालाजी विश्वनाथ के हाथों में सौंप दिया। प्रधानमन्त्री को मरहठे पेशवा कहते थे, इसलिए बालाजी विश्वनाथ प्रथम पेशवा के नाम से प्रसिद्ध है वह जाति का चितपावन ब्राह्मण था। उसने बड़ी योग्यता से राज्य-कार्य संभाला। इस प्रकार राज्य की बागडोर पेशवाओं के हाथों में आ गई, उसने अपनी दूरदर्शिता तथा योग्यता से न केवल पेशवा का पद ही पैत्रिक बना दिया वरन् मरहठा साम्राज्य को बहुत सुदृढ किया। उन्होंने १७१४ ई० से १८१८ ई० तक लगभग १०४ वर्ष मरहठों के नाम से भारत पर राज्य किया और पूना को अपनी राजधानी बनाया।

बालाजी विश्वनाथ ने फौज रखने के लिए जागीरदारी की प्रथा को फिर से प्रचलित किया। उसके समय में सैयद भाई हुसैनअली ने फर्रुखसियर को पद से

हटाने में सहायता माँगी। पेशवा दस हजार सेना ले उसकी सहायता के लिए गया। उसने फर्रुखसियर को गद्दी से उतार कर मुहम्मदशाह को सिंहासन पर बैठाया। इसके बदले उसे दक्षिण से चौथ तथा सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार प्राप्त हुआ और उसके राज्य को एक स्वतन्त्र राज्य मान लिया गया। सन् १७२० ई० में उसकी मृत्यु हो गई और उसका पुत्र बाजीराव पेशवा हुआ।

बाजीराव प्रथम (१७२०—४०):—बाजीराव प्रथम सबसे योग्य पेशवा गिना जाता है। युवावस्था से ही उसे विजय की आकाक्षायें थी। १७२४ ई० में उसने मालवा पर आक्रमण किया और उस पर अधिकार कर लिया। १७२९ ई० में उसने निजाम को चौथ देने के लिये बाध्य किया। इसके बाद गुजरात बुन्देलखण्ड तथा बरार की बारी आई। बाजीराव मुगल साम्राज्य का अन्त कर उसकी जगह मरहठा साम्राज्य का अन्त कर उसकी जगह मरहठा साम्राज्य स्थापित करना चाहता था। इसलिये १७३५ ई० में वह देहली की ओर बढा। मुगल सम्राट् ने निजाम उल-मुल्क को अपनी सहायता के लिये बुलाया। भोपाल के निकट निजाम तथा पेशवा में मुटभेड हुई। निजाम पराजित हुआ और दोनो दलो में सन्धि हो गई। जिसके अनुसार मालवा तथा नर्वदा व चम्बल नदी के बीच के प्रदेश पर मरहठों का अधिकार स्वीकार कर लिया गया। इसके अतिरिक्त मुगल सम्राट् मुहम्मदशाह ने ५० लाख रुपया युद्ध क्षति के रूप में मरहठो को देना स्वीकार किया। १७३९ ई० में बाजीराव ने पुर्तगालियो को हराया तथा वेसीन के टापू पर अपना अधिकार कर लिया।

अपने जीवन के अन्तिम भाग में बाजीराव ने मुगल साम्राज्य के सूबो को मरहठा सरदारों के प्रभाव क्षेत्रो में विभाजित कर दिया। जो क्षेत्र जिस सरदार के हाथ में आया वहां उसे चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार था। इस प्रकार मरहठा साम्राज्य सरदारो में विभक्त हो गया। इन सरदारो में सिंधिया, होलकर, भौंसला तथा गायकवाड मुख्य थे। जिन्होंने बाद में स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिये।

बाजीराव मुख्यत सिपाही था। उसने शासन कार्य में कोई रुचि नही दिखाई। परन्तु उसने मरहठा साम्राज्य में बहुत वृद्धि की। निजाम तथा मुगल सम्राट् की शक्ति को धक्का पहुँचा उसने मरहठो का प्रभाव इतना बढा दिया कि वह भारत की सबसे महान् शक्ति हो गये। १७४० ई० में उसकी मृत्यु हो गई और उसके पश्चात् बालाजी बाजीराव पेशवा हुआ।

बालाजी बाजीरावः—(१७४०—६१) उसके समय में मरहठा शक्ति उन्नति के शिखर पर पहुँच गई। राघोजी भौसला तथा भास्कर पंडित के सेनापतित्व में मरहठो ने उडीसा पर आक्रमण कर उसे खूब लूटा और बंगाल पर निरंतर कई आक्रमण किये। आक्रमणो से तंग आकर बंगाल के शासक अलीवर्दीखाँ ने उडीसा का प्रान्त तथा १२ लाख रुपया वार्षिक चौथ मरहठो को देना स्वीकार किया। इसके बदले राघोजी ने वचन दिया कि वह बंगाल पर आक्रमण न करेगा।

सन् १७४८ ई० में साहू की मृत्यु हो गई। मृत्यु के समय उसने साहू से एक लिखित आज्ञा ले ली जिसके अनुसार पेशवा को राजा के नाम पर मरहठा साम्राज्य का शासन-प्रबन्ध करने का पैनिक अधिकार मिल गया। इसी वर्ष मुगल बादशाह मुहम्मदशाह की मृत्यु हो गई। जिस पर सब दल अपनी-अपनी शक्ति स्थापित करने का प्रयत्न करने लगे। सफदरजंग ने जो मुगल सम्राट् का प्रधान मंत्री था मरहठो से सहायता मांगी जिससे कि वह रुहेलो को परास्त कर अपना प्रभुत्व स्थापित कर सके। परन्तु शीघ्र ही सफदरजंग वजीर पद से हटा दिया गया। इस घटना से लाभ उठाकर मरहठो ने उसके प्रतिद्वन्दी को सहायता दे दिल्ली में अपना प्रभुत्व स्थापित किया।

सन् १७४८ ई० में निजाम की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के बाद कर्नाटक में अराजकता फैल गई। हैदराबाद की गद्दी के लिये दो उम्मीदवार खडे हो गये। इनमें से एक ने अंग्रेजो और दूसरे ने फ्रांसीसियो से सहायता माँगी। अन्त में फ्रांसीसियों को सफलता प्राप्त हो गई और फ्रांस प्रभुत्व हैदराबाद में बढ गया। मरहठे इसे सहन न कर सके। अत. उन्होने निजाम पर आक्रमण कर दिया और १७५९ में उदगिर में उसे परास्त किया। दोनो दलो में सुलह हो गई जिसके अनुसार मरहठों को अमीरगढ, दौलताबाद, बीजापुर, अहमदनगर तथा बुरहानपुर के किले तथा कुछ जमीन मिली।

सन् १७६० ई० में मरहठा शक्ति पराकाष्ठा हर पर पहुँच गई। उन्होने प्रायः सम्पूर्ण भारत से चौथ वसूल की। परन्तु १७६१ ई० में पानीपत के तीसरे युद्ध में जिसका पहिले उल्लेख किया जा चुका है उनकी पराजय हुई जिससे मरहठा शक्ति को बडा धक्का लगा। पेशवा को इस पराजय का इतना दु.ख हुआ कि उसी वर्ष उसकी मृत्यु हो गई और उसका पुत्र माधोराव पेशवा हुआ जिसका वर्णन आगे किया जायेगा।

बालाजी अपने पिता के समान युद्ध कुशल न था। परन्तु वह राजनीतिज्ञ उससे कही बढकर था। वह एक योग्य शासक और कुशल प्रबन्धक था। राज्य कर्म-

-चारियों को योग्य बनाने के लिए उसने उनकी शिक्षा का एक स्कूल खोला। उसने सेना में भी कई सुधार किये। उसने सिपाहियों को अच्छे अस्त्र-शस्त्र देने की व्यवस्था की। परन्तु सिपाहियों को युद्धस्थल में भी स्त्रियाँ साथ ले जाने की आज्ञा दे उसने बड़ी भूल की।

प्रश्न

१. सैयद भाई कौन थे ? उनके उत्थान-पतन के विषय में तुम क्या जानते हो ?
२. मुगल साम्राज्य के क्या कारण थे।
३. पेशवा बाजीराव के पतन के विषय में तुम क्या जानते हो ?
४. बालाजीराव ने किस प्रकार मरहठा शक्ति को बढ़ाया ?
५. पानीपत के तीसरे युद्ध का क्या महत्त्व है ?

अध्याय ६

मुगल काल पर दृष्टिपात

मुगल-राज-सत्ता :—सम्पूर्ण मुगल इतिहास पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि मुगल-राजकीय-सत्ता कोई धार्मिक सस्था न थी वरन् उसमें सभी धर्मों का सम्मिश्रण था। उसमें केवल मुस्लिम-सिद्धान्तवाद अर्थात् शरअ का हस्तक्षेप न था। मुगल सम्राट् प्राय. शरअ की व्यवस्था को आधार न बना, भारतीय रीति-रिवाज, फारसी प्रथाओ एव नियमो को आधार मानते रहे। नौरोज, सिजदा इत्यादि प्रथायें फारसी प्रभाव की द्योतक है। उनकी न्याय-व्यवस्था, धार्मिक उदारता, साहित्यिक-प्रेम तथा शासन प्रबन्ध भारतीय परिछाया लिए हुए है। वह एक निरंकुशवाद का समय था जिसमें सम्राट् की इच्छा सर्वोपरि तथा उसका शब्द ही नियम था। वैधानिकता अथवा निर्वाचन इसमें नाम को भी नही था। प्रजातन्त्र इसमें केवल इतना ही था कि इसके नियम तथा शासन-प्रणाली प्रजा की इच्छानुकूल थी; और ये सम्राट् भी अधिक से अधिक जनता की इच्छा जानने एव उसे क्रियान्वित करने का अधिक-से-अधिक प्रयत्न करते थे। फलस्वरूप समाज को अधिक सुखी एव समृद्ध बनाना सदैव उनका लक्ष्य रहा। मुगल-सम्राटो ने शासन के स्थापन-काल में ही भली भाँति समझ लिया था कि धार्मिक तथा आत्मिक-स्वतन्त्रता, स्थायी-साम्राज्य के मूल-सिद्धान्त है। यही कारण था कि उन्होंने 'सुलह-ए-कुल' की नीति का अनुसरण किया। परिणाम यह हुआ कि मुगल शासन की जडें निरन्तर भारतीय हृदयो पर गहनता प्राप्त करती चली गई और यद्यपि औरगजेब ने अविश्वास एव धर्मान्धता द्वारा उक्त सिद्धान्त के प्रतिकूल आचरण कर, शासन की जडें खोखली करदी, तथापि इस राज-वृक्ष के पतन में पचास वर्ष लगे, और गिरते गिरते भी १८५७ ई० के स्वतन्त्रता सग्राम में एक बार पुनः सम्भलने का वह प्रयास किया, कि यदि, उसकी शाखायें तथा अग इस पर वज्राघात न करती तो सम्भव था कि यह आज एक वैधानिक सम्राट् के रूप में दृष्टिगोचर हो, द्वि-जाति सिद्धान्त पर भारतीय-विभाजन एव काश्मीर-समस्या का प्रश्न ही उपस्थित न होने देता।

मुगल-शासन-प्रबन्ध:—मुगल सम्राट् भी दिल्ली सल्तनत के अन्य सम्राटो की भाँति निरंकुश थे। परन्तु वे अपनी नीति तथा व्यवहार में उनसे सर्वथा भिन्न

थे। दमन, कठोर-दण्ड, एवं कट्टर धर्मवाद दिल्ली सम्राटों का ब्रह्मास्त्र रहा, जिसपर निर्धारित साम्राज्य एक सुल्तान के शासन-काल में भी स्थिर न रह सका। अलाउद्दीन की वृद्धावस्था में षड्यन्त्र तथा मोहम्मद तुगलक के साम्राज्य-व्यापी विप्लव इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। मुगल-शासन की भित्तियाँ मानवता, उदारता, धार्मिक स्वतन्त्रता एवं प्रजा के शारीरिक तथा बौद्धिक और आध्यात्मिक-विकास पर अवलम्बित थीं। यही कारण है, कि उनका साम्राज्य एक सौ पचास वर्ष पर्यन्त अविरल उन्नति की ओर अग्रसर रहा। औरंगजेब का उक्त-नीति-परित्याग फलत साम्राज्य-पतन अतीत से शासन-वर्ग को सम्बोधित कर कहता है, कि योग्य से योग्य राजनीतिज्ञ तथा वीर से वीर सेनानी, जन-साधारण की आत्मा को ठेस पहुँचा, और उनकी भावनाओं का निरादर कर, सफल-सिद्ध नहीं हो सकता, वरन् अपने इन कुत्सित एवं अवाछनीय कृत्यों से वह अपनी कब्र खोदता है। मुगल राज्य-प्रबन्ध का वर्णन प्रत्येक सम्राट् के वर्णन के साथ, विस्तृत रूप से दिया जा चुका है। यहाँ सक्षेप में ही इसका आभास देना अभीप्सित होगा। शासन-सुविधा के हेतु समस्त साम्राज्य सूबों में विभक्त था जिनकी सख्या साम्राज्य विस्तार के अनुसार घटती-बढती रहती थी। सूबे का अफसर सूबेदार कहलाता था, जिसकी सहायतार्थ माल-विभाग का एक अफसर होता था, जो 'दीवान' कहलाता था। प्रत्येक सूबा सरकारों में विभक्त था, जो फौजदार नामक एक पदाधिकारी के सुपुर्द था। सरकार परगनों में और परगना ग्रामों में विभक्त था। परगने का हाकिम 'कानूनगो' तथा गाँव का हाकिम 'मुकद्दम' कहलाता था।

न्याय :—आधुनिक युग की भाँति अदालतें श्रेणी-बद्ध न थीं। सम्राट ही अन्तिम न्यायाधीश था। अदालत की कार्यवाही लिखित-रूप में नहीं होती थी। आज-कल की भाँति कानून की व्याख्या करने के हेतु वकील न थे, परन्तु न्याय सस्ता और शीघ्र होने वाला था। मुसलमानों के अभियोग मुस्लिम नियमानुसार काजी तथा हिन्दुओं के अभियोग हिन्दू नियमानुसार हिन्दू न्यायाधीश तै करते थे। यदि कोई ऐसा पेचीदा मामला हो जिसमें एक पक्ष में हिन्दू तथा दूसरे पक्ष में मुसलमान हों, तो उसे मुस्लिम न्यायाधीश ब्राह्मण पडित की सहायता से, जो उन्हें हिन्दू-विषयक नियमों का परामर्श देता था, तै करते थे। न्याय की दृष्टि में हिन्दू एवं मुसलमान दोनों समान थे। प्रांतीय गवर्नर अर्थात् सूबेदार व स्वयं सम्राट् भी अपील सुनते थे और यदि उचित समझते तो निम्न अदालत के निर्णय में परिवर्तन कर देते थे। दंड-विधान कठोर था परन्तु कठोरता के कारण अपराध कम होते थे।

१ राजकीय आय :—भूमिकर, चुङ्गी, सहायक राजाओं से

भूमि की आय, जकात एवं भेंट राजकीय-आय के प्रमुख साधन थे। अकबर ने 'जजिया' स्थगित कर दिया था। जहांगीर तथा शाहजहां के शासन काल में भी उसको लागू न किया गया, परन्तु गाजी औरंगजेब ने उसे हिन्दुओं पर लागू कर दिया। इसके अतिरिक्त सम्राटों तथा सूबेदारों ने परिस्थिति के अनुसार (हिदारी पिदारी) इत्यादि बहुत से कर लागू कर रखे थे। आलमगीर ने इस प्रकार के शरअ-विरुद्ध करों को स्थगित कर दिया।

पुलिस और गुप्तचर-विभाग:— मुगल-साम्राज्य जैसे सुविस्तृत साम्राज्य में एक सुयोग्य पुलिस-विभाग के अभाव में शांति स्थापित रखना असम्भव था। कोतवाल पुलिस का प्रमुख कर्मचारी था। उसकी सहायतार्थ छोटे-बड़े अन्य कई पदाधिकारी होते थे। कोतवाल के कर्तव्यों का ब्यौरा पहिले विस्तृत-रूप से दिया जा चुका है। व्यापार-वृद्धि, साम्राज्य-व्यापी-शांति तथा समृद्धि पुलिस की सुव्यवस्था एवं कर्तव्य परायणता का परिचय देती है। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि एक अच्छा गुप्तचर-विभाग निरंकुश शासन का आधार है। मुगल-सम्राटों ने इसी के हेतु दो प्रकार के पदाधिकारी रखे, जिन्हें 'वाका नवीस' और खुफिया नवीस' कहते थे। वाका नवीस अपने क्षेत्र में होने वाली समस्त घटनाओं का विवरण लिखते थे और उस विवरण को केन्द्र में भेजते थे। खुफिया नवीस, जो प्रत्येक प्रांतीय राजधानी में नियुक्त थे, गुप्त-रूप से पदाधिकारियों के आचरण तथा प्रांतीय राजधानी व साम्राज्य की महत्वपूर्ण घटनाओं का पूर्ण परिचय अपनी गुप्त रिपोर्टों द्वारा सम्राट् तक पहुँचाते थे।

डाक विभाग:—गुप्तचर-विभाग की सफलता के लिये एक अच्छा डाक-विभाग भी अनिवार्य है। अतः मुगल सम्राटों ने पैदल डाक तथा घुड़सवार-डाक का उचित प्रबंध किया। यह डाक हर घड़ी चलती रहती थी। इसका विशेष वर्णन अकबर के समय में दिया जा चुका है।

साहित्य व कला-प्रेम:—मुगल सम्राटों का साहित्य एवं कला-प्रेम विशेष सराहनीय तथा उल्लेखनीय है। उनकी छत्रछाया में अनेक श्रेष्ठ साहित्यिक तथा कला-कोविद अपनी-अपनी प्रतिभा प्रस्फुटित करते रहे। अबुलफजल, फैजी, रहीम खानखाना, तुलसीदास, सूरदास, केशवदास इत्यादि धर्म-धुरंधर एवं दिग्गज पण्डित इसी काल की महा देन है। ताजमहल जैसी ललित कला की प्रतीक इमारतें मुगल-काल की भास्कर शिल्पकला की सजीव मूर्ति हैं। इस काल की साहित्यिक एवं

ति का [illegible] सम्राट [illegible] से [illegible] है।

तत्कालीन भारत को भास्कर-शिल्प में सर्वश्रेष्ठ ठहराने के लिए मुगल सम्राटों द्वारा निर्मित भव्य भवन पर्याप्त से भी अधिक है।

मुगल साम्राज्य और समाजः—जबकि देहली सल्तनत के शासन-काल में भारतीय समाज हिन्दू व मुस्लिम संस्कृति की विभिन्न कोणों पर अलग अलग बनकर सजा रहा था, मुगल-साम्राज्य हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति के सम्मिश्रण में विशेष सहायक हुआ। उनका एक ही प्रकार की संस्थाओं में साथ-साथ शिक्षा प्राप्त करना, कन्धे-से-कंधा भिड़ाकर फौज में प्रयाण करना, दोनों जातियों में सान्निध्य लाने में विशेष सहायक सिद्ध हुआ। फारसी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाना; उसमें और भी सहायक हुआ। दोनों जातियों के साहित्य तथा कला के सम्मिश्रण एवं पारस्परिक अध्ययन ने इसे विशेष प्रगति प्रदान की। बहुत-से मुसलमानों ने हिन्दू भाषा, कला तथा विज्ञान का विशेष अध्ययन किया। फैजी संस्कृत भाषा का अच्छा विद्वान् था। 'रहीम' हिन्दी का माना हुआ कवि है। शिक्षा का माध्यम फारसी होने के कारण प्रत्येक हिन्दू और मुसलमान को वह पढ़नी ही पड़ती थी। दैनिक बोलचाल में फारसी तथा भाषा के सम्पर्क एवं मिश्रण से आम बोलचाल की एक नवीन भाषा उर्दू का अभ्युदय सांस्कृतिक सम्मिश्रण में अधिक सहायक हुआ। इस प्रकार भाषा, साहित्य, कला तथा दैनिक सम्पर्क एवं मुगल सम्राटों की उदारता से दोनों जातियों को सांस्कृतिक-एकता की ओर अग्रसर होना पड़ा। सम्भव था कि औरंगजेब तथा उसके उत्तराधिकारी यदि दारा शिकोह या अकबर जैसी विचार-धारा लिये हुये सिंहासनारूढ़ होते, तो शीघ्र ही हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतियाँ पारस्परिक वैमनस्य त्याग कर भारतीय संस्कृति का नाम धारण कर लेतीं और अन्य देशों की भाँति धर्म एक व्यक्तिगत विचारधारा की वस्तु बन राष्ट्रीयता अथवा एकीकरण में बाधक न होता, जैसा कि वर्तमान भारतीय राजनैतिक इतिहास में घटित हुआ।

मुगल दरबार की शान-शौकतः—मुगल दरबार का वैभव विदेशी यात्रियों के लिये सदैव आश्चर्य की वस्तु रहा। पाश्चात्य देशों में यह शानशान कहावत का रूप धारण कर गई। किसी समारोह के अवसर पर उनकी शोभा का वर्णन अकथनीय हो जाता था। सम्राट् का रत्न-जटित मुकुट, मयूराकृति का बहुमूल्य रत्न जटित सिंहासन, सभासदों के बहुमूल्य वस्त्र, राजदरबार की जगर-मगर सर्वसाधारण को इतना चकित करती थी, कि वे अवाक् रह जाते थे। प्रति बुधवार को नमाज के पश्चात् आम दरबार होता, जिसमें प्रसिद्ध गायक, कहानी कहने वाले, भाषण-विशारद तथा पहलवान सम्राट् और सभासदों के सम्मुख अपनी-अपनी कला करते थे।

वेश भूषा:—शीत प्रदेश के मूल निवासी होने के कारण मुगलों को सूती कपडो के स्थान पर ऊनी कपडे अधिक प्रिय थे। ग्रीष्म ऋतु में अधिकतर वे रेशमी वस्त्र धारण करना अधिक पसन्द करते थे। मध्य-वर्ग की वेश-भूषा पर भी मुगल प्रभाव पडा। पायजामे के स्थान पर, जो प्राय: पहिले पहिना जाता था, सिलवार पहिनने की प्रथा चल गई। ऊँची एडी के जूते के स्थान पर बिना एडी के जूते दृष्टि-गोचर होने लगे। एक प्रकार की अचकन, जिसे जामा कहते थे, जो पहिले घुटनो तक नीची होती थी, और आगे चलकर नीचाई मे एडी तक पहुँच गई, दरबार की पोशाक बन गई। भारतीय वेष भूषा में पगडी का रिवाज भी मुगलो की ही देन है। स्त्रियो की वेश-भूषा के विषय में केवल इतना कहा जा सकता है कि सम्पन्न घरानो मे सिलवार तथा साडी का रिवाज था। स्त्रियाँ तथा पुरुष दोनो ही में सुन्दर आभूषणो का प्रयोग था। स्त्रियाँ प्राय कडे, कगन, हार तथा कांधनी पहनती थी, पुरुष पेटियां तथा गले में कण्ठा, तोडा अथवा गुलूबन्द को धारण करते थे। ये आभूषण सोने-चाँदी के बने हुये होते थे। नाक का बुलाक तथा कानो की हल्की बालियाँ मुसलमानो मे प्रचलित हुई। इसके अतिरिक्त पान खाना एव मेंहदी रचाना भी इन्होने ही प्रचलित किया। इस प्रकार स्त्रियो को आभूषणो एव परिधानो से सुसज्जित कर कुटुम्ब में उन्हे एक आदरणीय स्थान दिया जाता था। स्वय 'हरम' शब्द का अर्थ, जो 'स्त्री निवास' का पर्यायवाची है, 'पवित्र' है जो प्रगट करता है कि स्त्री समाज में एक आदरणीय स्थान रखती थी।

दास-प्रथा:—ससार के अन्य देशों की भाँति मुगल भारत में भी दास-प्रथा प्रचलित थी, परन्तु मुस्लिम दास-प्रथा एव अन्य देशो की दास-प्रथा में बडा अन्तर था। अन्य देशों का दास समाज में निम्नस्थान रखता था, जो अपने स्वामी के इशारे पर नाचता था। इसके विपरीत भारतवर्ष का दास अपनी योग्यतानुसार अधिक से अधिक उन्नति कर सकता था। पूर्ण शताब्दी पर्यन्त दास वश का भारत पर शासन उक्त कथन की पुष्टि में प्रबल प्रमाण है। जहाँ तक दासो को मुक्ति-पत्र देकर स्वतन्त्र नागरिक बनने का अवसर प्रदान करने का प्रश्न है, यह तो एक साधारण सी बात थी।

आमोद-प्रमोद:—मुगल-सम्राट आमोद प्रमोद के बहुत प्रिय थे। शतरंज तथा चौपड का खेल उन्हें बहुत प्रिय था। अकबर ने चौपड तथा ताश की भाँति के अन्य कई खेलो का आविष्कार किया। गाना तथा चित्रकला उनके आमोद-प्रमोद के विशेष साधन थे। क्रिकेट एव पोलो (चौगान) का उन्हें बहुत प्रेम था। अकबर ने एक ऐसी गेंद बनाई थी, जो रात्रि में भी चमकती थी, जिससे कि पोलो रात्रि-

समय भी खेली जा सके। रथों की दौड़, कबूतर-बाजी तथा हाथियों की लड़ाई का भी उन्हें पूरा शौक था।

आर्थिक दशा:—प्रारम्भिक मुगल-सम्राट् बाबर तथा हुमायूँ अपनी साम्राज्य स्थापना में ही इतने व्यस्त रहे कि वे भारत की आर्थिक उन्नति की ओर दत्तचित्त न हो सके, परन्तु जब शासन-सत्ता सुदृढ़ हो गई, तो मुगल-सम्राटों का ध्यान जनता की समृद्धि की ओर गया।

कृषि:—भारत कृषि-प्रधान देश है। मुगल-सम्राटों ने भी इससे भली भाँति जानकारी कर ली थी। अतः उन्होंने कृषि की उन्नति की ओर विशेष ध्यान दिया। उन्होंने बहुत सी बजर भूमि को तुड़वाकर कृषि में सम्मिलित किया। सिंचाई की सुविधा के लिये नहरें निकलवाई, तथा बहुत से कुएँ और तालाब खुदवाये, जिससे कृषि में उन्नति हुई। वर्तमान खोज से विदित होता है कि तत्कालीन कृषक आधुनिक कृषक से कहीं अच्छा जीवन बिताता था और वह समृद्धि-शाली था। इसका एक कारण तो यह था कि उस समय औसत उपज प्रतिबीघा अधिक थी। अर्वाचीन युग में भूमि पर जनसंख्या का अधिक भार है, जिसके कारण भूमि में कई कई फसलें करनी पड़ती हैं। अतः भूमि की उत्पादन-शक्ति क्षीण होती जाती है। जहाँ तक अन्य वर्ग का प्रश्न है, उसकी मजदूरी सिक्के के रूप में ही दी जाती थी, यद्यपि वह थोड़ी थी किन्तु भाव इतने सस्ते थे कि एक आदमी की मजदूरी तीन आदमियों की उदर-पूर्ति के लिये पर्य्याप्त थी।

भूमि-प्रबन्ध के विषय में अकबर के शासन-काल का वर्णन करते हुये विस्तृत रूप से लिखा जा चुका है। यहाँ केवल इतना कहना है कि भूमि-कर का ३३ प्रतिशत था। वर्तमान काल में मालगुजारी उपज की २० प्रतिशत है। मुगल काल में इतनी मालगुजारी रखने का भी एक कारण था। वह यह है कि, उस समय आज के-से राजकीय आय के अन्य साधन इतने अधिक न थे। भूमिकर ही राजकोष की प्रमुख आय थी। अतः राज्य का व्यय चलाने के हेतु इसकी दर ऊँची रखनी पड़ती थी।

दुर्भिक्ष-सहायता:—दुर्भिक्ष के समय जनता को राज्य की ओर से विशेष सहायता प्रदान की जाती थी, या क्षति के अनुसार भूमि-कर में छूट मिल जाती थी। दुर्भिक्ष-पीड़ित क्षेत्र में राजकीय कोठारों से जनता में बिना मूल्य के अन्न बाँटा जाता था। राज्य की ओर से औषधालय तथा सदाव्रत खोल दिये जाते थे। मुफ्त भोजन

की व्यवस्था की जाती थी। परन्तु यातायात के सुलभ साधनो के अभाव में दुर्भिक्ष का सामना आज की भाँति उचित रूप से नही किया जा सकता था।

बुनाई इत्यादि:—कृषि के अतिरिक्त अन्य व्यवसायो का उल्लेख करते हुए विदेशी यात्री लिखते है कि रेशमी तथा सूती कपडे के बहुत से पुतलीघर देश में स्थित थे। सोने चादी के काम, सुसज्जित बर्तन, लोहे का सामान, अस्त्र-शस्त्र तथा कागज बनाने के कारखाने देश में विद्यमान थे।

व्यापारः—भारत अपने व्यापार के लिये बहुत प्रसिद्ध था। यहाँ से बहुत-सा कपडा विदेशो को जाता था। फारस, टर्की, सीरिया अरब, इथोपिया इत्यादि को पूरा कपड़ा भारत से ही मिलता था। लाहौर तथा आगरे की दरियाँ एवं कालीन काश्मीर के शाल विश्वव्यापी ख्याति प्राप्त थे। ढाके की मिकन, जिसे 'आवेरवाँ' अर्थात् बहता हुआ पानी कहते थे, सारे ससार में जाती थी। भारत समस्त ससार के नील-व्यापार का पूर्ण अधिकारी था। इसके अतिरिक्त चमडा भी बहुतायत से बाहर भेजा जाता था। हीरे-जवाहरात, दवाइयाँ इत्यादि भी पर्याप्त मात्रा में योरप जाती थीं। दूसरे देशो से आने वाली वस्तुओ में ऊनी कपडा, कच्चा रेशम, चीनी का सामान तथा कागज मुख्य थे। अरब, फारस एवं टर्की से घोडो का व्यापार होता था। भारत के व्यापार का ब्यौरा देखकर प्रत्येक व्यक्ति भली भाँति अनुमान लगा सकता है कि निश्चय ही भारत 'सोने की चिडिया' कहलाने का पूर्ण अधिकारी था।

जलयान-उद्योग :—मुगलकाल में जलयान उद्योग भी उन्नति के शिखर पर था। भारत के पश्चिमी तट पर कई प्रसिद्ध केन्द्र थे जहाँ छोटे बडे सब प्रकार के जहाज बनते थे। अंग्रेजो और फ्रांसीसियो ने अपने कई जहाज यहीं बनवाये थे। १६६८ ई० में ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी के सभापति ने बम्बई में एक जहाज बनाने की कम्पनी खोलने के हेतु यहाँ के अंग्रेज अधिकारियों को पत्र लिखा, जिसके उत्तर में ये शब्द उन्हें प्राप्त हुए "यहाँ के कारीगर इस कला में इतने प्रवीण है कि वे अंग्रेज अथवा डच जहाजो से कही बडे तथा सुन्दर जहाज बहुत आसानी से बना सकते है।" अतः सिद्ध होता है कि जब वर्तमान व्यावसायिक-क्रान्ति का जन्मदाता योरुप अविकसित पडा था उस समय भारतवर्ष उद्योग एवं व्यवसाय में ससार का शिरोमणि था। विश्व इसके मुँह की ओर निहारता था।

धार्मिक दशा :—मुसलमानो का भारतवर्ष में आगमन यहाँ के धार्मिक इतिहास में एक विशेष परिवर्तन का द्योतक है। इनसे पूर्व जितने भी विदेशी भारत आये वे सब हिन्दू धर्म में विलीन हो गये। उनकी कोई पृथक् सत्ता दृष्टिगोचर नही होती।

किस प्रकार ग्रीक बैक्ट्रियन, शक, हूण इत्यादि जातियाँ वैदिक संस्कृति की परिछाया में आभारतीय समाज के प्रमुख अंग बन गई ? इसका वर्णन 'हिन्दू-काल' में विस्तृत रूप से दिया जा चुका है। इसके विपरीत १२०० वर्ष पूर्व भारत में प्रविष्ट होने वाली मुस्लिम जाति न केवल अपनी सत्ता ही, अपितु समवृद्ध -सत्त्वा भी धारण किये हुए है। इसके कारणों की व्याख्या इतिहास के एक जिज्ञासु को आवश्यक हो जाती है।

मुसलमानों के आने से पूर्व जब कोई जाति भारत में आई तब हिन्दू सभ्यता ने अपनी अनुशीलन-शक्ति का ऐसा परिचय दिया कि वह अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित ही न कर सकी। नवागन्तुक जाति से मिलने वाले तथा उससे सम्बन्ध स्थापित करने वाले मनुष्य घृणा, बहिष्कार एवं धर्म भ्रष्टता के पात्र नहीं वरन् आदर और सम्मान के विशेष पात्र समझे गये। चन्द्रगुप्त मौर्य ने स्वयं ग्रीक राजकुमारी हैलन से विवाह सम्पन्न कर समाज का पथप्रदर्शन किया। इस प्रकार भारतीय समाज ने आगन्तुक-जाति से समता के स्तर पर मिल कर मानव प्रेम का परिचय दिया। फलतः आगन्तुक जाति अल्पकाल में ही उनसे वैवाहिक सम्बन्ध आदि स्थापित कर भारतीय संस्कृति में ही रम गई, और अपनी मातृभूमि से सम्बन्ध-विच्छेद कर भारत के ही हो रहे। मुसलमान आगमन के समय हिन्दू-सभ्यता ने अपनी इस अनुशीलन नीति का परित्याग कर दिया। अपने में विलीन करने के स्थान पर उन्होंने इनका बहिष्कार करना आरम्भ कर दिया। उनसे मिलने वाला, उनके साथ खाना खाने वाला, उनसे वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने वाला मनुष्य समाज में घृणा की दृष्टि से देखा जाने लगा, और उसको जाति एवं समाज से बहिष्कार कर दिया गया। उसको धर्म-भ्रष्ट ठहराकर उसके लिए हिन्दू-धर्म-द्वार बंद कर दिया। फिर नवागंतुक का तो कहना ही क्या ? दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि हिन्दू सभ्यता ने नवीन सभ्यता से मिलने के बदले न मिलने का प्रयत्न किया। उससे मिलना उसे इतना असह्य प्रतीत हुआ कि उसने अपने आपको इसकी परिछाया तक में न आने दिया। वह अपने रीति रिवाजों, अपने धार्मिक सिद्धान्तों, अपनी व्यवस्था तथा अपनी रूढ़ियों में इतनी चिपट गई कि जैसे वही सब कुछ हो और उनपर किसी दूसरे सिद्धांत की परिछाया पड़ना, उन सिद्धान्तों के अनुयायियों का किसी दूसरे सिद्धांत के मानने वाले व्यक्तियों से मिलना सत्य पर कुठाराघात होगा। हिन्दू-सभ्यता का यह परिवर्तन एवं संकुचित-दृष्टिकोण एकीकरण का इतना कट्टर विरोधी था कि किसी प्रकार दोनों सभ्यताओं का सम्मिश्रण संभव नहीं था।

दूसरे मुसलमान भारत में स्वर्ग, नरक, खुदा, पैगम्बर भ्रातृभाव, भाषा एवं भूषा इत्यादि सब विषयो पर ऐसे स्पष्ट सिद्धात लेकर आये कि वे स्वय उन्हें छोडने, उनका समझौता करने अथवा सशोधन करने को उद्यत न थे। इसके विपरीत हिन्दू-वर्ग अपने सिद्धातो को इन नवीन सिद्धातो की कसौटी पर कसना तो दूर उनसे विचार विनिमय करना या मिलने तक को तैयार न था। मुसलमानो से पूर्व आने वाली जातियाँ इस प्रकार के निश्चित तथा अटल सिद्धान्त लेकर भारत में प्रविष्ट न हुई। फलतः उन्होने शीघ्र ही हिन्दू-सस्कृति को अपना लिया और भारतीय समाज में विलीन हो गईं।

एकीकरण की बाधाओ पर प्रकाश डालने के अनन्तर यह समझना आवश्यक है कि भारतवर्ष में मुसलमान धर्म की वृद्धि किन और विशेष कारणो से हुई?

प्रत्येक धर्म के अनुयायी दो भागो में विभक्त किये जा सकते है। एक विद्वत्मण्डली, जो उस धर्म के सिद्धातो को समझ उसे अपनाती है, दूसरी साधारण वर्ग की मण्डली जो उस धर्म के बाह्य स्वरूप–त्योहार, रीति-रिवाज, पहनाव, इत्यादि से प्रभावित होकर उसे ग्रहण करती है। हिन्दू-धर्म में दूसरे प्रकार के अनुयायियो की सख्या अधिक है और धर्मों में भी ऐसा ही है। हिन्दू धर्म के सिद्धान्त इतने गूढ है कि उन्हे साधारण व्यक्ति समझ नही पाता। निस्सन्देह यह युक्ति सगत तथा खोज पूर्ण, परन्तु जन-साधारण की भाषा के विपरीत सस्कृत में लिखित होने के कारण प्रथम तो वे विद्वत् समाज की ही बुद्धि-गम्य वस्तु हैं, दूसरे धर्माधिकारियो ने स्वार्थ-वश अपने अधिकार को सुरक्षित रखने के विचार से अथवा यह समझ कर कि जन साधारण के सामने इनकी व्याख्या करना भैंस के आगे बीन बजाना ही होगा, उन्हे जन साधारण तक पहुँचाने का कोई विशेष प्रयत्न न किया। विद्वत् समाज ने उन्हें भव्य-भवनो में स्थित, विशाल मूर्तियो की पूजा, रीति-रिवाज, एव बाह्य आडम्बरो में ही व्यस्त रखना चाहा। तथ्य एव सार से दूर और गूढ सिद्धान्तो से अपरिचित साधारण अनुयायी यथार्थता से दूर होता चला गया और वह स्थान आया जहाँ मुट्ठी भर विद्वान् ही हिन्दू-धर्म का वास्तविक अनुयायी रह गया। सम्भव है कि तुलसी-दास जैसे महा सन्त अपनी रामायण द्वारा धर्म में पदार्पण न करते तो वह निर्जीव हो जाता। साधारण जनता अधिकतर रूढियो तथा तेतीस कोटि देवताओ की दास बन गई। ऐसी ज्ञानशून्य जनता देवताओ को प्रसन्न करने की युक्तियो में ही अन्ध-विश्वास करके उलझी रह गई। आज भैंरो जी अप्रसन्न है तो आज शनि की कुदृष्टि है। संक्षेप में कोई न कोई गृह-देवता या देवी रोज अप्रसन्न रहने लगी। स्वधर्म में दृढ

आस्था न रखने वाले हिन्दू मुसलमानों के पीर और औलियों की पूजा भी करने लगे। ऐसे समय में मुस्लिम धर्म ने अपने 'एकेश्वरवाद' गिने-चुने रीति रिवाज तथा स्वर्ग-प्राप्ति के सुलभ-साधन-सहित भारत के प्रागण में प्रवेश किया। परिणाम यह हुआ कि कुछ कालोपरान्त जब धर्मावलम्बियों ने इसके सिद्धांतों का विश्लेपण किया तो लोग इसके अनुयायी होते चले गये। मुसलमानों का भ्रातृभाव-सिद्धान्त, जिसके अनुसार प्रत्येक मुसलमान चाहे शाह हो या फकीर समानता रखता है, विशेषतया निम्न श्रेणी के लोगों को अवश्य हृदयग्राही प्रतीत हुआ होगा और सम्भव है कि वे सामूहिक रूप में इस्लामधर्मानुयायी हो गये हों। जब कि हिन्दू धर्म में इतनी सकुचितता आ गई थी उसका अनुयायी एक वैश्य चाहे कितना ही विद्वान् क्यों न हो एक विद्यापीठ का आचार्य नहीं हो सकता था।

मुसलमान सन्त-जैसे ख्वाजा मुईनउद्दीन चिश्ती, शेख सलीम चिश्ती, निजामुद्दीन औलिया आदि—जिनका जीवन वास्तव में उच्च स्तर का था और जो इसी कारण उस समय के उच्च समाज में महत्वपूर्ण स्थान रखते थे, यहाँ तक कि बादशाह भी उनकी 'कदम बोसी' करते थे, सम्भव है कि साधारण हिन्दू की श्रद्धा के पात्र बन गये हों और आशीर्वाद-प्राप्ति का भूखा साधारण हिन्दू उनकी छाया में जा मुसलमान हो गया हो।

आक्रमणकारियों का तलवार के बल पर धर्म परिवर्तन इसकी वृद्धि में बहुत सहायक हुआ। साधारण मनुष्य को जीवन धर्म से अधिक प्रिय लगता है। अतः 'प्राणदण्ड' एवं 'धर्म परिवर्तन' में से वह धर्म-परिवर्तन को ही स्वीकार कर लेता है। यही कारण है कि जब प्रारम्भिक मुसलमानों ने प्राणदण्ड अथवा धर्म परिवर्तन दोनों में से एक छाँटने का अवसर दिया तो इतर-श्रेणी के मनुष्य ने इस्लाम ही अंगीकार कर लिया। प्राण के मोह ने धर्म की बलि दे दी।

हिन्दू धर्म में पृथक्-करण की नीति ने भी लोगों को इस्लाम स्वीकार करने को बाध्य किया। जो केवल एक मुसलमान के संसर्ग में आ गया, या जिसने मुसलमान का स्पर्श किया हुआ खा पी लिया या जो मुस्लिम सेना में प्रविष्ट होगया, धर्मच्युत हो गया। ये हिन्दू-धर्म के निर्बल अङ्ग थे जिन्होंने मुसलमानों की संख्या वृद्धि में अधिक सहयोग दिया। कभी-कभी किसी प्रभावशाली व्यक्ति के हिन्दू धर्म से बहिष्कृत होने पर उसका सम्पूर्ण कुटुम्ब अथवा समस्त वर्ग तक मुसलमान हो जाता था।

पाठकों को विदित है कि मुगल-काल में राजपूतों की सहानुभूति मुसलमानों के साथ हो गई। उनके नेताओं में से कतिपय नेताओं ने बादशाहों को अपनी

दुहिता एव भगिनी व्याह दी। साधारण वर्ग पर इसका अधिक प्रभाव पड़ा। प्रभाव पड़ना अनिवार्य था। साधारण लोगो ने अपने तथा मुसलमानो के बीच किसी अन्तर का अनुभव न किया। वे अधिक गणना में शासक-वर्ग में सम्मिलित हो गये। मुसलमानो की सख्या वृद्धि का एक बहुत महत्वपूर्ण कारण उसकी सन्तान उत्पत्ति में बाहुल्य भी है। खान-पान विधवा-विवाह, बहु विवाह तथा समगोत्र विवाह इत्यादि इस प्रकार की प्रथायें हैं जिनसे उनकी जनसख्या में वृद्धि ही होती चली जाती है।

उपरोक्त कारणो के अतिरिक्त भारत में मुसलमान सख्या वृद्धि का एक आर्थिक कारण भी है। सृष्टि की रचना के समय से आजतक समस्त समाज की, विशेषतया जन-साधारण की, दृष्टि में धन-धान्य ही सासारिक सुखो की कुञ्जी रहा है। धन-सचय कर सासारिक सुख भोगने के हेतु वह सदैव लालायित रहा है। वैसे यह कोई अटल सत्य नही, परन्तु इसमें भी सन्देह नही कि जन साधारण यह प्रयत्न करता है कि वह आर्थिक दासता से मुक्त हो जावे। अतः वह अधिकतर उस पक्ष की ओर अधिक झुकने का प्रयत्न करता है जहाँ उसे आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो सके। "भूखा क्या पाप नही करता," उपरोक्त युक्ति को चरितार्थ करता है। भूख से पीड़ित होकर साधारण मनुष्य अपने धर्म कर्म सब की बलि देने को उद्यत हो जाता है। मुस्लिम व्यवस्था को इस दृष्टिकोण से देखिये। मुसलमान को जजिया नहीं देना पड़ता था, वह लगान से मुक्त था, जागीर उसे प्रदान की जाती थी, वह सेना तथा राज्य-प्रबन्ध में कोई न कोई पद अवश्य प्राप्त कर लेता था, शासक-वर्ग में उसकी गणना हो जाती थी, बादशाह एव अन्य प्रभावशाली व्यक्तियो तक उसकी पहुँच हो जाती थी। एक ओर तो आर्थिक प्रलोभन से परिपूर्ण यवन धर्म, तथा दूसरी ओर हिन्दू धर्म जिसके अनुयायी को चराई, घराई के अतिरिक्त ५० प्रतिशत भूमि-कर, और तत्पश्चात् जजिया देना पड़ता था। उसकी स्त्रियो को एक साधारण मुसलमान के यहाँ सेवा करने जाना पड़ता था। इस प्रकार यातनाएँ सहकर तथा निम्न श्रेणी का बनकर साधारण व्यक्ति जो प्राय सिद्धान्तप्रिय नही होता वरन अर्थ की ओर अधिक आकृष्ट होता है अत वह दुखी होकर इस्लाम धर्म ही स्वीकार कर लेता था।

सन्निकटता का प्रादुर्भाव—इस विवरण के पश्चात पाठक-गण यह न समझ लें कि हिन्दू और मुसलमान आज भी उसी प्रकार पृथक विचार धाराओं पर चल रहे हैं और एक दूसरे से दूर होते जाते हैं। समय-परिस्थिति पारस्परिक सम्पर्क तथा उभयनिष्ठ सुख दुख इन्हें अधिक से अधिक एक दूसरे को समीप लाते जा रहे हैं। जब हिन्दू तथा मुसलमान दोनो जातियों ने किसी राजनैतिक कष्ट का अनुभव

किया है, तब दोनों ने स्वाभाविक रूप से कन्धा से कन्धा भिड़ा कर सयुक्त योजना द्वारा उसका सामना किया है। इस प्रकार समुक्त-कार्य करने के अवसर पर एक का जीवन दूसरे का जीवन, तथा एक की मृत्यु दूसरे की मृत्यु हुई। मनुष्य की सद्वृत्ति जागृति हुई। प्रेम तथा सहानुभूति ने उन्हें एक दूसरे के अधिक समीप ला खड़ा किया। इस प्रकार १२०० वर्ष की राजनैतिक भ्रातियाँ हिन्दू मुस्लिम एकीकरण में अति सहायक हुई और यही कारण है कि १८५७ ई० में पुन समस्त हिन्दू व मुस्लिम जातियाँ सुसगठित होकर एक विदेशी जाति के विरुद्ध स्वतन्त्रता-लहर में सिहर उठी। हिन्दू स्त्रियाँ जिनका विवाह मुगल सम्राटों से हुआ इस सन्निकटता में अधिक सहायक सिद्ध हुई। एक साथ दोनों जातियों का विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करना तथा एक भाषा 'फारसी' का बोलना भी इस मिश्रण में सहायक हुआ। मुसलमान-धर्म की सूफी शाखा ने जो हिन्दू-वेदान्त का मुस्लिम-स्वरूप है जाति व धर्म के बखेड़ों से ऊपर उठ श्रेष्ठ मानवता का दिग्दर्शन करा हिन्दू-मुस्लिम-एकता को एक पग और आगे बढ़ा दिया। भक्ति-धारा के सन्त रामानन्द, कबीर, दादू, रामदास, सूरदास, नानक और चैतन्य सामाजिक एकता में विशेष सहायक हुए। इन्होंने राम रहीम, काबा-कैलाश तथा कुरान और पुराण को समानता प्रदान कर पृथक्ता पर तुषारपात किया। इस प्रकार दोनों जातियाँ एक दूसरे के सन्निकट आ मुसलमान रामलीला में अभिनय करने तथा हिन्दू ताजियों में शर्बत पिलाने लगे। वे एक दूसरे के त्यौहार अपना त्यौहार समझने लगे। यद्यपि द्वि जाति सिद्धान्त ने पुन शताब्दियों के प्रयत्न-स्वरूप अर्जित प्रेम तथा मेल को ठेस पहुँचाई। परन्तु मानवता की विजय अवश्यम्भावी है। समयानुसार भारत के हिन्दू-मुस्लिम नागरिक पुन एकीकरण के सूत्र में बँधकर एक आदर्श के प्रति दत्तचित्त हो सलग्न होंगे। और वे हिन्दू-मुस्लिम न कहा कर 'भारतीय' कहाने में गर्व करेंगे।

उपरोक्त समस्या के हल के साथ-साथ इस प्रश्न की व्याख्या करनी भी उचित प्रतीत होती है कि क्या मुसलमानों का शासन एक विदेशी शासन था? उदाहरण से यह स्पष्ट हो जावेगा कि वास्तव में ऐसा नहीं है। क्या हम अमेरिका के प्रेज़ीडेण्ट को विदेशी कहेंगे? क्या हम ब्रिटेन के प्रसिद्ध प्रधानमन्त्री डिजरेलेको विदेशी कहेंगे? यदि नहीं तो मुसलमान बादशाहों को ही विदेशी क्यों कहें? जिस प्रकार अमरिका में होने वाले प्रेसीडेण्ट के पूर्वज किसी विदेश से आकर अमेरिका-निवासी बन गये और उसे ही स्वदेश बना अमेरिकन कहलाने लगे। वे अंग्रेज अथवा फ्रांसीसी न रहे। इसी प्रकार देहली सल्तनत के पहिले बादशाह ऐबक तथा प्रथम मुगल बादशाह

बाबर ने भारत को स्वनिवास-स्थान बना लिया। इस देश की भलाई-बुराई उन्नति-अवनति उनका स्वय का उद्देश्य हो गया। अत उन्हें अथवा उनके उत्तराधिकारियों को विदेशी कहना न्याय-सगत नही। वे वास्तव में विदेश से आये। शक, हूण आर्य इत्यादि भी इसी प्रकार विदेश से आये। जिस प्रकार वे जातियाँ आज विदेशी नही कही जा सकती इसी प्रकार मुसलमान शासक भी विदेशी नही कहे जा सकते। उनके उत्तराधिकारियो का जन्म यही हुआ, यही पालन-पोषण हुआ और यही उनकी मृत्यु भी हुई। आधुनिक युग में जीवन-पर्यन्त अलग रहकर भी एव व्यक्ति कुछ निश्चित काल तक ही कही रहकर वहाँ का नागरिक बन जाता है तो क्या मुसलमान शासक विदेशी ही रहेंगे ? यह समझना भारी भूल है कि वे विदेशी है। जब उनका शासन रहा तब वे सम्राट् बन कर और जब शासन चला गया तो हिंदुओ की भाँति प्रजा बनकर भारत-भूमि पर ही जीवनयापन करते आये हैं। इसके विपरीत अंग्रेजो का शासन विदेशी-शासन कहा जा सकता है जिसके समाप्त होते ही वह अपने देश इग्लैंड को चले गये। अत ऐसे शासको को भारतीय उत्थान-पतन से क्या विशेष अनुराग हो सकता है ? मुसलमानो में विशेषकर मुगलों ने अपने भारत-प्रेम से यह सिद्ध किया कि वे भारत के थे और भारत उनका था।

मुगल काल का विवरण समाप्त करते हुए हम केवल यह कह सकते है कि आज मुगलसत्ता भारत-भूमि से विलीन हो गई है परन्तु उसके सम्राटो ने हमारे हृदय तथा मस्तिष्क पर एक गहरी छाप लगाई है। उनको हम वास्तव में अपना तथा भारत का हितैषी सम्राट कह सकते है। अकबर के एकीकरण के साधन सदैव इतिहास में स्वर्ण अक्षरो में लिखे जायेंगे। जहाँगीर की न्याय-प्रियता एव शाहजहाँ का भारत को समृद्धिशाली बना ताजमहल की देन अमिट तथा अमर रहेगी।

प्रश्न

१ मुगल काल की धार्मिक दशा का वर्णन करो।

२ मुगल काल में हिन्दुओ और मुसलमानों में सन्निकटता किस प्रकार आई ?

अध्याय १०

यूरोप का भारत के साथ व्यापारिक सम्बन्ध

प्राचीन व्यापारिक सम्बन्ध:—अतिप्राचीन काल में भारत का यूरोपियन देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध था जिसका सुविस्तृत वर्णन प्रस्तुत पुस्तक के प्रथम भाग में किया जा चुका है। भारतवासियों के ऊपर यह लाँछन कि 'वे सदा से गृह-प्रिय रहे हैं' सर्वथा निराधार है। आधुनिक अनुसन्धानों ने यह निस्सन्देह सिद्ध कर दिया है, कि मानव सभ्यता के आदिकाल में हिन्दू नाविक ससार में दूरस्थ प्रदेशों तक आने जाते थे; उन्होंने विदेशों में जाकर अपने उपनिवेश बसाये थे तथा भारतवर्ष व्यापार का केन्द्र बना हुआ था। यूरोप निवासी भी भारत के साथ व्यापार करने की इच्छा से लालायित होकर यहाँ आते थे। सिकन्दर महान् तथा उसके उत्तराधिकारी सैल्यूकस के आक्रमणों के पश्चात् पन्द्रहवीं शताब्दी के लगभग अन्त तक कोई मुख्य यूरोपियन भारत में नहीं आया। निस्सन्देह तेरहवीं शताब्दी के अन्त में मार्कोपोलो नामक यात्री यहाँ पर अवश्य आया था, जिसके यात्रा-वर्णनों से उस काल की दशा का पता चलता है। अतिप्राचीन काल में टायर, सिकन्दरिया तथा कुस्तुनतुनिया क्रमशः पूर्वी व्यापार की मण्डियाँ थी। मध्यकाल में उनका स्थान इटली के वेनिस तथा जिनोवा आदि नगरों ने ले लिया था। यहाँ से यूरोप के उत्तरी प्रदेशों में व्यापारी भारतीय कला के उत्कृष्ट नमूने ले जाकर दूर-दूर प्रदेशों में वितरण करते थे।

जल-मार्ग की खोज :—मध्ययुग में तुर्क लोगों ने दक्षिणी पश्चिमी एशिया तथा दक्षिणी-पूर्वी यूरोप पर अपना आधिपत्य स्थापित करके भारत के साथ यूरोप व्यापारिक मार्गों पर अपना अधिकार कर लिया। तुर्क लोगों की इस विजय ने भौगोलिक अनुसन्धान को बड़ा प्रोत्साहन दिया। भारत की प्राचीन धवल कीर्ति तथ उसकी अतुल धनराशि से लाभ उठाने की लालसा में यूरोप-निवासी भारत के जल मार्ग की खोज में निकल पड़े। इनमें जिनोवा निवासी क्रस्टोफर कोलम्बस ने १४९२ ई० में भारत के लिए एक पश्चिमी जल-मार्ग की खोज के प्रयत्नों में पश्चिमी द्वीप-समूह तथा दक्षिणी अमरीका का पता लगाया परन्तु भारत के लिए नया जल-मार्ग

खोज निकालने का श्रेय पुर्तगाल को है। १४१८ ई० से १४६० ई० तक अनेकों पुर्तगाली दक्ष नाविक राजकुमार हैनरी 'मल्लाह' से प्रोत्साहित होकर अफ्रीका के पश्चिमी तट पर धीरे-धीरे दक्षिण की ओर बढ़ते रहे। १४८६ ई० में डियाज़ के जहाजों को एक तूफान आशा अन्तरीप के नीचे दूर ले गया। १४९८ ई० में वास्को डिगामा आशा अन्तरीप का चक्कर लगाकर हिन्द महासागर को पार करके भारतीय तट पर कालीकट के निकट लंगर डालने में सफल हुआ।

व्यापारिक बँटवारा :— पूर्वी प्रदेशों के व्यापार पर सोलहवीं शताब्दी में पुर्तगाल का एकाधिकार रहा। इस एकाधिकार को समकालीन पोपों ने मान्यता प्रदान की थी। क्योंकि नवीन प्रदेशों का पता लगाने में पुर्तगाल तथा स्पेन सबसे आगे थे, और उनमें पारस्परिक झगड़े इन प्रदेशों के ऊपर होने लगे थे। इन पारस्परिक झगड़ों का अन्त करने के लिए १४९३ ई० में पोप अलैक्जैण्डर षष्ठम ने अपनी एक विशेष आज्ञा प्रकाशित की, इसके द्वारा वर्डे अन्तरीप के निकटवर्ती द्वीपों से ११10 मील पश्चिम दक्षिण की ओर एक काल्पनिक रेखा खींची हुई मानी गई, और यह निर्धारित किया गया कि इस रेखा से पूर्व की ओर समस्त अज्ञात प्रदेशों पर पुर्तगाल का आधिपत्य होगा तथा रेखा के पश्चिमस्थ प्रदेशों पर स्पेन का। कैथोलिक संसार में पोप की विज्ञप्ति अन्तर्राष्ट्रीय नियम की मान्यता रखती थी अतः वे इसका आदर करते रहे लगभग एक शत बदी बाद प्रोटेस्टैण्ट देश भी शक्तिशाली हो गये— अतः वे इसका विरोध करने लगे। इंग्लैंड तथा हालैंड उत्तर पश्चिम तथा उत्तर पूर्व की ओर से भारत के लिए नवीन जल मार्ग खोजने के लिए प्रयत्नशील हो गये इस सिलसिले में उनको अनेकों वीर एवं उत्साही नाविकों की बलि देनी पड़ी, परन्तु फिर भी सफलता प्राप्त न हो सकी, अन्त में वे भी पुर्तगाल-वासियों द्वारा ज्ञात किये गये जल मार्ग से भारत आये।

पुर्तगाल का भारतीय व्यापार —परन्तु लगभग एक शताब्दी तक पुर्तगाल का पूर्वी प्रदेशों के साथ निर्विरोध व्यापार चलता रहा। अब उनके पोत फारिस की खाड़ी में स्थित उर्मूज नामक बन्दरगाह से चल कर मलक्का तथा मसाले के टापुओं तक पहुँचते थे। १५१० ई० में गोआ पर उनका अधिकार स्थापित हो गया। अफ्रीका के पूर्वी तट पर किलोआ, मोम्बासा तथा मेलिन्दे, फारिस की खाड़ी में उर्मूज, मालाबार तट पर डामन, ड्यू एवं कोचीन तथा मलक्का में उन्होंने अपनी फैक्ट्री स्थापित की और उनकी किलेबन्दी भी कर ली। पुर्तगाली प्रभुता के इस काल के तीन महापुरुषों के नाम विशेषतया उल्लेखनीय हैं। वास्को डि-गामा, आल्मीडा (१५०५-९) तथा अल्बुकर्क (१५०९-१५)। भारत के साथ इस व्यापार ने पुर्तगाल को माला-

माल कर दिया और इसके नरेशों की धाक समस्त यूरोप में बैठा दी थी, परन्तु पुर्तगाल के भाग्य में भारत में चिरस्थायी राज्य स्थापित करना नहीं लिखा था। ब्राजील की खोज के पश्चात् पुर्तगाल की शक्ति का एक बड़ा भाग उसमें लग गया।

पुर्तगाली लोग समुद्री डाकू भी थे उनको जितना लाभ न्याय्य-व्यापार से होता था उतना ही अरब के व्यापारियों को लूटकर होता था। भारतवासियों के साथ विशेषकर मुसलमानों के साथ उनका व्यवहार बड़ा नीच तथा क्रूर होता था। मुसलमानों को ये लोग बलात् ईसाई बनाते थे, इसी बीच पुर्तगाल को यूरोप के उत्तरी प्रोटेस्टेंट प्रदेशों की शक्ति के सम्मुख घुटने टेकने पड़े। यदि पुर्तगाल को इगलैंड, हालैंड तथा फ्रांस की प्रतिस्पर्धा का शिकार न भी होना पड़ता तो भी उनके व्यवहार को देखकर यह निश्चय रूप से कहा जा सकता है कि वे भारत में अपनी सत्ता सुस्थिर बनाये रखने में सफल न होते।

यूरोप की अन्य जातियों का पूर्व आना'—इगलैंड तथा हालैंड ने भौगोलिक, धार्मिक एवं राजनीतिक कारणों से पोप की आज्ञा को शिरोधार्य करने से इन्कार कर दिया। उत्तर-पश्चिम की ओर से उनको कोई जल-मार्ग प्राप्त नहीं हो सका था। दूसरे यूरोप में धर्म-सुधार की लहर जोर मार रही थी और इगलैंड तथा हालैंड ने पोप की सत्ता में अविश्वास करना आरम्भ कर दिया था। तीसरे १५८० ई० में स्पेन ने पुर्तगाल को हड़प लिया था। स्पेन की इस प्रकार बढ़ती हुई शक्ति उनके लिये असह्य थी। चौथे संयुक्त निम्न प्रदेश—आधुनिक हालैंड तथा बेल्जियम पुर्तगाल के बन्दरगाह लिस्बन के साथ स्वतन्त्रतापूर्वक व्यापार करते रहे थे। लिस्बन से पौर्वात्य प्रदेशों का सामान एन्टीवर्प जाता था और वहाँ से उत्तरी यूरोपियन प्रदेशों में उसका वितरण हो जाता था। १५८० ई० के पश्चात् पुर्तगाल का यह बन्दरगाह, जिस पर अब स्पेन के राजा फिलिप द्वितीय का अधिकार था, इन निम्न प्रदेशों के लिए बन्द कर दिया गया और उधर इगलैंड की महारानी एलिजाबेथ अंग्रेजी जनता तथा व्यापारी समुद्री डाकुओं के कारण स्पेन से खुल्लमखुल्ला शत्रुता रखने लगी थी। अतः इगलैंड तथा हालैंड ने मिलकर पुर्तगाल का विरोध करना आरम्भ कर दिया। दोनों ने एक साथ पुर्तगाल के एकाधिकार पर आक्रमण किया, परन्तु इस समय यह निश्चित् नहीं था कि दोनों शक्तियों में कौन-सी शक्ति सर्वोच्चता प्राप्त करने में सफल होगी। दोनों देशों की ईस्ट इण्डिया कम्पनी कुछ समय के आगे-पीछे स्थापित की गई थी। अंग्रेजी कम्पनी की स्थापना यद्यपि पहले हुई थी। अनेकों वर्षों तक यह शक्ति एवं समृद्धि में हालैंड की कम्पनी से पिछड़ी रही। सत्रहवीं शताब्दी के

आरम्भिक वर्षों में दोनों देशों ने पुर्तगाल के कट्टर विरोध का सामना किया, परन्तु पुर्तगाली विरोध के समाप्त होने पर दोनों शक्तियाँ एक दूसरे से जूझने लगी। दोनों ही भारतवर्ष की अपेक्षा सुदूर पूर्व तथा मलाया द्वीप-समूह पर अधिकार स्थापित करने के इच्छुक थे, परन्तु डच लोग अंग्रेजो को इन स्थानों से निकाल भगाने में सफल हुए। इस प्रकार बाध्य होकर अंग्रेजो का ध्यान भारत की आकृष्ट हुआ, और जिसका अधिकार भविष्य में चल कर समस्त पौर्वात्य के आधिपत्य की कुञ्जी सिद्ध हुआ।

प्रश्न

१. यूरोप निवासियों को भारत के साथ व्यापार करने के लिए नवीन जल-मार्ग खोजने की क्यों आवश्यकता पड़ी ?
२ पुर्तगाली भारत कैसे पहुँचे ?
३. पुर्तगाली व्यापार किस प्रकार भारत में समृद्ध हुआ ?
४. हालैंड तथा इंग्लैंड ने पुर्तगाल का क्यों विरोध किया ?
५. पुर्तगालियों के पतन के क्या कारण थे ?

अध्याय ११

अन्य योरुपीय कम्पनियाँ तथा उनका संघर्ष

व्यक्तिगत भारत यात्रायें:—सबसे पहला अंग्रेज, जो भारत-भूमि पर आकर कुछ समय तक रहा, टामस स्टीफेन्स था। वह १५७६ ई० में गोआ जेसुइट विश्वविद्यालय का रैक्टर नियुक्त किया गया था। यहाँ से उसने जो पत्र अपने पिता को लिखे थे उनका इंगलैंड की जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ा। इंगलैंड की जनता में भारत से सीधा सम्पर्क स्थापित करने की भावना जागृत हो उठी। १५८३ ई० में दो अंग्रेज व्यापारी फिच तथा न्यूबेरी स्थल मार्ग से भारत आये। उनके साथ लीड्स नामक एक जौहरी तथा स्टोरी नामक एक चित्रकार भी आये थे। पुर्तगालियों ने उनको उर्मुज में बन्दी बना लिया और पकड़ कर गोआ लाये। बन्दीगृह से छुटकारा पाकर स्टोरी तो साधु बन गया, लीड्स ने मुगल सम्राट् के यहाँ नौकरी कर ली। न्यूबेरी का इङ्गलैंड वापिस जाते हुये देहान्त हो गया; परन्तु फिच ब्रह्मा, मलक्का तथा लंका में जोखिम पूर्ण यात्रा करता हुआ १५९१ में इङ्गलैंड वापिस पहुँचा। फिच की इस सफल यात्रा ने अंग्रेजों को पौर्वात्य प्रदेशों की खोज करने तथा उनके साथ व्यापार करने के लिए प्रोत्साहित किया।

पूर्वी व्यापार की आज्ञा तथा कम्पनी का जन्म:—यद्यपि महारानी ऐलिजाबेथ स्पेन सम्राट् फिलिप से शत्रुता मानती थी तथापि इससे पहले वह खुल्लम-खुल्ला अपनी शत्रुता घोषित करना नहीं चाहती थी। परन्तु १५८८ ई० में स्पेनी आरमेडा की पराजय के पश्चात् महारानी ने भी अपनी नीति में समयोचित परिवर्तन किया। फलस्वरूप कुछ व्यापारियों को आशा अन्तरीप के मार्ग से पूर्वी जलयात्रा की आज्ञा दे दी गई। २४ सितम्बर १५९९ को ये लोग एकत्रित हुये और ३०१३३ पौंड ३ शिलिंग तथा ८ पेंस की धन-राशि एकत्रित करके महारानी एलिजाबेथ से व्यापार का आज्ञा-पत्र प्राप्त करने के लिए प्रार्थना की। परन्तु इस समय अंग्रेजी सरकार तथा स्पेनी सरकार में पारस्परिक समझौते की बात चल रही थी, इसलिए कतिपय व्यापारियों की प्रार्थना को स्वीकार करके शान्ति की सम्भावना को जोखिम में डालना उचित नहीं समझा गया। परन्तु दूसरे वर्ष जब सन्धि की सब आशाएँ

विलीन हो गई तो इन लोगों को अपने उद्देश्य की पूर्ति का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ। इसलिए एक वर्ष पश्चात् अर्थात २३ सितम्बर १६०० को ये साहसी व्यापारी फिर एलिजाबेथ से प्रार्थना करने पहुँचे अब इलिजाबेथ ने इन्हे आज्ञा दे दी और ३० सितम्बर १६०० ई० को ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना हो गई एशियाई देशो में विराट साम्राज्य स्थापित करने का यह प्रथम पग था।

प्रारम्भिक कठिनाइयाँ —स्थापित होने के बाद लन्दन ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सम्मुख एक बडा कठिन कार्य था। इसको भारतीय सागरो तथा तटो की खोज करना तथा उनके मानचित्र तैयार करना था, अपनी व्यापार प्रणाली निर्धारित करनी थी व्यापारिक सामान का प्रयोग एव अनुभव प्राप्त करना था और सुयोग्य कर्मचारियो का दल तैयार करना था। इनके अतिरिक्त उनको इङ्गलैंड के कैथोलिक शत्रु तथा नवीन प्रोटेस्टैंट प्रतिस्पर्धी से टक्कर लेनी थी। उधर इङ्गलैंड में भी अपनी स्थिति का दृढ करना था। पुर्तगाली व्यापारियो की सफलता का प्रधान कारण यह था कि उनको राजकीय सहायता प्राप्त थी। डच कम्पनी की पीठ पर उसकी रक्षा करने के लिए निम्न प्रदेशो की रियासतें थी जिन्होने इस कम्पनी को स्पेन निवासियो से अपनी प्राचीन शत्रुता का प्रतिशोध लेने के लिए एक अस्त्र बना लिया था। परन्तु इगलैंड के पौर्वात्य के साथ व्यापार करने में इन प्रारम्भिक प्रयत्नो को राजसत्ता की ओर से कोई सक्रिय सहायता प्राप्त नही थी। ऐसी दशा में कम्पनी को व्यापारियो के साहस का ही आश्रय था और व्यापारी लोग अपनी पूँजी पर अल्प काल में वृहत् लाभ उठाने के इच्छुक होते हैं।

प्रथम व्यापारी यात्रायें —१६०८ ई० म कप्तान हाकिस के नेतृत्व में अग्रेज व्यापारी सूरत पहुँचे और वहाँ से आगरे जाकर मुगल सम्राट् जहाँगीर से भेंट की। जहाँगीर न हाकिस का अच्छा स्वागत किया तथा उसको सूरत में बसने की आज्ञा प्रदान की। परन्तु अभी तक पुर्तगालियो का भारतवर्ष में पर्याप्त प्रभाव था और उन्होने इस राजाज्ञा को रद्द कर दिया। इसलिये १६१२ ई० में अग्रेजी जहाज इग्लैंड लौट आया।

सर टामस रो —स्थिति पर विजय प्राप्त करने के लिए अब ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने सुवक्ता तथा परिश्रमशील सर टामस रो को भारत भेजने की सोची और जब कम्पनी उसका वेतन तथा अन्य आवश्यक व्यय सहन करने के लिये तैयार हो गई तो जेम्स प्रथम ने टामस रो को राजदूत नियुक्त कर फरवरी १६१५ में भारतवर्ष भेजा—रो ने अपने चातुर्य्य से जहाँगीर की विशेष कृपा प्राप्त की और इग्लैंड का विश्वस्त राजदूत बन कर तीन वर्ष तक उसके दरबार में रहा। उसको मुगल सम्राट्

के साथ नियमानुसार सन्धि करने में तो सफलता प्राप्त न हो सकी। परन्तु मुगल-साम्राज्य में अनेको स्थानों पर अंग्रेजी कोठियाँ स्थापित करने की आज्ञा उसने प्राप्त कर ली। शान्तिपूर्वक व्यापार करने की नीति का प्रतिपादन कर रो ने कम्पनी की महान सेवा की। इस कम्पनी ने इस नीति का सत्तर वर्ष तक अनुसरण किया। रो पुर्तगालियों तथा डचो की सैनिक व्यापारिक नीति से घृणा करता था। उसका विचार था कि इस नीति से कभी लाभ नहीं हो सकता। पुर्तगालियों तथा डचो की इस नीति की बुराई करते हुए, उसने कम्पनी को चेतावनी दी, 'इसको एक नियम ही समझना चाहिए कि यदि आप लोग लाभ उठाना चाहते हैं, तो इसके लिए समुद्र और शान्त व्यापार का आश्रय लो। निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि भारत-वर्ष में किलेबन्दी करना तथा स्थलीय युद्ध करना भयंकर भूल होगी।' फरवरी १६१६ में वह इंग्लैंड वापिस चला गया। अब पूर्वी प्रदेशों में सूरत की व्यापारिक कोठी अंग्रेजों का स्थान बन गया था सूरत की यह महत्वपूर्ण स्थिति १६३० तक बनी रही, इसके पश्चात् इसका स्थान बम्बई ने लिया।

पूर्वी तट पर अंग्रेज—उधर पूर्वी समुद्र तट पर १६११ ई० में कप्तान-हिप्पन ने कृष्णा नदी के डेल्टे में लंगर डाला और उत्तर की ओर बढ़कर मसूली-पट्टम में, जो गोलकुण्डा राज्य का एक बन्दरगाह था, व्यापारिक कोठी की स्थापना की। कुछ समय तक तो यह कोठी उन्नति करती रही, परन्तु डच लोगों की कट्टर प्रतिस्पर्धा का यह सामना न कर सकी और १६२४ के पश्चात इसकी दशा अवनत होती चली गई। अंग्रेजों की दशा इस स्थान पर इतनी क्षीण होती गई कि लगभग चार वर्ष पश्चात् उनको यह स्थान छोड़ देने के लिए बाध्य होना पड़ा। यद्यपि वे केवल दो वर्ष पश्चात् फिर वापिस लौट आये परन्तु अपने यूरोपियन प्रतिस्पर्धियों के भय के कारण वह इधर-उधर अन्य किसी सुरक्षित स्थान की खोज में लगे रहे। १६३० में फ्रांसिस डे ने मसूलीपट्टम से २३० मील दक्षिण की ओर अपनी व्यापारिक कोठी बनाने के लिए एक हिन्दू राजा से कुछ भूमि मोल ली और फोर्ट सेंट जार्ज की स्थापना की। इस कोठी के इर्द-गिर्द थोड़े ही समय में मद्रास नगर आबाद हो गया। उस समय नगर दो भागों में विभक्त था—श्वेत-मद्रास तथा कृष्ण-मद्रास। पहले में गोरी चमड़े वाले व्यापारी और दूसरे में भारतीय व्यापारी रहते थे। आरम्भ में इस कोठी से आशापूर्ण लाभ नहीं हुआ इसलिए इसके संस्थापक का नाम काली किताब' में लिख लिया गया था, परन्तु शीघ्र ही इस कोठी ने भी उन्नति करना आरम्भ किया और १६५३ में मद्रास एक स्वतन्त्र एजेन्सी बन गया।

बंगाल और उड़ीसा के व्यापार:—इसी बीच में उन अंग्रेज व्यापारियों ने, जो पूर्वी-तट पर उत्तर की ओर बढ़ रहे थे, बंगाल और उडीसा में अपने पैर जमाने आरम्भ कर दिये थे। १६३३ में उन्होने महानदी के डेल्टा में हरिहरपुर तथा बंगाल और उडीसा की सीमा पर बालासोर में अपने स्टेशन स्थापित किए। १६५१ ई० में उन्होने हुगली में व्यापारिक कोठी बनाने की आज्ञा प्राप्त करली।

इंगलैंड में कम्पनी की प्रथम स्थिति:—१६५७ में कम्पनी ने अपना प्रथम सम्मिलित कोष स्थापित किया और सर डब्ल्यू० डब्ल्यू० हण्टर के कथनानुसार "कम्पनी ने मध्यकालीन आधार से आधुनिक आधार में प्रवेश किया।' इक्यानवे नवीन कार्यकर्त्ता तथा व्यापारी पूर्व की ओर भेजे गये जिन्होने अंग्रजो के ठिकानो में नव जीवन का सचार किया।

१६६० से १६८० तक के बीस वर्षों को कम्पनी के जीवन का, जब तक यह केवल व्यापारिक कम्पनी ही थी, स्वर्ण-युग कहा जा सकता है। कम्पनी के स्टाक का मूल्य निरन्तर बढता गया और १६६६ के पश्चात् चौदह पन्द्रह वर्ष मे यह लगभग तिगुना हो गया। कम्पनी के सदस्यो को अपने हिस्सो पर १६५६ से १६६१ तक २५ प्रतिशत लाभ की औसत रही। अब उसको अपने सिक्के ढालन, किलेबन्दी करने, पौर्वात्य में रहने वाली अंग्रेज-प्रजा का न्याय करने, युद्ध या शान्ति करने तथा गैर ईसाइयो से मैत्री-सम्पादन करने का अधिकार मिल गया था। १६६१ में सम्राट् चार्ल्स द्वितीय का विवाह ब्रैग्रेन्जा की कैथाराइन से सम्पन्न हुआ और दहेज में बम्बई का टापू मिला जिसको सम्राट् ने कम्पनी को दस पौंड सालाना किराये पर दे दिया था। बम्बई की महत्ता का उस समय के गोआ के पुर्तगाली वायसराय के नैराश्यपूर्ण इस वाक्य से अनुमान किया जा सकता है, "जिस दिन अंग्रेज जाति बम्बई में अपने पैर जमाती है, उसी दिन भारतवर्ष पुर्तगालियों के हाथ से निकल जायगा।" बम्बई की समृद्धता तथा यश दिनो दिन बढता गया और १६८७ में उसने सूरत का स्थान ले लिया तथा पश्चिमी तट पर अंग्रेजो का मुख्यतम ठिकाना हो गया। इस अभूतपूर्व सफलता का मुख्य कारण यह था कि इस बीच में कम्पनी को अपने यूरोपियन प्रतिस्पर्धियो से कोई विशेष हानि नही उठानी पड़ी।

भारत में संकट:—१६८५ के पश्चात् ईस्ट इण्डिया कम्पनी का फिर दुःख और कष्टो का समय आरम्भ होता है। औरंगजेब के शासन-काल के उत्तरार्ध में साम्राज्य राजनीतिक दृष्टिकोण से छिन्न भिन्न हो चला था।

नीति-परिवर्तन:—इस समय की दशा का वर्णन करते हुए, ओञ्जियर ने लिखा था—"भारतवर्ष की दशा पहले की अपेक्षा बहुत परिवर्तित हो गई है, न्याय

को उठा कर एक ओर रख दिया गया है, हमारी शिकायतों, विरोधों, प्रार्थनापत्रों तथा धमकियों का उपहास किया जाता है, अब समय चाहता है कि तुम अपने साधारण व्यापार का प्रबन्ध अपने हाथ में तलवार लेकर करो।" ओञ्जियर की सलाह मान ली गई और कोर्ट आव कैमेटीज ने औरंगजेब के साथ युद्ध करने की घोषणा करने का निश्चय कर लिया। इस प्रकार सर टामसरो की नीति को, जो अब तक कम्पनी के लिए बड़ी हितकर सिद्ध हुई थी, सर्वथा बदलने का निश्चय किया गया। अंग्रेजी कम्पनी के आदमी अब डच नीति की प्रशंसा करने लगे, जिसमें व्यापार की अपेक्षा, शासन और सैनिक नीति, युद्ध और भूमि कर वृद्धि की ओर अधिक ध्यान दिया जाता था। अब कम्पनी दीन हीन बन कर रहना नहीं चाहती थी।

चाइल्ड बन्धु.- इस नई नीति का सम्बंध सर जोशिया चाइल्ड और सर जान चाइल्ड से बतलाया जाता है, परन्तु आधुनिक अनुसन्धान ने इसको भ्रमपूर्ण कर दिया है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इंग्लैंड में कम्पनी की नीति प्रतिपादन करने में जोशिया भाइयों ने दीर्घकाल तक निरंकुश शासन किया था क्योंकि १६८१ से १६८७ तक वह चार बार कम्पनी का गवर्नर बनाया गया था। आक्सफोर्ड के बोडलियन पुस्तकालय में सुरक्षित रक्खे हुए उसके कतिपय पत्र यह निर्विवाद सिद्ध करते हैं कि कोर्ट आव कमेटीज में वह सर्वेसर्वा था और उसकी यह स्थिति लगभग १६९४ तक बनी रही। सर जान चाइल्ड सूरत का प्रेजीडेण्ट और बम्बई का गवर्नर था अर्थात् १६८२ से १६९० तक वह भारतवर्ष में कम्पनी का चीफ था।

उक्त नीति का परिणाम अर्थात् युद्ध.—जिस नीति का बड़े जोरदार शब्दों में प्रतिपादन किया गया, उसका बड़ा दुःखमय अन्त हुआ। इंग्लैंड से कप्तान निकाल्सन को दस लड़ाकू जहाज और ६०० सैनिकों के साथ भेजा गया। उसको चटगांव पर अधिकार करने और उसकी किलेबन्दी करने की आज्ञा दी गई थी। जब अक्टूबर १६८६ में यह दल हुगली में पहुँचा तो वहाँ युद्ध आरम्भ हो चुका था मुगल सम्राट् ने अंग्रेजों के सब ठिकानों पर आक्रमण करने की आज्ञा दे दी थी। अतः पटना, कासिमबाजार, मसूलीपट्टम और विजिगापट्टम की व्यापारिक कोठियों पर अधिकार कर लिया गया और बम्बई का घेरा डाल दिया गया। कम्पनी की इस दुर्दशा को देखकर इंग्लैंड से और कुमुक भेजी गई परन्तु वह कुछ न कर सकी। इस प्रकार कम्पनी की इस युद्ध-नीति का परिणाम यह हुआ कि बंगाल से सब अंग्रेज निकाल बाहर कर दिये गये।

संधिः—परन्तु पश्चिमी समुद्र-तट पर सर जॉन चाइल्ड ने जहाँ तक पहुँच थी, सब मुगल जहाजों पर अधिकार कर लिया और उसने अपने

अरब सागर तथा फारिस की खाडी में हज-यात्रा को बन्द करने के लिए भेजा। चाइल्ड की इस नीति का परिणाम यह हुआ कि औरंगजेब कम्पनी की सन्धि-चर्चा को सुनने के लिए तैयार हो गया, परन्तु सन्धि की शर्तें कम्पनी के लिए बडी कठोर और अपमानजनक थी। १६६० में उसने अग्रेजो को क्षमा प्रदान कर दी और व्यापार करने के लिए एक नई आज्ञा प्रदान की, परन्तु यह शर्त रखखी कि कम्पनी १७००० पौड जुर्माने के दे और यह प्रण करे कि "भविष्य में फिर कभी ऐसा लज्जास्पद व्यवहार न करेगी और चाइल्ड को, जिसने मुगल-सत्ता का ऐसा अपमान किया है, अपनी सेना से बर्खास्त कर देगी।' परन्तु चाइल्ड की मृत्यु ने कम्पनी को इस मान हानि से बचा लिया। सन्धि हो जाने पर अग्रेजो को गंगा के डेल्टे में अपने ठिकाना पर पुन. अधिकार करने की आज्ञा प्रदान की गई। जिस वर्ष कम्पनी को औरगजेब के सम्मुख बडी मान-हानि सहनी पडी, उसी वर्ष ब्रिटिश भारत के भविष्य की राजधानी की आधार-शिला रखखी गई।

पौर्वात्य में पश्चिमी जातियाँ

योरुपीय जातियों का व्यापारिक संघर्ष:—सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में भारतवर्ष में यूरोप की तीन प्रमुख नाविक जातियां अपना-अपना व्यापारिक प्रभुत्व स्थापित करने के लिए प्रयत्न कर रही थी। ये तीन जातियां थी अंग्रेज, डच तथा पुर्तगाली। इनमें पारस्परिक सघर्ष अनिवार्य था। यह सघर्ष तीन प्रकार का था। पुर्तगालियो तथा डचो का सघर्ष; पुर्तगालियो और अग्रेजो का सघर्ष और अग्रजों तथा डचो का सघर्ष।

डच पुर्तगीज संघर्षः—पुर्तगालियो तथा डचो के सघर्ष से हमारा यहां पर विशेष सम्बन्ध नही है। इस सम्बन्ध में यहाँ पर इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि डच लोगो ने १६०५ ई० में पुर्तगालियो से अम्बोयना छीन लिया और धीरे-धीरे मसाले के टापुओ से उनको निकाल बाहर किया। १६३६ ई० में उन्होने गोआ का घेरा डाला, १६४१ में मलक्का पर अधिकार कर लिया। और १६५८ में पुर्तगालियों के लका में अन्तिम गढ पर भी अधिकार कर लिया। सक्षेप में यह कहा जा सकता है कि १६६४ ई० तक डच लोगो ने अपने पुर्तगाली प्रतिद्वन्द्वियो को मालाबार के के तट से उखाड फेंका था।

अंग्रेज पुर्तगीज संघर्षः—१६११ ई० से १६१५ ई० तक कई बार अग्रेजी बेडे ने पुर्तगाली जहाजो को परास्त किया। इन पराजयों के परिणाम-स्वरूप भारत वर्ष के पश्चिमी तट से पुर्तगालियो की साख सर्वथा उठ-सी गई थी, तथा भारतीय

शक्तियाँ यह समझने लगी थी कि अंग्रेज ही पुर्तगालियों के उत्तराधिकारी होंगे। १६२२ ई० में अंग्रेजो ने फारिस के शाह से मिलकर पुर्तगालियों से उर्मूज छीन लिया। अब से आगे पुर्तगाल इंग्लैंड का भयानक प्रतिस्पर्धी नही रहा। १६३० ई० की मेड्रिड सन्धि के अनुसार यह निश्चित हुआ कि पौर्वात्य में इंग्लैंड तथा पुर्तगाल कोई युद्ध न करें। परन्तु इससे भी अधिक प्रमुख बात यह हुई कि सूरत के अंग्रेज प्रेजीडैण्ट मैथवाल्ड तथा गोआ के वाइसराय में १६३४ ई० में एक सुलहनामा हुआ जिसने इंग्लैण्ड तथा पुर्तगाल के पारस्परिक व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित कर दिए। १६४० ई० में पुर्तगाल के स्पेन से स्वतन्त्रता प्राप्त करने पर इंग्लैंड तथा पुर्तगाल की शत्रुता और भी कम हो गई और दोनो देशो में प्राचीन मैत्री पुनर्स्थापित हो गई। १६४२ ई० में इंग्लैंड के राजा चार्ल्स प्रथम तथा पुर्तगाल के राजा जॉन चतुर्थ ने दोनो देशो के बीच स्वतन्त्र व्यापार की प्रथा को स्थापित किया। क्रामवैल ने १६५४ ई० में पुर्तगाल के साथ सन्धि करके इंग्लैंड के लिये पौर्वात्य के साथ निर्विघ्न व्यापार करने का अधिकार प्राप्त किया। इसके पश्चात् १६६१ ई० में इंग्लैंड के सम्राट् चार्ल्स द्वितीय ने ब्रैगेन्जा की कैथेराइन से विवाह किया और दहेज में बम्बई उसको मिला। बम्बई को चार्ल्स ने कम्पनी के हाथ बेच डाला था। उधर उसने भारत में पुर्तगालियों के अधीनस्थ स्थानो की डच लोगो से रक्षा करने का भार अपने ऊपर ले लिया।

इंगलिश डच संघर्ष—यूरोप में इंग्लैंड तथा हालैंड में अधिक शत्रुता प्रतीत नही होती थी, परन्तु पूर्वी देशो में इंग्लैंड की शत्रुता डच लोगो के साथ पुर्तगीज की शत्रुता की अपेक्षा कही अधिक भयंकर हो रही थी। इसका मुख्य कारण यह था कि अंग्रेजो ने बहुत पहले ही यह सोच लिया था कि पुर्तगालियों की अपेक्षा डच लोग उनके अधिक कट्टर शत्रु है। उधर डच लोग भी पूर्व में अंग्रेजों को देखकर बडे दुःखी थे। अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने १६११ ई० में प्रथमबार डच लोगो के विरुद्ध अपनी सरकार को चिट्ठी लिखी। १६२३ ई० में एक डच अधिकारी ने अम्बोयना में अंग्रेजो का लोमहर्षक नर-संहार कराया।

१६५४ ई० को वेस्टमिन्स्टर की संधि में अम्बोयना हत्याकाण्ड का निर्णय करने के लिये चार सदस्यो के एक कमीशन की नियुक्ति की गई, जिसने अंग्रेजों को ८५,००० पौंड कम्पनी को तथा ३,६१५ पौंड मृतकों के उत्तराधिकारियो को नीदरलैंड्स से दिलाया।

प्रश्न

१. ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना कैसे हुई—उसने कैसे भारत में अपने पैर जमाये ?

२. अंग्रेजो को भारत में जमने के लिए किन-किन शक्तियो से संघर्ष करना पड़ा ?

३. चाइल्ड बन्धुओं की नीति पर प्रकाश डालो।

अध्याय १२

नवीन ईस्ट इण्डिया कम्पनी

कम्पनी का विरोध:—कम्पनी के विरोधियों ने इंग्लैंड में महान मुगल के साथ अन्याय एवं धूर्तता पूर्ण युद्ध की घोर निन्दा की और जब उनको अपमान जनक सन्धि का पता लगा तो कोर्ट आव कर्मेटीज के विरुद्ध उनको एक अच्छा अस्त्र मिल गया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के एकाधिकार के विरुद्ध विरोध नाना रूप धारण करके निरन्तर बढ़ने लगा। ऐसे भी अनेकों मनुष्य थे जो आर्थिक कारणों से कम्पनी के व्यापार का विरोध करते थे।

लन्दन कम्पनी के अनेकों शत्रु ह्विग दल से मिल गये और १६६० ई० में पार्लियामण्ट में एक कमेटी के द्वारा एक नई कम्पनी के बनाने के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पास कराने में सफल हुए। सर जोशिया चाइल्ड इन बातों से तनिक भी भयभीत नहीं हुआ और मन्त्रियों को ८०,००० पौंड उत्कोच देकर कम्पनी के लिए एक नया आज्ञा पत्र प्राप्त कर लिया। परिणाम स्वरूप कामन्स और देश में भयंकर क्रोध की लहर फैल गई। गिलबर्ट हीथ कोट ने, जो चोरी से पूर्वी प्रदेशों के साथ व्यापार किया करता था और जिसका जहाज टेम्ज में पकड़ा गया था, राष्ट्रीय भावना को प्रकट किया। जब उसने घोषणा की कि—'ईस्ट इण्डिया के साथ व्यापार करना वह कोई पाप नहीं समझता और वह वहाँ से तब तक व्यापार करता रहेगा जब तक कि पार्लियामण्ट इसके विरुद्ध कोई कानून न बना दे'। स्वयं पार्लियामेण्ट ने इस दृष्टिकोण को अपनाया और १६६४ में यह निश्चय किया कि "इंग्लैंड की सब जनता ईस्ट इण्डीज के साथ व्यापार करने का समान अधिकार रखती है, जब तक कि पार्लियामेण्ट का कोई कानून इस पर प्रतिबन्ध न लगा दे।" इस निश्चय को अनेकों साहसी व्यापारियों ने कार्यान्वित किया। इससे कम्पनी की शक्ति बहुत क्षीण हो गई। १६६५ में कम्पनी के भ्रष्टाचार की जाँच की गई। जाँच ने सिद्ध किया कि १६८८ से १६६४ तक १०७,००० पौंड व्यय किया गया था। इस भ्रष्टाचार के प्रकाश में आने के कारण देश में सनसनी फैल गई और परिणाम स्वरूप एक मन्त्री का, जो लीड्स का ड्यूक था, राजनैतिक पतन हुआ।

स्काट कम्पनी—जब कम्पनी की इस प्रकार के भ्रष्टाचार होने के कारण देश में अपकीर्ति हो रही थी, उसी समय स्काटलैंड ने भारतीय व्यापार से लाभ उठाने के विचार से उसके अधिकारों पर आक्रमण किया। परन्तु अन्त में एक मूर्खता-पूर्ण कार्य के कारण स्काटलैंड कम्पनी का पतन हो गया—उन लोगों ने डेरियन के भूडमरमध्य पर अपना एक ठिकाना स्थापित किया जिस पर स्पेन का अधिकार था। स्पेन-निवासियों ने इसका विरोध किया। अंग्रेजी सरकार ने इन बसने वालों को उनके भाग्य पर छोड़ दिया। स्पेनी शत्रुता के साथ रोग और दुर्भिक्ष ने मिलकर उपनिवेश का सत्यानाश कर दिया और स्काट कम्पनी का पूर्ण पतन हो गया।

नई कम्पनी की स्थापना:—१६९८ ई० में डोगेट समुदाय 'जनरल सोसाइटी' के नाम से एक कम्पनी बन गया। इस सोसाइटी को भारत के साथ व्यापार करने के पूर्ण अधिकार प्रदान किए जा चुके थे।

दोनों कम्पनियों का संघर्ष—नई कम्पनी की स्थापना से पुरानी कम्पनी प्रथम बार में लड़खड़ा गई परन्तु अनुभवी सैनिकों की भाँति उसने युद्ध के लिए तैयारी की।

दूसरी ओर नवीन कम्पनी को सरकार को अपनी पूँजी ऋण रूप में देकर धन एकत्रित करने में बड़ी कठिनाई हो रही थी और पौर्वात्य में अपने शत्रुओं के सामने, जहाँ पर उनकी स्थिति पहले से ही अपेक्षाकृत सुदृढ थी, अपने ठिकाने स्थापित करने में बड़ी कठिनाई का अनुभव हो रहा था।

दोनों कम्पनियों के संघर्ष में पुरानी कम्पनी सुदृढ व्यापारिक कम्पनियों, दीर्घकालिक अनुभव और अधिक सुयोग्य कर्मचारियों के कारण सर्वथा विजयी रही।

एकीकरण:—जब इस प्रकार भारतवर्ष में दोनों कम्पनियों में संघर्ष चल रहा था, इंग्लैंड में इन प्रतिस्पर्द्धी दलों में एकीकरण के लिए प्रयत्न किये जा रहे थे; नई कम्पनी ने शक्ति द्वारा पुरानी कम्पनी को पराजित करने की अपनी सब आशाएँ त्याग दी थी और अब वे अपने लिए हितकारी आधार पर यूनियन बनाने के पक्ष में थे। कम्पनियों के शत्रुओं ने भी स्वीकार किया था 'भारत में दो विक्रेता यूरोपियन सामान के मूल्य को कम करते हैं और दो खरीदने वाले वहाँ पर भारतीय सामान के मूल्य को बढ़ाते हैं।' एकीकरण के कार्य को सरल बनाने वाले और भी अन्य कारण थे। फ्रांस के साथ युद्ध के बादल उमड़ रहे थे और यह पूर्व में घरेलू झगड़े का अन्त करने का एक शक्तिशाली कारण था। कुछ समय के लिए इंग्लैंड में भारतीय व्यापार का प्रश्न सबसे अधिक महत्वपूर्ण था 'और विशेषकर १७०१ के

चुनाव के समय में दोनो ही दल चालाकी और बदमाशी से काम लेते थे, धन को पानी की तरह बहाते थे और निर्वाचकों में भ्रष्टाचार फैलाकर निरीक्षकों को बदनाम करते थे। सम्राट् और पार्लियामेंट दोनों ही समझौता कराने के लिए उत्सुक थे और दोनों कम्पनियों पर दबाव डाल रहे थे।

उपरोक्त सब कारणों के फलस्वरूप दोनों कम्पनियों के प्रतिनिधियों ने यूनियन पत्र पर अप्रैल १७०२ में हस्ताक्षर कर दिए। भारतवर्ष में पुरानी कम्पनी के मकान, व्यापारिक कोठियों और किला का मूल्य ३ लाख ३० हजार पौंड आँका गया और नई कम्पनी का ७० हजार पौंड और नई कम्पनी द्वारा पुरानी कम्पनी को १ लाख ३० हजार पौंड भुगतान करने की आज्ञा दे दी गई। अब पुरानी चौबीस कमेटियों के स्थान पर चौबीस मैनेजर बनाये गये, जिनमें से प्रत्येक कम्पनी को बारह बारह मैनेजर निर्वाचित करने का अधिकार दिया गया। १७०२ के पश्चात् व्यापार के संचालन का उत्तरदायित्व इन मैनेजरों पर रक्खा गया। दोनों कम्पनियों के कर्मचारियों को, जो पौर्वात्य में थे, मिल-जुल कर कार्य करने की आज्ञा दी गई और कभी-कभी क्रमश प्रेजीडेण्ट बनने का भी अधिकार उनको दिया गया। पुरानी प्रति स्पर्द्धा और झगडा का इस यूनियन ने अन्त कर दिया। केवल एक कम्पनी बन गई, जिसका नाम 'ईस्ट इण्डीज से व्यापार करने वाली इंगलैंड के व्यापारियों की संयुक्त कम्पनी' था। इस संस्था को समय समय पर नये नये आज्ञा पत्र मिलते रहे जिनके कारण उसके एकाधिकार का समय बढ़ता ही गया और यद्यपि समयानुसार उसकी राजनैतिक शक्ति को कम किया जाता रहा था, तो भी इसका संघात्मक जीवन १८५७ के राज-विप्लव तक चलता रहा, जब इसके अवशिष्ट विशेषाधिकारों का अन्त करके अधिकृत प्रदेशों को सम्राट् को दे दिया गया।

भारत में अंग्रेजी बस्तियों की वृद्धि (१७०८-४६)

सामयिक भारत —१७०८ में दोनों कम्पनियों के संयुक्त हो जाने के पश्चात् इंगलैंड में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थिति अनेकों वर्षों के लिए सुरक्षित हो गई थी और भारतवर्ष में व्यापारिक उन्नति का युग प्रारम्भ हुआ। इस युग को अधिकतर इतिहासकार उपेक्षा करते हैं और सीधे एकदम १७४६ पर पहुँचते हैं। जब कम्पनी एक यूरोपीय महायुद्ध की भँवर में फँसी हुई थी और भारतीय राजवंशों के साथ झगडों में उलझी हुई थी, तथा स्वयं भी एक प्रान्तीय शक्ति बन गई थी, परन्तु औपनिवेशिक दृष्टिकोण से इस समय की ओर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। अंग्रेज लोग भारतवर्ष में उस समय अपने पैर जमा चुके थे जब कि मुगल साम्राज्य अपनी

शक्ति के उच्चतम शिखर पर था और देश के कोने कोने में उसकी तूती बोलती थी। १७०७ में अन्तिम मुगल सम्राट् औरंगजेब की मृत्यु हुई, दोनों प्रतिद्वन्द्वी अंग्रेजी कम्पनियों के संयुक्त होने के एक वर्ष पूर्व उसने राज्य किया और दक्षिण को पराजित कर अपने अधीन कर लिया था, परन्तु दक्षिण विजय करने में उसने अपने राज्य की जड़ खोखली कर ली थी। जिस समय उसकी मृत्यु हुई उसके धार्मिक पक्षपात के कारण राजपूत उसके विरुद्ध सशस्त्र तैयार थे सिक्ख भी विद्रोह के चिन्ह प्रकट करने लगे थे। दक्षिणी भारत में अराजकता फैली हुई थी, क्योंकि औरंगजेब ने बीजापुर और गोलकुण्डा के राज्यों का अन्त करके उनके स्थान पर किसी शक्तिशाली राज्य की स्थापना नहीं की थी और मरहठा लोग पश्चिमी और मध्य भारत में स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण करते थे और आगामी पचास वर्षों में उनकी शक्ति का सामना करने वाला कोई नहीं था। सिंध नदी तक समस्त देश उनकी विजय के गीत गाता था। औरंगजेब के देहान्त के पश्चात् दिल्ली के सिंहासन पर जल्दी-जल्दी अनेकों सम्राट् आरूढ़ हुए, जिनका राज्य-काल अत्यन्त संकटपूर्ण और अल्पायु रहा। अब से आगे मुगल शासन, जैसा कि बुसी नामक एक फ्रांसीसी ने—जो एक बड़ा तीव्र निरीक्षक था—लिखा है "अनेकों शक्तियों के होते हुए भी दुर्बल था और अतुल सम्पत्ति होने हुए भी निर्धन था, क्योंकि उसका शासन-प्रबन्ध अत्यन्त शोचनीय हो गया था।" प्रान्तों के सूबेदार या वायसराय राजधानी की तनिक भी चिन्ता नहीं करते थे, और जहाँ भी वे मरहठा-शक्ति का सफलतापूर्वक सामना करने के योग्य होते थे वहीं पर अपने स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना कर लेते थे।

स्थिति से लाभ :—यद्यपि ये राजनीतिक परिवर्तन ईस्ट इण्डिया कम्पनी के लिये भविष्य में कठिनाइयों तथा भय के सूचक थे तो भी इस समय इनके कारण कम्पनी का कार्य अति सरल हो गया और देश की इस दशा से कम्पनी के कर्मचारियों ने पूरा-पूरा लाभ उठाया। छल, छद्म और शक्ति द्वारा अंग्रेजी व्यापारी कोठियाँ मुसलमान सूबेदारों और तटीय हिन्दू राजाओं का सामना करने को तैयार रहती थीं। चालाकी और धूर्तता के कुछ ऐसे जाल ये लोग बिछाते थे कि देशी राजा और नवाबों को उनसे निकलना असम्भव (हो) जाता था। कभी कभी ये देशी शक्तियाँ अपने प्रतिद्वन्द्वियों पर विजय प्राप्त करने के विचार से इनका स्वागत भी करती थीं।

हैमिलटन का आज्ञा पत्र :—अंग्रेजों ने दिल्ली की क्रान्तियों से, जिनकी इस समय भरमार हो रही थी, लाभ उठाकर अपनी सत्ता को नियमित रूप देने का प्रयत्न किया। १७०७ में सम्राट् औरंगजेब की मृत्यु का समाचार सुनकर उन्होंने बंगाल में फोर्ट विलियम को सुदृढ़ करने की शीघ्रता की। १७१५ ई० में अंग्रेज डाक्टर हैमिलटन

ने मुगल सम्राट् फर्रुखसियर के एक भयंकर रोग का सफल उपचार किया। इससे प्रसन्न होकर उसने कलकत्ता और मद्रास के समीप के कुछ गाँव कम्पनी को दे दिये और कम्पनी के सेवकों को भारतवर्ष में निवास करने के लिए नियम-पूर्वक स्वीकृति दे दी।

मुगल पतन का प्रभाव (बंगाल) :—बंगाल में यूरोप-निवासियों ने मुगल शक्ति के पतन से पैदा हुए प्रभावों को बम्बई और मद्रास के यूरोपियनों की अपेक्षा कम महसूस किया। मुगल सम्राट् का नियन्त्रण बंगाल के सूबेदारों या नवाबों पर अन्य प्रान्तों की अपेक्षा अधिक काल तक चलता रहा, यद्यपि समयोपरान्त वे भी पूर्णतया स्वतन्त्र हो गये थे। अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में बंगाल की सामाजिक एवं आर्थिक दशा अच्छी थी। प्रान्त में सुशासन होने के कारण शान्ति और व्यवस्था थी। १७१३ से १७५६ तक मुर्शिद कुलीखाँ, शुजाखाँ और अलीवर्दीखाँ तीन बड़े योग्य शासक थे। कलकत्ता में रहने वाले अंग्रेज लोग यद्यपि जब तब मुगल अफसरों की शिकायत करते रहते थे, तो भी बंगाल के नवाबों का उनके साथ बर्ताव बहुत अच्छा था। बंगाल के व्यापार, मलमल, चीनी, अफीम, चावल, जूट और तेल आदि सम्मिलित थे जो भारतवर्ष में सबसे अधिक मूल्यवान् समझे जाते थे। अंग्रेजों व्यापारिक कोठी, सामानघर, गोदाम और दुर्ग के चारों ओर एक समृद्ध नगर उठ खड़ा हुआ, जिसकी जनसंख्या १७३५ में १ लाख के लगभग थी।

पश्चिमी तट :—पश्चिमी समुद्र तट पर मुगल साम्राज्य के पतन का बम्बई पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ा। मरहठा शक्ति अब महाराष्ट्र से निरन्तर उत्तर की ओर बढ़ रही थी और अंग्रेजों तथा पुर्तगालियों के ठिकानों के भीतरी भागों पर उसका आधिपत्य होता जा रहा था। राष्ट्रपति शिवाजी के वंशज अभी तक सितारा में नाम मात्र के शासक थे, परन्तु वास्तविक शक्ति उनके हाथ से निकल कर उनके मन्त्री पेशवाओं के हाथ में चली गई थी, यह पद पैत्रिक बन गया था और उन्होंने पूना में अपना वास स्थापित कर लिया था। पेशवाओं की बढ़ती हुई शक्ति से भयभीत होकर अंग्रेज और पुर्तगाली अपनी पुरानी शत्रुता को भूलकर अपने हितों की रक्षा करने के लिए एक हो गये थे। १७३१ में बम्बई से ३०० सिपाहियों का जत्था गोआ भेजा गया परन्तु वे पुर्तगालियों की अधिक सहायता न कर सके, क्योंकि भारत में पुर्तगालियों की दशा निश्चय रूप से पतन की ओर अग्रसर हो रही थी। १७३८ में मरहठों ने बम्बई से अट्ठाइस मील उत्तर की ओर बेसीन पर अधिकार कर लिया। समुद्र पर कान्होजी आंग्रिया बम्बई और गोआ के बीच विदेशी जहाजों को लूट लिया करता था। उसके पास छोटे-छोटे परन्तु शीघ्रगामी जहाज थे जो समुद्र-तट पर छिपे

रहते थे और शत्रु के जहाजों पर सहसा टूट पड़ते थे। कुछ काल के लिए कान्होजी इन लोगों के लिए भयंकर भय का कारण हो गया था। वह आरम्भ में मरहठों के जहाजी बेड़े का कमाण्डर था, परन्तु बाद में स्वतन्त्र हो गया था। आरम्भ में तो उसके आक्रमण मुगलों के जहाजों ही पर होते थे परन्तु धीरे धीरे उसने मैंडागास्कर के टेलर, इंगलैंड और प्लेनटैन नामक समुद्री डाकुओं के साथ ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बड़े से-बड़े जहाजों पर भी हाथ साफ करना आरम्भ कर दिया गया था। १७१७ से २० तक और फिर १७३७ में उसके मुख्य स्थानों पर व्यर्थ ही आक्रमण किये गये। उसने कम्पनी के बेड़े को नहीं वरन् शाही बेड़े को भी पूरी तरह पछाड़ा। बड़ी कठिनाई के पश्चात् १७५६ में क्लाइव और वाटसन ने इस पर विजय प्राप्त की। कान्होजी का १७२८ या १७३० में देहान्त हो गया परन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् भी उसके लड़के विदेशी सत्ता के पैर उखाड़ने का प्रयत्न करते रहे। एक कोलबा में था और दूसरा घेविनड्रग में। इस प्रकार बम्बई चारों ओर से आक्रान्ताओं से घिरी रहने के कारण अठारहवीं शताब्दी के प्रथम अठारह वर्ष तक वहाँ पर अंग्रेजों की शक्ति क्षीण ही रही और व्यापार से भी उनको कोई विशेष लाभ नहीं हुआ, परन्तु इसके पश्चात् उनकी उन्नति होनी आरम्भ हुई। १७४४ में बम्बई की जनसंख्या ७० हजार आँकी गई थी। यद्यपि इस समय वह पुर्तगालियों की सफल सहायता करने के लिए समर्थ नहीं थी परन्तु १७४६ तक सैनिक दृष्टि से बम्बई का स्थान प्रेसीडेन्सी नगरों में सर्वोपरि था। बोर्ड ऑव डाइरेक्टर्स यह नहीं चाहते थे कि बम्बई कोई सैनिक केन्द्र बनाया जाय, अभी तक उनका ध्यान केवल व्यापार की ओर ही अधिक आकृष्ट था, परन्तु तो भी बम्बई के अंग्रेजों ने अपने भारतीय बेड़े को समुन्नत किया और १७३७ में उसकी सेना में २६०० आदमी थे जिनमें ७५० यूरोपियन थे। रक्षा के लिए इतनी बड़ी सेना इस समय मद्रास या कलकत्ता में कहीं पर नहीं थी। बम्बई में रहने वाले अंग्रेजों ने बड़ी चालाकी से काम लिया। पहले कान्होजी के विरुद्ध मुगल एडमिरल सीदी से मित्रता कर ली, फिर कान्होजी के दोनों पुत्रों को आपस में लड़ाकर एक का पक्ष ले लिया और फिर मरहठों के विरुद्ध अपने सनातन शत्रु पुर्तगालियों से मित्रता कर ली। इस प्रकार जैसे-तैसे करके १७३९ में मरहठों के साथ एक सन्धि करने में वे लोग सफल हुए जिसके द्वारा पेशवा ने अपने राज्य में कम्पनी को स्वतन्त्र व्यापार करने की आज्ञा दे दी।

पूर्वी तट :— औरंगजेब के दक्षिणी आक्रमणों का प्रभाव मद्रास पर बहुत गहरा पड़ा था। मुगल सम्राट् के अन्तिम प्रयत्नों ने बीजापुर और गोलकुण्डा की रियासतों का तो अन्त कर दिया था परन्तु उनके स्थान के लिए किसी योग्य शासन

की स्थापना यह नहीं हो सकी थी। एलफिन्सटन 'भारत के इतिहास' में लिखता है "दक्षिण की उन रियासतों का अन्त हो जाने पर, जो वहाँ शक्ति और व्यवस्था बनाये हुए थी, समाज का ढांचा जिसका आधार ये रियासतें थी। बिगड गया और सर्वत्र अशान्ति, अव्यवस्था और अराजकता फैल गई।" दोनो राज्यो की सेनाएँ या तो मरहठो की सेनाओ से जा मिली या छोटी-छोटी टुकडी बनाकर इधर-उधर लटमार करती हुई घूमने लगी। १७०७ में जब औरंगजेब का देहान्त हुआ तो दक्षिण में अराजकता छा रही थी। सितम्बर १७०८ में टामस पिट ने अवकाश पाकर कर्नाटक के नवाब से मद्रास के निकट के पाँच गाँवों को कम्पनी के लिए मजूर करा लिया। परन्तु कुछ काल तक कम्पनी उन पर अपना अधिकार स्थापित न कर सकी क्योंकि कुछ कालोपरान्त नवाब ने अपनी आज्ञा वापस ले ली थी।

हैदराबाद :— थोड़े ही समय में लगभग समस्त दक्षिणी भारत मुगलो के नियन्त्रण से सर्वथा बाहर हो गया। १७१३ में आसफजाह, जो बाद में निजामुल-मुल्क के नाम से प्रसिद्ध हुआ, दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया गया था। बीच में यद्यपि उसको वापिस बुला लिया गया था, दस वर्ष पश्चात् उसने फिर अपनी शक्ति को सुदृढ कर लिया, और केवल नाम मात्र को दिल्ली के आधीन रहा। अब दक्षिणी भारत में निजामुलमुल्क और मरहठो में एक लम्बा युद्ध आरम्भ हुआ। इस समय अंग्रेजो ने बड़ी चालाकी से काम लिया। उन्होने निजाम से मित्रता कर ली और अपने ठिकानो की किलेबन्दी की, अनेको बहुमूल्य भेंट और चापलूसी-भरे पत्र हैदरा-बाद को भेजे गये। देशी शक्तियों के दीर्घकालीन संघर्ष से मद्रास के अंग्रेजों ने बड़ा लाभ उठाया। निजाम या मरहठो में से किसी को भी इतना अवकाश नहीं था जो अंग्रेजो की चोरी-चोरी अपने स्थानो की किलेबन्दी करने और इस प्रकार अपनी शक्ति को सुदृढ करने को देखते।

भारत में अंग्रेजों का प्रारम्भिक जीवन :—यहाँ पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के राजनैतिक इतिहास की विवेचना करने से पहले अंग्रेजो के भारत में प्रारम्भिक जीवन का उल्लेख करना न्याय-सगत होगा। १६७६ के पश्चात् कम्पनी के कर्मचारी अनेको दर्जों में होकर निकलते थे। आरम्भ में वे नवसिखिये के रूप में भर्ती किये जाते थे और फिर उन्नति करते-करते लेखक फैक्टरी, व्यापारी और बड़े व्यापारी बनते थे। फैक्टरी इमारतों का एक छोटा-सा समूह होता था, जिनमें प्रेजीडेण्ट का निवास-स्थान, गोदाम, सामान-गृह तथा दफ्तर होते थे। इसके चारो ओर दुर्ग का परकोटा होता था। आरम्भ में गृहस्थ जीवन के कोई साधन नही थे; यहाँ तक कि प्रेजीडेण्ट लोग भी अपनी पत्नियो को साथ नही रखते थे।

१७४६ ई० से पहले कम्पनी के पास प्रान्त नही थे, केवल नगर थे जिनमें हिन्दू मुसलमान, यूरोपियन आदि अनेको जातियाँ रहती थीं' और कम्पनी की आज्ञा से व्यापार करती थी।

भारतवर्ष में ईस्ट इण्डिया कम्पनी निरन्तर उन्नति करती जा रही थी। धीरे-धीरे फैक्टरियो का स्थान अर्ध उपनिवेशो ने ले लिया। यहाँ लोग सपरिवार बसने लगे, इस कार्य के लिए जार्ज ओक्सेण्डन, जेराल्ड औंजियर और जान चाइल्ड आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। औंजियर ने एक औषधालय, चर्च, जेल और न्यायालय आदि स्थापित करके बम्बई का क्षेत्र बडा कर दिया था। १६८८ में डाइरेक्टरा ने वहाँ पर एक पोस्ट आफिस भी स्थापित करने की आज्ञा दे दी। इसी वर्ष मद्रास मे एक म्युनिसिपल शासन की स्थापना हुई जिनमें एक मेयर और दस एल्डरमैन होते थे। तीन कम्पनी के कर्मचारी, तीन पुर्तगाली और सात भारतीय इस सदस्य थे। सिविल मामलो का फैसला करने के लिए १७२६ मे तीनो प्रेजीडेन्सी नगरों में मेयर न्यायालय की स्थापना की गई।

पूर्वी देशो में मदिरा पान के कुप्रभाव शीघ्र ही प्रकट होने लगते है। कम्पनी के डाइरेक्टरो ने इस सम्बन्ध में अनेको बार अधिक शराब पीने की बुराइयो की ओर अपन आदमियो का ध्यान आकृष्ट किया। परन्तु डाइरेक्टरो की इस सलाह का यथेष्ट परिणाम नही हुआ मदिरापान एक व्यसन बन गया। मद्यपान के साथ साथ अग्रेजो मे उस समय जुआ खेलने की भी प्रथा थी। १७२१ में मद्रास के लिये एक पत्र में लिखा गया था, 'यह सुनकर बडा दु ख होता है कि द्यूतक्रीडा (जुआ) की खुजली मद्रास में फैल गई है और अच्छी स्त्रियाँ भी बडे बडे दाव लगाती है।" परन्तु इसका कोई प्रभाव नही हुआ क्योकि तीस वर्ष पश्चात् कोर्ट ने फिर लिखा, "जुए का निकृष्ट रोग छून की बीमारी की तरह हमारे सब कर्मचारियो में फैल गया है।" इस अवसर पर दो प्रमुख पदाधिकारियो को जिनमें एक फोर्ट सैंट डेविड का गवर्नर भी था, पदच्युत कर दिया गया था।

कम्पनी के इतिहास के आरम्भ से ही डाइरेक्टर लोग इस सम्बन्ध में बडे सतर्क रहते थे कि कही कम्पनी के कर्मचारी अपना व्यक्तिगत व्यापार तो नही करते है। बगाल प्रेजीडेसी के बारे में वे लोग विशेष रूप और कठोरता के साथ सतर्क रहते थे क्योकि यह प्रान्त सबसे अधिक धनाढ्य था और इसलिए इस पर सबसे अधिक सन्देह भी किया जा सकता था। बगाल के कर्मचारियो को लिखे गये पत्रो से पता चलता है कि उन लोगो में "पहले हलक और पीछे कम्पनी" की प्रथा प्रचलित थी। बडे-बडे कर्मचारियो ने कानून का अक्षरश पालन करते हुए कम्पनी

को धोखा देने के बड़े चतुर साधन निकाल लिए थे। अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ईस्ट इण्डिया कम्पनी गुलामों से अधिकतर काम लेती थी। १७३५ में बम्बई के लिए २५० गुलामों का आर्डर दिया गया और १७५१ में डाइरेक्टर लोग फोर्ट सेंट जार्ज के लिए ६०० गुलाम खरीदना चाहते थे। ये गुलाम अधिकतर मैडागास्कर से आते थे। इन बेचारों जैसी दयनीय दशा कदाचित् संसार में अन्यत्र कहीं नहीं थी। इण्डिया आफिस में ऐसे भी पत्र संग्रहीत हैं जिनमें कम्पनी के डाइरेक्टरों ने अपने कर्मचारियों को गुलामों के साथ मानुसिक बर्ताव करने और उनको जानवर न समझकर मनुष्य समझने की बार-बार सलाह दी है। इससे यह प्रकट होता है कि बेचारे गुलामों के साथ कहीं-कहीं और कभी-कभी बड़े अत्याचार किये जाते थे, कभी-कभी उनकी हत्या तक कर दी जाती थी।

इंग्लैंड से कम्पनी की फैक्टरियों को पुस्तकें भी भेजी जाया करती थीं जिनके द्वारा सार्वजनिक पुस्तकालयों का जन्म हुआ। आरम्भ के दिनों में विलियम पर्किन्स की पुस्तकें भेजी गई थीं।

प्रश्न

१. नई अंग्रेजी कम्पनी की स्थापना क्यों हुई, किस प्रकार यह तथा पुरानी ईस्ट-इण्डिया कम्पनी ठीक हुई ?

२. अंग्रेजों ने किस प्रकार भारतीय तट पर अधिकार स्थापित किया ?

३. उस समय के फैक्टरी जीवन का वर्णन करो।

अध्याय १३

अंग्रेज और फ्रांसीसी

फ्रांसीसी कम्पनी की स्थापना:—पूर्वी देशों की सामुद्रिक खोज के इतिहास में आशा अन्तरीप का चक्कर लगा कर भारत पहुँचने के प्रयत्न में फ्रांस सब से पीछे रहा १६४२ में फ्रांस के प्रधान मंत्री रिशलू ने "पौर्वात्य की सोसाइटी" स्थापना की जिसने मैडागास्कर में उपनिवेश बसाने में अपनी शक्ति को नष्ट कर डाला।

फ्रांसीसी कम्पनी का उत्थान:—भारतवर्ष के साथ शाश्वत व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने वाली कम्पनी का जन्म १६६४ में हुआ जिसके जन्म और प्रारम्भिक सफलता का श्रेय फ्रान्स के महान् मन्त्री कोलबर्ट और महान् सम्राट् लुई चौदहवें को है। आरम्भ में तो इस कम्पनी ने भी अपनी शक्ति का बहुत कुछ भाग मैडागास्कर के उपनिवेशों को पुनर्जीवित करने में लगाया। १६६८ में सूरत में फ्रांस की एक फैक्टरी की स्थापना हुई और एक वर्ष पश्चात् मसूलीपट्टम में दूसरी फैक्टरी की स्थापना की गई। १६७४ में मार्टिन ने पाण्डेचेरी की, जो भविष्य में फ्रांस की भारतीय राजधानी बना, स्थापना की। यह स्थान मद्रास से ८५ मील दक्षिण में है इसको एक देशी राजा से मोल लिया गया था। बंगाल में १६९०-९२ में कलकत्ता से २६ मील ऊपर हुगली नदी पर चन्द्रनगर की स्थापना की गई। सत्रहवीं शताब्दी में लुई के यूरोपीय युद्धों का ईस्ट इण्डिया कम्पनी पर बड़ा कुप्रभाव पड़ा। १६७२ से १७१३ तक कुछ समय के अतिरिक्त फ्रांस का हालैंड के साथ युद्ध होता रहा १६७४ में डच लोगों ने सेंट टामे पर अधिकार कर लिया। १६९३ में, कुछ दिन घेरे के पश्चात् डच लोगों ने पाण्डेचेरी पर भी अपना अधिकार स्थापित कर लिया। इसके पश्चात् छ: वर्ष तक इस नगर पर इन लोगों का अधिकार रहा और इस समय में उन्होंने नगर की ऐसी किलेबन्दी की कि बहुत समय तक वह भारतवर्ष में सर्वोत्तम मानी जाती थी। १६९७ की रिजविक की सन्धि से यह फ्रांस को वापिस दे दिया गया परन्तु दो वर्ष तक इस पर फ्रांस का वास्तविक आधिपत्य न हो सका। मार्टिन की छत्रछाया में, यद्यपि उसको फ्रांस की सरकार ने कोई विशेष सहायता नहीं दी, पाण्डेचेरी ४० हजार निवासियों का एक समृद्ध नगर बन गया था। इसके अतिरिक्त

अन्यत्र फ्रेंच प्रभाव कम होता गया। सूरत और मसूलीपट्टम की फैक्टरियाँ त्याग दी गई। फ्रांसीसी कम्पनी की दशा बहुत ही विकृत हो गई थी और इसने अपने व्यापारिक अधिकार सेंट मालो के व्यापारियों को किराये पर दे दिये थे।

जब फ्रांस के आर्थिक विभाग का नियन्त्रण जॉन ला ने, जो एक स्काटलैंड-निवासी था, अपने हाथ में लिया तो भारत से व्यापार करने वाली कम्पनी को कनाडा कम्पनी मिसिसीपी कम्पनी, सेनिगाल, चीन और डोमिनगो तथा गाइना की कम्पनियों के साथ मिला दिया जाता और इस बृहत् समुदाय को, जिसको 'इंडीज की कम्पनी' कहते थे, सिक्का चलाने, तम्बाकू का एकाधिकार और जातीय ऋण के नियन्त्रण का अधिकार दे दिया गया। १७२० की आपत्ति के पश्चात् ईस्ट इण्डिया कम्पनी का पुनर्निर्माण 'इंडीज की स्थायी कम्पनी' के नाम से किया गया और इसके प्राचीन सब विशेषाधिकारों में केवल तम्बाकू का एकाधिकार इसके पास शेष रहा। इसके पश्चात् इस कम्पनी की दशा बहुत अधिक समुन्नत हुई। १७२१ में इसके सेवकों ने मारीशस टापू पर आधिपत्य स्थापित कर लिया जहाँ पर वे सर्वप्रथम १७१५ में गये थे। बर्बन टापू में ये लोग कोलबर्ट द्वारा कम्पनी के जन्म से सात वर्ष पूर्व ही बस गये थे। १७२५ में इन लोगों ने मालाबार तट पर माही और १७३९ में कोरोमण्डल तट पर कारीकल पर भी आधिपत्य स्थापित कर लिया था।

परन्तु १७४४ में अंग्रेजी कम्पनी फ्रांसीसी कम्पनी की अपेक्षा कहीं अधिक धनाढ्य थी और उसका व्यापार भी बहुत बढ़ा चढ़ा था। इसका व्यापारिक जहाजी बेड़ा भी बहुत बड़ा था और उसकी गति भी बड़ी नियमित थी। परन्तु पश्चिमी समुद्र-तट पर बम्बई की तुलना करने वाला फ्रान्स के पास कोई ठिकाना नहीं था, मगर कलकत्ता बंगाल में कलकत्ता चन्द्रनगर से कहीं अधिक वैभव सम्पन्न था और मद्रास, पाण्डेचेरी के लगभग समान अवश्य था। सब से अधिक विशेष बात यह थी कि अंग्रेजी कम्पनी कतिपय व्यक्तियों की एक संस्था थी जिसको इंग्लैंड की सरकार से कोई सहायता न मिलती थी, वरन् सरकार कम्पनी की ऋणी और कम्पनी का आधार उसका भारतीय व्यापार से प्राप्त लाभ था, परन्तु इसके डाइरेक्टर पार्लियामेंट के सदस्य होने के कारण राष्ट्रीय नीति पर पर्याप्त प्रभाव रखते थे। फ्रान्स की कम्पनी के पास पश्चिमी तट तथा बंगाल में अंग्रेजों जैसी बस्तियाँ नहीं थीं। निस्सन्देह उनके पास पाण्डेचेरी एक सुन्दर और सुदृढ़ नगर था। फ्रान्स और बर्बन टापुओं का महत्व फ्रान्स की कम्पनी के लिये सन्देहयुक्त था। फिर फ्रान्स की कम्पनी का जन्म सरकार द्वारा हुआ था और सरकार की सहायता उसको प्राप्त थी, और १७४४ तक यह कम्पनी सरकार के अधीन एक विभाग बन गई थी। प्रारम्भ से ही कम्पनी सरकार

की सहायता पर आश्रित थी और इसलिये राजकीय हस्तक्षेप से स्वतंत्र नहीं थी। कभी-कभी फ्रान्स का सम्राट् उनके प्रबन्ध में सर्वथा अवाछनीय हस्तक्षेप करता था कम्पनी के हिस्सेदारों को भारतीय व्यापार में कोई विशेष व्यक्तिगत रुचि नहीं थी। इसकी आय का मुख्य साधन तवाकू पर एकाधिकार था। कपनी के डाइरेक्टरो और निरीक्षको की नियुक्ति सम्राट द्वारा होती थी और वास्तविक नियन्त्रण सम्राट् के सेक्रेट्रियो के हाथ में रहता था। बार-बार सम्राट् को कपनी की सहायता करनी पडती थी। १७२५ से १७६५ तक हिस्सेदारो की कोई भी बैठक नही हुई और १७३३ के पश्चात् राज्य ने हिस्सेदारो के लाभ की भी एक नियत दर निश्चित कर दी थी। फ्रान्स की कपनी का सबसे अधिक समृद्ध काल १७३१ से १७३८ तक था और आस्ट्रिया के उत्तराधिकार के युद्ध के समय से उसका पतन आरभ हो गया था। राज्य के अधिक दफ्तरशाही नियन्त्रण का एक परिणाम यह हुआ कि कपनी के कर्मचारियो में अकर्मण्यता पैदा हो गई थी। व्यापार की प्रगति भी बन्द हो गई। पाडेचेरी के उत्थान का श्रेय सबसे अधिक उसके जन्मदाता मार्टिन को है और उसके पश्चात् लीनोयर तथा ड्यूमा ने भी इसकी उन्नति में बडा योग दिया। परन्तु चन्द्रनगर ने, जब तक कि डूप्ले का अधिकार स्थापित हुआ, कोई प्रगति नही की।

प्रथम कर्नाटक युद्ध:—ड्यूमा और डूप्ले ने केवल बीस वर्ष के समय में ही फ्रास की कपनी की शोचनीय दशा को इतना उन्नत किया कि वह अपने से बहुत पुराने स्थापित शत्रुओ की तुलना करने लगी। परन्तु इस समय तक इग्लैंड की कपनी की जड़ें भारत-भूमि में बहुत गहरी पैठ चुकी थी। १७२१ और २२ में फ्रास से कोई भी जहाज भारत के लिये रवाना नही हुआ। कार्डिनल फ्लूरी के फ्रास का प्रधान मन्त्री बनने पर कपनी ने उन्नति करना आरम्भ कर दिया। परन्तु फिर भी दोनो कपनियो में युद्ध आरंभ होते समय इग्लैंड की स्थिति अधिक सुदृढ थी, यद्यपि कुछ लोगो का विचार था कि दोनो की शक्ति लगभग समान थी। फ्रेंच लोगों ने अपने गवर्नरो और कमाडरों की योग्यता तथा अपने शत्रुओ की भयकर भूलों के कारण अग्रेजो पर आरम्भ में बडा भयकर आक्रमण किया और उनको सफलता भी प्राप्त हुई परन्तु उनकी सफलता क्षणिक थी और केवल १७४६ से १७५४ तक रही और इसके सात वर्ष पश्चात् वे पूरी तरह से पराजित हुये। १७४४ से पहले ही दोनो कम्पनियो में युद्ध की आशा की जाने लगी थी क्योंकि दोना देशो ने आस्ट्रेलिया के उत्तराधिकार युद्ध में भाग लिया था जो कि १७४० में आरम्भ हुआ और दोना देशो की सेनाएँ योरोपीय रण-क्षेत्र में एक दूसरे के सामने होकर खडी थीं। १७४२ में युद्ध को अवश्यम्भावी समझकर फ्रास की सरकार ने अग्रेजो

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ समझौता करना भी चाहा था, परन्तु इसमें सफलता प्राप्त न हो सकी।

बोर्दूने की विजय :—इसी बीच में बोर्दूने अपनी योजना को तैयार करने में व्यस्त था। बोर्दूने १७३४ में फ्रांस और बर्बन नामक टापुओं का गवर्नर नियुक्त किया गया और पाँच वर्ष में ही उसने अपने सुशासन से इन द्वीपों की कायापलट कर दी थी जब १७४० में वह फ्रांस लौटा, तो इंग्लैंड के साथ युद्ध अवश्यम्भावी समझकर उसने अपना एक निजी एवं बेड़ा तैयार करके अंग्रेजों के जहाजों पर आक्रमण करने का निश्चय किया। जब यह योजना फ्रांस की सरकार के सामने रक्खी गई तो उसने इसको स्वीकृत कर लिया और अपनी कम्पनी को उसके बेड़े में सहायता देने के लिए बाध्य किया। अपने इस बेड़े को लेकर बोर्दूने ने भारत के लिए प्रस्थान किया और गर्व के साथ यह घोषणा की कि वह अंग्रेजों को बुरी तरह पराजित करने में अवश्य सफल होगा। परन्तु युद्ध शीघ्र आरम्भ नहीं हुआ जैसी कि उसको आशा थी, और फ्रांस की कम्पनी ने, जो अभी तक पूर्वी समुद्रों में तटस्थता का स्वप्न देख रही थी, उसको अपने जहाजों को वापिस फ्रांस भेजने का आदेश दिया। बोर्दूने को इस आज्ञा को पाकर दुःख तो अवश्य हुआ, परन्तु उसने इसका पालन किया और जब कुछ समय पश्चात् युद्ध आरम्भ हुआ तो उसकी ग्लानि का कोई ठिकाना नहीं था। उधर जब अंग्रेजों ने बोर्दूने की इस योजना का समाचार पाया, तो उन्होंने भी पूरी तैयारी की और १७४५ में एक शाही बेड़ा बारनेट के नेतृत्व में कोरोमण्डल तट पर आ धमका और पांडिचेरी के लिए भय का कारण बन गया डूप्ले ने जो १७४२ में फ्रेंच भारत का गवर्नर होकर आया था, बोर्दूने से तै किया कि वह अपना बेड़ा भारतीय तट पर लाकर मद्रास का घेरा आरम्भ करे। बोर्दूने ने फिर अपना एक बेड़ा द्वीपों में तैयार कर लिया था और फ्रांस की सरकार से भी कुछ सहायता प्राप्त कर ली थी। बोर्दूने १७४६ की जौलाई के आरम्भ में पांडिचेरी जा पहुँचा।

मद्रास पर अधिकार :—परन्तु डूप्ले और बोर्दूने के भाग्य में मिलकर काम करना नहीं लिखा था। बोर्दूने पहले से ही अंग्रेजी जहाजों को लूटना चाहता था और इसलिए पांडिचेरी पहुँचकर उसने मद्रास पर आक्रमण करने में हिचकिचाहट की। परन्तु अन्त में बोर्दूने आक्रमण करने के लिये बाध्य हो गया। २१ सितम्बर को मद्रास ने आत्मसमर्पण कर दिया। दोनों ओर से कोई जन-क्षति नहीं हुई। केवल एक गोला फट जाने के कारण एक-दो अंग्रेजों की जान अवश्य गई थी। युद्ध-बन्दियों में क्लाइव भी था जो इस समय केवल २१ वर्ष का था और कम्पनी की सेवा में एक लेखक था।

जब डूप्ले ने बोर्दू ने का यह समाचार सुना कि मद्रास पर उसका अधिकार हो गया है। तो उसकी प्रसन्नता का टिकाना नहीं रहा। अब उसने इस परिस्थिति में पूरा लाभ उठाने का प्रयत्न किया। बोर्दू ने के इस प्रस्ताव को सुनकर कि कुछ रुपया लेकर मद्रास अंग्रेजो को लौटा दिया जाये, डूप्ले को बडी घृणा हुई। डूप्ले ने इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया और उसको समझाया कि ऐसी सुलभ सफलता के लाभ को व्यर्थ ही न खो देना चाहिए। परन्तु बार्दू ने न लिखा कि वह वचन दे चुका है और ४ लाख पौण्ड लकर मद्रास अंग्रेजो को लौटान केअहदनामे पर हस्ताक्षर कर दिये। सम्भवत इसमें उसको भी रिश्वत मिल गई हो। जब डूप्ले ने यह समाचार सुना तो उसकी चिन्ता और क्रोध अवर्णनीय थ। उसका क्रोध प्राकृतिक था क्योंकि १७४१ से वह मद्रास पर आक्रमण की प्रतीक्षा कर रहा था और इस बार आक्रमण का सारा व्यय उसीने किया था। शीघ्र ही दोनो आदमियो में कलह और द्वेष आरम्भ हो गया परन्तु परिस्थिति ने डूप्ले का साथ दिया। भयङ्कर मानसून चलने के कारण बोर्दू ने को अपने टूटे-फूटे जहाजो को लेकर टापुओ की ओर जाना पडा और डूप्ले न मद्रास पर अधिकार कर लिया और बन्दी अंग्रेजो को पांडचेरी ले गया। परन्तु फोर्ट सेंट डविट पर लारेंस ने उसके आक्रमण को असफल बना दिया। इस लारेंस न अंग्रेजो और फ्रास क युद्ध में बडा महत्वपूर्ण काय किया। अब अंग्रेजो ने एक बडे विशाल बडे के साथ पांडचेरी का घेरा डाला। इसमें अंग्रेजो को हजारो जानें खपानी पडी।

ए-ला शेपेल की सन्धि:—१७४८ में ए-ला-शेपेल की सन्धि हो जाने से भारत में भी युद्ध बन्द हो गया। मद्रास अंग्रेजो को मिल गया और अमरीका में लुईवर्ग फ्रास को लौटा दिया गया। इस प्रकार अंग्रेज और फ्रेंच लोगो के युद्ध का पहला दौर समाप्त हुआ। कुछ इतिहासकारो का विचार है कि यदि डूप्ले और बोर्दू ने में झगडा न हुआ होता तो अंग्रेजी सत्ता सदा के लिए भारतवर्ष स उठ जाती। परन्तु यह बात सत्य प्रतीत नही होती, क्योकि डूप्ले जो करना चाहता था उसने किया। मद्रास, जो सबसे नि शक्त नगर था, उसके आधिपत्य में आगया था और कलकत्ता तथा बम्बई सर्वथा स्वतन्त्र बने रहे। इसके अतिरिक्त इगलैंड से बडा शक्तिशाली जहाजी बेडा भारत के लिए प्रस्थान कर चुका था, जिसको पराजित करना असम्भव था।

डूप्ले की योजना:—ए-ला-शेपेल की सन्धि से दोनो कम्पनियो की स्थिति कोरो-मण्डल-तट में यथापूर्व हो गई थी। परन्तु क्योंकि दोनों कम्पनियो के कर्मचारी युद्धक्षेत्र में एक दूसरे के शत्रु होकर लड चुके थे, इसलिए अब उनमें मैत्री भावना नही

पुनर्स्थापना सर्वथा असम्भव थी। विदेशी कम्पनियों के इस युद्ध के अनेकों महत्वपूर्ण परिणाम निकले। विदेशियों को "अपनी बस्तियो के चारो ओर सैकड़ों मील की भौगोलिक स्थिति" का ज्ञान हो गया था। देशी राजाओं की शक्ति का भी पता लग गया था। १७४६ में फ्रान्सीसियों और कर्नाटक के नवाब अनवरुद्दीन में खुल्लमखुल्ला युद्ध हुआ। डूप्ले ने उसे वचन दिया था कि अंग्रेजों से मद्रास को जीतकर उसको दे दिया जायगा, परन्तु इस वचन को पूरा करने का विचार आरम्भ से ही नही था। जब नवाब ने प्रण को पूरा कराने के लिए बल का प्रयोग किया तो फ्रांस की एक छोटी-सी टुकडी ने उसको बडी आसानी से परास्त कर दिया। इस आकस्मिक विजय से डूप्ले ने यह धारणा बना ली कि दक्षिणी भारत में मुसलमान शासकों की बडी से बडी सेनाएं भी यूरोपीय सुनियन्त्रित छोटी-सी सेना का सामना नही कर सकती। इसके अतिरिक्त वह स्वयं भी एक कूटनीतिज्ञ होने के नाते शान्तिमय व्यापार में अभिरुचि नही रखता था। वह शक्ति का इच्छुक एवं पुजारी था और नीति तथा व्यक्तिगत इच्छा के कारण उसको शान-शौकत और तडक भड़क का जीवन प्रिय था। उसने दक्षिणी भारत की राजनीतिक परिस्थिति का अच्छा एवं गहन अध्ययन कर लिया था और अपनी विशेष योग्यता को खुलकर खेलने के लिए उसको वहाँ पर आशापूर्ण वृहत् क्षेत्र दिखलाई पडा। वास्तव में वह महान राजनीतिज्ञों की भाँति एक अवसरवादी था और प्रत्येक सफलता के पश्चात् उसके विचार वृहत् होते चले गए। जब तक वह भारतवर्ष में रहा वह स्वयं भी यह न जान सका कि वह मार्ग जो उसने अपनाया था, उसको कहाँ ले जायगा और न ही उसने अपनी स्थिति से अपनी कम्पनी के स्वामियों या मन्त्रि-मण्डल को अवगत होने दिया। उसके पतन के दो मुख्य कारण थे। उसकी असावधान आर्थिक नीति तथा अपने ऊपर नियन्त्रण का सर्वथा अभाव।

द्वितीय कर्नाटक युद्ध :—भारतीय राजनीति में हस्तक्षेप करने का पाठ डूप्ले को अंग्रेजों ने ही पढाया था। कोलेरून नदी के मुहाने पर एक बन्दरगाह पाने का वचन लेकर उन्होंने तन्जौर की गद्दी के लिए एक आदमी की सहायता की थी। फ्रांस वालो ने इस नीति का प्रयोग बड़े पैमाने पर किया १७४८ में आसफजाह निजामुलमुल्क का देहान्त हो गया और पुत्र और पौत्र आपस में राजगद्दी के लिए युद्ध करने लगे। डूप्ले ने कर्नाटक की नवाबी के मामले में चाँदा साहब का साथ दिया था और क्योंकि चाँदा साहब मुजफ्फर-जंग का, – जो हैदराबाद की गद्दी का इच्छुक था,—मित्र था, इसलिए उसने सोचा कि दोनो ही उसकी सहायता पाकर उसके ऋणी होंगे और इसमें लेश-मात्र भी सन्देह नही है कि यदि यह योजना पूर्ण हो जाती फ्रांस कम्पनी की स्थिति अत्यन्त सुदृढ हो जाती। १७४९ में सम्बर के

चांदा साहब और मुजफ्फर जंग ने फ्रांसीसी सेना की सहायता से अनवरुद्दीन को पराजित किया और मार डाला। मुहम्मदअली, जो अनवरुद्दीन का औरस पुत्र था, त्रिचनापली भाग गया और कर्नाटक के शेष भाग पर चांदा साहब का आधिपत्य हो गया। चांदा साहब ने अपने सहायकों को अतुल धन प्रदान किया और फ्रेंच कम्पनी को पांडिचेरी के चारों ओर ८० गांव दिए। डूप्ले ने तुरन्त त्रिचनापली और नासिरजंग के विरुद्ध, जो दक्षिण का सूबेदार बन बैठा था, बढ़ने का प्रयत्न किया, परन्तु उसके भारतीय सहायकों ने उसकी बात न मानी। चांदा साहब तंजौर के आक्रमण में व्यर्थ समय गँवाता रहा अतः नासिरजंग ने एक विशाल सेना लेकर, हैदराबाद की ओर प्रस्थान किया। मेजर लारेन्स ६०० सैनिक लेकर उससे आ मिला। मुहम्मदअली की सहायता के लिए एक सेना त्रिचनापली भेजी गई। इसी बीच मुजफ्फर जंग ने नासिरजंग के सामने हथियार डाल दिए और चांदा साहब को भागकर पांडिचेरी में शरण लेनी पड़ी। परन्तु डूप्ले ने बड़े धैर्य और योग्यता से काम लिया और उसके अफसरों ने मसूलीपट्टम तथा त्रिवेदी पर अधिकार कर लिया और बुसी ने जिन्जी को, जो अब तक अजेय माना जाता था, विजय कर लिया। दिसम्बर १७५० में नासिरजंग को धोखे से कत्ल कर दिया गया और उसकी जगह मुजफ्फरजंग पांडिचेरी में दक्षिण का सूबेदार बना दिया गया। उसने मसूलीपट्टम तथा बहुत-सा धन फ्रांसीसियों को दिया कम्पनी और सैनिकों को प्रत्येक को ५० हजार पौंड, और डूप्ले को २ लाख पौंड, वाल्दावूर गांव की जागीर और दस हजार पौंड सालाना दिया गया। नए सूबेदार ने डूप्ले को कृष्णा नदी से कोमोरिन अन्तरीप तक के प्रदेश का सर्वोच्च अधिपति स्वीकार कर लिया।

मुजफ्फरजंग का देहान्त :—जनवरी १७५१ में मुजफ्फरजंग बुसी के साथ औरंगाबाद के लिए रवाना हुआ। आरम्भ में यह विचार किया गया था कि बुसी नये नवाब को उसकी राजधानी तक पहुँचाकर लौट आयेगा परन्तु मुजफ्फरजंग प्रस्थान करने के कुछ दिन पश्चात् अचानक एक युद्ध में मार डाला गया। इस विकट परिस्थिति में वीर बुसी ने बड़े धैर्य और साहस से काम लिया। वह मुजफ्फरजंग के लड़कों को राज्याधिकार से वंचित करके आसफजाह निजामुलमुल्क के तीसरे बेटे सलावतजंग को, जो उस समय कैम्प में बन्दी था, नवाब बनाकर हैदराबाद ले गया सलावतजंग की सहायता और सुरक्षा के लिए बुसी सात वर्ष तक वहीं रहा। उधर कर्नाटक में १७५१ तक डूप्ले अपने प्रभाव और शक्ति की चरम सीमा तक पहुँच गया और इसके पश्चात् उसका पतन आरम्भ हुआ। अभी तक अंग्रेजी कम्पनी इन देशी शक्तियों को पारस्परिक युद्धों में भाग लेने से कुछ हिचकती थी और एक बा

मुहम्मदअली को निस्सहाय छोड दिया गया था, परन्तु अन्त में धन और जन से उसकी सहायता करना निश्चित हुआ। सबसे अधिक चिन्ता त्रिचनापली की थी जिसका महत्व सैनिक-दृष्टिकोण से बहुत अधिक था और जिसको अग्रेज फ्रांसीसियो के हाथ में पड जाना नही चाहते थे। इसलिए कर्नाटक युद्ध प्रारम्भ हुआ। इस समय यूरोप में इंगलैड और फ्रांस में शान्ति थी इसलिये दोनो जातियों के प्रतिनिधि सीधे एक दूसरे पर आक्रमण नही कर सकते थे। और आरम्भ में मित्रता निभाने का झूठा प्रयत्न भी किया गया। यह निश्चय हुआ कि यूरोपीय सैनिक एक-दूसरे पर वार न करे। कर्नाटक युद्ध-क्षेत्र में परिणत हो गया और उसको भयकर क्षति उठानी पडी। इस युद्ध में मैसूर और तंजौर ने भी भाग लिया। मरहठा लोग भी अवसर पाकर लूट-मार करते रहते थे।

अर्काट का घेरा :—१७५१ मे ऐसा प्रतीत होता था कि त्रिचनापली का पतन अवश्य हो जायगा। परन्तु क्लाइव ने एक तरकीब सोच निकाली। अगस्त १७५१ में उसने कर्नाटक की राजधानी अर्काट पर आक्रमण कर दिया। इसलिए चाँदा साहब को अपनी आधी सेना अर्काट की रक्षा के लिए भेजनी पडी। क्लाइव बडी वीरता से पचास दिन अर्काट का घेरा डाले पडा रहा और अन्त में शत्रुओ को मार भगाने में सफल हुआ और इसके पश्चात् उसने अरनी और कवरीपाक आदि स्थानो पर भी शत्रु को पराजित किया। बाध्य होकर चाँदा साहब ने तंजौर-नरेश के जनरल के सामने हथियार डाल दिये। तंजौर-नरेश मुहम्मदअली का मित्र था। चाँदा साहब को बुरी तरह मार डाला गया और अब मुहम्मदअली कर्नाटक का नवाब हो गया। डूप्ले बुरी परिस्थिति से घबराता नही था। अब उसने मरहठो से मित्रता की और अग्रेजो के मित्रो को उनसे फोडने का प्रयत्न किया। परन्तु उसको कोई सफलता प्राप्त न हो सकी। बुसी ने भी डूप्ले को अच्छी से अच्छी सन्धि करने के लिए लिखा। सलावतजग के दरबार में उसका भी प्रभाव कुछ समय के लिए कम हो गया था परन्तु अपनी योग्यता से फिर उसने इसको स्थापित किया और उत्तरी सरकार' प्रान्त, जो बिहार और कर्नाटक के बीच लगभग ६०० मील में फैला हुआ था, नवाब से फ्रेंच कम्पनी के लिए प्राप्त कर लिया। परन्तु ये प्रान्त उसको अपनी सेना के भरण-पोषण के लिए जब तक वह वहाँ रहे मिले थे। १७५३ के अन्त में डूप्ले अग्रेजो के साथ सन्धि करने पर बाध्य हुआ। उसके जनरल पराजित हो चुके थे, उसके सहयोगी असन्तुष्ट थे और उसको धन की भारी आवश्यकता थी।

डूप्ले का पतन :—उधर लन्दन में दोनो कम्पनियो के प्रतिनिधियो में झगडे का अन्त करने के लिए लम्बी बातचीत चली; परन्तु सब व्यर्थ रहा। फ्रांस की सरकार

डूप्ले की नीति से पहले ही असन्तुष्ट थी और बोर्दू न के लेखो ने उस असन्तोष की और भी अधिक वृद्धि कर दी थी। १७५४ में कम्पनी का एक डाइरेक्टर गोडह्यू पूरे अधिकारो के साथ डूप्ले के ऊपर नियुक्त करके भारत में फ्रांस की स्थिति की जाँच करने के लिए भेजा गया। डूप्ले को बन्दी बनाने की भी आज्ञा उसको प्रदान की गई थी यदि डूप्ले किसी प्रकार का विरोध करता। डूप्ले की श्रद्धा और देशभक्ति में तो कोई सन्देह था ही नही, उसकी तो एकमात्र भूल यह थी कि उसने अपने देश का यश और मान बढाने के लिए त्रुटिपूर्ण साधनो का प्रयोग किया था। अगस्त १७५४ में गोडह्यू पांडिचेरी पहुँचा और अक्टूबर में तीन मास के लिए उसने युद्ध बन्द करा दिया और जनवरी १७५५ में उसने एक सन्धि तैयार की जो इंग्लैंड और फ्रांस में दोनो कम्पनियो द्वारा स्वीकृत हुए बिना मान्य नही हो सकती थी। इसमे दोनो ने निश्चित किया था कि देशी शक्तियो के झगडे में हस्तक्षेप नही करेंगे और सब मुस्लिम उपाधियो आदि का त्याग कर देंगे। अंग्रेजो को डीवी या ममूलीपट्टम और या वह स्थान, जिस पर उनका उत्तरी सरकार में पहले ही से आधिपत्य था, दिये जाने की शर्त भी इसमें रक्खी गई थी। डूपले ने बाद में कहा था कि गोडह्यू ने "देश के पतन और जाति के अपमान पर हस्ताक्षर कर दिये थे।" उसका कथन था कि जब गोडह्यू भारत में आया, उस समय तक फ्रान्सीसियो की दशा सुधर चली थी और वह अपने साथ लाई हुई सहायता से त्रिचनापली पर अधिकार करके अंग्रेजो को परास्त कर सकता था। डूप्ले के इतिहास लिखने वाले कुलट्टु ने भी ऐसे ही विचार प्रकट किये है। परन्तु सत्य कुछ और ही था। गोडह्यू के भारत आने के समय खजाना खाली था, सैनिक अपने वेतन के लिए चिल्ला रहे थे और सर्वत्र अराजकता फैल रही थी। वह सेना, जो वह अपने साथ लाया था, निरर्थक थी। अंग्रेजो के पास उनसे कही बडी और अच्छी सेना थी। उनके ६०० बन्दी अंग्रेजो के हाथ में थे जब कि उनके पास अंग्रेज बन्दियो की सख्या केवल २०० ही थी। अंग्रेज अधिकारियो ने इस सन्धि को देश और कम्पनी के लिए हानिकारक और फ्रेंच कूटनीति की सफलता का उदाहरण समझा अत: सन्धि न हो सकी।

सन्धि:—गोडह्यू ने सन्धि की शर्तें आरम्भ में बडी ऊँची रक्खी थी परन्तु वाटसन का जहाजी बेडा आ जाने से वह घबरा गया कि कही क्लाइव बम्बई से मरहठो के साथ मिलकर बुसी पर आक्रमण न कर दे और इसलिए उसने शर्तों को बहुत ढीला कर दिया। इसके अतिरिक्त वह सन्धि फ्रांस वालो के लिए अपमान-जनक नही कही जा सकती, क्योकि उनके अधीनस्थ प्रदेशो की वार्षिक आय ८ लाख पौड थी जबकि अंग्रेजो की १ लाख ही थी, फिर सन्धि की अन्तिम स्वीकृति दोनो

कम्पनियों के स्वामियों पर आश्रित थी यद्यपि यह स्वीकृति कभी भारतवर्ष न पहुँच सकी, क्योंकि इसी बीच में यूरोप में सप्त वर्षीय युद्ध आरम्भ हो गया था। इसलिए इस सन्धि का फ्रांस की भारतीय स्थिति पर कोई प्रभाव नही पड़ा। जैसा कि फ्रांस के दो आधुनिक इतिहासकार कुलट्ट् और वेवर ने भी स्वीकृत किया है कि भारतवर्ष में फ्रांस-शक्ति के पतन का वास्तविक कारण गोड्यू की सन्धि नही वरन सप्तवर्षीय युद्ध था।

जब गोड्यू भारत में आया तो कम्पनी की आर्थिक अवस्था बड़ी शोचनीय थी। उस पर डूप्ले का भी ऋण था, परन्तु इसको गोड्यू ने अस्वीकार कर दिया था, क्योंकि उसकी व्यक्तिगत सम्पत्ति कम्पनी के डायरेक्टरों की आज्ञा के विरुद्ध अनियमित रूप से जागीर आदि के द्वारा प्राप्त की गई थी। परन्तु फिर भी ऐसे योग्य सेवक के लिए पेन्शन आदि का प्रबन्ध करना कम्पनी का कर्तव्य था जो उसने पूरा नही किया। परन्तु इसमें गोड्यू का कोई दोष नही था। डूप्ले को वापस फ्रांस जाने के लिए गोड्यू ने समुचित आर्थिक प्रबन्ध कर दिया था और उसको वाल्दावूई की जागीर से लगभग १० सहस्र पौंड सालाना की उसको आय भी थी। वह १७६३ तक जीवित रहा और उसके अन्तिम दिन बड़ी दरिद्रता से कटे। फ्रच प्रदेशों का अन्त होने के साथ-साथ उसकी जागीर का भी अन्त हो गया।

डूप्ले का चरित्र —डूप्ले कम्पनी और फ्रास की सरकार को केवल अपनी विजयों की सूचना देता था और अपनी पराजयों को उनसे छिपाकर रखता था। क्लाइव द्वारा अर्काट विजय की उसने कभी कोई सूचना नही दी। इन घटनाओं की सूचना उनको डच या अंग्रेजी समाचारपत्रों या पत्रों द्वारा प्राप्त हुई और इससे उन के हृदय में उसके प्रति बड़ा अविश्वास पैदा हो गया था। डूप्ले न भारतीय नरेशों की समस्याओं में हस्तक्षेप करके फ्रेंच प्रभाव को स्थापित करने तथा बढ़ाने की नीति अपनाई थी, परन्तु वह इसने सरकारको कभी अवगत नही करता था। उसके वापिस बुलाने के छ महीने पश्चात् उसकी नीति का पूरा पूरा हाल उनको मिला और उन्होंने इस पर उसको वापस बुलाने की आज्ञा भी रद्द कर दी थी, परन्तु तब तक वह प्रस्थान कर चुका था। निस्सदेह डूप्ले को सफलता न हो सकी, परन्तु वह अवश्य ही एक बड़ा राजनीतिज्ञ था। उसके राजनीतिज्ञ विचार बड़े साहसी एव कल्पनापूर्ण थे। कुछ समय के लिए उसने फ्रांस की धाक बैठा दी थी और उसका नाम बहुत ऊँचा कर दिया था। उसने जो मान और यश भारतीय नरेशों में प्राप्त किया, उसकी समानता कोई नही कर सका। कुछ काल के लिए वह अंग्रेजों के लिए वह हव्वा बन गया था।

सप्तवर्षीय युद्ध :—डूप्ले के फ्रांस चले जाने के पश्चात् अंग्रेजों और फ्रान्सीसियों में कर्नाटक में चार वर्ष तक कोई झगडा नहीं हुआ, क्योंकि दोनों अब तक के युद्धों से बहुत अधिक थक गये थे। इसी बीच में नवाब सिराजुद्दौला ने कलकत्ता पर अधिकार कर लिया और क्लाइव कोरोमण्डल तट की सर्वश्रेष्ठ सेना को लेकर बंगाल की ओर रवाना हो चुका था। सप्तवर्षीय युद्ध के आरम्भ होने पर फ्रांस वालो ने अंग्रेजी बस्तियो पर आक्रमण करने का शुभ अवसर देखा। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए काउण्ट डी लैली को भेजा गया। अप्रैल १७५८ में वह भारत पहुँचा। अब तक अंग्रेजो ने कलकत्ता फिर विजय कर लिया था। लैली ने फोर्ट सेंट डेविड पर बम-वर्षा की और उसको विजय कर लिया। परन्तु लैली की असफलता का यही पर अन्त हो गया। लैली बड़ा वीर, साहसी और पवित्रात्मा जनरल था, परन्तु साथ ही साथ वह बड़ा क्रोधी था और किसी की सलाह मानने में अपना अपमान समझता था। पांडिचेरी का गवर्नर लैली की सेवा के लिए धन देने में असमर्थ था; इसलिए लैली ने तंजौर के राजा से ५६ लाख रुपये का सिक्का, जो फ्रांसीसियो के हाथ लग गया था, वसूल करने के लिए तंजौर पर आक्रमण के हेतु प्रस्थान किया। इसमें फ्रांस के गिरते हुए सम्मान को और भी अधिक ठेस लगी। फ्रेंच एडमिरल डी० आशे लैली के बहुत कुछ कहने पर बर्बन टापू को चला गया। अब लैली ने मद्रास पर आक्रमण करने के लिए अपनी सेना को सजाया। उसने बुसी को, जो अब तक जैसे तैसे अपनी स्थिति बनाए हुए था, हैदराबाद से अपनी सहायता के लिए बुलाया। बुसी जानता था कि हैदराबाद से चले जाने पर वह फिर वहाँ अपना प्रभाव स्थापित नहीं कर सकता, फिर भी उसने लैली की आज्ञा का पालन किया। उधर क्लाइव ने अक्टूबर १७५८ में एक योग्य सेनापति फोर्ड को उत्तरी सरकार में हस्तक्षेप करने के लिए भेजा। यद्यपि कौंसिल ने इसका विरोध किया था। फोर्ड ने अप्रैल १७५८ में बुसी के उत्तराधिकारी को परास्त किया और अगले वर्ष मसूलीपट्टम पर भी अधिकार कर लिया। अब हैदराबाद दरबार में फ्रेंच प्रभाव सदा के लिये समाप्त हो गया। सलावतजंग ने मसूलीपट्टम के निकट ८० मील लम्बाई और २० मील चौड़ाई का प्रान्त अंग्रेजो को दे दिया और फ्रांसीसियो के साथ किसी प्रकार का भी सम्बन्ध न रखने का प्रण किया।

बुसी की उपस्थिति से लैली को कोई विशेष लाभ नहीं हुआ क्योंकि दोनों की नीति सर्वथा भिन्न थी। बुसी फ्रेंच राज्य की सन्धि तथा मित्रता के आधार पर रखना चाहता था और आप स्वयं हैदराबाद दरबार में रहता हुआ केन्द्रीय शासन प्राप्त करना चाहता था। लैली अपनी सब शक्ति को लगाकर अंग्रेजो की बस्तियों

पर एक-एक करके आक्रमण करना चाहता था। उसका कथन था, "सम्राट् और कम्पनी ने मुझको अंग्रेजों को भारत से बाहर निकालने के लिए भेजा है ...इस बात से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है कि कौन-कौन राजा किस किस नवाबी के लिए झगड़ा करते हैं।"

दिसम्बर १७५८ में मद्रास का घेरा आरम्भ हुआ परन्तु फरवरी में उसको उठाना पड़ा क्योंकि अंग्रेजी जल-सेना का सामना करने के लिये फ्रांसीसियों के पास जल सेना नहीं थी। अब लैली ने बचाव का युद्ध करना आरम्भ किया और अंग्रेज आक्रमणकारी बने। लैली के सैनिक धन के अभाव में निरंतर विद्रोह करते रहते थे और लैली के पांडिचेरी के गवर्नर के साथ सम्बन्ध बहुत बुरे थे। सितम्बर १७५९ में डी० आशे भी कोरोमण्डल तट पर लौट आया और तीसरी बार फिर एक अनिर्णायक युद्ध किया। फिर एक बार पांडिचेरी को इसके भाग्य पर छोड़कर वह टापुओं की ओर चला गया। लैली दो वर्ष तक सामना करता रहा, परन्तु जनवरी १७६० में सर आयरकूट ने उसको वान्डावाश के स्थान पर परास्त किया और बुसी को बन्दी बना लिया। लैली ने भागकर पांडिचेरी में शरण ली और एक वर्ष पश्चात् हथियार डालने पर बाध्य हो गया। कहते हैं कि वह ऐसा घृणापात्र बन गया था कि यदि अंग्रेजी सैनिक जब वह नगर छोड़ रहा था, उसकी सहायता न करते तो लोग उसकी बोटी बोटी काट डालते। उसको युद्ध बन्दी के रूप में इंग्लैंड ले जाया गया, परन्तु वहां से अपने ऊपर लगाये हुए दोषों का सामना करने के लिए छुटकारा पाकर वह फ्रांस पहुंचा। दो वर्ष तक अभियोग चलने के पश्चात् उसको मृत्यु-दण्ड दिया गया।

पेरिस की संधि :—पांडिचेरी के पतन के साथ-साथ भारतवर्ष में फ्रांस आधिपत्य का भी अन्त हो गया। १७६३ में पेरिस की सन्धि के द्वारा पांडिचेरी तो फ्रांसीसियों को मिल गया, परन्तु उसकी किलेबन्दी करने का अधिकार उनसे छीन लिया गया। अब वे कोरोमण्डल तट पर निश्चित संख्या में ही सैनिक रख सकते थे। और बंगाल में भी अब वे केवल व्यापार मात्र के लिये ही जा सकते थे। मुहम्मद अली कर्नाटक का नवाब बना दिया गया। हैदराबाद का सूबेदार सलाबतजंग ही रहा, परन्तु वहां पर फ्रांसीसियों का प्रभाव अब एक कहानी रह गई थी। सलाबत जंग को हैदराबाद का नवाब स्वीकार करना कोई महत्त्वपूर्ण बात नहीं हुई; क्योंकि १७६१ में ही उसके भाई निजामअली ने उसको पदच्युत कर दिया था और पेरिस सन्धि के छः महीने पश्चात् उसका वध कर दिया था। उसकी सरकार का

अंग्रेजो के हाथ लगा, जिसके लिए १७६५ में क्लाइव ने मुगल सम्राट् से फर्मान प्राप्त कर लिया। इसके पश्चात् फ्रांस के साथ युद्ध छिडने पर अ ग्रेजी सैनिक पांडेचेरी पर कब्जा कर लेते थे। फ्रांस ने एक बार फिर १७८१–८३ में अपनी शक्ति को स्थापित करने का प्रयत्न किया, परन्तु इस बार स्थल पर कोई आधार न होने के कारण उनको फिर निराशहोना पडा। १७८५ में फ्रेंच कम्पनी की पुनर्स्थापना की गई, परन्तु इस बार उसको केवल व्यापारिक एकाधिकार के अतिरिक्त और कोई अधिकार नही दिया गया।

अग्रेजों की सफलता के कारण :—अँग्रेजों की विजय के अनेकों कारण थे, जिनमें उनका बढा-चढा व्यापार और सुदृढ आर्थिक दशा मुख्य थे। व्यापारिक कम्पनी के लिए समृद्ध व्यापार अत्यन्त आवश्यक है, फिर शासन और सेना-सम्बन्धी उसकी नीति कुछ भी क्यो न हो। समृद्ध व्यापार के कारण ही अग्रेज कम्पनी फ्रेंच कम्पनी की सफल शत्रु सिद्ध हो सकी। अग्रेजो को सदा अपनी विजयो से लाभ होता था। युद्ध काल में अग्रेजो ने अपने व्यापार का बडा ध्यान रखा और अपने निर्यात की बहुत कुछ वृद्धि की जैसा कि आँकडो से सिद्ध होता है। जब १७४६ के पश्चात् फ्रान्स का व्यापार निरन्तर अवनत होता चला गया। इसके पश्चात बगाल की विजय ने अग्रेजी कोष को लबालब किये रखा। अग्रेज कभी भी यह नही भूले कि वे एक व्यापारिक सस्था थे। उधर डूप्ले ने अपने मस्तिष्क में यह निश्चित कर लिया था कि भारतीय व्यापार से उनको कोई लाभ नही हो सकता और सैनिक विजय के द्वारा वे अपने भविष्य को उज्ज्वल बना सकते थे। परन्तु उस काल की परिस्थिति विशेष में यह एक भयानक भूल थी। भारतवर्ष यूरोप से बहुत दूर पडता था और फ्रान्स यूरोप की राजनीतिक दलदल में ऐसा फँसा हुआ था कि केवल तलवार के बल से पूर्वी साम्राज्य को विजय नही कर सकता था। १७५३ में मद्रास से अग्रेजो ने लिखा था "डूप्ले की नीति को कम्पनी की नही वरन् एक राष्ट्र की सहायता की आवश्यकता है।"

अग्रेज कम्पनी एक शक्तिशाली और स्वावलम्बी सस्था थी जिसका प्रबन्ध एक प्राइवेट सस्था के हाथ में था और जिसकी आर्थिक स्थिति ऐसी सुदृढ थी कि इंगलैंड की सरकार उससे बडी बडी धनराशि ऋण लिया करती थी। इसका विधान ऐसा था कि इससे जनता में भी इसका अधिक प्रभाव था और सरकार इसके कार्य में विशेष हस्तक्षेप नही कर पाती थी। परन्तु फ्रास की कम्पनी सरकार का एक विभाग मात्र थी। सब शक्ति सरकार के हाथ में थी। १७३३ में अपनी पूँजी पर

व्यापार सरकार द्वारा सुनिश्चित हो जाने के कारण, डाइरेक्टर लोग इसके शासन में कोई रुचि नहीं रखते थे। निस्सन्देह लुई पन्द्रहवें के मन्त्री सुस्त थे, परन्तु उन दिनों की यूरोपियन स्थिति भी उनको भारतीय समस्या पर समुचित ध्यान देने का अवकाश नहीं देती थी और विदेशी व्यापार में प्रारम्भ से ही फ्रान्सीसियों में जोखिम उठाने की भावना का अभाव था। सम्राट लुई पन्द्रहवें और उसके योग्य मन्त्री कोलवर्ट ने कम्पनी में नवजीवन का सचार किया था, परन्तु उनकी छत्रछाया से उठते ही कम्पनी की शक्ति जैसे भाप बनकर उड गई हो। सरकार अनिश्चित काल तक कम्पनी को सहायता नहीं दे सकती थी। व्यक्तिगत रूप से जोखिम उठाने की भावना तथा साहस, जिसने अग्रेजी कम्पनी को शक्तिशाली और समृद्ध बनाया, उसका फ्रेंच कम्पनी में सर्वथा अभाव था।

१७४६ से १७५३ तक जो पारस्परिक युद्ध होता रहा उसमें अंग्रेज लगभग सदा ही विजयी रहे और इस विषय का एक मुख्य कारण क्लाइव और लारेंस के अजेय प्रयत्न तथा उनकी योग्यता थी। उनकी सफलता का मुख्य कारण उनकी निरन्तर उन्नतिशील जलशक्ति थी। सप्तवर्षीय युद्ध के आरम्भ होने पर जब फ्रान्स की शक्ति यूरोप के युद्धक्षेत्रों में ही लग गई थी, तो अग्रेजी जलशक्ति और अधिक शक्तिशाली हो गई। सम्भवत अग्रेजो की उच्चतर जलशक्ति कभी-कभी फ्रान्स को विजयी न होने देती। क्लाइव ने बगाल में चन्द्रनगर पर अधिकार कर लिया था जिसके कारण फ्रान्स का भारत के सबसे अधिक धनाढ्य प्रान्त से अधिकार सदा के लिए जाता रहा। १७५७ के पश्चात् बगाल की आमदनी उनको इतनी अधिक हो जाती थी कि वे अपने युद्ध का व्यय भली प्रकार चला सकते थे। उधर फ्रान्स की सेना के व्यय के लिए बडी कठिनता पडती थी। उनका व्यापार भी अधिक समृद्ध नहीं था और उत्तरी सरकार का प्रान्त, जो उनको मिल गया था, उसकी आमदनी से वहाँ पर रहने वाली सेना का ही व्यय चलता था। उसकी आय का एक पैसा भी फ्रान्स के कोष में जमा नहीं हुआ। केवल एक बार बुसी ने लगभग १ लाख रुपया लैली को दिया था।

डूप्ले और बुसी की विभिन्नता भी फ्रेंच पराजय का एक कारण बतलाई जाती है और इसमें तथ्य भी है। उधर अग्रेज सेनापति मिलकर काम करना जानते थे, परन्तु किसी साम्राज्य की विजय और पराजय में बडे बडे गम्भीर कारण छिपे होते हैं। आधुनिक खोज के आधार पर यह धारणा अधिक सत्य प्रतीत होती है कि समुद्र पर अधिकार सबसे अधिक महत्वपूर्ण कारण था।

प्रश्न

१. फ्रांसीसी कम्पनी की स्थापना कैसे हुई ?

२. अंग्रेज-फ्रांसीसी संघर्ष का क्या परिणाम हुआ ?

३. अंग्रेज फ्रांसीसी-संघर्ष में अंग्रेजों की विजय के क्या कारण थे ?

अध्याय १४

अंग्रेजी राज्य का सूत्रपात

सिराजउद्दौला तथा अंग्रेज

अलीवर्दीखाँ :— औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् मुगल साम्राज्य में अराजकता फैल गई। कुछ कालोपरान्त सुदूरवर्ती प्रान्तों के सूबेदार नाम मात्र में ही साम्राज्य के आधीन रह गये। ऐसी परिस्थिति में अलीवर्दीखाँ नामक एक साहसी अफगान, जिसे बंगाल के सूबेदार ने अपना मंत्री तथा बिहार का हाकिम बना दिया था, १७४२ ई० में बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा का सूबेदार बन बैठा। इसी समय मरहठों ने बंगाल पर आक्रमण करने आरम्भ कर दिये। अलीवर्दीखाँ ने मुगल साम्राज्य से सहायता माँगी जो किसी प्रकार प्राप्त न हो सकी इस पर उसने देहली को मालगुजारी देना बन्द कर दिया और स्वतन्त्र शासक की भाँति आचरण करने लगा किन्तु प्रकटतया वह अपने आपको सम्राट् के आधीन ही प्रदर्शित करता रहा।

अलीवर्दीखाँ योग्य तथा वीर शासक था। उसके शासन-काल में प्रजा अत्यन्त सुखी तथा समृद्ध थी। उसके समकालीन अंग्रेज इतिहासकार तथा स्वयं क्लाइव ने उसके आधीन बंगाल का प्रशंसनीय वर्णन किया है। वह योरोपियन व्यापारियों के साथ अच्छा बर्ताव करता था। दूरदर्शी राजनीतिज्ञ होने के कारण वह अंग्रेजों तथा फ्रान्सीसियों की कूटनीतिक चालों को, जिनके द्वारा वह हैदराबाद तथा कर्नाटक में पैर फैलाते जा रहे थे, भली भाँति समझता था, इसलिए जब अंग्रेजों ने कलकत्ते तथा फ्रान्सीसियों ने चन्द्रनगर की किलेबन्दी प्रारम्भ की तो उसने दोनों कम्पनियों के प्रतिनिधियों को दरबार में बुलाकर कहा, "तुम लोग सौदागर हो, तुम्हें किलों की क्या आवश्यकता है? जब तुम मेरी संरक्षता में हो तो तुम्हें किसी शत्रु का भय ही क्या हो सकता है? इसलिए तुम अपनी किलेबन्दी तुरन्त बन्द करो।" परन्तु दोनों कम्पनियों के अधिकारियों ने नवाब के आदेश की ओर अधिक ध्यान न दिया। अलीवर्दीखाँ भी अपनी वृद्धावस्था के कारण उसमें हस्तक्षेप न कर सका, परन्तु विदेशी व्यापारियों की सैनिक तैयारियों की ओर वह सजग था। यही कारण था कि अपनी मृत्यु-शैया पर पड़े

मरणासन्न अलीवर्दीखाँ ने अपने धेवते तथा उत्तराधिकारी सिराजउद्दौला को पास बुलाकर शिक्षा दी ' कि अपने साम्राज्य में यूरोपीय शक्ति पर दृष्टि रखना । यदि भगवान् मुझे कुछ और आयु देता तो मैं तुम्हें इस संकट से भी मुक्त कर देता परन्तु अब यह काम तुम्हें करना होगा । अपने देशों के पारस्परिक युद्धों के बहाने इन लोगों ने कर्नाटक तथा हैदराबाद पर अपना प्रभुत्व जमा लिया है। यही नीति ये यहाँ भी प्रयोग कर सकते हैं । इन्हें किले बनाने अथवा सेना रखने की आज्ञा न देना, अन्यथा देश तुम्हारे हाथों से जाता रहेगा।" १० अप्रैल सन् १७५६ ई० को अलीवर्दीखाँ की मृत्यु हो गई और सिराजउद्दौला बंगाल की गद्दी पर बैठा ।

सिराजउद्दौला की अप्रसन्नता के कारण :—गद्दी पर बैठने के थोड़े दिनों पश्चात् सिराजउद्दौला को अंग्रेज व्यापारियों से संघर्ष करना अनिवार्य हो गया, क्योंकि ये व्यापारी बंगाल में अपना राज्य स्थापित करने पर तुले हुए थे । धन तथा पद का प्रलोभन दे वे नवाब के अनेक दरबारियों तथा सम्बन्धियों को उसके विरुद्ध भड़का रहे थे । दूसरे इन्होंने जान-बूझ कर तरह तरह से नवाब का अपमान करना आरम्भ कर दिया था । वे सिराजउद्दौला को बंगाल का नवाब स्वीकार करने को भी तैयार न थे यही कारण था कि उसके गद्दी पर बैठने समय अंग्रेज कम्पनी ने कोई भेंट इत्यादि भी उसकी सेवा में न भेजी जैसी कि उस समय प्रथा थी । इसके अतिरिक्त और भी कई कारण थे जिनसे उसका क्षोभ बढ़ता गया । सर्वप्रथम अंग्रेजों ने कलकत्ता तथा अन्य व्यापारिक स्थानों की किलेबन्दी आरम्भ कर दी और जब नवाब ने इस सैनिक तैयारी को रोकने की आज्ञा दी तो उन्होंने उसके आदेश की परवाह न कर अपनी तैयारी उसी भाँति जारी रखी । दूसरे, सन् १७१६ ई० में मुगल सम्राट् फर्रुखसियर ने बंगाल में अंग्रेजों के माल पर चुङ्गी माफ कर दी थी । फलस्वरूप कम्पनी का माल बिना कर दिये प्रान्त में कहीं जा सकता था । परन्तु अब कम्पनी के अधिकारियों ने इस विशेष अधिकार का दुरुपयोग प्रारम्भ कर दिया । वे अन्य व्यापारियों के माल पर चुङ्गी लेकर उसे भी अपना बतलाकर बिना कर दिये निकालने लगे । इससे राज्य की आमदनी को बहुत धक्का लगा । तीसरे, नवाब के जो दरबारी अथवा सेवक किसी अपराध में दरबार से निकाल दिये जाते, इन्हें अंग्रेज कलकत्ते में बुलाकर अपनी कोठी में आश्रय देने लगे । इसी बीच नवाब को ज्ञात हुआ कि पूनिया का नवाब शौकतजंग, जो इसका एक सम्बन्धी था, मुर्शिदाबाद की गद्दी पर बैठने का प्रयत्न कर रहा है । सिराजउद्दौला को सन्देह हुआ कि इसमें भी अंग्रेजों का हाथ अवश्य है । अंग्रेजों से निबटने से पूर्व उसने शौकतजंग को ठीक करना चाहा । वह एक विशाल सेना सहित पूनिया की ओर

चढा। जब शौकतजंग को इसकी सूचना मिली तो वह एक अमूल्य भेंट ले उसके स्वागत के लिए आगे बढा और अपनी निर्दोषता प्रकट की। सिराजउद्दौला ने उसे क्षमा कर दिया।

शौकतजंग से निबटने के पश्चात् सिराजउद्दौला ने अंग्रेजो को ठीक करने की सोची। उसने अंग्रेजो तथा फ्रांसीसियो के नाम एक आज्ञापत्र भेजा, जिसमे उन्हे नए किले बनाने तथा पुराने किलो की मरम्मत न कराने का आदेश दिया गया। फ्रांसीसियो ने तो नवाब की आज्ञा मान ली, किन्तु अंग्रेजो ने केवल आज्ञा मानने से इन्कार ही न किया वरन् उस दूत का भी जो यह आज्ञापत्र लेकर गया था, बडा अपमान किया। सिराजउद्दौला के पास युद्ध के सिवा अब कोई और चारा न था।

कलकत्ता पर अधिकार :—२४ मई सन् १७५६ ई० को सिराजउद्दौला ने कासिमबाजार की अंग्रेज कोठी पर आक्रमण कर दिया और बहुत आसानी से उस पर अधिकार कर लिया। कोठी के अध्यक्ष वाट्स नामक अंग्रेज तथा उसके साथी बन्दी बना लिये गये और उन्हे साथ ले सिराजउद्दौला ने कलकत्ते की ओर प्रस्थान किया। कलकत्ता अंग्रेजो का केन्द्र था। उसकी रक्षा के लिए अंग्रेजो ने जी जान से प्रयत्न किया। उन्होने नवाब के यूरोपियन तथा ईसाई तोपचियो को धर्म के नाम पर नवाब के साथ विश्वासघात करने का आदेश दिया, परन्तु फिर भी २० जून १७५६ ई० को सिराजउद्दौला कलकत्ते पर विजय प्राप्त करने में सफल हुआ। बहुत से अंग्रेज जहाजो में बैठकर फाल्टा नामक गाँव में चले गये जो कलकत्ते से २० मील दक्षिण की ओर हुगली नदी पर बसा हुआ था। भागने वालो में कलकत्ते की कोठी का गवर्नर ड्रेक था। अंग्रेजो ने हौलवेल को अपना नेता बनाया और आत्म समर्पण कर दिया। जब वे नवाब के सामने लाये गये तो उन्होने प्राणदान की प्रार्थना की। फलस्वरूप उन्हे क्षमा कर दिया। सिराजउद्दौला ने सहर्ष उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और उन्हे मद्रास जाने की आज्ञा दी। उसने कलकत्ते का नाम बदल कर अलीनगर रक्खा और अपने एक दीवान राजा मानिकचन्द्र को अलीनगर तथा उसके निकटवर्ती प्रदेश का हाकिम नियुक्त किया।

ब्लैक होल का हत्याकाण्ड :—जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है सिराज-उद्दौला ने अंग्रेजो के साथ अत्यन्त सहृदयता का बर्ताव किया और हौलवेल के नेतृत्व में उन सबको क्षमा कर मद्रास जाने की आज्ञा दी, परन्तु इसी हौलवेल ने सिराजउद्दौला के चरित्र को दूषित करने तथा अंग्रेज जाति के हृदय में भारतीयो के

प्रति दुर्भावना उत्पन्न करने के लिये यह प्रसिद्ध किया कि कलकत्ता-विजय के पश्चात् नवाब की आज्ञा से १४६ अंग्रेज कैदी, जिनमें कुछ स्त्रियाँ तथा बच्चे भी थे, १८ फीट लम्बी और १४ फीट चौडी एक कोठरी में, जिसे अंग्रेजो ने ब्लैक होल का नाम दिया, रात भर बन्द रखे गए जून की असह्य गर्मी, रात्रि का समय तथा स्थान की तंगी के कारण सुबह तक उनमे से केवल १३ जीवित रहे, नवाब ने इन्हे स्वतन्त्र कर दिया और वे मुर्शिदाबाद के निकट डच टकसाल चले गये। यह घटना ब्लैक होल के हत्याकाण्ड के नाम से प्रसिद्ध है।

वर्तमान ऐतिहासिक खोज ने यह पूर्णतया सिद्ध कर दिया है कि ब्लैक होल की घटना सर्वथा निराधार है। सिराजउद्दौला के चरित्र को कलंकित करने तथा अङ्ग्रेजो के आगामी कुचक्रो तथा दुर्व्यवहार को औचित्य प्रदान करने के लिए इसकी रचना हुई। उस समय के किसी भी अधिकार-पूर्ण इतिहास में अथवा कम्पनी के कागजात मे इसका कोई उल्लेख न होना इसका द्योतक है। इसके अतिरिक्त क्लाइव तथा वाट्सन ने आगे चलकर नवाब को, जो पत्र कम्पनी की हानि तथा अपमान के विषय में लिखे, उनमें उक्त घटना का जिक्र तक नही किया गया। फोर्ट विलियम की कौंसिल के डाइरेक्टरो ने इसके बारे मे कुछ नही लिखा। इसके अतिरिक्त जो विदर्शी कलकत्ता छोड़कर भाग गये थे, उसके बाद १४६ आदमी किले मे कुल भी न थे। इन प्रमाणो के अतिरिक्त १८ फीट लम्बे और १४ फीट चौड़े कमरे में १४६ आदमियो का भरा जाना किसी प्रकार सम्भव नही इसलिये समस्त समकालीन प्रमाणो की अवहेलना कर केवल हॉलवैल के पत्र मात्र पर यह विश्वास करना कि ब्लैक होल की घटना घटित हुई, सर्वथा अन्याय होगा, जबकि हॉलवैल स्वयं एक आदर्श पुरुष न था जिससे उसकी बात मान्य ही समझी जाये। उसके मित्र तथा साथी उसका विश्वास न करते थे। जिन पत्रो द्वारा उसने इस घटना की सूचना अपने मित्रो को दी उनमें इतनी भिन्नता है कि वह, स्वयं इस घटना को झूठा सिद्ध करनेवाले प्रमाण बन गये है। इन प्रमाणो के आधार पर कहा जा सकता है कि ब्लैक होल की घटना सर्वथा कल्पित है। फिर भी अंग्रेज इतिहासकारो ने इससे लाभ उठा भारतीय नायको के चरित्र को ससार की दृष्टि मे गिराने पूरा प्रयत्न किया है।

अंग्रेजों की सैनिक तैयारियाँ:—कलकत्ते से भागे हुए अंग्रेज बंगाल की खाड़ी के ऊपर फल्ता नामक स्थान पर ठहर गये। यहाँ से उन्होंने अपना दुखद समाचार मद्रास भेजा और सानुरोध प्रार्थना की कि अंग्रेजो के इस अपमान का बदला लेने के लिए एक विशाल सेना बगाल भेजी जाय। दूसरी ओर उन्होने अपने गुप्त-

चरों के द्वारा अनेक झूठे सच्चे लोभ दिखाकर कलकत्ते के गवर्नर राजा मानिकचन्द तथा सिराजउद्दौला के अन्य सेनापतियों को अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न जारी रखा। निस्सन्देह तोड़ फोड़ की यह नीति ही वह ब्रह्मास्त्र था, जिसके बल पर मुट्ठी भर अंग्रेज बंगाल-विजय का स्वर्ण स्वप्न देख रहे थे। अनुभव शून्य तथा दूरदर्शी सिराजउद्दौला को तनिक भी ध्यान न था कि अंग्रेज सैन्यबल अथवा बुद्धि बल द्वारा फिर से बंगाल में पैर जमाने का प्रयत्न कर रहे हैं। वह केवल यह अनुमान कर सकता था कि वे विनम्र होकर उसके सामने भेंट प्रस्तुत कर फिर व्यावहारिक सुविधाओं की प्रार्थना करेंगे। अंग्रेज भी समय प्राप्त करने के लिए फल्ता-स्थिति नवाब के पदाधिकारियों को यह कहते रहे कि हम मौसम की खराबी के कारण रुके हुए हैं, ज्योंही मौसम यात्रा के योग्य होगा हम मद्रास चले जायेंगे।

कलकत्ते पर पुनः अधिकार:—कलकत्ता छिन जाने के लगभग एक मास पश्चात् १६ अगस्त १७५६ ई० को इस घटना का समाचार मद्रास पहुँचा। क्लाइव इस समय भारत लौट आया था। मद्रास की कौंसिल ने स्थल-सेना का अधिकार उसे और जलसेना का वाट्सन को सुपुर्द कर २० यूरोपियन और १३०० भारतीय सिपाहियों सहित उन्हें बंगाल रवाना किया और उन्हें आदेश दिया कि साम, दाम, दण्ड, भेद सब प्रयोग कर नवाबी का अन्त करने का प्रयत्न करें। दिसम्बर के महीने में उक्त सेनायें बंगाल पहुँची। वहाँ पहले ही भूमि तैयार थी। कलकत्ते का राजा मानिकचन्द तथा अंग्रेजों के बीच से पहले ही मे तै हो चुका था कि वह केवल दिखाने के लिये ही अंग्रेजों का सामना करे। फलस्वरूप मुट्ठी भर सैनिकों की सहायता से क्लाइव ने बजबज के किले पर अधिकार कर लिया। मानिकचन्द किला छोड़कर हुगली भाग गया और २ जनवरी १७५७ को उसकी अनुपस्थिति में क्लाइव ने बहुत आसानी से कलकत्ता पर अपना अधिकार कर लिया। कलकत्ते के निकट अब केवल हुगली का किला शेष था। ११ जनवरी १७५७ ई० को अंग्रेजों ने इस पर भी अधिकार कर लिया और पूरे एक सप्ताह तक नगर में लूट-मार रही।

अलीनगर की सन्धि:—सिराजउद्दौला को जब उक्त घटना की सूचना मिली तो वह क्रोधान्ध हो उठा और वह एक विशाल सेना लेकर मुर्शिदाबाद से चल दिया। परन्तु इस बीच में उसे यह मालूम हो गया कि अंग्रेजों ने उसके दर्बारियों में विश्वासघात का बीज बो दिया है। कलकत्ता-हुगली इत्यादि के शीघ्र पतन से उसे पहले ही सन्देह था। बहुत सम्भव है उसे इस समय उस पत्र व्यवहार का भी कुछ आभास मिल गया हो जो क्लाइव तथा मीर जाफर आदि उसके प्रमुख दरबारियों में निरन्तर चल रहा था। अब उसे अपनी आन्तरिक दुर्बलता का ज्ञान

गया। इसलिए उसने हुगली के निकट पहुँचकर अंगरेजो के सेनापति वाटसन को एक पत्र लिखा जिसमें उसने सन्धि के लिए उत्सुकता प्रकट की। अंगरेज सेनापतियों ने नवाब की इस उत्सुकता का लाभ उठाना चाहा। उन्होने तुरन्त सन्धि की शर्तें पेश कर दी कि नवाब अंगरेजो की हानि-पूर्ति करे, जितनी व्यापारिक सुविधायें कम्पनी को पहले से प्राप्त थी उन्हे पुनः प्रदान करे; कम्पनी को अपनी बस्तियो की किलेबन्दी करने की आज्ञा दे तथा कम्पनी को कलकत्ते में अपनी टकसाल स्थापित करने की आज्ञा दे। पहली तीन धारायें सिराजउद्दौला ने स्वीकार कर ली चौथी शर्त पर उसे आपत्ति हुई, परन्तु इस पर पत्र-व्यवहार होता रहा। इसी बीच सन्धि की समस्या को जटिल बनाने के लिए अंगरेजों ने नई शर्तें भी पेश कर दी। अब उन्होंने सिराजउद्दौला से कलकत्ते चलने की प्रार्थना की और यह आशा दिखाई कि वहाँ चल कर सन्धि की सब शर्तें तय हो जायेंगी। भोला नवाब अङ्गरेजो की चाल में आ गया और कलकत्ते पहुँच गया। वास्तव में अंगरेजो का उद्देश्य सन्धि करने का न था वरन् उसका उद्देश्य नवाब को फुसला कर कलकत्ता ले जाने तथा वहाँ उस पर आक्रमण करने का था। नवाब को और अधिक धोखा देने के लिए सन्धि की चर्चा यहाँ भी चलती रही। अगले दिन प्रातःकाल चार या पाँच बजे गहरे कोहरे के अन्धकार में क्लाइव ने अपनी सेना सहित नवाब की सोती हुई सेना पर आक्रमण कर दिया, परन्तु जितने लाभ की उन्हें आशा थी उतना न हो सका। अब नवाब को अपनी विकट परिस्थिति का पता लग गया। अपने अफसरो विशेषतया मीरजाफर पर उसका सन्देह प्रतिक्षण बढता जा रहा था। ऐसी दशा में सिराजउद्दौला पहले से भी अधिक कठोर सन्धि करने को विवश हो गया। यह सन्धि कलकत्ता अथवा अलीनगर की सन्धि के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी शर्तें निम्नलिखित थी—

(१) जितनी व्यापारिक सुविधायें अङ्गरेजो को पहले से प्राप्त थी, वह फिर प्रदान की जावें।

(२) बंगाल, बिहार और उड़ीसा में उनके किसी माल पर कोई चुंगी न लगाई जावे।

(३) कम्पनी तथा उसके नौकरो का वह माल, जो नवाब ने जब्त कर लिया था, वापस दे दिया जावे और उसके सैनिको ने जो माल लूट लिया था, उसकी पूर्ति की जावे।

(४) अङ्गरेजो को अपनी इच्छानुसार कलकत्ते की किलेबन्दी करने का पूरा अधिकार दिया जाये।

(५) नवाब की ओर से वह स्वयं उसके मुख्य पदाधिकारी तथा मन्त्री सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर करें।

(६) अंगरेजों को सिक्के ढालने की आज्ञा दी जाये।

(७) अंगरेज कम्पनी की ओर से वाट्सन तथा क्लाइव लिखित रूप में सन्धि का वचन दें कि जब तक नवाब की ओर से सन्धि का उल्लंघन न हो तब तक अंग्रेज शान्ति पूर्वक रहेंगे।

अवसर से लाभ उठाकर अङ्ग्रेजों ने यह भी आग्रह किया कि सिराजउद्दौला फ्रान्सीसियों पर आक्रमण कर उन्हें बंगाल से बाहर निकाल दे, परन्तु नवाब ने इसे अस्वीकार कर दिया। परन्तु नवाब ने एक अंगरेज एलची अपने दरबार में रखना स्वीकार किया। सिराजउद्दौला न जानता था कि उक्त राजदूत की अनुमति प्रदान करना अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारना था, क्योंकि नवाब के दरबारियों तथा पदाधिकारियों को अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न ही उसको रखने का एक-मात्र ध्येय था।

चन्द्रनगर विजय :— इस प्रकार नवाब की आन्तरिक परिस्थिति दिन प्रतिदिन बिगड़ती जा रही थी। अंग्रेज नवाब तथा फ्रान्सीसी दोनों को बंगाल से निकाल बाहर करने पर उतारू थे। अलीनगर की सन्धि की परवाह न करते हुए उन्होंने चन्द्रनगर की फ्रान्सीसी कोठी पर आक्रमण करने की ठानी और अपने युद्ध-पोत इस ओर भेज दिये। फ्रान्सीसियों ने अंगरेजों के इस व्यवहार की नवाब से शिकायत की जिस पर नवाब ने वाट्सन को पत्र लिख शान्ति भंग न करने की प्रार्थना की। उत्तर में वाट्सन ने विश्वास दिलाया कि शान्ति भंग न होगी। फिर भी १४ मार्च १७५७ ई० को क्लाइव तथा वाट्सन ने मिलकर चन्द्रनगर पर आक्रमण कर दिया और उसे जीत लिया। चन्द्रनगर की यह विजय अंग्रेजों के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई। इससे बंगाल के अन्दर फ्रान्सीसियों की शक्ति का ह्रास हो गया और अब अंग्रेजों को यह डर, कि नवाब तथा फ्रांसीसी दोनों मिलकर उनके विरुद्ध संयुक्त मोर्चा न बना लें, जाता रहा। इस प्रकार फ्रांसीसियों की शक्ति क्षीण कर क्लाइव तथा वाट्सन ने नवाब से अन्तिम संघर्ष करने की सोची और युद्ध का बहाना ढूँढने लगे।

मीर जाफर के साथ सन्धि :— जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि सिराजउद्दौला के दरबार का अंगरेजी दूत वाट्स, क्लाइव तथा वाट्सन निरन्तर सिराजउद्दौला की जड़ें खोखली कर रहे थे। वे उसके दरबारियों में से किसी को पद का तथा किसी को धन का प्रलोभन दे उन्हें नवाब के विश्वासघात करने के लिए भड़का रहे थे। इस कार्य में उन्हें देश-द्रोही सेठ अमीचन्द से बहुत सहायता मिली। वास्तव में उक्त सेठ की आर्थिक सहायता पर ही षड्यन्त्र की योजना अवलम्बित था। अमीचन्द तथा दो अन्य जैन सेठों का ही धन घूँस इत्यादि देने में प्रयोग किया

जा रहा था। इन लोगो ने अपने स्वार्थ के लिये यारलुत्फखाँ नामक सिराजउद्दौला के एक सेनानी को गद्दी पर बैठाना चाहा, परन्तु इसी बीच मे अग्रेज एलची वाट्स ने ख्वाजा पिटरस नामक एक आरमीनिया निवासी के द्वारा मीर जाफर तथा उसके साथियो से नवाब के विरुद्ध सहायता का वचन ले लिया। मीरजाफर पूर्व नवाब अलीवर्दीखाँ का बहनोई था। उसका प्रभाव भी अधिक था, उसकी सहायता से षड्यन्त्र के सफल होने की आशा भी अधिक थी। इसलिए जब क्लाइव को वाट्स का यह पत्र प्राप्त हुआ कि मीरजाफर तथा उसके साथी, नवाब को गद्दी से उतारने में अंगरेजो की सहायता करने को तैयार हैं तो उसने सेठ अमीचन्द आदि को भी अनेक झूठे सच्चे प्रलोभनो से मीरजाफर को ही नवाब बनाने के पक्ष में कर लिया। इस प्रकार जब षड्यन्त्र की योजना पूरी हो गई तो ४ जून १७५७ ई० की रात को मीरजाफर तथा अग्रेजो के बीच एक गुप्त सन्धि हो गई, जिसके अनुसार तै पाया कि अग्रेज तथा मीरजाफर किसी तीसरे के साथ युद्ध के समय एक दूसरे की सहायता करें। जितने अधिकार अग्रेजो को सिराजउद्दौला के समय प्राप्त है उन सबको मीरजाफर नवाब बनने के पश्चात् कायम रक्खे। वह समस्त फ्रासीसियो की उनकी कोठियो सहित अग्रेजो को समर्पित कर दे और आगे से फ्रासीसियो को बगाल में रहने की आज्ञा न दे। कलकत्ते की क्षति-पूर्ति तथा युद्ध के व्यय-स्वरूप मीरजाफर कम्पनी को एक करोड रुपया दे। इसके अतिरिक्त अग्रेजो, व हिन्दुओ तथा अन्य निवासियो को कलकत्ता विजय से जो क्षति पहुँची है, वह उसकी पूर्ति करे,। वह कासिम बाजार तथा ढाका की किलेबन्दी की आज्ञा प्रदान करे, हुगली नदी के नीचे की ओर नवाब किसी प्रकार की किलेबन्दी न करे। जब कभी नवाब को अपनी रक्षा के लिये अग्रेजी सेना की आवश्यकता हो वह उसका खर्च प्रदान करे।

सधि-पत्र में अमीचन्द का कोई उल्लेख न था। क्लाइव तथा वाट्सन उसके महत्व को समझते थे, इस लिए उसे सन्तुष्ट करने के लिए क्लाइव ने लाल कागज पर जाली सधि-पत्र तैयार कराया, जिसमें उक्त शर्तों के साथ साथ षड्यन्त्र के सफल होने पर अमीचन्द को तीस लाख पौंड नकद तथा नवाब के खजाने का ५ प्रतिशत देने का वचन दिया गया। वाटसन ने इस जाली सधि पत्र पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया। इस पर क्लाइव ने लुशिगटन नामक एक व्यक्ति से वाटसन के जाली हस्ताक्षर उस पर करवा दिये। क्लाइव ने इस सधि पत्र के द्वारा अमीचन्द को सन्तुष्ट कर दिया।

षड्यन्त्र अब पूरा हो गया, परन्तु युद्ध की घोषणा करने से पहले वाट्स तथा अन्य अग्रेजो को, जो मुर्शिदाबाद में थे, वहाँ से हटा लेना आवश्यक था। हवा–

खोरी की आज्ञा ले ये लोग एक दिन मुर्शिदाबाद से भाग निकले और १३ जून को अंग्रेजी सेना ने कलकत्ते में कूच कर दिया।

प्लासी का युद्ध.—जब सिराजउद्दौला को अंग्रेज सेना के आगमन की सूचना मिली तो वह भी सेना लेकर मुर्शिदाबाद से चल पड़ा। २३ जून १७५७ ई० को मुर्शिदाबाद से २० मील दूर प्लासी नामक स्थान पर दोनों सेनाओं का सामना हुआ। मीरजाफर नवाब का प्रधान सेनापति था। उसके अतिरिक्त नवाब की सेना में यारलुत्फखां, राजा दुर्लभराय तथा मीरमदन तीन और मुख्य सेनापति थे। १२७०० सेना मीरमदन के अधीन थी, जब कि ४५००० सेना अन्य सब के, परन्तु केवल मीरमदन ही नवाब का एक साथी था, अन्य तीन तथा उनकी सेनाएँ केवल नाममात्र को ही नवाब की ओर थी, अन्यथा उन्होने अंग्रेजो से साज-बाज कर रखी थी। थोड़ी ही देर बाद युद्ध आरम्भ हो गया। परन्तु जब मीरमदन अकेले की ही वीरता से नवाब की विजय स्पष्टतया प्रकट होने लगी तो मीरजाफर, राजा दुर्लभराय और यारलुत्फखां अपनी सेना सहित अंग्रेजों की ओर जा मिले। फल यह हुआ कि सिराजउद्दौला की विजय पराजय में परिवर्तित हो गई। यह देखकर सन्ध्याकाल में असहाय सिराजउद्दौला अपने हाथी पर सवार हो मुर्शिदाबाद की ओर भाग गया। जहाँ उसने धन को पानी की तरह बहा कर फिर एक बार फौज खड़ी करने तथा अपनी भाग्य-परीक्षा करने का प्रयत्न किया, किन्तु सफल न हो सका और अगले दिन मीरजाफर के आने की खबर सुनकर उसे आधी रात को अपने तीन अनुचरों के साथ फकीरी वेष में महल से भागना पड़ा।

सिराजउद्दौला की हत्या :—कुछ दिनो पश्चात् राजमहल नामक स्थान पर सिराजुद्दौला गिरफ्तार कर लिया गया। २ जुलाई १७५७ को वह मुर्शिदाबाद लाया गया। यद्यपि मीर जाफर उसे नजरबन्द बनाकर रखना चाहता था, परन्तु उसके लडके मीरन ने उसे कत्ल करा डाला।

प्लासी के युद्ध का परिणाम :—प्लासी-विजय के परिणामस्वरूप मीर-जाफर बगाल का गवर्नर हो गया। उसने कलकत्ते के दक्षिण में चौबीस परगनो का प्रदेश, जिसका क्षेत्रफल लगभग ८८२ वर्गमील है, अंग्रेजो को दे दिया। उन्हे नवाव पर पूर्ण-प्रभुत्व हो गया जिसके फलस्वरूप कुछ आगे चलकर समस्त बगाल पर अंग्रेजो का अधिकार हो गया। इस प्रकार इस विजय से भारत में अंग्रेजी राज्य की नीव पड गई। प्लासी के युद्ध से फ्रांसीसियो की शक्ति क्षीण हो गई, अब नवाब पूर्णतया अंग्रेजो के अधिकृत था। उसकी फ्रांसीसियो के प्रति कोई सहानुभूति न थी। इस विजय ने मुगल प्रभुत्व को विशेष ठेस पहुँचाई। सिराजउद्दौला तथा उसके पूर्वज मुगल सम्राट् के नाम से ही बगाल पर शासन करते थे, परन्तु अब जब सम्राट् की बिना अनुमति के मीरजाफर नवाव घोषित कर दिया गया तो सर्वविदित हो गया कि मुगल-सत्ता मृतप्राय हो चुकी है। इस विजय ने अंग्रेजो को भारतीय राजनैतिक क्षेत्र में प्रविष्ट कर दिया। समस्त भारत में यह समाचार फैल गया कि विदेशी व्यापारी दक्षिण और पूर्व की ओर से भारत पर आक्रमण करते चले आ रहे है।

सिराजउद्दौला का चरित्र :—अंग्रेज इतिहास-लेखको ने मिथ्या दोषारोपण कर सिराजउद्दौला के चरित्र को कलकित करने का प्रयत्न किया है किन्तु वास्तव में वह अत्यन्त ईमानदार पुरुष था। उसकी ईमानदारी तथा सचाई के कारण ही अनुचित अधिकारो के इच्छुक अंग्रेजो ने उसे अपने लिए हितकर समझा और उसके विरुद्ध षड्यन्त्र रचा। सिराजउद्दौला उच्चकोटि का राजनीतिज्ञ न था, उसमें विदेशियो की चाल को समझने की क्षमता न थी। 'उन पर बार-बार विश्वास करना, उनके प्रति दया का व्यवहार करना तथा शान्ति-भग करने के स्पष्ट प्रयत्न को देखते हुए भी उनके साथ शान्तिपूर्वक रहने की इच्छा उसके लिए विनाशकारी सिद्ध हुई। सिराज-उद्दौला के यह दोष और उच्च श्रेणी के भारतवासियो के चरित्र की लज्जास्पद स्वार्थपरायणता और विश्वासघातकता भारत की स्वतन्त्रता को ले बैठी। सिराज-उद्दौला के चरित्र का वर्णन करते हुए अंग्रेज इतिहासकार मालेसन लिखता है—'सिराजउद्दौला में चाहे कोई भी दोष क्यो न रहा हो, उसने न तो अपने स्वामी के साथ विश्वासघात किया और न अपने मुल्क को बेचा। मनुष्यता में वह क्लाइव से

कहीं अधिक ऊँचा था। बगाल के दुःखान्त नाटक के प्रधान पात्रो में केवल सिराज-उद्दौला ही ऐसा था जिसने किसी को धोखा नही दिया।"

प्रश्न

१. सिराजउद्दौला के अंग्रेजों से अप्रसन्न होने के क्या कारण थे ?

२. ब्लैक हाल की घटना कहाँ तक सत्य है ?

३. अग्रेजों ने बगाल पर अपना अधिकार किस प्रकार जमाया ?

४. प्लासी के युद्ध का क्या महत्व है ?

सिराजउद्दौला की हत्या :—कुछ दिनो पश्चात् राजमहल नामक स्थान पर सिराजुद्दौला गिरफ्तार कर लिया गया। २ जुलाई १७५७ को वह मुर्शिदाबाद लाया गया। यद्यपि मीर जाफर उसे नजरबन्द बनाकर रखना चाहता था, परन्तु उसके लडके मीरन ने उसे कत्ल करा डाला।

प्लासी के युद्ध का परिणाम :—प्लासी-विजय के परिणामस्वरूप मीर-जाफर बगाल का गवर्नर हो गया। उसने कलकत्ते के दक्षिण में चौबीस परगनो का प्रदेश, जिसका क्षेत्रफल लगभग ८८२ वर्गमील है, अंग्रेजो को दे दिया। उन्हें नवाव पर पूर्ण-प्रभुत्व हो गया जिसके फलस्वरूप कुछ आगे चलकर समस्त बगाल पर अंग्रेजो का अधिकार हो गया। इस प्रकार इस विजय से भारत में अंग्रेजी राज्य की नीव पड गई। प्लासी के युद्ध से फ्रांसीसियो की शक्ति क्षीण हो गई, अब नवाब पूर्णतया अंग्रेजो के अधिकृत था। उसकी फ्रांसीसियो के प्रति कोई सहानुभूति न थी। इस विजय ने मुगल प्रभुत्व को विशेष ठेस पहुँचाई। सिराजउद्दौला तथा उसके पूर्वज मुगल सम्राट् के नाम से ही बगाल पर शासन करते थे, परन्तु अब जब सम्राट् की बिना अनुमति के मीरजाफर नवाब घोषित कर दिया गया तो सर्वविदित हो गया कि मुगल-सत्ता मृतप्राय हो चुकी है। इस विजय ने अंग्रेजो को भारतीय राजनैतिक क्षेत्र में प्रविष्ट कर दिया। समस्त भारत में यह समाचार फैल गया कि विदेशी व्यापारी दक्षिण और पूर्व की ओर से भारत पर आक्रमण करते चले आ रहे है।

सिराजउद्दौला का चरित्र :—अंग्रेज इतिहास-लेखको ने मिथ्या दोषारोपण कर सिराजउद्दौला के चरित्र को कलकित करने का प्रयत्न किया है किन्तु वास्तव में वह अत्यन्त ईमानदार पुरुष था। उसकी ईमानदारी तथा सचाई के कारण ही अनुचित अधिकारो के इच्छुक अंग्रेजो ने उसे अपने लिए हितकर समझा और उसके विरुद्ध षड्यन्त्र रचा। सिराजउद्दौला उच्चकोटि का राजनीतिज्ञ न था, उसमें विदेशियो की चाल को समझने की क्षमता न थी। उन पर बार-बार विश्वास करना, उनके प्रति दया का व्यवहार करना तथा शान्ति-भग करने के स्पष्ट प्रयत्न को देखते हुए भी उनके साथ शान्तिपूर्वक रहने की इच्छा उसके लिए विनाशकारी सिद्ध हुई। सिराज-उद्दौला के यह दोष और उच्च श्रेणी के भारतवासियो के चरित्र की लज्जास्पद स्वार्थपरायणता और विश्वासघातकता भारत की स्वतन्त्रता को ले बैठी। सिराज-उद्दौला के चरित्र का वर्णन करते हुए अंग्रेज इतिहासकार मालेसन लिखता है—'सिराजउद्दौला में चाहे कोई भी दोष क्यो न रहा हो, उसने न तो अपने स्वामी के साथ विश्वासघात किया और न अपने मुल्क को बेचा। मनुष्यता में वह क्लाइव से

कहीं अधिक ऊँचा था। बंगाल के दुःखान्त नाटक के प्रधान पात्रों में केवल सिराज-उद्दौला ही ऐसा था जिसने किसी को धोखा नहीं दिया।"

प्रश्न

१. सिराजउद्दौला के अंग्रेजों से अप्रसन्न होने के क्या कारण थे ?
२. ब्लैक हाल की घटना कहाँ तक सत्य है ?
३. अंग्रेजों ने बंगाल पर अपना अधिकार किस प्रकार जमाया ?
४. प्लासी के युद्ध का क्या महत्व है ?

अध्याय १५

बंगाल का पतन

मीर जाफर तथा मीर कासिम

मीर जाफर में कोई मानसिक अथवा नैतिक गुण न था, इसलिए वह अत्यन्त अयोग्य तथा अदूरदर्शी सिद्ध हुआ। वह शीघ्र ही अंग्रेजों के हाथों में कठपुतली की तरह नाचने लगा। नवाब की आड में अंग्रेजो ने ऐसी बुद्धिमत्ता से राजनैतिक खेल खेला कि बंगाल की दशा दिन प्रतिदिन शोचनीय होती गई, जिसके द्वारा वे नवाब को दोषी ठहरा अपने मनोनीत उद्देश्य अर्थात् बंगाल पर अधिकार प्राप्त करने में सफल हुए।

मीर जाफर के गद्दी पर बैठते ही अंग्रेजो ने नवाब तथा उसके आधीन शासकों के बीच तोड-फोड आरम्भ कर दी। इससे उनका उद्देश्य नवाब तथा उसके अधिकृत नरेशो को आपस में भिडा दोनो की शक्ति क्षीण करना तथा कभी मध्यस्थ और कभी सैन्य-संचालक बन कम्पनी के बल का सिक्का जमाना था, जिससे उस प्रदेश के प्रभावशाली नरेश नवाब के बदले कम्पनी की मित्रता के लिए अधिक लालायित रहने लगे और इस प्रकार कम्पनी का महत्व दिन प्रतिदिन बढने लगा।

मीर जाफर और राजा रामनारायण—सबसे पहला नरेश जिसे क्लाइव तथा मीरजाफर ने मिटाना चाहा, बिहार प्रान्त का शासक राजा रामनरायण था। उस पर यह अभियोग लगाया गया कि उससे फ्रांसीसियो को अपने यहा शरण दे रखी है तथा अवध के नवाब के साथ मिलकर मीर जाफर के विरुद्ध षड्यंत्र रच रखा है। क्लाइव ने मेजर कूट को एक छोटी-सी सेना देकर पटना भेजा। इस थोडी सी सेना से रामनारायण को परास्त करना असम्भव था इसलिए क्लाइव ने मेजर कूट को लिखा—"रामनारायण की सेना में तोड-फोड कर अपने मनोरथ में सफल होने का प्रयत्न करना।" रामनारायण ने धैर्य से काम लिया। उसने लडने के बदले अपने ऊपर लगाए गए अभियोगों का उत्तर देना चाहा। फलस्वरूप राजा रामनारायण

के महल में एक सभा हुई जिसमें राजा ने अपने ऊपर लगाये गये सब दोषों को झूठा सिद्ध कर दिया। उसने मेजर कूट तथा मीर जाफर के दामाद मीर कासिम की उपस्थिति में मीरजाफर को सूबेदार स्वीकार किया और उसके प्रति स्वामि-भक्ति की शपथ खाई कूट मुर्शिदाबाद वापिस चला गया। इस आक्रमण से राजा रामनारायण को पता लग गया कि मुर्शिदाबाद का शासक मीरजाफर नहीं, वरन् अंग्रेज है।

उपरोक्त सन्धि अधिक दिन न रह सकी। कुछ ही दिन पश्चात् यह अफवाह फैली कि अलीवर्दीखाँ की बड़ी विधवा ने अवध के नवाब वजीर को पत्र लिखा है कि वह आकर मीरजाफर के विरुद्ध राजा रामनारायण को सहायता दे। इस अफवाह के आधार पर सधि को तोड क्लाइव ने मीरजाफर को बिहार पर आक्रमण करने की सलाह दी। उसने ५०००० सेना एकत्रित कर ली जिसका सम्पूर्ण व्यय मीरजाफर को सहन करना था, परन्तु मीरजाफर की आर्थिक दशा इस समय शोचनीय थी। प्लासी युद्ध के पश्चात् क्लाइव और उसके साथियो को व्यक्तिगत रूप से बडी-बडी रकमें देने से मुर्शिदाबाद का खजाना खाली हो चुका था। कम्पनी को भी जो रुपया देने का वचन दिया गया था वह भी पूरा न किया जा सका था। अब जब बिहार आक्रमण की पूरी तैयारी हो चुकी थी तो क्लाइव ने इस धन को वसूल करने का अच्छा अवसर देखा। उसने मीरजाफर को कहला भेजा कि कम्पनी के कर्ज की एक-एक पाई चुकवाये बिना वह कदम उठाने के लिए तैयार नहीं है। क्लाइव का बल इस समय बहुत था, उसके पास पचास हजार सेना मीरजाफर के कुचलने के लिए मौजूद थी। दूसरी ओर क्लाइव ने रामनारायण के बगाल-आक्रमण की अफवाह अत्यन्त जोरो से फैला रखी थी। ऐसी परिस्थिति में मीरजाफर को लाचार होकर झुकना पडा। उसे एक विशाल धनराशि सेना के व्यय के लिए देनी पडी तथा कम्पनी के शेष कर्ज के लिए बर्दवान, नदिया और हुगली के तीनो जिलो की मालगुजारी कम्पनी के नाम कर दी।

अब क्लाइव मीरजाफर के साथ पटना की ओर चला। चार महीने तक ५०००० सिपाहियों की भारी सेना युद्धस्थल में पडी रही। उसका सारा व्यय मीरजाफर के जिम्मे था, परन्तु आक्रमण कोई न हुआ। वास्तव में आक्रमण क्लाइव का उद्देश्य न था, वह केवल रामनारायण पर अपने अधिकार का सिक्का जमा उससे धन वसूल कर कम्पनी के प्रभुत्व का दिग्दर्शन कराना चाहता था, जैसा कि आगामी घटनाओं से प्रकट होता है :—

फरवरी १७५८ ई० को पटना में दरबार हुआ। क्लाइव ने

स्थान ग्रहण किया। मीरजाफर का बेटा मीरन नाम के लिए बिहार का नवाब बनाया गया और शासन का तमाम अधिकार ज्यों का त्यों राजा रामनारायण के हाथों छोड दिया गया। राजा ने इस अनुग्रह के बदले ७ लाख रुपये क्लाइव को भेंट किये। इस अवसर पर क्लाइव ने नवाब पर जोर देकर शोरा तैयार कराने का ठेका कम्पनी के नाम हासिल कर लिया। उन दिनो बगाल में जितना शोरा बिकता था वह पटना के ऊपर के प्रदेश में तैयार होता था। इस प्रकार कम्पनी का व्यापार क्षेत्र विकसित हुआ और आगामी साम्राज्य-वृद्धि की प्रस्तावना बँध गई।

राजा दुर्लभराय पर आक्रमण :—इसके बाद मीरजाफर ने अपने स्वामी के सहायक राजा दुर्लभराय पर आक्रमण कर दिया। मीरजाफर के ऊपर राजा दुर्लभराय के अनेक अहसान थे। उसने सिराजउद्दौला के विरुद्ध अंग्रेजो का साथ दिया था किन्तु उसका बल और प्रभाव दोनों खूब बढे हुए थे। इसलिए क्लाइव तथा मीरजाफर उसके विनाश के लिए तैयार हो गये। राजा दुर्लभराय ने साहस-पूर्वक उनका सामना करना चाहा। यह देखकर क्लाइव डर गया और उसने मीर-जाफर तथा राजा में सन्धि करा दी।

उड़ीसा नरेश से छेड़-छाड़ :—इसी प्रकार उडीसा के राजा रामसिंह के साथ झगडा आरम्भ हुआ जो समझौते में समाप्त हुआ। इस तमाम छेड-छाड में क्लाइव का मुख्य उद्देश्य बगाल के प्रभावशाली घरानो का बल तोडना, मीरजाफर को समस्त प्रजा में अप्रिय बना देना और तमाम सूबे में अङ्गरेजों के बल तथा प्रभाव का सिक्का जमाना था। इसमें क्लाइव पूर्णतया सफल होता जा रहा था।

शहजादे अलीगोहर का बिहार-आक्रमण :—थोडे दिन पश्चात् बिहार को एक नई आफत का सामना करना पडा। कुछ समय से देहली के मुगल सम्राट् का ज्येष्ठ पुत्र अलीगोहर नाम मात्र के लिए बगाल, बिहार तथा उडीसा का सूबेदार था। वास्तव में यह उपाधि सम्मान-सूचक ही थी क्योकि क्रियात्मक रूप में मुर्शिदा-बाद का सूबेदार एक स्वतन्त्र शासक की भांति आचरण करता था। इस समय शाहजादा अलीगोहर अपनी उपाधि को सार्थक करने के लिये एक सेना सहित बंगाल की ओर बढ़ा। सम्भव है कि बगाल की क्रान्ति तथा अंग्रेजों के हस्तक्षेप की सूचना मुगल सम्राट् को पहुँची हो, और इसलिए शाहजादा बगाल व बिहार पर चढ आया हो। कुछ हो, मीरजाफर शाहजादे के आक्रमण की सूचना पाकर अत्यन्त भयभीत हुआ और उसने क्लाइव से सहायता मांगी। तुरन्त क्लाइव मीरन सहित एक विशाल सेना के साथ पटना भेजा गया। यहाँ पर उसने बिना युद्ध किये नीति

कुशलता से ही शाहजादे को प्रसन्न करने में अपनी भलाई समझी। इसलिये उसने शाहजादे के सामने अपनी राज-भक्ति का पूरा प्रदर्शन किया। अन्त में सन्धि हो गई और शाहजादा अपनी सेना-सहित देहली लौट गया।

क्लाइव की जागीर-प्राप्ति :—जब क्लाइव वापिस मुर्शिदाबाद पहुँचा तब मीरजाफर ने उसे चौबीस परगने की जागीर भेंट दी। प्लासी के युद्ध के पश्चात् यह प्रदेश कम्पनी को दे दिया गया था, परन्तु इसकी मालगुजारी के रूप में कम्पनी को तीन लाख रुपये वार्षिक नवाब के खजाने में जमा करने पड़ते थे। अब नवाब के बदले क्लाइव इस तीन लाख रुपये वार्षिक का अधिकारी हो गया।

इस प्रकार एक निर्धन लिपिकर (क्लर्क) की हैसियत से भारत में आने वाला क्लाइव, संसार का एक धनवान् अंग्रेज बन, १७६० ई० में इंग्लैंड वापिस गया।

हालवैल तथा वेन्सीटार्ट :—क्लाइव के पश्चात् हालवैल कलकत्ते का गवर्नर हुआ, परन्तु केवल ५ महीने तक गवर्नर रहा। जौलाई १७६० ई० में हैनरी वैन्सीटार्ट ने उसका स्थान ले लिया और कर्नल कैलो प्रधान सेनापति नियुक्त हुआ।

सम्राट् शाहआलम का आक्रमण :—सन् १७६० ई० के अन्त में शाहजादा अलीगोहर दोबारा बिहार व बंगाल पर चढ़ आया। ज्योंही वह बिहार पहुँचा त्योंही सम्राट् आलमगीर द्वितीय का देहान्त हो गया और यही अलीगोहर शाहआलम के नाम से देहली के आधीन था परन्तु आये-दिन विप्लव के कारण वहाँ से कोई सिराज दिल्ली न जाता था। आक्रमण की सूचना पाकर बंगाल के गवर्नर ने एक ओर तो मीरन और कर्नल केला को एक सेना-सहित सम्राट् का मुकाबला करने को भेजा, दूसरी ओर मीरजाफर से बिना वह सुने शाहआलम से गुप्त बात-चीत आरम्भ कर दी। मीरजाफर तथा मीरन सम्राट् से युद्ध करने के विरुद्ध थे, इसलिये कर्नल कैलो ने अपने पत्रों में शिकायत की कि मीरन सम्राट् के विरुद्ध पूर्णरूप से उसका साथ नहीं देता। इससे अंग्रेजों तथा मीरजाफर व मीरन में मत भेद और बढ़ गया। यद्यपि एक ओर सन्धि वार्ता और दूसरी ओर सैन्य-प्रदर्शन करने में अंग्रेजों का व्यवहार वाञ्छनीय था। उन्होंने अपनी ओर कोई दृष्टि न डाली और मीरजाफर व मीरन की शिकायत करने लगे।

शाहआलम की वापसी :—सम्राट् की सेना के सामने या तो कोई निश्चित कार्य-क्रम न था, या राजधानी के खाली होने के कारण शाहआलम को

देहली जाने की जल्दी थी, कुछ कारण हो अंग्रेजों और सम्राट् में कुछ गुप्त बातचीत हुई और वह पटना का घेरा छोड शीघ्र देहली वापिस चला गया।

मीरन की हत्या :—कुछ दिनो से अंग्रेज तथा मीरन में मतभेद उत्पन्न हो गया था। मीरन अंग्रेजो की चालो से अत्यन्त असतुष्ट था। वह अपने पिता मीरजाफर को प्रायः सलाह देता था कि इन लोगो के पजे से निकलने का प्रयत्न करे।

जब मीरन के इन विचारो का पता अंग्रेजो को लगा तो वे उसके विरुद्ध हो गये। इधर शाहआलम के आक्रमण के समय केलो ने शिकायत की कि मीरन ने उसकी पूर्ण-रूप से सहायता नही की। इससे मतभेद और बढ गया। इसलिए शाहआलम की वापसी के बाद जब मीरन तथा कर्नल केलो पूनिया के नावाब को, जो मीरजाफर के विरुद्ध सम्राट् शाहआलम की सहायता के लिए आया था, परास्त करने चले तो केलो ने आधी रात को मीरन का वध करा दिया। सेना के विद्रोह के भय से कर्नल ने उसकी मृत्यु को छिपाये रखा जब तक कि वह सेना-सहित पटना सुरक्षित पहुँच गया।

सन् १७६० ई० में बंगाल की दशा :—बगाल की दशा इस समय शोचनीय होती जा रही थी। मीरजाफर का खजाना खाली था, बाह्य आक्रमणों तथा आन्तरिक शान्ति व व्यवस्था के लिए वह पूर्ण-रूप से कम्पनी पर अवलम्बित था। आये दिन के सघर्षों और सैन्य-यात्राओ के कारण देश की कृषि अस्त-व्यस्त हो गई थी। उद्योग-धन्धो का नाश होता जा रहा था, देश के व्यापार पर कम्पनी अधिकार जमाती जा रही थी। फल यह हुआ कि प्रजा में दुख-दरिद्रता और अशान्ति निरतर बढने लगी। इस पर जब मीरजाफर कोई आर्थिक अथवा सैनिक सुधार करना चाहता तो उसे अंग्रेज रोक देते। यदि प्रजा दुख व अराजकता का रोना रोती तो उसका दोष नवाब के सर मढ दिया जाता।

मीरकासिम का नवाब बनाया जाना :—इस प्रकार बगाल तथा बंगवासियों को अधोगति पर पहुँचाने के बाद जब अंग्रेजो ने देखा कि मीरजाफर से अब कोई आर्थिक लाभ नही हो सकता तो उन्होने ऐसे मनुष्य को गद्दी पर बैठाने की सोची जिसके द्वारा बगाल को और चूसा जा सके। इसी बीच अंग्रेजों ने मीरजाफर के सामने कुछ नई मॉंगें रखी, उनमें एक यह भी थी कि सिलहट और इस्लामाबाद की फौजदारी के अधिकार कम्पनी को दे दिये जावें, मीरजाफर को यह बिल्कुल मान्य न थी, इसलिए उसने अपने दामाद मीरकासिम को अंग्रेजो से बातचीत करने कलकत्ते भेजा। यहाँ अङ्गरेजों ने एक गुप्त-सन्धि कर ली जिसके

अनुसार तै हुआ कि मीरकासिम को मुर्शिदाबाद का प्रधान मन्त्री बना दिया जाय। सूबेदारी के तमाम अधिकार मीरकासिम को दिये जायें और मीरजाफर केवल नाम-मात्र का सूबेदार रह जाय। उसे व्यक्तिगत-व्यय के लिये एक निश्चित वार्षिक पेंशन मिलती रहे। मीरकासिम तथा अङ्ग्रेजों में स्थायी मित्रता रहे और जब मीरकासिम को आवश्यकता हो तब अंगरेज अपनी सेना से उसकी सहायता करें। इसके बदले में मीरकासिम वर्दवान, मेदनीपुर और चटगाँव के जिले कम्पनी को दे। सम्राट् शाहआलम के साथ अंग्रेज या मीरकासिम बिना एक दूसरे से सलाह किये कोई समझौता न करें। अधिकार मिलते ही इस उपकार के बदले में मीरकासिम वैन्सीटार्ट, हालवैल तथा कौंसिल के अन्य सदस्यों को बीस लाख रुपया दे। इस प्रकार सौदा पक्का करके मीरकासिम मुर्शिदाबाद लौटा। अब अंगरेज गवर्नर वैन्सीटार्ट तथा उसके साथियों ने मीरजाफर को उक्त प्रस्ताव मानने के लिए बाध्य किया। उसने मीरकासिम के हाथों में शासन-सत्ता सौंपने से इन्कार किया, परन्तु जब प्रातःकाल के अन्धेरे में कम्पनी की सेना ने उसे महल में सोते हुये हो आ घेरा तो उसका साहस टूट गया और उसने आत्मसमर्पण कर दिया। वह कलकत्ते भेज दिया गया और मीरकासिम मसनद पर बैठा दिया गया।

कम्पनी तथा अंग्रेजों को लाभ :—मीरजाफर के साथ इस विश्वासघात द्वारा अंग्रेजों तथा अङ्ग्रेज कम्पनी को निम्नलिखित लाभ पहुँचा—

सर्वप्रथम वर्दमान, मेदनीपुर और चटगाँव का प्रदेश कम्पनी को मिल गया। इस प्रदेश की वार्षिक आय समस्त बंगाल की आय का एक तिहाई थी। दूसरे, मीरकासिम ने कम्पनी को अधिकार दे दिया कि वह कलकत्ते की टकसाल में अशर्फियाँ ढाल सकती है जो वजन में और धातु में मुर्शिदाबाद के सिक्कों के बराबर हो और एक विज्ञप्ति द्वारा समस्त राज्य में घोषणा की कि कोई सौदागर अथवा सर्राफ कलकत्ते के सिक्कों को लेने से इन्कार न करे और न उनपर बट्टा माँगे। इसके अतिरिक्त मीरकासिम ने वैनसीटार्ट तथा उसके साथियों को बीस लाख रुपये भेंट-स्वरूप दिये।

मीर कासिम

कम्पनी के रुपये की अदायगी:—बंगाल की गद्दी प्राप्त करने के पश्चात मीर कासिम ने देखा कि राज्य की आर्थिक अवस्था अत्यन्त शोचनीय है। सरकारी मालगुजारी वसूल न हो रही थी, राजकोष खाली था। अब उसे प्रतीत हुआ कि जो बड़े बड़े वायदे उसने अंगरेजों के साथ कर रक्खे थे, उन्हें पूरा करना आसान न था।

फिर भी जमीदारों से जबर्दस्ती रुपया भेंट ले तथा जगत सेठ से कर्ज लेकर उसने अंगरेजों को रुपया देना आरम्भ किया।

मीरकासिम तथा अंग्रेजी टकसाल:—मीरकासिम ने अंगरेजों को कलकत्ते में सिक्के ढालने का अधिकार प्रदान किया था, परन्तु यह प्रतिबन्ध लगा दिया था कि वह सिक्के तोल अथवा धातु में नवाबी सिक्के से कम न हों। परन्तु अंग्रेज इस प्रतिबन्ध की परवाह न करते हुए अपनी टकसाल में घटिया सिक्के ढालते रहे। फल यह हुआ कि व्यापारियों ने इन्हें बिना बट्टे के लेने से इंकार कर दिया। इस पर अंग्रेजों ने मीरकासिम से प्रार्थना की कि वह कम्पनी की टकसाल में ढाले जाने वाले सिक्कों पर भी मुर्शिदाबाद का नाम तथा मोहर रखने की आज्ञा प्रदान करे। मीरकासिम ने ऐसा करने से इंकार कर दिया। परन्तु उसने कलकत्ते के सिक्कों को लेने से इंकार करने वाले अथवा उन पर बट्टा मांगने वाले लोगों को दण्ड देना आरम्भ कर दिया। इन कठोरता से अनेक जमीदार मीरकासिम से असन्तुष्ट हो गये और नये नवाब के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने की तैयारी करने लगे।

बर्दवान तथा वीर-भूमि पर कम्पनी का अधिकार:—मीरकासिम से पहले मीरजाफर ने कम्पनी का कर्ज चुकाने के लिए बर्दवान की मालगुजारी अंग्रेजों को दे दी थी, उस समय बर्दवान का जिला अंगरेजों के आधीन था। इस प्रबन्ध के लिये अंगरेजों ने अधिकांश मद्रासी सिपाही नौकर रख रक्खे थे। यह सिपाही जनता के साथ अत्यन्त घृणित व्यवहार करते थे, वे लोगों के घरों में घुसकर उन्हें लूटते तथा अन्य अमानुषिक कृत्य करते थे। जिनसे तंग आकर ग्राम-निवासी गाँव छोड़कर भागने लगे। बर्दवान के राजा तिलकचन्द ने कलकत्ता कमेटी से उक्त सिपाहियों की शिकायत की परन्तु कोई सुनाई न हुई।

ऐसी दशा में जब मीर कासिम ने यह प्रदेश स्थायी रूप से कम्पनी को दे दिया तो राजा तिलकचन्द को बहुत दुःख हुआ। उसने कलकत्ते के गवर्नर वेन्सीटार्ट को अपनी जमीदारी की उक्त शोचनीय अवस्था का वर्णन करते हुये फिर एक पत्र लिखा परन्तु इस पर भी कोई सुधार न हुआ। इस पर राजा तिलकचन्द ने वीर-भूमि के राजा के साथ मिलकर युद्ध की तैयारियाँ करनी प्रारम्भ कर दी। इस पर अंगरेजों ने एक सेना भेज उन्हें परास्त किया और दोनों जिलों पर अधिकार कर लिया। न्यायोचित माँग का यह कितना अद्भुत उत्तर था।

अंग्रेज कम्पनी तथा व्यापारिक कर:— ईस्ट इण्डिया कम्पनी के लिये मुगल सम्राट् ने व्यापारिक कर माफ कर दिया था। इस माफी का अर्थ यह था कि

कम्पनी इंगलैंड से कोई सामान लाकर भारत में बेचना चाहे अथवा वहाँ का माल इंगलैंड ले जाना चाहे तो उस पर कोई चुङ्गी न लगेगी। परन्तु अङ्गरेजों ने इस अधिकार का अत्यन्त दुरुपयोग करना आरम्भ कर दिया था। कम्पनी के कर्मचारी तथा अन्य अङ्गरेज कम्पनी का पास लेकर बिना कोई चुङ्गी दिये देश-भर में प्रत्येक वस्तु का व्यापार करने लगे और नवाब के कर्मचारी उन्हें रोकते तो उन्हें कम्पनी के सिपाहियों से ठीक करा दिया जाता था। यही नहीं वरन् उन्होंने नमक, छालियाँ, तम्बाकू आदि बहुत-सी ऐसी चीजों का व्यापार भी बिना महसूल के आरम्भ कर दिया था, जिनके व्यापार तक की उन्हें आज्ञा न थी। बहुत से अङ्गरेज, यहाँ तक कि कम्पनी के डाइरेक्टर भी, इस अन्याय से रहित न थे। इंग्लैंड के प्रसिद्ध वक्ता बर्क ने इस प्रकार के व्यापार को व्यापार के बदले डकैती का नाम दिया; क्योंकि उक्त व्यापारियों का अन्याय चुङ्गी न देने तक ही सीमित न था वरन् वह उससे कहीं अधिक बढ़ चुका था। ये अङ्गरेज व्यापारी जहाँ जाते वहाँ अपने ही दामों पर माल बेचते थे और दूसरे लोगों को जबरदस्ती विवश करके उनका माल अपने ही दामों पर खरीदते थे। यदि लोग देशी अदालतों में उनके व्यवहार की शिकायत करते तो कोई न्याय प्राप्त न कर पाते। इस प्रकार व्यापार के नाम पर अङ्गरेज व्यापारियों की सेनायें जिधर जातीं उधर तातारी विजेताओं से बढ़कर लूट-मार और बर्बादी करती थीं। इस भयंकर लूट-मार द्वारा देश चूर-चूर हो गया।

इस नीति का फल यह हुआ कि बंगाल में अराजकता का साम्राज्य हो गया। किसानों की खड़ी खेती तथा व्यापारियों का माल कम्पनी के नौकर जिस भाव चाहते खरीद लेते थे। तंग आकर व्यापारियों ने व्यापार छोड़ दिया। नवाब की सरकारी चौकियों पर एक पाई चुंगी के रूप में प्राप्त होनी बन्द हो गई। मीरकासिम ने अनेक बार पत्रों द्वारा अङ्गरेज गवर्नर को इस अन्याय की सूचना दी परन्तु व्यर्थ रही। तंग आकर बंगाल के प्रभावशाली जमींदारों ने मुगल अथवा मराठे झंडे के नीचे एकत्रित हो अंगरेजों को बंगाल से निकाल बाहर करने का दृढ़ संकल्प किया, परन्तु पासीपत के तीसरे युद्ध ने इन सब आशाओं पर पानी फेर दिया। इधर अपने सब प्रयत्न निष्फल देखकर मीरकासिम को विश्वास हो गया कि अंगरेज अपनी नीति में कोई परिवर्तन करने को तैयार नहीं हैं, इसलिए कोई दृढ़ निश्चय करने से पूर्व उसने अपनी स्थिति दृढ़ करनी चाही।

भुगतान कर दिया। उसने समस्त शासन-प्रबन्ध में एक सजीवता ला दी जिसके फल-स्वरूप उसकी आमदनी खर्च से बढ गई। आर्थिक सकट से मुक्त होने के पश्चात् उसने अ गरेजी बन्धन से मुक्त होने का विचार किया। उसने देखा कि उसकी राजधानी मुर्शिदाबाद में अंगरेजो का प्रभाव अधिक बढ गया है इसलिए उसने मु गेर को अपनी राजधानी बनाया और उसे सुदृढ किलेबन्दी से सुरक्षित किया। यहाँ उसने चालीस हजार सेना स्थायी रूप से रक्खी और उसे योरोपियन ढग से सैनिक-शिक्षा दिलवाना आरम्भ कर दिया। उसने तोपें ढलवाने का एक नया कारखाना स्थापित कराया, जहाँ योरोप से भी अच्छी तोपें बनने लगी।

मीरकासिम को पदच्युत करने का प्रयत्न:—अंगरेज मीरकासिम की इस सुव्यवस्था को कैसे देख सकते थे। अपनी धन-लोलुपता को शान्त करने के लिये उन्होंने मीरकासिम को गद्दी से उतार कर उसके उत्तराधिकारी से नया सौदा करने की सोची। अब उन्होंने फिर मीरकासिम के विरुद्ध बूढे मीरजाफर को षड्यन्त्र का केन्द्र बनाया। कलकत्ता-कमेटी के कुछ मेम्बरो ने कम्पनी डायरेक्टरो के नाम एक लम्बा पत्र भेजा, जिसमें उन्होंने मीरकासिम पर अनेक झूठे सच्चे दोष लगाये और मीरजाफर को गद्दी से उतारने को घोर अन्याय सिद्ध किया। इस प्रकार मीरकासिम को गद्दी से उतारने की प्रस्तावना आरम्भ हो गई।

✓**मुंगेर की सन्धि:**—जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, अंगरेजो के व्यापार तथा चु गी सम्बन्धी अत्याचार निरन्तर बढ़ते जा रहे थे। मीरकासिम ने कलकत्ता-कौंसिल को बार-बार इन अन्यायो की शिकायत की, किन्तु व्यर्थ। अन्त में सब मामलों का निबटारा करने के लिए ३० नवम्बर १७६२ ई० को गवर्नर वन्सीटार्ट और वारेन हेस्टिंग्ज नवाब से भेंट करने के लिए मुंगेर पहुँचे। फलस्वरूप मीरकासिम और अ गरेजो के बीच एक सन्धि हो गई जो मुंगेर की सन्धि के नाम से प्रसिद्ध है, जिसमें अन्य बातो के साथ-साथ यह भी तै पाया कि अ गरेज व्यापारी आइन्दा नमक, तम्बाकू, छालियाँ इत्यादि सब चीजो पर ९ प्रतिशत चु गी दिया करें जब कि भारतीय व्यापारी इन्ही तमाम चीजो पर २५ प्रतिशत चु गी दें। भारतीय व्यापारियो के साथ यह घोर अन्याय था फिर भी शान्ति स्थापित रखने के लिये मीरकासिम ने इसे स्वीकार कर लिया। परन्तु अ गरेजो ने इस सन्धि को क्रियान्वित नही किया।

व्यापारी चुंगी का परित्याग:—मीरकासिम ने बार-बार इसकी शिकायत की परन्तु सब व्यर्थ। अंगरेज व्यापारियों ने बिना चु गी दिये अपना व्यापार पूर्ववत् जारी रक्खा। यही नही वह स्वय देशी व्यापारियो से चुंगी वसूल कर उसे भी

कम्पनी के पास के अन्तर्गत निकालने लगे, इस अन्याय से एक ओर नवाब की चुंगी की आय सर्वथा बन्द हो गई। दूसरी ओर देशी व्यापारियों का अस्तित्व ही मिटना आरम्भ हो गया। ऐसे समय मीर कासिम ने अपनी सूबेदारी में सब लोगों के लिए चुंगी बन्द कर दी और घोषित कर दिया कि दो वर्ष तक किसी माल पर कोई चुंगी न ली जावेगी। इससे देशी व्यापारी अंग्रेजों के समकक्ष हो गये और उनके लिए व्यापार का द्वार खुल गया। फल यह हुआ कि व्यापारियों की संख्या फिर बढ़ने लगी, परन्तु अंग्रेज इसे कब सह सकते थे। इसलिए कलकत्ता कौंसिल ने एक ओर अंग्रेज-दूतों को मुंगेर जाकर नवाब से मिलने तथा सब बातें नये सिर से तै करने के लिए नियुक्त किया, और दूसरी ओर मीर कासिम को गद्दी से उतारने का षड्यन्त्र रचना आरम्भ कर दिया। उन्होंने एलिस नामक पटना के एजेण्ट को लिख भेजा कि सूचना पाते ही पटना पर अधिकार पाने के लिये तैयार रहो और उसकी सहायता के लिये सेना तथा शस्त्र भेजने आरम्भ कर दिये। जब नवाब मीर कासिम को इसका पता चला तो उसकी समझ में आया कि सन्धि-प्रस्ताव एक दिखावा है, वास्तव में इसका अर्थ अंग्रेजों का उसके अधिकारियों को अपनी ओर मिलाने का अवसर पाना तथा समय प्राप्त करना है।

इसलिये उसने सन्धि की बातचीत के बदले शस्त्र से लदी हुई नावों को, जो पटना जा रही थी, मुंगेर से आगे बढ़ने से रोक दिया। अब कलकत्ता कौंसिल ने मुंगेर भेजे गये अंग्रेज राजदूतों को वापिस बुला लिया और एलिस को पटना पर अधिकार करने की आज्ञा दी। उसने तुरन्त पटना पर कब्जा कर लिया। परन्तु मीर कासिम ने अपनी सेना भेज पटना पर फिर विजय प्राप्त कर ली और एलिस तथा उसके साथी कैद करके मुंगेर भेज दिये।

मीर जाफर का दोबारा नवाब बनाया जाना :—अब कलकत्ता कौंसिल ने प्रकटतया युद्ध-घोषणा कर दी। इस घोषणा में यह भी सूचना दी गई कि मीर कासिम की जगह मीर जाफर को अब फिर बंगाल की गद्दी पर बैठा दिया गया है। ऐसा करने से पहले ही उससे एक गुप्त-सन्धि की जा चुकी थी, जिसके अनुसार बर्दवान इत्यादि तीनों जिले और जितनी रियासतें मीर कासिम ने अंग्रेजों को दे रक्खी थी वे सब कायम रक्खी गईं। नवाब की सेना की संख्या निश्चित कर दी गई। भारतीय व्यापारियों को सब तरह के माल पर २५ प्रतिशत चुंगी कर दी गई। जब कि अंग्रेज व्यापारियों के लिये तै पाया कि वह केवल नमक पर ढाई फीसदी कर दिया करें। अन्य माल को वह देश में किसी भी जगह बिना चुंगी दिये ले जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त मीर जाफर को यह सब क्षतिपूर्ण करने

कहा गया जो मीर कासिम के समय में देश-व्यापारियो से कर न लिया जाने के कारण अंग्रेजो को उठानी पड़ी थी।

मीर कासिम से युद्ध :—कम्पनी की सेना मेजर एडम्स के नेतृत्व में युद्ध घोषणा से दो दिन पूर्व ही कलकत्ता से मुर्शिदाबाद की ओर रवाना हो चुकी थी। मीर कासिम की सेना मीर तकीखां के नेतृत्व में मु गेर से चली परन्तु उसकी सेना के कुछ पदाधिकारी अंग्रेजो से मिल चुके थे इसलिये सफलता प्राप्त न कर सकी और मार्ग में ही एक लडाई में स्वय तकीखां लडता हुआ वीर-गति को प्राप्त हुआ।

ऊदवानाला युद्ध :—मीर कासिम की सेना ने अब ऊदवानाला नामक ऐतिहासिक स्थान पर अपना अन्तिम पडाव डाला। एक ओर गंगा, दूसरी ओर ऊदवानाला नामक गहरी नदी, तीसरी ओर राजमहल की दुर्गम पहाडियाँ तथा चौथी ओर मीरकासिम की मजबूत किलेबन्दी ने इस स्थान को अजेय बना दिया इसके अन्दर पहुँचने का मार्ग अत्यन्त पेचीदा था, परन्तु अंग्रेजो ने यूरोपियन और आरमीनियन ईसाइयो को, जो मीर कासिम की सेना में बड़े-बड़े पदो पर नियुक्त थे, अपनी ओर तोड लिया। इनकी सहायता से एडम्स ने मीर कासिम की सेना पर वज्र-प्रहार किया और एक रात्रि को उस परके आक्रमण करके उसके पन्द्रह हजार सैनिक मौत के घाट उतार दिये।

पटना का हत्याकाण्ड :—इस पराजय से मीर कासिम को बड़ा धक्का लगा, परन्तु उसने हिम्मत न हारी। अब उसने मु गेर के किले को सँभाला, उसकी रक्षा का उचित प्रबन्ध कर मीर कासिम पटना के लिए रवाना हुआ, परतु उसके जाते ही मु गेर के किलदार ने रिश्वत ले अपना किला अ ग्रेजो के हवाले कर दिया। उसी समय पटना के किलेदार ने भी ऐसा ही किया। अपने चारो ओर विश्वासघात का यह दृश्य देखकर मीर कासिम को बडी निराशा हुई। उधर अङ्गरेजी सना मु गेर से उसके पीछे आ रही थी। दूसरी ओर गवर्नर वेन्सीटाट तथा वारेन हस्टिंग्ज मीर कासिम क साथियो से षड्यन्त्र कर उसे जीवित पकडने तथा एलिस वा उसके साथियो को, जो उसके साथ बन्दी के रूप मे थे, मुक्त करने का प्रयत्न कर रहे थे। मीर कासिम को एक विश्वस्त सूत्र से रात के एक बजे षड्यन्त्र की सूचना मिली। इस पर क्रोधित हो मीर कासिम ने इन सब षड्यन्त्रकारियो तथा एलिस वा उसके साथियो का वध करवा दिया। यह घटना पटना के हत्याकाण्ड के नाम से प्रसिद्ध है। इसके बाद मीरकासिम बिहार से निकल अवध के नवाब शुजाउद्दौला से जा मिला और अङ्गरेजो ने पटना में प्रवेश किया।

मीर कासिम का अन्तिम प्रयत्न :—मीर कासिम का साहस अभी न टूटा

था। बिहार से निकल कर वह अङ्गरेजो से लोहा लेने की ओर अधिक तैयारी करने लगा। उसे सम्राट् शाहआलम से बगाल की सूबेदारी नियमानुसार प्राप्त हो चुकी थी इसलिए अब जब अङ्गरेजों ने पदच्युत कर मीर जाफर को नवाब बनाया तो वह सम्राट् के पास पहुँचा और उससे तथा अवध के नवाब शुजाउद्दौला से, जो उस समय मुगल साम्राज्य का प्रधानमन्त्री तथा सम्राट् का विशेष सरक्षक था, अङ्गरेजो के अन्याय का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। इस समय सम्राट् बुन्देलखण्ड के विद्रोही राज्य पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहा था। मीर कासिम ने अपनी सेवायें इस कार्य के लिए अर्पित कर दी और अपनी सेना की सहायता से वह शीघ्र ही इस राज्य को परास्त करने में सफल हुआ। सम्राट् तथा नवाब-अवध उसकी उस सेवा से इतने प्रसन्न हुए कि उन्होने तुरन्त अङ्गरेजो के विरुद्ध बगाल पर चढाई करने की तैयारी आरम्भ कर दी। परन्तु आक्रमण से पहले सम्राट् की ओर से अङ्गरेजों को एक पत्र भेजा गया जिसमें उनके अनुचित व्यवहार का उल्लेख किया गया और उनसे प्रार्थना की गई कि वह अपना प्रतिनिधि भेजकर सब बातों की ठीक ठीक सूचना दें जिससे उचित कार्य किया जा सके। जब इस पत्र का कोई सन्तोषजनक उत्तर न मिला तो शुजाउद्दौला ने सम्राट् और कासिम के साथ आकर पटना का घेरा डाला।

अंग्रेज नीतिज्ञता :—अङ्गरेज इस समय अत्यन्त सङ्कट में थे। शुजाउद्दौला के बल की ख्याति और उसकी सेना की अधिकता का हाल सुनकर वह बहुत भयभीत हुए। इसलिए उन्होने अपनी पुरानी कूटनीति से काम लिया। सर्व प्रथम उन्होंने सम्राट् तथा नवाब अवध में ही फूट डालनी चाही। उन्होंने 'सीयरुल मुताखरीन' के लेखक सैयद गुलामहुसैन को अपनी ओर मिला लिया और उसके द्वारा सम्राट् से साज-बाज आरम्भ कर दी। दूसरी ओर उन्होने नवाब शुजाउद्दौला की सेना के एक दो उच्च पदाधिकारियों को भी अपनी ओर तोड लिया। इस बीच वर्षा आरम्भ हो गई। उपरोक्त बातो तथा ऋतु की खराबी से तग आकर शुजाउद्दौला पटना का घेरा छोडकर बक्सर लौट गया और वहीं बरसात गुजारने का निश्चय किया।

बक्सर का युद्ध .—इस समय मेजर मनरो पटना की सेना का प्रधान सेनापति नियुक्त हुआ, उसे आदेश दिया गया कि वह तुरन्त शुजाउद्दौला पर आक्रमण करके लड़ाई का अन्त कर डाले, अन्यथा सम्भव है कि मरहठा और अफगानो की सेनायें उसकी सहायता के लिए आ जायें। मेजर मनरो ने पटना आते ही बक्सर की ओर प्रस्थान किया। सितम्बर सन् १७६४ ई० को बक्सर में दोनों सेनाओं में सग्राम हुआ। इसमें शाह आलम ने, जो अंग्रेजों से पहले गुप्त बातचीत कर चुका था, उदासीनता दिखाई। नवाब की सेना में भी कई विश्वासघातक मौजूद थे। फल यह हुआ

कि दिन भर के घमासान युद्ध में शुजाउद्दौला के पाँच छ हजार आदमी काम आये और उसे अपनी सेना सहित युद्ध-स्थल से पीछे हटना पडा। अगरेजो के हाथो में पडने से बचने के लिए मीर कासिम रण-भूमि से भाग निकला और इलाहाबाद पहुँचा। वहाँ से वह बरेली आया, तदनन्तर १२ वर्ष तक इधर-उधर फिरता रहा। सन् १७७७ ई० में देहली में उसकी मृत्यु हो गई।

युद्ध का अन्त :—बक्सर का युद्ध समाप्त होते ही सम्राट् शाहआलम ने शुजाउद्दौला का साथ छोड दिया और उसने अग्रेजो को आत्म-समर्पण कर दिया। अग्रेजो ने उसे अपना सम्राट् स्वीकार किया और शुजाउद्दौला से संधि की बात-चीत आरम्भ कर दी, जो सफल न हो सकी। शुजाउद्दौला फिर युद्ध करने की तैयारी करने के लिये पीछे हटा और अग्रेज उसे परास्त करने के लिए आगे बढे। मार्ग में उन्होने चुनारगढ के किले पर अधिकार करने का प्रयत्न किया, जो सफल न हो सका। अब अग्रेजी सेना इलाहाबाद पहुँची और किलेदार को घूस दे उस पर अधिकार करने में सफल हुई। शुजाउद्दौला वहाँ से बरेली चला गया। वहाँ से लौट-कर उसने मल्हारराव होल्कर की कुछ मरहठा सेना की सहायता से कडा में अग्रेजी सेना पर आक्रमण किया, परन्तु इसी बीच नवाब अवध से संधि की बातचीत आरम्भ हो गई। इसी समय क्लाइव इग्लैंड से वापस आ गया। वह स्वयं इलाहाबाद पहुँचा और वहाँ उसने नवाब अवध तथा सम्राट् शाहआलम से संधि कर ली, जो इलाहाबाद की संधि के नाम से प्रसिद्ध है। इसका विस्तृत उल्लेख आगे किया जावेगा।

मीर जाफर की मृत्यु :—मीर जाफर के जीवन के अन्तिम दिन बहुत दुख से व्यतीत हुए। अग्रेज नित्य नई माँग उसके सामने उपस्थित करते रहे। इससे तग हो उसका स्वास्थ्य खराब रहने लगा और अन्त में फरवरी १७६५ ई० में मुर्शिदाबाद के महल में उसका देहान्त हो गया।

मीर जाफर का चरित्र :—मीर जाफर अत्यन्त स्वार्थी और कायर मनुष्य था। राष्ट्रीय भावना उसे छू तक नही गई थी। पद-लोलुपता का शिकार, स्वार्थान्ध मीर जाफर इसी कारण दिन प्रतिदिन अग्रेजो का अधिकाधिक आश्रित होता गया। यहाँ तक कि अन्त में वह नाम-मात्र का ही नवाब रह गया जबकि पूर्ण सत्ता अग्रेजो के हाथ में पहुँच गई। इस प्रकार देशद्रोही मीर जाफर को अपने जीवन काल में ही अपने विश्वासघात का बदला मिल गया और वह आगामी देशवासियों के लिए इतिहास में एक उदाहरण प्रस्तुत कर गया कि देश के एक नागरिक का विश्वासघात उस देश को पतन के किस अन्धकूप में डाल सकता है।

नवाब नजमउद्दौला का गद्दी पर बैठना :—मीर जाफर की मृत्यु के बाद

उसका दूसरा बेटा नजमउद्दौला मुर्शिदाबाद की गद्दी पर बैठा। क्योंकि उसके ज्येष्ठ पुत्र मीरन का उसके जीवन-काल में ही देहान्त हो चुका था। उस समय वेन्सीटार्ट का उत्तराधिकारी स्पेन्सर कलकत्ते का गवर्नर था। उसने नजमउद्दौला से एक नई सन्धि की, जिसके अनुसार नवाब सूबेदार का एक नया पद स्थापित किया गया और अंग्रेजों का एक खास आदमी मुहम्मद रजाखां इस पद पर नियुक्त किया गया। दूसरे, नवाब के माल विभाग में बिना कलकत्ते कौंसिल की अनुमति के किसी को नियुक्त करने अथवा पदच्युत करने का अधिकार न रहा। तीसरे, नवाब के वचन दिया कि कम्पनी की फौज के खर्च के लिये पांच लाख रुपये मुर्शिदाबाद के खजाने से देना रहेगा। चौथे, नवाब से कहा गया कि वह केवल इतनी सेना अपने पास रक्खे जितनी मालगुजारी वसूल करने अथवा दरबार की प्रतिष्ठा कायम रखने के लिये आवश्यक है। पांचवें, देश में प्रत्येक व्यापार पर अंग्रेजों की चुंगी माफ रहे। इन बातों के मानने से सूबेदारी की सत्ता नाममात्र की ही रह गई। किन्तु नजमउद्दौला को यह सब शर्तें माननी पड़ी और इसके अतिरिक्त बीस लाख रुपया भेंट-स्वरूप स्पेन्सर और उसके साथियों को देने पड़े।

प्रश्न

१ प्लासी के युद्ध के बाद अंग्रेजों ने बंगाल में अपना प्रभाव बढाने का किस प्रकार प्रयत्न किया ?

२. मीर जाफर किस प्रकार बंगाल का नवाब हुआ ?

३. मीर कासिम और अंग्रेजों में क्या झगड़ा उठा और उसका क्या परिणाम हुआ ?

अध्याय १६

उत्तरी भारत में प्रवेश

क्लाइव का गवर्नर-काल

(१७६५-१७६७ई०)

क्लाइव का भारत आना :—कम्पनी का बार-बार अब काफी दृढ़ गया था। राजनैतिक क्षेत्र में ही उसकी आकांक्षाएँ दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। मुगल सम्राट् शाहआलम उनकी शरण में था। नवाब शुजाउद्दौला उनकी मित्रता का इच्छुक था। ऐसे समय डाइरेक्टरों ने क्लाइव को, जो अब लार्ड की उपाधि प्राप्त कर चुका था, कलकत्ते का गवर्नर बनाकर भेजा। मई सन् १७६५ ई० में वह कलकत्ते पहुँचा। यहाँ आकर उसे ज्ञात हुआ कि स्पेन्सर और उसके साथियों ने नजमुद्दौला को नवाब स्वीकार कर लिया है और बीस लाख रुपये भेंट स्वरूप प्राप्त कर लिये हैं। इस पर क्लाइव को बड़ा क्रोध आया, क्योंकि वह चाहता था कि एक ऐसे आदमी को नवाब बना दिया जावे जो केवल शून्य मात्र हो और असली मालिक अंग्रेज रहे। वे मालगुजारी वसूल करें, वे ही आन्तरिक व्यवस्था स्थापित रक्खें और वे ही युद्ध व सन्धियाँ करें, केवल नाम में उनकी बादशाहत जनसाधारण की आँखों से छिपी रहे। किन्तु क्लाइव ने धैर्य से काम लिया और अपनी योजना को क्रियान्वित करने के लिये उचित अवसर की प्रतीक्षा करने लगा।

नवाब शुजाउद्दौला से संधि :—शुजाउद्दौला नवाब अवध तथा मुगल सम्राट् शाहआलम इस समय अंग्रेजों से दबे हुए थे इसलिए क्लाइव ने उनसे पूरा लाभ उठाना चाहा। कलकत्ता पहुँचने के बाद शीघ्र ही उसने इलाहाबाद को प्रस्थान किया, मार्ग में वह मुर्शिदाबाद ठहरा। वहाँ पर मुहम्मद रजाखाँ की सहायता से पाँच लाख रुपया भेंट स्वरूप नजमुद्दौला से प्राप्त किये और नायब सूबेदार रजाखाँ के अधिकार और विस्तृत करवाये। इसके बाद वह बनारस पहुँचा। यहाँ उसने नवाब शुजाउद्दौला को फिर लड़ाई की धमकी दे एक नई सन्धि स्वीकार करने के लिए बाध्य किया, जिसके अनुसार तय पाया कि नवाब कम्पनी को ६० लाख रुपया युद्ध की क्षति पूर्ति स्वरूप दे। इलाहाबाद और कड़ा के जिले सम्राट् के लिये छोड़कर

कम्पनी को दे दिये गये। अंग्रेजों का एक एजेंट शुजाउद्दौला के दरबार में रहे, गाजीपुर के आस पास का प्रदेश कम्पनी को दे दिया जावे और आगे से दोनो पक्ष एक दूसरे के मित्र तथा शत्रु को अपना मित्र तथा शत्रु समझें।

इलाहाबाद की सन्धि :—शुजाउद्दौला से सन्धि करने के पश्चात् क्लाइव इलाहाबाद पहुँचा। यहाँ उसने सम्राट शाहआलम से भेंट की। उसी दिन उससे सन्धि हो गई जिसके अनुसार बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी अंग्रेज कम्पनी को दे दी गई और तय पाया कि उसमें से २६ लाख रुपया वार्षिक कम्पनी सम्राट् को और एक उचित रकम मुर्शिदाबाद के नवाब को खर्च के लिये दे और शेष अपने पास रक्खे। तीनो प्रान्तों का शेष शासन सूबेदार के हाथ में रहे। बंगाल में दो पृथक् सरकारें स्थापित हो गईं, एक मुर्शिदाबाद की भारतीय सरकार, दूसरी कलकत्ते की सरकार। इस प्रकार बंगाल के दोहरे प्रबन्ध की अधिकार-पूर्ण स्थापना हुई जिसकी रूपरेखा नजमुद्दौला से की गई सन्धि में स्पष्ट दिखाई देती थी।

नजमुद्दौला की मृत्यु :—क्लाइव जब मुर्शिदाबाद से बनारस के लिये रवाना हुआ था उसी समय अचानक नवाब, नजमुद्दौला की मृत्यु हो गई। कहा जाता है कि उसकी मृत्यु वध स्वरूप हुई जिसमें क्लाइव तथा उसके और साथियों का बहुत बड़ा हाथ था। क्लाइव के चरित्र को दृष्टि में रखते हुए ऐसा सम्भव भी है। अब केवल नाम के लिए मीर जाफर का छोटा बेटा, जिसकी आयु बहुत कम थी, मसनद पर बैठा दिया गया। वास्तव में तीनो प्रान्तों का शासन अंग्रेजों के नियुक्त किये हुए तीन नायबों के हाथ में आ गया। यह दोहरा प्रबन्ध वारेन हेस्टिंग्ज के समय तक चलता रहा।

क्लाइव के अन्य सुधार :—क्लाइव ने भारत आने पर देखा कि कम्पनी के कर्मचारियों में लोभ तथा दुराचार इस दर्जे तक फैल गये हैं कि उन्हें नेकी-बदी, न्याय-अन्याय का विचार तक नहीं आता। अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के सामने वे लोग कम्पनी के हित-अहित की कोई परवाह नहीं करते थे। यह देख क्लाइव ने कम्पनी के डाइरेक्टरों को एक पत्र लिखा जिसमें उसने इस अनाचार का नग्न चित्र खींचा। उसने लिखा कि "कम्पनी के कर्मचारियों ने प्रजा पर जुल्म करने और उन्हें पीड़ा पहुँचाने के जो तरीके जारी कर रक्खे हैं वे इस देश पर अंग्रेजों के नाम पर सदा के लिए एक कलंक रहेंगे। हर आदमी में बड़े बनने और धन कमाने की इच्छा उसमें सफलता और ऐश-परस्ती, इन तीनों ने मिलकर एक नई प्रकार की राजनीति प्रचलित कर दी है। जिससे अंग्रेज कौम की इज्जत साधारण न्याय और मनुष्यता सब

का खून हो रहा है।" यद्यपि यह पत्र क्लाइव का लिखा होने के कारण जो स्वयं प्रथम श्रेणी का घूसखोर था हमें हास्यास्पद प्रतीत होता है तो भी तत्कालीन अंग्रेज कर्मचारियो के अनाचार का यह स्पष्ट चित्रण हमारे हृदय में एक विशेष क्षोभ उत्पन्न करता है। इस अनाचार को रोकने के लिए क्लाइव ने कुछ महत्वपूर्ण सुधार किये। उसने देखा कि सेना माल-विभाग में अत्यन्त हस्तक्षेप करती है। वह प्रायः अनुशासन रहित कार्य करती है। इसे रोकने के लिए उसने अनुशासन की उचित व्यवस्था की। उसने बहुत काल से प्रचलित सैनिक भत्ता स्थगित कर दिया। एक सैनिक नियमानुसार सिपाहियो को युद्ध के समय दुगना भत्ता मिलता था। परन्तु प्लासी के युद्ध मे यह भत्ता निरन्तर दिया जा रहा था चाहे युद्ध हो या न हो। सिपाही इसे अपने वेतन का भाग समझने लगे थे। इसलिये उसके स्थगित होने पर उनमें बहुत क्षोभ उत्पन्न हुआ। परन्तु क्लाइव डाइरेक्टरो के आदेशानुसार इस सुधार पर अटल रहा। इसके बाद क्लाइव ने माल विभाग में कई सुधार किये। उसने घूस लेना, भेंट स्वीकार करना तथा व्यक्तिगत व्यापार निषेध कर दिया। इससे कर्मचारियो की आय को बहुत धक्का लगा, इसलिए उसने उन्हे नमक, पान और तम्बाकू के व्यापार का ठेका दे दिया। क्लाइव का यह सुधार देशी व्यापारियो पर वज्र प्रहार के रूप में अवतरित हुआ। क्लाइव ने कलकत्ता कौंसिल में भी एक विशेष सुधार किया। इसमें सभापति के अतिरिक्त १६ सदस्य थे जो समस्त बगाल मे फैले हुए थे। इन सबके शीघ्रतापूर्वक एकत्रित होने में बडी कठिनाई होती थी। इसलिए उसने डाइरेक्टरो की अनुमति से चार सदस्यो की एक विशेष समिति बनाई, जो सभापति को मन्त्रणा देने के लिये तुरन्त बुलाई जा सके।

क्लाइव का चरित्र :—क्लाइव अत्यन्त महत्वाकाक्षी अंग्रेज था। एक मामूली क्लर्क से भारत में प्रवेश करने के बाद गवर्नर पद तक पहुँचना उसकी महत्वाकाक्षा तथा योग्यता का परिचायक है। परन्तु क्लाइव अत्यन्त लालची मनुष्य था, बगाल की प्रत्येक घटना में वह अपनी धन प्राप्ति को सम्मुख रखता था। घूस लेना उसका नियमित आचरण हो गया था। यही कारण था कि अल्प-काल में ही वह ससार का सबसे धनी अंग्रेज बन गया। राजनीति में उचित अनुचित का उसे तनिक भी ध्यान न था। उसके सामने एक लक्ष्य था—अंग्रेज साम्राज्य की स्थापना और उसे प्राप्त करने के लिए वह उचित व अनुचित आचरण करने को तैयार था। अपने ध्येय-प्राप्ति के लिए उसे छल, बल, बेईमानी, विश्वासघात किसी को प्रयोग करने में कोई सकोच न था। उसका समस्त जीवन इनसे परिपूर्ण है। यहां से लौटने के बाद इस पर मुकदमा चलाने का प्रयत्न किया गया। परन्तु वह शीघ्र ही वापिस

ले लिया गया। इसके कुछ दिन बाद उसने आत्म-हत्या कर ली। कुछ लोग कहते हैं कि उसका यह आचरण अपने पूर्ववत् व्यवहार का प्रायश्चित्त था।

प्रश्न

१. इलाहाबाद-सन्धि का संक्षिप्त नोट लिखो।

२. क्लाइव ने कम्पनी के प्रबन्ध में क्या सुधार किये ?

३. क्लाइव का चरित्र वर्णन करो।

अध्याय १७

हैदरअली का उत्कर्ष तथा प्रथम मैसूर युद्ध

क्लाइव के चले जाने के बाद १७६७ ई० से १७६६ ई० तक वर्लस्ट कलकत्ते का गवर्नर नियुक्त हुआ। मैसूर का प्रथम युद्ध उसके समय की सबसे प्रमुख घटना थी। परन्तु इस युद्ध का विवरण देने से पूर्व मैसूर-अधिपति हैदरअली का परिचय देना उचित है।

✓ **हैदरअली का प्रारम्भिक जीवन:**—हैदरअली के पूर्वज सीधे-सादे फकीर थे। यह रियासत गुलवर्गा में दक्षिण के प्रसिद्ध सन्त गेसूदराज की दरगाह में रहते थे। इसके बाबा की मृत्यु के बाद इसका पिता फतह मुहम्मद मैसूर के राजा की फौज में भरती हो गया। परन्तु शीघ्र ही उसने मैसूर की नौकरी छोड़कर मूसा मीरा के नवाब के यहाँ नौकरी कर ली। धीरे-धीरे वह फौजदार हो गया। यहीं सन १७२८ ई० के लगभग हैदरअली का जन्म हुआ। 'सिंह' राशि में जन्म होने के कारण इसका नाम हैदर (सिंह) अली रखा गया। अभी हैदरअली तीन वर्ष का ही था कि उससे पिता का देहान्त हो गया। अब उसका चचेरा भाई, जिसका नाम भी हैदर साहब था—और जो मैसूर के राजा के यहाँ नायक था, हैदरअली को परिवार सहित श्रीरंगपट्टम लिवा लाया। यहाँ उसने हैदरअली को मकतब की शिक्षा के बदले घोड़े की सवारी, निशाना लगाना, शस्त्रों का उपयोग तथा युद्ध-विद्या में प्रवीण कर दिया। बड़ा होने पर हैदरअली मैसूर की सेना में भरती हो गया। द्वितीय कर्नाटक युद्ध में मैसूर राज्य ने फ्रान्सीसियों से मिलकर मुजफ्फरजंग का साथ दिया। इस युद्ध में हैदरअली ने ऐसी वीरता दिखाई कि मैसूर के प्रधान मन्त्री ने १७५५ ई० में उसे डिंडीगल का फौजदार बना दिया। यहाँ उसने अपनी फौज को सैनिक शिक्षा देने के लिए अनेकों योग्य फ्रांसीसी अफसर नियुक्त किए। उनकी अध्यक्षता में उसने गोला बारूद इत्यादि तोपखाना सम्बन्धी सामग्री तैयार करानी प्रारम्भ कर दी। वैभव-प्राप्ति तथा सैन्य-बल-वृद्धि ने हैदरअली को महत्त्वाकांक्षी बना दिया और वह मैसूर के सिंहासन पर बैठने की योजनायें बनाने लगा। मैसूर का महाराजा ऐसा निर्बल तथा कायर था कि वह अधिकांश समय महल के अन्दर पूजा-पाठ और अन्य धार्मिक

क्रियाओं में ही व्यतीत करता था। समस्त शासन प्रधान मन्त्री के सुपुर्द था जिसे "देव" कहते थे। हैदरअली की बढ़ती शक्ति को देख मैसूर के "देव" ने उसे मैसूर का प्रधान सेनापति बना दिया। थोड़े समय बाद मैसूर में एक राज्य क्रांति हुई और हैदरअली प्रधान मन्त्री हो गया। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कि मैसूर का 'देव" अर्थात् प्रधान मन्त्री ही क्रियात्मक शासक होता था, इसलिए इस समय से हैदरअली ही मैसूर का वास्तविक शासक हो गया और "देव" की गद्दी उसके वंश में पैतृक हो गई। जब कि मैसूर के राजा नाममात्र में अपने महल के अन्दर सिंहासन पर बैठते रहे। हैदरअली की योग्यता और उसके बल की खबर सुनकर दिल्ली सम्राट् ने उसे मैसूर के पास सीरा प्रान्त का सूबेदार नियुक्त कर दिया।

शासन दृढ़ता तथा राज्य विस्तार :—सत्ता प्राप्त करने के बाद सर्वप्रथम हैदरअली ने मैसूर राज्य को सुदृढ़ बनाने का प्रयत्न किया। मैसूर के अधीन अनेक छोटे छोटे प्रान्तीय शासक थे। इन्हें पोलीगार कहते थे। यह पोलीगार प्रायः विद्रोह करते रहते थे। हैदरअली ने इन पोलीगारों की शक्ति क्षीण कर राज्य में शान्ति और सुशासन स्थापित किया। इन सामन्तों में बेदनूर का राजा मुख्य था। हैदरअली ने ही उसे गद्दी पर बैठाया था तो भी उसने षड्यन्त्र करके हैदरअली के वध करवाने का प्रयत्न किया। हैदरअली को जब इस षड्यन्त्र का पता चला तो उसने बेदनूर पर आक्रमण कर राजा को बन्दी बना लिया और अपने एक आदमी को वहाँ का शासक नियुक्त किया। इसके अतिरिक्त उसने कन्नड तथा मालार विजय करके अपने राज्य को बहुत विस्तृत बनाया।

मरहठे तथा हैदरअली —हैदरअली की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर मरहठों ने चार बार मैसूर पर आक्रमण किये, परन्तु उन्हें कोई विशेष लाभ न हो सका। कभी बाहुबल से, तो कभी धन बल से वह उनसे छुटकारा पाता रहा और अन्त में दोनों ने एक दूसरे से सन्धि कर ली।

प्रथम मैसूर युद्ध :—अँग्रेज हैदरअली की बढ़ती हुई शक्ति को सहन न कर सकते थे। इसलिए वह निरन्तर हैदरअली की शक्ति क्षीण करने की योजनाएँ बनाने लगे। १७६१ ई० में उन्होंने हैदरअली से छेड़ छाड़ प्रारम्भ कर दी। इसका कारण हैदरअली का अंग्रेजों के मित्र नय्यर के सामन्तों का प्रदेश छीनना बताया गया। अंग्रेजों ने हैदरअली के बारामहल प्रदेश पर आक्रमण कर दिया। करनाटक के नवाब मुहम्मदअली से हार्दिक सहयोग प्राप्त करने के लिए उन्होंने उसे आश्वासन दिया कि हैदरअली का बारामहल प्रदेश जीतकर उसे दे दिया जायगा। हैदरअली ने भी अपनी शक्ति दृढ़ करने के लिए निजाम के साथ संधि कर ली। निजाम अंग्रेजों से पहले से ही

अप्रसन्न था, क्योंकि उन्होंने उसकी इच्छा के विरुद्ध उसके उत्तरीय सरकार-प्रदेश पर अपना अधिकार कर लिया था। हैदरअली तथा निजाम की संयुक्त सेनाएँ अंगरेजी प्रदेश पर आक्रमण करने के लिए चल पड़ी। उधर अङ्गरेजी सेना जनरल स्मिथ के अधीन मद्रास से रवाना हुई और जबकि हैदरअली तथा अङ्गरेजों में शान्ति-पूर्वक समझौते के लिए पत्र-व्यवहार हो रहा था उसने वनियम बाड़ी कावेरीपट्टम इत्यादि कुछ सरहदी किले अपने अधीन कर लिए। हैदर को अब अङ्गरेजों की कूटनीति का पता चला कि पत्र-व्यवहार अवसर प्राप्त करने के लिए केवल एक चाल थी। अब वह विशाल सेना ले आगे बढ़ा। परन्तु अङ्गरेजी सेना ने निजाम सेना के प्रधान सेनापति रुकुनउद्दीन से गुप्त पत्र-व्यवहार कर उसे अपनी ओर तोड़ लेना चाहा। हैदरअली को भी इसके व्यवहार पर सन्देह होने लगा। दूसरे, हैदरअली अधिक दिन तक राजधानी से अनुपस्थित नहीं रहना चाहता था। ऐसी परिस्थिति में उसने अङ्गरेजों से सुलह की बातचीत शुरू की। अङ्गरेजों ने यह देखकर सोचा कि हैदरअली निर्बल है और वह आसानी से उस पर विजय प्राप्त कर लेंगे, उन्होंने अपमान के साथ हैदरअली के दूत को अपने वहाँ से लौटा दिया। लाचार हो हैदरअली को अपनी सेना सहित आगे बढ़ना पड़ा।

हैदरअली की विजय.—सर्वप्रथम हैदरअली ने कावेरीपट्टम के किले पर, जिसे अङ्गरेजों ने जीत लिया था, आक्रमण किया। इस पर विजय प्राप्त करने के बाद उसने अपने वे तमाम किले एक एक करके ले लिए जो अंगरेजों के अधिकार में चले गये थे। इन तमाम युद्धों में जनरल स्मिथ की सेना को माल असबाब छोड़ बड़ी बुरी तरह भागना पड़ा। जब इस प्रकार एक ओर हैदरअली विजय पर विजय प्राप्त करता बढ़ता चला जा रहा था, तभी उसका पुत्र टीपू एक विशाल सेना सहित मद्रास पर जा धमका। मद्रास में भगदड़ मच गई, बहुत सम्भव था कि शीघ्र ही मद्रास का पतन हो जाता, यदि जनरल स्मिथ छल-पूर्वक उसे वापस करने की तरकीब न सोचता। उसने एक सवार तुरन्त मद्रास की ओर भेजा। इस सवार ने प्रकट किया कि उसे सुल्तान हैदरअली ने भेजा है। सवार ने टीपू को त्रिनमल्ली की पराजय की खबर दी और कहा कि सुल्तान ने उसे तुरन्त लौटकर अपने से मिलने की आज्ञा दी है। टीपू धोखे में आ गया और अपनी सेना सहित हैदरअली से आ मिला।

त्रिनमल्ली की पराजय.—त्रिनमल्ली की पराजय, जिसका दुखद समाचार सवार ने टीपू को सुनाया, वास्तव में कोई पराजय न थी। यह एक प्रकार का विश्वासघात था जो निजाम की सेना ने हैदरअली के साथ किया। जब दोनों सेनाएँ त्रिनमल्ली के स्थान पर आमने सामने पड़ी थीं, तब निजाम और अंगरेजों में गुप्त संधि

हो गई। इस पर निजाम के प्रधान सेनापति ने अंग्रेजी सेना पर आक्रमण करने के बहाने अपनी तमाम सेना को हैदर और अंग्रेजो की सेना के बीच में लाकर खड़ा कर दिया। परन्तु जैसा कि गुप्त रूप से उसमें और अंग्रेज सेनापति में तै हो चुका था, उसने वहाँ से अपनी सेना को कुछ इस प्रकार पीछे हटाया कि हैदरी की तमाम सेना में खलबली मच गई। मजबूर होकर हैदर को अपनी सेना कई मील पीछे हटानी पड़ी जिसे अंगरेजो ने पराजय का नाम दिया।

मंगलौर की विजयः—इसके बाद निजाम ने हैदरअली का साथ छोड़ दिया। अंगरेजों ने हैदर के फ्रांसीसी अफसरो को भी अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न किया। १७६१ ई० के अन्त तक हैदरअली ने अपना वह तमाम भाग, जो अंगरेजो के अधिकार में चला गया था, वापस ले लिया। इन सब में मंगलौर की विजय अत्यन्त शानदार थी। इसमें ४६ अंगरेज अफसर, ६८० अंगरेज सिपाही और ६००० से अधिक भारतवासी सिपाही काम आये। मंगलोर-विजय के बाद हैदरअली ने अपनी सेनाओ को तीन भागो में विभक्त किया और तीन मार्गो से मद्रास की ओर बढ़ाया, जब यह सेनायें बढ़ते-बढ़ते मद्रास के बिल्कुल निकट जा पहुँची, तब मद्रास के गवर्नर और उसकी कौंसिल के सदस्य बहुत घबराये। उन्होंने कप्तान ब्रूक को हैदर के पास सन्धि के लिये भेजा, परन्तु हैदर ने यह कहकर वापस कर दिया कि "मैं मद्रास के फाटक पर आ रहा हूँ। वही सन्धि-वार्ता सुनूगा।" साढे तीन दिन मे १३० मील का फासला तै कर वह अचानक मद्रास के किले पर जा पहुँचा। यह देख अंगरेजो के होश उड़ गये। यदि हैदर चाहता तो उसी दम बड़ी आसानी से मद्रास पर कब्जा कर लेता, परन्तु इसी समय दो अंगरेज अफसर सन्धि की वार्ता के लिए आ पहुँचे।

हैदरअली व अंग्रेज व कर्नाटक के नवाब में सन्धिः—१५ अप्रैल सन् १७६९ ई० को अंगरेजो, सुलतान हैदरअली और अर्काट के नवाब मुहम्मदअली के बीच सन्धि हो गई। अब तक की सन्धियाँ ईस्ट इण्डिया कम्पनी और भारतीय नरेशो के बीच हुआ करती थी। हैदरअली ने कम्पनी के किसी प्रकार के राजनैतिक अस्तित्व को ही स्वीकार न किया। इसलिए उसने यह सन्धि इंग्लैंड के बादशाह की ओर से लिखवाई, जिसके अनुसार दोनो पक्षों ने एक दूसरे के जीते हुए प्रदेश वापस कर दिये। कारूड़ का प्रान्त, जो अंगरेजों के मित्र अर्काट के नवाब मुहम्मद-अली के राज्य में सम्मिलित था, अंगरेजो ने सदा के लिए हैदरअली को भेंट कर दिया। युद्ध क्षति-पूर्ति के लिए अंगरेजो ने बहुत-सा धन हैदरअली को दिया और आगे के लिए दोनो पक्षो ने वचन दिया कि यदि कोई तीसरा किसी एक पक्ष पर

हमला करेगा तो दूसरा उसकी सहायता करेगा। मुहम्मदअली के विषय में तै हुआ कि वह आगे से मैसूर का एक सामन्त समझा जावे और ६ लाख रुपया प्रतिवर्ष खिराज स्वरूप मैसूर-दरबार को दे। जिसमें से पहले वर्ष का खिराज उसी समय पेशगी दिया जावे।

मैसूर के प्रथम युद्ध से कम्पनी की ख्याति को बहुत धक्का लगा। इंग्लैंड में भी इसकी सूचना पहुँचते ही उसके हिस्सों के भाव गिरने आरम्भ हो गये।

मरहठों का आक्रमण और अंगरेजों का विश्वासघात:—उपरोक्त संधि के थोड़े दिनों बाद मरहठों ने मैसूर पर आक्रमण किया। हैदर ने संधि के अनुसार अंगरेजों से मदद माँगी, परन्तु मद्रास कौंसिल ने कोई सहायता न की। लाचार होकर हैदर को कुछ धन और कुछ प्रदेश देकर उन्हें वापस करना पड़ा, परन्तु पेशवा नारायणराव की हत्या के समय ज्यों ही मरहठे गृह-कलह-युद्ध में व्यस्त हुए, त्यों ही उसने टीपू को भेजकर वह समस्त प्रदेश वापस छीन लिया। इसके बाद १७७२ ई० में हैदरअली और मरहठों में ६ वर्ष के लिये शान्ति-संधि हो गई।

प्रश्न

१. हैदरअली के प्रारम्भिक जीवन पर प्रकाश डालो तथा बताओ कि उसने किस प्रकार मैसूर में अपना आधिपत्य जमाया ?

२. प्रथम मैसूर युद्ध के क्या कारण थे—इस युद्ध की घटनाओं तथा परिणाम पर प्रकाश डालिये।

अध्याय १८

वारेन हेस्टिंग्ज (१७७२-८४ ई०)

गवर्नर-काल

(१७७२-७४ ई०)

कार्टियर का गवर्नर-काल :—१७६६ ई० में वर्लस्ट के बाद कार्टियर बंगाल का गवर्नर हुआ। उसके समय में कोई महत्वपूर्ण घटना नहीं हुई। उसके समय मरहठे, जो पानीपत की पराजय के बाद फिर शक्तिसम्पन्न हो गये थे, उत्तरी भारत में फिर हस्तक्षेप करने लगे और सम्राट् शाहआलम इलाहाबाद के किले को छोड कर, जिसे क्लाइव ने सदा के लिये उसका निवासस्थान बना दिया, मरहठा छत्रछाया में देहली चला गया। दूसरे उसके समय में अवध के नवाब शुजाउद्दौला तथा कम्पनी में अनबन हो गई। इस प्रकार यद्यपि कार्टियर के समय में कोई विशेष घटना घटित नहीं हुई तो भी वारेन हेस्टिंग्ज के कार्यों की भूमिका इस काल में बँध गई।

वारेन हेस्टिंग्ज का परिचय:—सन् १७७२ ई० में वारेन हेस्टिंग्ज कलकत्ते का गवर्नर नियुक्त हुआ। उसकी शिक्षा अधिक न थी। सन् १७५० में वह एक साधारण क्लर्क की हैसियत से भारत आया था और बहुत दिनों तक मुर्शिदाबाद दरबार के अंगरेज वकील के पास काम करता रहा। मुर्शिदाबाद में रह कर क्लाइव की देख-रेख में वह भारतवासियों के रस्म-रिवाज और कूटनीति के दाव-पेंच सीख गया और धीरे-धीरे क्लाइव से भी अधिक चालाक हो गया था।

बंगाल की दशा:—बंगाल में क्लाइव ने दो सरकारें स्थापित की थी—एक कलकत्ते की अंगरेजी सरकार, जो बंगाल, बिहार और उडीसा तीनों प्रान्तों का लगान और दूसरे सरकारी टैक्स वसूल करती थी और उसमें से २६ लाख रुपया वार्षिक सम्राट् शाहआलम को तथा ५० लाख रुपया वार्षिक के लगभग मुर्शिदाबाद दरबार को देती थी। दूसरी मुर्शिदाबाद की भारतीय सरकार, जो शासन के अन्य कार्य करती थी परन्तु नजमउद्दौला के समय से नायब सूबेदार का एक नया पद स्थापित हो गया था जो नवाब के नाम से शासन का सारा कार्य स्वयं करता था।

अगरेजो ने तीनो प्रान्तो में नायव सूबेदार का पद अपने खास आदमियो को दिया था। यह लोग नवाब की कोई परवाह न कर अ गरेज सरकार के इशारो पर नाचते थे और प्राय कम्पनी के उच्च पदाधिकारियो की आर्थिक माँग को पूरा करने में ही लगे रहते थे, क्योकि यह माँग प्रतिदिन खडी रहती थी। इसलिए नायब अपने स्वामियो के लिये रुपया एकत्रित करने में उचित अनुचित का कहाँ तक ध्यान रख सकते थे। बलात् रुपया लेना एक नियम-सा हो गया था। लोगो को अपनी रक्षा करनी कठिन हो गई, क्योकि कभी-कभी सामर्थ्य से इतनी अधिक माँग कर ली जाती थी कि वह किसी प्रकार पूरी न हो पाती थी और इस दशा में एक प्रकार का अपमान सहन करना पडता था। नजमउद्दौला ने सन्धि में एक शर्त यह भी मान ली थी कि माल-विभाग में कोई कर्मचारी अ गरेज कौसिल की अनुमति के बिना न रक्खा जायगा और न निकाला ही जायगा। इस प्रकार नवाब की स्थिति बहुत विचित्र सी हो गई थी, उसे नवाब समझना या न समझना दोनो जनता के लिए कठिनाई का कारण थे। दो विरोधी आज्ञाओ में जनता को यह निर्णय करना कठिन हो जाता था कि नवाब की आज्ञा मानें अथवा कम्पनी की। दो स्वामियो के बीच कोई कर्मचारी अपनी नौकरी सुरक्षित न समझता था। उसे सदैव अपने निकलने का भय लगा रहता था इसलिए वह शीघ्रातिशीघ्र अधिक से अधिक धन बटोरने का प्रयत्न करता था कि नही मालूम कब निकाल दिया जाय।

कम्पनी के कर्मचारी एक क्षण में ही धनकुबेर होने के लिए लालायित थे। उन सबने व्यक्तिगत हैसियत से बडी बडी रकमें हर तरह के अन्यायो व अत्याचारो द्वारा प्राप्त की। छोटे बडे सब अ गरेज अधिकारियो में धन का लोभ और दुराचार इस दर्जे तक फैल गये थे कि नेकी बदी या न्याय-अन्याय का सब विचार जाता रहा था। इस प्रकार दोहरे प्रबन्ध ने तीनो प्रान्तो का सत्यानाश कर डाला। हर तरह के व्यापार पर अ गरेजो का अधिकार था। देश के समस्त उद्योग-धन्धे, जिन्हे कुछ ही वर्ष पहले ससार चकित होकर देखता था, मलियामेट कर दिये गये थे। यहाँ तक कि सोना, चाँदी, जवाहरात, रुपया, अशर्फियाँ लद लदकर देश से बाहर जाने लगे। देश में रुपया दिखाई देना कठिन हो गया। इसी समय दुर्भाग्यवश बगाल में भयकर अकाल पडा तथा महामारी फैली और सूबे की ३३ प्रतिशत जनसख्या देखते देखते काल के गाल में चली गई। ऐसी भयकर परिस्थिति में वारेन हेस्टिंग्ज बगाल का गवर्नर हुआ।

वारेन हेस्टिंग्ज के सुधार :—वारेन हेस्टिंग्ज ने अपने गवर्नर-काल में सर्वप्रथम दोहरे प्रबन्ध का अन्त किया। बगाल तथा विहार के नायब सूबेदारो पर

नायव ये अभियोग लगा कर उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया । उन पर मुकदमा चलाया गया और उनके अधिकार छीन कर कम्पनी को दे दिये गए । बड़ी कठिनता से हेस्टिंग्ज को अपार धन दे इन लोगों की जान छूटी । यह वही नायब सूबेदार थे, जो अपनी आत्मा को दूर रख उचित व अनुचित प्रत्येक तरीके से अंग्रेजो को प्रतिक्षण रुपया देने को तैयार रहते थे ।

दूसरा कार्य, जो वारेन हेस्टिंग्ज ने किया, वह सम्राट् शाहआलम की २६ लाख रुपया वार्षिक पेंशन बन्द करना था । क्लाइव ने तै किया था कि सम्राट् अंग्रेजो की छत्रछाया में इलाहाबाद में रहेगा । अब चूंकि सम्राट् मरहठा आधिपत्य में देहली पहुंच गया था इसलिए यह पेंशन बन्द कर दी गई । तीसरे, इलाहाबाद व कड़ा के जिले, जो क्लाइव ने शुजाउद्दौला से सम्राट् के लिए कह कर लिये थे, पचास लाख रुपया लेकर फिर शुजाउद्दौला को वापिस कर दिये गये ।

उपरोक्त सुधारों से कम्पनी की आर्थिक दशा कुछ सुधर गई । इनके अतिरिक्त उसने कुछ शासन-सम्बन्धी सुधार भी किये । सर्वप्रथम उसने मुर्शिदाबाद के स्थान पर कलकत्ते को अपनी राजधानी बनाया । फिर उसका ध्यान माल विभाग के सुधारों की ओर गया । प्रत्येक जिले म एक कलक्टर नियुक्त हुआ जिसका काम अन्य कर्मचारियों की सहायता से मालगुजारी वसूल करना था । यही कलक्टर दीवानी का न्यायाधीश भी था । उसकी अदालत दीवानी अदालत कहलाई । फौजदारी के मुकदमों का फैसला, करने के लिए उसने प्रत्येक जिले में एक फौजदारी अदालत की स्थापना की । इन न्यायालयों की अपील के लिए उसने कलकत्ते में एक सदर दीवानी अदालता तथा एक सदर निजामत अदालत की स्थापना की इनमें से प्रथम का प्रधान स्वयं गवर्नर जनरल होता था । दूसरी प्रकार के न्यायालयों में हिन्दुओं तथा मुसलमानों के प्राचीन नियमों के अनुसार न्याय होता था । उन नियमों की व्याख्या के लिये एक पंडित तथा एक मौलवी नियुक्त हुए । उसने पुलिस में भी कई महत्वपूर्ण सुधार किये जिससे अपराधों में कमी हुई । बंगाल के मुसलमानों की सहानभूति प्राप्त करने के लिए कलकत्ते में एक मदरसा स्थापित किया ।

करना ही अपना एक उद्देश्य समझा। फलस्वरूप जब कम्पनी के कर्मचारी स्वदेश लौटते थे तो बगाल-अर्जित इस सम्पत्ति से गगनचुम्बी भवन, जमीदारिया, पालियामेंट की सीट, उपाधियां आदि मोल लेकर ऐसा सुन्दर तथा चमत्कारपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे कि उन्हे देखकर इग्लैंड के अमीर अवाक् रह जाते थे। जहां तक कम्पनी का प्रश्न है उन्हे उसके हित अथवा अहित का अधिक ध्यान न था। कम्पनी की नौकरी को अधिकतर कर्मचारी धन प्राप्ति का अवसर मात्र ही समझते थ। परिणाम यह हुआ कि कम्पनी को व्यापार में हानि होने लगी। आर्थिक सकट की इस भीषण परिस्थिति में कम्पनी के सचालको ने बगाल, बिहार तथा उडीसा की दीवानी प्राप्त करने को पारस पथरी की प्राप्ति समझा। जिसके फलस्वरूप उन्होने वार्षिक लाभ की दर १० प्रतिशत से १२½ प्रतिशत कर दी। हानि की स्थिति में लाभ की दर को बढाने से आर्थिक कठिनाई और भी उग्र रूप धारण कर गई। तीसरे, हैदर अली के युद्धो में अंग्रेजो की अपार धन तथा जन क्षति हुई जिससे कम्पनी की आर्थिक कमर बिल्कुल टूट गई। १७७० के दुर्भिक्ष तथा महामारी ने भी कम्पनी की आय को क्षति पहुँचाई। फल यह हुआ कि कम्पनी की आर्थिक दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई और उसे इग्लैंड की पार्लियामेंट के सामने ऋण के लिए हाथ फैलाने पडे।

कम्पनी की इस दशा को देखकर इग्लैंड के प्रधानमन्त्री लार्ड नार्थ के होश उड गये। जनता को भी यह सुन कर अत्यन्त आश्चर्य हुआ और कम्पनी के हिस्स का मूल्य यकायक गिरने लगा। ऐसी स्थिति में लार्ड नार्थ ने ऋण देने से पहले कम्पनी के कार्य की जांच तथा उसके दोषो के सुधारो के लिये एक कमेटी नियुक्त की जिसने कम्पनी के कर्मचारियो के अनाचार को इसके लिये उत्तरदायी ठहराया। उनकी रिपोर्ट के आधार पर सन् १७७३ ई० में एक नया कानून बनाया जो रेग्यूलेटिंग ऐक्ट के नाम से प्रसिद्ध है।

रेग्यूलेटिंग ऐक्ट :—इस ऐक्ट के द्वारा दो प्रकार की कमियो को दूर करने की व्यवस्था की गई। प्रथम वैधानिक त्रुटियां जिनके कारण इग्लैंड में कम्पनी की सचालक कमेटी की व्यवस्था बिगड गई थी। दूसरी प्रबन्ध-सम्बन्धी कमियां जिनका अर्थ भारतवर्ष में कम्पनी के कर्मचारियो को सुचारु रूप से कार्य करने के लिये बाध्य करना था।

वैधानिक सुधार :—ईस्ट इण्डिया कम्पनी का प्रबन्ध करने के लिये, कम्पनी के विधानानुसार, दो सस्थाएँ स्थापित की गई थी। प्रथम साधारण सभा, द्वितीय सचालन-समिति। प्रत्येक ५०० पौंड का हिस्सेदार साधारण सभा की

सदस्यता का अधिकारी था । जबकि २००० पौंड का हिस्सेदार सचालक समिति का सदस्य हो सकता था । सचालकों की सख्या २४ थी और प्रतिवर्ष उनका निर्वाचन होता था। दैनिक कार्य-क्रम के लिये सचालक समिति १० उपसमितियों में विभक्त थी। प्रत्येक उपसमिति पत्र-व्यवहार, हिसाब, खरीद इत्यादि एक प्रकार के कार्य की जिम्मेदार थी।

उपरोक्त व्यवस्था को कम्पनी के कर्मचारियों ने दोषपूर्ण बना दिया। वह उचित और अनुचित रूप से भारतवर्ष में धनोपार्जन कर कम्पनी में हिस्सेदार के रूप में प्रवेश करते तथा उस पर अधिकार करने लगे । रेग्यूलेटिंग ऐक्ट के अनुसार साधारण सभा की सदस्यता तथा राय के लिये पाँच सौ पौंड के हिस्सेदार के बदले १००० पौंड का हिस्सेदार अधिकारी ठहराया गया। जबकि सम्पूर्ण सचालक समिति के वार्षिक निर्वाचन के बदले एक चौथाई सदस्यों के वार्षिक निर्वाचन की व्यवस्था की गयी। सचालकों को आदेश दिया गया कि वह समय-समय पर इग्लैंड की सरकार को कम्पनी की स्थिति से सूचित करते रहे।

रेग्यूलेटिंग एक्ट के द्वारा किये गये कम्पनी के प्रबन्ध-सम्बन्धी सुधारों को निम्नलिखित भागों में बाँटा जा सकता है—

शासन सम्बन्धी सुधार —जैसा कि पहिले सकेत किया जा चुका है। कम्पनी के भारतीय कार्यक्रम का प्रबन्ध करने के लिए बगाल, मद्रास तथा बम्बई प्रेसीडेन्सी में सभापति तथा उसकी कौंसिल की व्यवस्था की गई थी। प्रेसीडेन्सी का गवर्नर इस कौंसिल का सभापति होता था और प्रेसीडेन्सी के अन्तर्गत उच्च व्यापारी उसके सदस्य होते थे। यह व्यापारी सदस्य प्रेसीडेन्सी के अन्तर्गत दूर-दूर कम्पनी की कोठियों में रहते थे । यातायात के साधनों के अभाव से उनका शीघ्र मिलन कठिन था। जब कि कम्पनी के अधिकृत प्रदेश की वृद्धि के कारण प्रतिदिन विचारणीय समस्यायें मन्त्रणा के लिये उपस्थित रहती थी । क्लाइव ने चार सदस्यों की एक स्थानीय सिलैक्ट कमेटी अर्थात् उपसमिति बना इस कठिनाई को दूर करने का प्रयास किया था । परन्तु इस सब व्यवस्था का सबसे बड़ा दोष यह था कि समिति अथवा उपसमिति दोनों के सदस्य कम्पनी के वैतनिक कर्मचारी थे इसलिये वे स्वतन्त्रतापूर्वक अपने विचार प्रगट न कर सकते थे । रेग्यूलेटिंग ऐक्ट में इस दोष को दूर करने का प्रयत्न किया गया इसके अनुसार बगाल का गवर्नर गवर्नर जनरल बना दिया गया और बम्बई तथा मद्रास के गवर्नर उसके अधीन कर दिये गये। उन्हें आदेश दिया गया कि वे प्रत्यक मामले में साधारणतया और युद्ध तथा सन्धि के लिये विशेषतया गवर्नर जनरल की राय से काम करें । बंगाल, बिहार तथा

उडीसा की शासन-व्यवस्था गवर्नर जनरल के सुपुर्द की गई और इसे इन तीनों प्रान्तो के माल तथा सैन्य अधिकार प्रदान किये गये। उसकी सहायता के लिये चार सदस्यों की एक कौंसिल बना दी गई जिसके सदस्य पालियामेंट द्वारा निर्वाचित किये गये। उनकी अवधि पाँच वर्ष रक्खी गई। उन्हे सचालको की प्रार्थना पर, यदि वह उचित हो, बादशाह अर्थात् प्रधानमन्त्री ही पदच्युत कर सकता था। बारवैल, क्लैवरिंग, फ्रांसिस तथा मोन्सन इस कौंसिल के प्रथम चार सदस्य नियुक्त हुए। इस ऐक्ट की उपरोक्त धारा का उद्देश्य कम्पनी के भारतीय शासन का केन्द्रीकरण करना तथा गवर्नर जनरल की सत्ता पर स्वतन्त्र सदस्यो का प्रतिबन्ध लगा उसके तथा कर्मचारियो के अनुचित कार्यों पर प्रतिबन्ध लगाना था।

कम्पनी के कर्मचारियों का सुधार :—जैसा कि क्लाइव के सुधार के समय उल्लेख किया जा चुका है कि कम्पनी के कर्मचारियो का वेतन बहुत थोडा था। जब तक उसमें उचित वृद्धि न हो उनको व्यक्तिगत व्यापार, रिश्वत, घूस अथवा भेंट इत्यादि स्वीकार करने से रोकना असम्भव था। इसलिये क्लाइव के कर्मचारियो सम्बन्धी सुधार निष्फल हुए।

रेग्यूलेटिंग ऐक्ट के अनुसार कम्पनी के उच्च कर्मचारियो के वेतन में विशेष वृद्धि की गई और व्यक्तिगत व्यापार, रिश्वत, भेंट इत्यादि सर्वथा निषेध कर दी गईं। उन्हे बता दिया गया कि यदि वह इस पर भी उपरोक्त दुराचार में भाग लेंगे तो उन्हे जुर्माना तथा कैद का दण्ड दिया जायगा। और उन पर अभियोग लगाकर उनके विरुद्ध मुकदमा चलाने के लिए उन्हें इग्लैंड भेज दिया जायगा।

न्याय-सम्बन्धी सुधार :—वारेन हेस्टिंग्ज के न्याय सम्बन्धी सुधारो का पहले उल्लेख किया जा चुका है। इस व्यवस्था का सबसे बडा दोष यह था कि प्रबन्धक तथा न्यायक वर्ग में कोई भेद न था। कम्पनी के कर्मचारी अपने ही विरुद्ध अभियोगो पर निर्णय देने के अधिकारी थे। रेग्यूलेटिंग ऐक्ट के अन्तर्गत एक उच्च न्यायालय अर्थात् सुप्रीम कोर्ट (Supreme Court) स्थापित की गई जिसमें एक प्रधान न्यायाधीश तथा तीन सहायक न्यायाधीश नियुक्त किये गए जिन्हे अंग्रेजों और कम्पनी के अन्य कर्मचारियो के सब प्रकार के मुकदमो को तय करने का अधिकार दिया गया। केवल गवर्नर जनरल और उसकी कौंसिल के सदस्यो को उसके क्षेत्र से बाहर रखा गया। उपरोक्त न्यायालय इग्लैड के सम्राट् की ओर से स्थापित किया गया था। उसके जजो की नियुक्ति भी उसकी ही ओर से होती थी। सर 'एलिजाह इम्पे' वारेन हेस्टिंग्ज का एक मित्र प्रथम न्यायाधीश नियुक्त हुआ। इन सुधारो को क्रियात्मक रूप देने के बाद पालियामेंट ने ईस्ट इण्डिया

कम्पनी को १४ लाख पौंड रुपया उधार दिया और उसके चार्टर को बीस वर्ष के लिये बदल दिया। इस प्रकार कम्पनी की नीति में मन्त्रिमण्डल के हस्तक्षेप का श्रीगणेश हुआ।

रेग्यूलेटिंग ऐक्ट के दोष :—यह ऐक्ट अपनी समस्त धाराओं सहित १७७४ ई० में लागू कर दिया गया। आरम्भ में आशा थी कि इससे कम्पनी की दशा में बहुत कुछ अन्तर हो जायेगा। परन्तु कई दोषों के कारण उसका उद्देश्य पूर्णतया सफल न हो सका और इसलिए १७८४ ई० में उसे पिट्स-इन्डिया एक्ट द्वारा, जिसका आगे चलकर विस्तृत वर्णन किया जायगा, संशोधित करना पड़ा। इस ऐक्ट का प्रथम आधार विभाजन सिद्धान्त अर्थात् न्यायक, वैधानिक तथा प्रबन्धक शक्तियों की पृथकता तथा प्रतिबन्ध सिद्धान्त अथवा (Checks and Balances) का सिद्धान्त था। जिसके द्वारा गवर्नर जनरल की कौंसिल के सदस्य तथा उच्च न्यायालय उसकी निरंकुशता पर नियन्त्रण रख सकें। परन्तु जैसा कि आगे चलकर अनुभव से सिद्ध हुआ इस प्रकार का शक्ति विभाजन अथवा सन्तुलन व प्रतिबन्ध कम्पनी की सामयिक स्थिति के अनुकूल न था। यही कारण था कि १७८४ ई० के पिट्स-इण्डिया ऐक्ट से इस दोष को दूर करना पड़ा। दूसरे ऐक्ट के अनुसार गवर्नर जनरल के लिए प्रत्येक स्थिति में कौंसिल के बहुमत से आचरण करना अनिवार्य था, जबकि प्रथम चार सदस्यों में से केवल बारवैल हेस्टिंग्ज के पक्ष में रहता था और शेष तीन उसके विरुद्ध। इसलिए ऐक्ट के प्रारम्भिक दो वर्ष पर्यन्त, जब तक मौनसन जीवित रहा, गवर्नर जनरल की सत्ता नाममात्र की थी। बहुमत उसके विरुद्ध होने के कारण उसे निष्क्रिय ही रहना पड़ा। इससे गवर्नर जनरल के प्रभुत्व को बहुत धक्का लगा।

तीसरे, गवर्नर जनरल और कलकत्ता सुप्रीम कोर्ट के अधिकार निश्चित न थे। इसलिए ऐसे अवसर प्राय आते रहते थे जब दोनों न्यायालय एक दूसरे के विरुद्ध निर्णय दे देते और उस निर्णय को कार्यान्वित करने का प्रयत्न भी करते।

चौथे, सुप्रीम कोर्ट में इंग्लैंड के नियमों के अनुसार न्याय होता था जो भारतवर्ष के लिए किसी प्रकार उपयुक्त न थे। पाँचवें, यदि उपरोक्त विरोधी शक्तियों के कारण कुछ समस्याएँ उत्पन्न हो तो उन्हें सुलझाने की कोई व्यवस्था भारत में न थी। उनको सुलझाने वाली संस्था अर्थात् पालियामेंट सात हजार मील की दूरी पर इंग्लैंड में स्थित थी। ऐसी दशा में रेग्यूलेटिंग ऐक्ट से मनोवांछित लाभ न हुआ और यह केवल असफल होकर रह गया।

रुहेलों से युद्ध :—जैसा कि पहले भी कई बार संकेत किया गया है—ईस्ट

इण्डिया कम्पनी की आर्थिक दशा अच्छी न थी इसलिए कम्पनी के डाइरेक्टर वारेन हेस्टिंग्ज को लिखते रहते थे कि जिस तरह से हो सके—अधिक से अधिक धन भारत से वसूल करके इंग्लैंड भेजें। हेस्टिंग्ज ने भी "चाहे ईमानदारी से चाहे बेईमानी से" सब प्रकार धन एकत्रित करना प्रारम्भ कर दिया। धन की लालसा से प्रेरित वारेन् हेस्टिंग्ज सर्व प्रथम रुहेला-युद्ध में सम्मिलित हो गया।

रुहेला प्रदेश :—रुहेले अफगान थे, उन्होने पेशावर के निकट आकर अवध के उत्तर-पश्चिम में गंगा और हिमालय के बीच अपना एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया था। रुहेला राज्य का वर्णन करते हुए इतिहासकार 'मिल' लिखता है कि:—

"रुहेलखण्ड प्रदेश एशियाई सुव्यवस्थित देशो में से एक था, वहाँ की जनता सुरक्षित थी। उनके उद्योग-धन्धों को राज्य की ओर से सहायता दी जाती थी और उनका देश निरन्तर समृद्धि की ओर अग्रसर था।"

आक्रमण के लिए गुप्त संधि :—रुहेला राज्य के एक ओर मरहठा राज्य, दूसरी ओर अवध तथा अंग्रेजों का राज्य था। मरहठे बहुधा इनके प्रदेश पर छापे मारते रहते थे। सन् १७७१ ई० के निकट रुहेलों को मरहठा आक्रमण की विशेष आशंका हुई इसलिए उन्होने अवध के नवाब शुजाउद्दौला से सन्धि कर ली जिसके अनुसार तय पाया कि यदि मरहठे रुहेलखण्ड पर आक्रमण करें तो अवध का नवाब उनकी सहायता करेगा। जिसके बदले में रुहेलो ने नवाब को ४० लाख रुपये देने का वचन दिया। किसी कारणवश मरहठो ने रुहेलखण्ड पर आक्रमण न किया। इसलिए अवध के नवाब को रुपया देने का प्रश्न भी पैदा न हुआ। परन्तु उसने फिर भी रुपये की माँग की। जब रुहेलो ने रुपया देने से इन्कार किया तो उसने हेस्टिंग्ज से साज-बाज करनी आरम्भ कर दी। हेस्टिंग्ज की लालची आँखें रुहेलखण्ड के समृद्धिशाली प्रदेश पर पहले ही लगी हुई थी। फल यह हुआ कि १७७३ ई० में अवध के नवाब शुजाउद्दौला तथा वारेन हेस्टिंग्ज में एक गुप्त सन्धि हुई जिसके अनुसार तय हुआ कि उचित अवसर प्राप्त होते ही कम्पनी तथा नवाब की सेनाएँ रुहेलखण्ड पर आक्रमण करें और रुहेला जाति को निर्मूल कर उनका राज्य शुजाउद्दौला को दे दिया जाए जिसके बदले में नवाब ४० लाख रुपया नकद तथा युद्ध का समस्त खर्च कम्पनी को दे।

आक्रमण तथा युद्ध :—अप्रैल सन् १७४४ ई० में बिना किसी विशेष् कारण के कम्पनी तथा नवाब की सेना ने रुहेलखण्ड पर आक्रमण कर दिया। रुहेलो ने वीरतापूर्वक उनका सामना किया परन्तु नवाब तथा कम्पनी की असख्य सेना के सामने वे कुछ न कर सके। रामपुर की लड़ाई में वे पूर्णतया परास्त हुए। हरा-भरा रुहेला प्रदेश उजड़ गया। परन्तु कम्पनी को ४० लाख रुपया तथा हेस्टिंग्ज को २ लाख

की भेंट मिल गई। रामपुर और उसके आस-पास का थोड़ा-सा प्रदेश नवाब को बतौर जागीर में दे दिया गया। शेष रुहेलखण्ड शुजाउद्दौला को मिल गया। परन्तु धन प्राप्ति के लिए एक समृद्ध देश की स्वाधीनता का अपहरण हेस्टिग्ज तथा अंग्रेज जाति को सदैव कलंकित करता रहेगा।

हेस्टिग्ज तथा राजा चेतसिंह :—कम्पनी के डाइरेक्टरों के उपदेशानुसार हेस्टिग्ज ने अपनी धन एकत्रित करने की नीति को जारी रखा। धन-लोलुपता ने उसे इतना अन्धा बना दिया कि उसे न्याय-अन्याय, उचित-अनुचित का कोई ज्ञान न रहा। रुहेलखण्ड के बाद उसकी लालची आँखें बनारस पर पड़ी। आरम्भ में बनारस की रियासत अवध के अधीन थी। सन् १७७६ ई० में अवध के नवाब ने बनारस की रियासत कम्पनी के नाम कर दी। फलस्वरूप एक अंग्रेज रेजीडेण्ट बनारस के राजा चेतसिंह के दरबार में रहने लगा और महाराजा चेतसिंह की गणना कम्पनी के ईष्ट मित्रों में की जाने लगी।

इसी बीच यारुप और फ्रांसीसियों के बीच युद्ध आरम्भ हो गया। महाराजा चेतसिंह को वारेन हेस्टिग्ज ने यह आज्ञा दी कि पाँच लाख रुपये सालाना खर्चे पर वह अपने यहाँ कम्पनी की तीन पल्टनें रख ले। ये सेनायें उसकी रियासत की रक्षा करेंगी। रियासत में पूर्ण शान्ति थी और शान्ति भंग होने की कोई आशंका भी प्रतीत न होती थी। इसलिये राजा चेतसिंह ने अपने यहां इस प्रकार सेना रखने पर आपत्ति की, परन्तु हेस्टिग्ज ने, जिसका उद्देश्य बनारस की रक्षा करने के बदले उचित अवसर पर उन्हीं सेनाओं से रियासत का भक्षण करना था और उस समय के लिए कम्पनी के बिना खर्च के एक स्थायी सेना का आयोजन करना था, राजा की एक न सुनी। परिणाम यह हुआ कि सेनायें बनारस रियासत में रख दी गईं और उनका खर्च राजा को सहन करना पड़ा। परन्तु इतना ही पर्याप्त न था। दो वर्ष बाद आज्ञा हुई कि राजा कम्पनी की एक अश्व सेना भी अपने खर्चे से रियासत में रक्खे। राजा ने, जो पहलों ही रक्खी सेना के खर्च को अपव्यय समझता था, इस आज्ञा को मानने से इन्कार कर दिया। इस पर वारेन हेस्टिग्ज ने तुरन्त बनारस पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। जब राजा को इस बात का पता चला तो उसने बक्सर के स्थान पर हेस्टिग्ज से भेंट की और बड़ी नम्रता पूर्वक अपनी विवशता प्रकट की फिर भी हेस्टिग्ज ने एक न सुनी। वह स्वयं बनारस पहुँचा और राजा के महल को घेर लिया। उसने आज्ञा दी कि राजा को कैद कर लिया जाय। बनारस की प्रजा इस घोर अन्याय तथा अपने राजा के अपमान को देखकर भड़क उठी और कम्पनी की सेना पर टूट पड़ी और तमाम अंग्रेज सिपाही कत्ल कर डाले गए। हेस्टिग्ज ने स्वयं भाग कर

चुनार के किले में शरण ली। परन्तु उसने और अधिक सेना बनारस भेजी। घोर संग्राम हुआ और जब राजा के नौकरों ने देखा कि अब बनारस का पतन होने वाला है तो उन्होंने राजा को एक खिड़की से नीचे उतार दिया और वह अपनी माता रानी तथा मुख्य विश्वासपात्रों सहित गंगा के उस पार रामनगर स्थान पर, जहां उसका मुख्य खज़ाना था, जा पहुँचा। अन्त में जब रामनगर का किला भी जीत लिया गया तो राजा भाग कर ग्वालियर पहुँचा और यहाँ उसने अपने जीवन के शेष दिन पूरे किये।

बनारस की रियासत राजा के एक वंशज को दे दी गई परन्तु उसके अनेक अधिकार रेजीडेंण्ट को दे दिये गये और कम्पनी का खिराज बढ़ाकर ५७ लाख वार्षिक कर दिया गया। थोड़े ही दिन पहले जहाँ सुख और शान्ति का राज्य था वहाँ दुख और असन्तोष का दौर दौरा हो गया।

हेस्टिंग्ज और अवध की बेगमें :—वारेन हेस्टिंग्ज की धनपिपासा अभी शान्त न हुई थी इसलिये बनारस के बाद उसने अवध पर अपनी दृष्टि डाली। सन् १७७५ ई० में अवध के नवाब शुजाउद्दौला का देहान्त हो गया। उसके स्थान पर आसफउद्दौला गद्दी पर बैठा। अनेकों बार बिना कारण के अनेकों रकमें बलात् उससे वसूल कर ली गई थी। सन् १७८१ ई० में जब उससे फिर धन की याचना की गई तो उसने अपनी निर्धनता के कारण विवशता प्रगट की। अपनी विवशता का कारण बतलाते हुए नवाब ने कहा कि मुझे अपने यहाँ रक्खी हुई कम्पनी की सहायक सेना के खर्चे के लिये एक बड़ी रकम वार्षिक देनी पड़ती है। हेस्टिंग्ज ने बनारस की भांति यहा भी नवाब के खर्च पर कम्पनी की एक विशाल सेना रख रक्खी थी। अपनी स्थिति समझाने के लिये आसफउद्दौला स्वयं हेस्टिंगज से मिलने के लिए चुनार गया। यहाँ बातचीत के बीच में उसने प्रगट किया कि नवाब शुजा-उद्दौला मरते समय उसकी माँ और दादी को बड़ा रुपया दे गया था। हेस्टिंग्ज ने तुरन्त आसफउद्दौला से मिलकर इन बेगमों से रुपया लेने की योजना बनाई। बेगमों पर यह आरोप लगाया गया कि वह बनारस के राजा चेतसिंह के साथ षड्यन्त्र कर रही है। बेगमों की ओर से कोई सफाई न सुनी गई बल्कि हेस्टिंग्ज का मित्र सुप्रीम कोर्ट का मुख्य न्यायाधीश सर एलिजाह इम्पे स्वयं लखनऊ पहुँचा। उसने वहाँ स्वयं इस आरोप सम्बन्धी बहुत से झूठे शपथपत्र ग्रहण किये जिनमें कम्पनी के विरुद्ध इस मिथ्या षड्यन्त्र की शपथें लिख दी गई थीं। इस प्रकार लोकाचार की समस्त शिष्टता समाप्त करने के पश्चात् हेस्टिंग्ज ने फैजाबाद के महलों को घेरने की आज्ञा दी और बेगमों से कहला भेजा कि वे कैदी है। उन्हे उनके नौकरों को तथा

चारियों को बन्दी बना लिया गया। उन्हे अनेक प्रकार की यातनाएँ दी गई और जब तक उन्होंने एक विशाल धनराशि द्वारा, जिसका अनुमान लगभग १ करोड़ २० लाख था, हेस्टिंग्ज को प्रसन्न न कर लिया तब तक उन्हे मुक्त न किया गया।

हेस्टिंग्ज पर अभियोग तथा नन्दकुमार को फांसी :—बगाल में दोहरा प्रबन्ध समाप्त करते समय हेस्टिंग्ज ने रजाखाँ को निकालने के लिए नन्दकुमार से काम लिया था। उसने नन्दकुमार को झूठे वचन दे कि उसे रजाखाँ की जगह बगाल का नायब नवाब बना दिया जायगा, उसमे रजाखाँ पर गबन का मुकदमा चलवाया था। परन्तु जब यह काम निकल गया तो हेस्टिंग्ज ने अपना वायदा पूरा न किया इसलिये नन्दकुमार उससे बहुत असन्तुष्ट था। रेग्यूलेटिंग ऐक्ट के बाद जब गवर्नर जनरल की कौंसिल की स्थापना हुई तो उसने उसके विरुद्ध एक प्रार्थनापत्र कौंसिल में प्रस्तुत किया जिसमें हेस्टिंग्ज पर बगाल के रईसो और जमीदारो से रिश्वत लेने, बलात् रुपया वसूल करने, अवध की बेगमो से अन्यायपूर्ण व्यवहार करने तथा लोगो को धोखा देने के अनेको अभियोग लगाये गये थे। नन्दकुमार ने अपने अभियोगो को सत्य भी सिद्ध कर दिया परन्तु हेस्टिंग्ज को कोई दण्ड न मिल सका। हेस्टिंग्ज ने कहा कि कौंसिल को गवर्नर जनरल के विरुद्ध अभियोग सुनने का अधिकार नही है। इस प्रकार अपना बयान कर उसने नन्दकुमार पर पाँच वर्ष पूर्व एक जाली कागज पर हस्ताक्षर करने का अभियोग लगाया और सुप्रीम कोर्ट में उसके विरुद्ध मुकदमा चलवा दिया। यद्यपि अभियोग पूर्णतया निर्मूल था तो भी विपक्षी की सफाई की कोई परवाह न करते हुए हेस्टिंग्ज के मित्र सर एलिजाह इम्पे ने नन्दकुमार को जालसाजी के जुर्म में प्राणदण्ड की आज्ञा दी। फलस्वरूप ५ अगस्त सन् १७७६ ई० को कलकत्ते में उसे फांसी दे दी गई। नन्दकुमार का दण्ड सर्वथा अन्यायपूर्ण था क्योकि प्रथम तो अभियोग ही सिद्ध न हुआ था, दूसरे जालसाजी के आरोप में इंग्लैंड अथवा भारतवर्ष में कही भी प्राणदण्ड की व्यवस्था न थी।

कम्पनी की मरहठा नीतिः—मरहठो जैसी प्रबल भारतीय शक्ति के अस्तित्व को अंग्रेज सदैव अपनी उन्नति के लिए बाधक समझते थे। इसलिए जैसा कि ग्राट डफ लिखता है—

"कम्पनी के डाइरेक्टर इस बात के लिए इच्छुक थे कि मरहठो की बढती हुई शक्ति को किसी तरह धक्का पहुँचे।" सचालको की ऐसी इच्छा होते हुए अंग्रेज-मरहठा सघर्ष अनिवार्य था परन्तु इस सघर्ष में प्रवेश करने से पहले सामयिक मरहठा-स्थिति का सक्षिप्त परिचय देना उचित प्रतीत होता है।

मरहठा साम्राज्य की दशा:—सन् १७६१ ई० में अहमदशाह अब्दाली ने पानीपत के एतिहासिक रणस्थल में मरहठों की संयुक्त सेना को परास्त किया था। इस पराजय ने कुछ समय के लिए मरहठों को उत्तरी भारत से निकाल दिया। मुगल सम्राट के हृदय से भी कुछ समय के लिए उनका प्रभाव उठ गया। उसी समय से धीरे-धीरे गायकवाड, भौंसला, होल्कर और सिन्धिया स्वाधीन होने का प्रयत्न करने लगे। पानीपत के कुछ सप्ताह बाद पेशवा बालाजी बाजीराव की मृत्यु हो गई। उसके पश्चात् उसका नाबालिग पुत्र माधोराव पेशवा घोषित हुआ और उसका चाचा रघुनाथराव, जो इतिहास में राघोबा के नाम से प्रसिद्ध है, उसका संरक्षक नियुक्त हुआ। राघोबा अत्यन्त अदूरदर्शी तथा महत्वाकांक्षी था। अपनी इन दुर्बलताओं के कारण वह मीरजाफर की भाँति आगे चल कर अंग्रेजों के हाथ की कठपुतली बन गया। अंग्रेज जानते थे कि बंगाल तथा उत्तरी भारत में अपने प्रभाव को बढ़ाने के लिए मरहठा को उनके घरेलू झगड़ों में फँसाये रखना अत्यन्त आवश्यक है। दूसरे, बंगाल की भाँति मरहठा जाति की शक्ति को निर्बल बनाने तथा मरहठा प्रदेश में धीरे-धीरे अपने पैर फैलाने के लिए आवश्यक था कि उन्हें गुजरात प्रान्त का कुछ भाग तथा भारत के पश्चिमी तट पर कुछ प्रदेश प्राप्त हो जावें। यही कारण था कि आरम्भ से ही पश्चिमी तटवर्ती सालसट तथा महत्वपूर्ण टापुओं पर अंग्रेजों की दृष्टि रही। उक्त उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए कम्पनी के संचालकों ने भी सन् १७६२ ई० में बम्बई कौंसिल को अपने पत्रों में लिखा "कि हम अधिक से अधिक जोरदार शब्दों में अनुरोध करते हैं कि आप सालसट तथा बेसीन को प्राप्त करने का पूर्ण प्रयत्न करते रहें क्योंकि इसमें हमें बहुत बड़ा लाभ है। इन्हें प्राप्त करने के लिए सदैव ताक में रहना चाहिये।"

मार्स्टन का भारत आना तथा उसका कार्य—इसी उद्देश्य पूर्ति के लिए सन् १७७२ ई० में कम्पनी के संचालकों ने अपना विशेष दूत मार्स्टन भारत भेजा। तुरन्त उसे बम्बई कौंसिल का वकील बना कर पेशवा के दरबार में पूना भेज दिया गया। पूना में उसके तीन प्रमुख कार्य थे प्रथम यह प्रयत्न करना कि दक्षिण भारत की तीन प्रमुख शक्तियाँ अर्थात् मरहठे, निजाम और हैदरअली मिलने न पावें। दूसरे, मरहठों को घरेलू झगड़ों में इस प्रकार व्यस्त रखना कि उन्हें उत्तरी भारत अथवा बंगाल में हस्तक्षेप का अवसर ही न मिले। तीसरे, सालसट तथा बेसीन प्राप्त करना। स्वार्थान्ध राघोबा से उसे इस कार्य में पूर्ण सहायता मिली परन्तु उस समय पेशवा दरबार में नाना फड़नवीस जैसा सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ मौजूद था। वह राघोबा की आकांक्षाओं तथा अंग्रेजों की चालों को भली भाँति समझता था। इसलिए कुछ दिनों

राज मार्स्टन को कोई सफलता प्राप्त न हो सकी। फिर भी उसने अपने प्रयत्न जारी रखे।

सर्व प्रथम उसने राघोबा और नाना फडनवीस में फूट डालने का प्रयत्न किया। इस समय तक माधोराव बालिग हो चुका था। उसपर नाना का बहुत प्रभाव था। परन्तु मार्स्टन चाहता था कि वह राघोबा के प्रभाव में रहे, क्योंकि इसमें उसकी स्वार्थसिद्धि का स्वर्ण अवसर निहित था। परन्तु माधोराव अल्पायु होते हुए भी अत्यन्त योग्य मनुष्य था। अंग्रेजों की चाल वह भली भांति समझता था। फिर भी अंग्रेज-विभाजन नीति के शिकार मरहठे दो दलों में विभक्त हो गये। पारस्परिक द्वेष इस सीमा तक पहुँच गया कि एक बार माधोराव को विवश होकर राघोबा को कैद करना पड़ा। यद्यपि वह शीघ्र ही मुक्त कर दिया गया, परन्तु स्थिति पर पूर्ण विजय नहीं हो पाई थी कि १८ नवम्बर सन् १७७२ ई० को २८ वर्ष की अल्पायु में पेशवा माधोराव की असामयिक मृत्यु हो गई। उसके कोई बच्चा न था, इसलिए मरने से पहले उसने अपने भाई नारायणराव को पेशवा निर्वाचित किया और राघोबा से प्रार्थना की कि वह नारायणराव की रक्षा व सहायता करे। परन्तु स्वार्थान्ध राघोबा इन बातों से प्रभावित होने वाला न था। माधोराव की मृत्यु में उसने अपनी आकांक्षापूर्ति तथा मार्स्टन ने कम्पनी की स्वार्थसिद्धि का स्वर्ण अवसर देखा। सन् १७७३ ई० में राघोबा ने नारायणराव पेशवा का वध करवा डाला और अपने आपको पेशवा घोषित कर दिया। अंग्रेजों ने उसका साथ दिया। नारायणराव की हत्या तथा उसके बाद हत्यारे राघोबा का साथ अंग्रेजों के भारतीय इतिहास में अत्यन्त पापमय अध्याय है। बम्बई की कौंसिल ने भी अपने एक पत्र में मार्स्टन को लिखा कि "इस अवसर पर सालसट और बँसीन प्राप्त करने में जितनी चीजें हमें सहायता प्रदान कर सकें उन्हें खूब परिश्रम के साथ बढ़ाना।"

इस समय तक नाना फड़नवीस और उसके साथी अच्छी तरह समझ चुके थे कि राघोबा अंग्रेजों के हाथों में खेल मरहठा साम्राज्य की जड़ें खोखली कर रहा है। इसलिए उन्होंने अपनी सैन्य शक्ति बढ़ानी आरम्भ कर दी। इसी बीच अप्रैल सन् १७७४ ई० में नारायणराव की विधवा स्त्री के, जो अपने पति की हत्या के समय गर्भवती थी, एक पुत्र हुआ। नाना फडनवीस तथा अन्य प्रभावशाली मरहठा दरबारियों ने इस बालक को पेशवा घोषित कर दिया। किन्तु अंग्रेजों का हित राघोबा ही के पेशवा बनने में था। इसलिए उन्होंने राघोबा को अपने पास सूरत बुलवा लिया और सन् १७७५ ई० में उससे एक सन्धि की, जिसके अनुसार उसने सालसट, बँसीन तथा सूरत प्रान्त का एक भाग कम्पनी को दे दिया। बम्बई कौंसिल ने इसके

बदले राघोवा को कम्पनी की सेना सहित पूना भेजने और पेशवा को गद्दी पर बैठाने का वचन दिया।

प्रथम संघर्ष—बबई की सेना राघोवा को पूना की गद्दी पर बैठाने के लिए चली। उधर नाना फडनवीस ने हरिपन्त फडके के अधीन एक सेना राघोवा का सामना करने को भेजी। आरस के स्थान पर दोनों सेनाओं में, घोर युद्ध हुआ। राघोवा तथा अंग्रेज परास्त हुए और बहुत से अंग्रेज युद्ध में काम आये। परन्तु इसी बीच में वर्षा ऋतु प्रारम्भ हो गई। इसलिए हरिपन्त फडके ने पराजित सेना का पीछा नहीं किया और वह पूना लौट आया। फल यह हुआ कि राघोवा तथा अंग्रेज साथी कुछ दूर भाग गुजरात में ही ठहर गये।

अंग्रेजों का गुजरात प्रवेश:—प्रत्येक अवसर से लाभ उठाने वाली अंग्रेज जाति ने इस अवसर को गुजरात के गायकवाड वश पर अपना प्रभाव जमाने में लगाने का प्रयत्न किया। गुजरात में भी इस समय पूना की भाँति उत्तराधिकार-युद्ध चल रहा था। सन् १७६८ में महाराजा गायकवाड की मृत्यु के बाद उनके चार पुत्र सयाजी, गोविन्दराव, मानिकजी और फतहसिंह गद्दी के लिए लड रहे थे। अंग्रेजो ने फतहसिंह से, जा सयाजीराव के पक्ष में था, सन्धि कर ली। अंग्रेजी सेना की सहायता से सयाजीराव बडौदा की गद्दी पर बैठा। उसने भडौंच इत्यादि कई परगने, जिनकी वार्षिक आय कई लाख रुपये थी, कम्पनी को दे दिये। इस सन्धि से दूसरा लाभ यह हुआ कि गायकवाड वश, जो मरहठा सघ का सदस्य था, उससे पृथक हो गया और गुजरात में अंग्रेजो के पैर जम गये।

वारेन हेस्टिंगज की नीति —राघोवा को पेशवा बनाने में सहायता प्रदान कर अंग्रेजों ने पूना सरकार का अपना शत्रु बना लिया था। उनके गुप्तचर मार्स्टन का अब फिर पूना में घुस सकना असम्भव प्रतीत होता था ऐसी विकट परिस्थिति में वारेन हेस्टिंग्ज को एक तरकीब सूझी। उसने अपने एक विशेष दूत कर्नल अपटन को कलकत्ते से पूना भेजा और उसके द्वारा पूना दरबार को सूचना दी कि बम्बई कौंसिल ने राघोवा से जा सन्धि की है अथवा उसकी सहायता की है, वह बिना मेरी सम्मति के की गई है। इसलिए वह सन्धि अथवा सहायता सर्वथा अनुचित है। अंग्रेज सरकार ने राघोवा को न सहायता प्रदान करना चाहती है न मरहठा से लडना। अंग्रेज सरकार को बम्बई कौंसिल की इस अनुचित कार्यवाही पर बहुत दुःख है। साथ ही साथ उसने बम्बई गवर्नर को आज्ञा दी कि वह तुरन्त युद्ध बन्द कर दे। परन्तु वास्तव में हेस्टिंग्ज ने कर्नल अपटन को पूना दरबार तथा राघोवा दोनों को

बनाये रखने का आदेश दिया। और दोनों के ही नाम पत्र दिये, जिससे कि वह परिस्थिति के अनुसार लाभ उठा सकें।

वारेन हेस्टिग्ज ने अपटन को यह आज्ञा भी दी कि वह बम्बई सरकार की कार्यवाही पर दुःख प्रदर्शित करे तथा पूना दरबार के प्रति अत्यन्त सम्मान व श्रद्धा प्रकट कर सालसट और बेसीन को अपने अधिकार से न निकलने दे। परन्तु पूना दरबार में नाना फड़नवीस जैसे नीतिज्ञ मौजूद थे, वह सब बातों को भली भाँति समझते थे। इसलिए वह किसी प्रकार उक्त स्थानों को अंग्रेजों को देने के लिए तैयार न हुए।

हेस्टिग्ज ने जब यह देखा कि शान्ति तथा नीति-कुशलता से उद्देश्यपूर्ति की कोई आशा नहीं तो अपटन के पूना दरबार में रहते हुए ही युद्ध की तैयारी आरम्भ कर दी जिससे अचानक आक्रमण कर मरहठों को अपनी शर्तों को मानने के लिए बाध्य करे। कलकत्ता और मद्रास दोनों स्थानों पर सैनिक तैयारियाँ आरम्भ हो गईं हेस्टिग्ज ने मरहठा-संघ में भी फूट डालने का प्रयत्न किया। हैदरअली और निजाम से भी उसने पत्रव्यवहार प्रारम्भ कर दिया।

पुरन्धर की सन्धि:—नाना फड़नवीस को इन सब बातों की सूचना मिलती रही और कुछ सोच-समझकर १७७६ ई० में उसने पुरन्धर के स्थान पर पूना दरबार तथा कम्पनी में सन्धि कर ली। जिसके अनुसार अंग्रेजों ने वचन दिया कि हम फिर कभी राघोबा की सहायता न देंगे। बेसीन का किला पूना दरबार को लौटा देंगे और सदैव उससे मैत्रिक सम्बन्ध बनाये रखेंगे। सालसट भड़ौंच तथा उसका निकटवर्ती प्रदेश राघोबा को जागीर के रूप में दे दिया गया और कम्पनी का एक दूत अथवा वकील पूना दरबार में रहने लगा।

सन्धि की अवहेलना:—कम्पनी के डाइरेक्टरों को जब इस सन्धि की सूचना मिली तो उन्होंने तुरन्त गवर्नर जनरल को लिखा कि बेसीन जैसे महत्वपूर्ण स्थान को छोड़ना मूर्खता होगी और उसे आदेश दिया कि सन्धि को तोड़ कर युद्ध अथवा किसी नीति द्वारा इस टापू को अपने अधिकार से न निकलने दें, कैसी विचित्र बात थी कि सन्धि-पत्र की स्याही सूखने भी न पाई थी कि उसे तोड़ने का कुचक्र आरम्भ हो गया।

हेस्टिग्ज की सैनिक तैयारियाँ:—ज्यों ही कर्नल अपटन सन्धि करके कलकत्ता पहुँचा वारेन हेस्टिग्ज ने संचालकों की आज्ञापूर्ति के लिए प्रसिद्ध अंग्रेज राजदूत मास्टेन को पूना भेजा। उसने वहाँ जाकर पूना दरबार में फूट फैला दी। वह

फूट इतनी बढ गई कि नाना फडनवीस को कार्य से उदासीन हो पुरन्धर चला आना पडा। उसकी अनुपस्थिति से लाभ उठाकर मॉस्टन ने तुरन्त बम्बई कौंसिल को लिखा कि वह शीघ्रातिशीघ्र एक सेना राघोबा को पेशवा की गद्दी पर बैठाने के लिए पूना भेज दे। फलस्वरूप बम्बई में सैनिक तैयारियाँ हो गई । ज्यो ही वारेन हेस्टिंग्ज को इस स्थिति की सूचना मिली त्यो ही उसने एक विशाल सेना बगाल से पूना के लिए भेज दी, एक ओर मद्रास, बगाल और बम्बई में पूना पर आक्रमण करने के लिए सैन्य सगठन हो रहा था। दूसरी ओर मास्टन पूना दरबार में मन्त्रि-मण्डल के सदस्यों को प्रत्येक प्रकार यह विश्वास दिला रहा था कि अङ्गरेज पुरन्धर की सन्धि पर पूर्णतया अटल है। मास्टन का यह व्यवहार तथा कम्पनी की यह कपटपूर्ण नीति अमानुषिकता की चरम सीमा थी, परन्तु इसी बीच किसी प्रकार पूना दरबार को मार्स्टन की चाल का कुछ आभास मिल गया । परिणाम स्वरूप वह स्थिति पर विजय प्राप्त करने के लिए सिहर उठा। नाना फडनवीस को शीघ्र पुरन्धर से बुलाया गया। उसने शीघ्र ही पूना दरबार को एक सूत्र में सकलित कर दिया।

इधर वारेन हेस्टिंग्ज ने जो सेना पूना के लिए भेजी उसे भोंसला, होल्कर और सिन्धिया इत्यादि नरेशो के प्रदेशो से होकर जाना था । यह मरहठा सघ के सदस्य थे। उनसे अपने उद्देश्य को गुप्त रखने के लिए हेस्टिंग्ज ने उन्हे प्रगट किया कि कम्पनी के पश्चिमी तटवर्ती प्रदेश पर फ्रांसीसी आक्रमण होने वाला है, यह सेना उसकी रक्षा के लिए भेजी जा रही है। इसके अतिरिक्त उसने मूदाजो भोंसला तथा महादाजी सिन्धिया को प्रलोभन दे पेशवा-सघर्ष से तटस्थ रखना चाहा।

बम्बई सेना की पराजय तथा सन्धि:— दूसरी ओर बम्बई की सेना बगाल की सेना की बिना प्रतीक्षा किये ही राघोबा सहित पूना की ओर चल दी, और बिना किसी विशेष आपत्ति के पूना से १८ मील की दूरी पर ताले गाँव तक पहुँच गई। यहाँ सिन्धिया तथा होल्कर के नेतृत्व में एक विशाल मरहठा सेना ने उसे तीन ओर से घेर लिया। अब अग्रेजो को अपनी विकट स्थिति का अनुभव हुआ। वह इतने भयभीत हुए कि उन्हे तुरन्त पीछे हटने के अतिरिक्त और कोई चारा ही दिखाई न दिया। अपना गोला-बारूद तथा तोपें एक तालाब में फेंक वह भाग निकले। मरहठा सेना-पतियो ने एक ओर से आगे बढ उन्हे पीछे हटने से रोका। अब अग्रेजी सेनाय चारों ओर से घिर गई । फलस्वरूप एक घोर संग्राम हुआ, जिसमें अग्रेजी सेना पूर्णतया परास्त हुई। उसके तमाम अस्त्र छीन लिये गये। अब अग्रेजो ने दया की प्रार्थना की। मरहठो ने शरणागत शत्रु के साथ दया का बर्ताव करने की परिपाटी कायम रक्खी और दोनो पक्षो में सन्धि हो गई। जिसमें अग्रेजो ने वचन दिया कि राघोबा

को तुरन्त दरबार के हवाले कर दिया जावेगा। भड़ौच, सूरत आदि जितने मरहठों के प्रदेशों पर कम्पनी ने अपना अधिकार जमा रक्खा है वह तुरन्त वापिस कर दिये जावेंगे। जो सेना बंगाल से आ रही है उसे तुरन्त वापिस लौटने का सन्देश पूना दरबार के एक विशेष दूत द्वारा फौरन भेज दिया जावेगा और जब तक यह सब शर्तें पूरी न हो दो अङ्गरेज अफसर मरहठों के पास में बन्धक के रूप में रहेंगे।

कर्नल गोडार्ड की अवहेलना:—सन्धि-पत्र पर दोनों ओर से सेनापतियों के हस्ताक्षर हो गये। दो अङ्गरेज अफसर तथा राघोबा महादाजी सिन्धिया के सुपुर्द कर दिये गये और पूना के एक विशेष दूत को कर्नल गोडार्ड के नाम पत्र लिख कर दे दिया गया। परन्तु वारेन हेस्टिंग्ज को जब इस अपमानजनक हार की सूचना मिली तो उसने तुरन्त कर्नल गोडार्ड को लिखा कि वह सन्धि की कोई परवाह न करते हुए आगे बढ़ता रहे। दूसरी ओर उसने मरहठा सेनापति महादाजी सिन्धिया से गुप्त बातचीत प्रारम्भ कर दी। उसने महादाजी को यह लालच दिया कि वह उसे यूरोपियन कारीगरों तथा यूरोपियन अफसरों की सहायता से नये अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित ऐसी सगठित सेना तैयार करा देगा कि उसके द्वारा वह सम्पूर्ण भारतवर्ष पर विजय प्राप्त करने में सफल हो जायेगा। अदूरदर्शी सिन्धिया उसकी बातों में आ गया और अङ्गरेजो, राघोबा तथा सिन्धिया में गुप्त सन्धि हो गई जिसके अनुसार महादाजी को पूना के नाबालिग पेशवा का दीवान बनाने का वचन दिया गया। परिणाम-स्वरूप स्वार्थान्ध महादाजी ने दोनों अङ्गरेज बन्धकों तथा पेशवा को चुपके से छोड़ दिया। यद्यपि उसने पूना दरबार पर यही प्रगट किया कि वह चालाकी से निकल भागे हैं। इसी बीच गोडार्ड निरन्तर आगे बढ़ता हुआ गुजरात पहुँच गया।

गुजरात की लूट:—नाना फड़नवीस को महादाजी की गुप्त सन्धि का तो कुछ पता न चला परन्तु अङ्गरेजों का विश्वासघात तथा उनकी दुरंगी चालें उसे स्पष्ट दिखाई देने लगी। उसने तुरन्त मूदाजी भौंसला को बंगाल पर तथा महादाजी सिन्धिया को गुजरात में कर्नल गोडार्ड पर आक्रमण करने की आज्ञा दी, परन्तु भौंसला और सिन्धिया को वारेन हेस्टिंग्ज ने झूठी आशाओं के नशे में चूर कर रक्खा था। इसलिए इन दोनों ने अपने देश के साथ विश्वासघात कर आक्रमण का केवल दिखावा मात्र किया। गोडार्ड ने उधर गुजरात में पेशवा के प्रदेश पर धावे मारना तथा वहाँ की प्रजा को लूटना व नष्ट करना प्रारम्भ कर दिया। नाना फड़नवीस को जब महादाजी के विश्वासघात तथा प्रजा की इस लूट-मार का पता चला तो उसने होल्कर की एक सेना ले गुजरात भेजा, परन्तु वह अकेला गोडार्ड को परास्त न कर

सका, क्योंकि मरहठा संघ के तीन सदस्य अर्थात् गायकवाड, सिन्धिया और भोंसला उससे असहयोग कर रहे थे।

इसी बीच महादाजी ने गोडार्ड को गुप्त सन्धि की शर्तें पूरी करने को लिखा किन्तु अब अंग्रेजों का मतलब निकल चुका था। इसलिए गोडार्ड ने उस सन्धि को स्वीकार करने से मना कर दिया। इससे सिन्धिया को बहुत निराशा तथा दुख हुआ। इसी बीच जब उसकी शक्ति तोडने के लिए गोडार्ड ने एक दिन अचानक उसकी सेना पर आक्रमण कर दिया तो उसके आश्चर्य की सीमा न रही और उसे गुजरात से भागना पडा। अब गोडार्ड पूना पर आक्रमण की तैयारी करने लगा।

भारतीय एकीकरण का प्रयत्न :— मूदाजी भोंसला तथा महादाजी के विश्वासघात और होल्कर की असफलता को देख पूना के दीवान नाना फडनवीस को बहुत दुख हुआ। उसे दिखाई देने लगा कि धीरे-धीरे अङ्गरेज जाति समस्त भारत पर छा जायेगी। इसलिए उसने भारतवर्ष के मुख्य-मुख्य नरेशों तथा सम्राट् से इन विदेशी लोगों के विरुद्ध मोर्चा खोलने की प्रार्थना की और नाना निजाम तथा हैदरअली तीनों में यह तय पाया कि वह तीनों एक साथ अपने आस पास के अंग्रेजी प्रदेश पर आक्रमण करें। हैदरअली का युद्ध इसी योजना के परिणाम थे। परन्तु निजाम की दुर्बलता तथा मरहठा संघ के सदस्यों के विश्वासघात ने इसे फलीभूत न होने दिया।

गोडार्ड की पराजय :— जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है गोडार्ड गुजरात से सिन्धिया को निकाल कर पूना पर आक्रमण करने के लिए चल दिया किन्तु वह पूना के निकट भी न पहुँच पाया था कि १७८१ ई० में भोरघाट के स्थान पर उसे मरहठा सेना ने घेर लिया और उसे पराजित हो पीछे भागना पडा। इस हार ने अङ्गरेजों की कमर तोड दी। हैदरअली दूसरी ओर उन पर विजय पर विजय करता जा रहा था।

सालबाई की सन्धि :— वारेन हेस्टिंग्ज को अब विश्वास हो गया कि नाना फडनवीस के होते हुए उसके प्रयत्न सफल नहीं हो सकते। उसने लाचार होकर महादाजी सिन्धिया से फिर एक गुप्त सन्धि की और उसी के द्वारा नाना से सन्धि की बातचीत प्रारम्भ की और अनेक शपथें ले इस बात का विश्वास दिलाया कि जो सन्धि इस बार होगी वह उस पर अटल रहेंगे। कई महीने तक पत्र-व्यवहार चलता रहा। मई सन् १७८२ ई० को पूना दरबार तथा कम्पनी के बीच सन्धि की शर्तें तै हुईं कि पेशवा के जितने प्रदेश पर अंगरेजों ने अधिकार कर लिया है वह सब वापिस दे दिया जावेगा। दूसरे, गायकवाड तथा गुजरात की ठीक वही स्थिति होगी जो

अंगरेजी के हस्तक्षेप से पहले थी। तीसरे, राघोबा को २५००० रुपया मासिक पेंशन देकर निश्चित स्थान पर रहने की आज्ञा दी जावेगी।

सन्धि की शर्तें तै हो गई, परन्तु नाना फड़नवीस ने सात महीने तक उस पर हस्ताक्षर न किये; क्योंकि उसका मित्र हैदरअली अभी अंग्रेजों से लड़ रहा था। इसकी प्रत्येक विजय देशप्रेमी नाना फड़नवीस के हृदय में हर्ष व उल्लास का संचार कर रही थी। उसके युद्ध स्थल में रहते हुए नाना का अंग्रेजों से सन्धि करना विश्वासघात होता, क्योंकि उसके संकेत पर ही हैदरअली अंग्रेजों से युद्ध कर रहा था, परन्तु दिसम्बर के महीने में हैदरअली की मृत्यु हो गई। इससे नाना की अंग्रेजों को निकाल बाहर करने की आशायें टूट गई। लाचार हो उसने सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये। इस प्रकार प्रथम मरहठा युद्ध-समाप्त हुआ।

हैदरअली और नाना फड़नवीस :—नाना फड़नवीस अत्यन्त दूरदर्शी राजनीतिज्ञ था वह अंगरेजों की चालों और उनसे होने वाली देश की हानियों को अच्छी तरह समझता था। वह हैदरअली के देश-प्रेम तथा वीरता को अच्छी तरह समझता था और उसे महत्वपूर्ण स्थान देता था। इसलिए १७८० ई० में उसने अपना एक राजदूत गणेशराव हैदरअली से एक खास समझौता करने के लिए भेजा जिसके अनुसार हैदरअली से वसूल होने वाली चौथ की रकम बहुत कम कर दी गई, और हैदरअली ने वचन दिया कि अंगरेजों को भारतवर्ष से निकालने में वह मरहठों की पूरी सहायता करेगा।

अंगरेजों को जब इस सन्धि का पता लगा तो उन्होंने एक के बाद दूसरा राजदूत सन्धि के लिए उसकी सेवा में भेजा। हैदरअली ने अंग्रेज दूत 'ग्रे' को अंग्रेजों की दगाबाजी पर लानत मलामत की।

द्वितीय मैसूर युद्ध :—१७६६ ई० में अंगरेजों के साथ-साथ कर्नाटक के नवाब मुहम्मदअली ने हैदरअली के साथ सन्धि की थी, जिसके अनुसार यह तै हुआ था कि कर्नाटक का नवाब मैसूर का सामन्त समझा जावेगा और वह ६ लाख रुपया वार्षिक हैदरअली को खिराज स्वरूप देगा। कर्नाटक के मामले में अंग्रेज अत्यन्त हस्तक्षेप करते रहते थे, जिससे वहाँ की प्रजा बहुत दुखी तथा असन्तुष्ट थी। अब अंगरेजों के बहकाने से कर्नाटक के नवाब मुहम्मदअली ने सन्धि की अवहेलना प्रारम्भ कर दी। इसलिए १७८० ई० में हैदरअली अपनी सेनासहित कर्नाटक पर चढ़ आया। अंगरेजी सेनायें कर्नाटक की रक्षा के लिए पहले ही वहाँ पहुँची थी और जगह-जगह पर मोर्चा लगाने को तैयार थी। हैदरअली ने अपनी सेना को कई

भागो में विभक्त किया और एक भाग अपने अधीन, दूसरा अपने पुत्र टीपू के, तीसरा अपने छोटे बेटे करीम के, शेष अन्य योग्य हिन्दू तथा मुसलमान सेनापतियों के अधीन कर्नाटक के अनेक किले जीतने के लिए प्रत्येक दिशा में भेजे। कर्नाटक की क्षुब्ध जनता ने प्रत्येक जगह उनका स्वागत किया। नवाब तथा अग्रेजो की सेनायें प्रत्येक स्थान पर परास्त हुई। स्वय हैदरअली की सेना बढते-बढते कर्नाटक की राजधानी अरकाट के निकट जा पहुँची और नवाब ने भागकर मद्रास में शरण ली। दूसरी ओर हैदरअली की सेना का एक भाग मद्रास के निकट जा पहुँचा। इससे अग्रेज बहुत चिन्तित हुए। तुरन्त दो बडी सेनायें हैदरअली को परास्त करने के लिए तैयार हो गई। इनमें से एक जनरल मनरो के अधीन मद्रास से, दूसरी कर्नल बैली की अध्यक्षता में गण्टूर से कर्नाटक की रक्षा के लिए चली।

हैदरअली ने सबसे पहले टीपू को कर्नल बैली का सामना करने के लिए भेजा और थोडे समय पश्चात् स्वय भी उसकी सहायता के लिए चल दिया। मार्ग में १० सितम्बर १७८० ई० को पोलीलोर के स्थान पर घोर युद्ध हुआ। अग्रेजी सेना पूर्णतया परास्त हुई। हजारो भारतीय सैनिक तथा सात सौ अगरेज मारे गये और स्वय कर्नल बैली गिरफ्तार हुआ।

जनरल मनरो इस समय कांजीवरम् में था। विजयी हैदरअली उसकी ओर बढा, परन्तु बैली की पराजय का हाल सुनकर इसका तथा इसकी सेना का साहस टूट गया और वह अपनी समस्त युद्ध सामग्री एक तालाब में फेंक मद्रास भाग गया। हैदरअली ने इस प्रदेश पर अधिकार कर लिया, और उसे सुव्यवस्था प्रदान कर वह अर्काट की ओर बढा। तीन महीने तक अर्काट का घेरा जारी रहा। अन्त में वह हैदर के अधिकार में आ गया।

बंगाल की सेना का आगमन :—जब कर्नरल बैली के सर्वनाश, मनरो की भगदड और हैदरअली की विजय की सूचना बगाल पहुँची तो वारेन हेस्टिंग्ज घबरा उठा। बगाल इस समय भयकर दुर्भिक्ष में जकडा पडा था, फिर भी उसने १५ लाख रुपये एकत्रित कर सर आयरकूट के अधीन एक बहुत बडी सेना बगाल से रवाना की जो नवम्बर सन् १७८१ ई० में मद्रास पहुँची। तीन महीने तक सर आयरकूट मद्रास में ही तैयारी करता रहा। इसके बाद वह हैदरअली का सामना करने के लिए आगे बढा। यद्यपि पोर्टनोवो तथा शोलिंगगढ में उसे सफलता प्राप्त हुई। दोनो जगह आयरकूट ने अत्यन्त नुकसान उठाया और उसे मद्रास लौटना पड़ा। अब बगाल से और सैनिक सहायता आ पहुँची। परन्तु इसी बीच में फ्रांसीसियो तथा

अंग्रेजों में भी युद्ध प्रारम्भ हो गया। इससे हैदर की स्थिति और भी दृढ़ हो गई। 'आरनी' में फिर युद्ध हुआ।

आयरकूट इस बार बुरी तरह परास्त हुआ और उसे अपनी जान बचाकर बंगाल लौट जाना पड़ा।

अब ऐसा प्रतीत होने लगा कि हैदरअली दक्षिण भारत से अंग्रेजों को निकाल बाहर कर देगा। नाना फड़नवीस इन सब घटनाओं को बड़ी उत्सुकता से देख रहा था और इसलिए सालबाई की सन्धि पर हस्ताक्षर करने में टालमटोल कर रहा था कि यदि हैदरअली दक्षिण में पूर्णतया सफल हो जावे तो वह मरहठों को सघबद्ध कर उन्हें उत्तरी भारत तथा बंगाल से निकाल बाहर करने का सफल प्रयास करे। ठीक इसी समय जब भारत के अन्दर स्वतन्त्रता और परतन्त्रता के इस द्वंद-युद्ध को एशिया और योरप की समस्त जाग्रत शक्तियाँ अत्यन्त उत्सुकता से देख रही थी, जबकि हैदरअली का नाम सुनकर भारत के अंग्रेज चौंक पड़ते थे। ६ दिसम्बर सन् १७८२ ई० को अर्काट के किले में हैदरअली की मृत्यु हो गई। आरनी की विजय के बाद उसकी कमर में एक फोड़ा निकला जो घातक सिद्ध हुआ। नाना फड़नवीस की आशाओं पर पानी फिर गया और भारतीय स्वतन्त्रता की स्वर्ण-कल्पना हवा हो गई। लाचार होकर उसने सालबाई की सधि पर दस्तखत कर दिये। परन्तु हैदरअली की मृत्यु अंग्रेजो के लिए जीवन-सन्देश थी।

युद्ध का अन्त —हैदर की मृत्यु के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र टीपू सुल्ता गद्दी पर बैठा। मैसूर में अपनी सत्ता को दृढ़ बनाने के लिए उसे काफी ध्यान दे ग था। फिर भी उसने बड़ी सफलता से युद्ध जारी रक्खा। की फ

मंगलौर की संधि:—अब अंग्रेजों तथा टीपू दोनों युद्ध बन्द करदेना च लिए उत्सुक थे। इसलिए सन् १७८३ ई० में जब अंग्रेजों ने टीपू के त आलो सन्धि का प्रस्ताव रखा तब उसने उसे स्वीकार कर लिया, और मार्च सन १- को मंगलौर के स्थान पर सन्धि हो गई, जिसके अनुसार अंग्रेजों ने कि हम फिर कभी मैसूर के मामले में हस्तक्षेप न करेंगे। टीपू और र ज्किारियों के साथ सदा मित्रता का व्यवहार रखेंगे और उनके मत्र लिए इग्लैंड सदा उन्हें सहायता देने को तैयार रहेंगे। इस वायदे पर टीपू ने सहूमा ? प्रदेश अंग्रेजो को लौटा दिया।

हैदरअली का चरित्र:—हैदरअली ने एक साधारण घराने के रहे। था। एक साधारण सिपाही से उन्नति करते-करते वह एक विशाल साम्राज्य हुआ ?

अध्याय १९

मैसूर-विजय का सूत्रपात

लार्ड कार्नवालिस तथा सर जान शोर
(१७८४-९९ ई०)

सर जान मैकफर्सन :—वारेन हेस्टिग्ज के चले जाने के बाद कलकत्ता कौंसिल का प्रमुख सदस्य सर जान मैकफर्सन कुछ दिनो के लिए गवर्नर जनरल नियुक्त हुआ। उसके समय कोई विशेष घटना न हुई, किन्तु उसने भी क्लाइव तथा हेस्टिग्ज की छल-कपट, लूट-खसोट तथा रिश्वत की नीति का अनुकरण किया। भारत में अंग्रेजी राज्य के निर्माणकर्त्ता क्लाइव तथा हेस्टिग्ज की भांति मैकफर्सन का चरित्र रिश्वतों तथा चालाकियो की एक रामकहानी है। भारत से लौटने पर इंग्लैंड में रिश्वत ही के अभियोग में उसे तीन हजार पौंड जुर्माना का दण्ड मिला। उक्त पुरुषो के आचरण पुकार-पुकार कर कह रहे है कि भारत में अंग्रेजी राज्य की नीव किस विचित्र सामग्री पर खडी की गई थी। ससार के इतिहास में इस प्रकार के थोडे ही उदाहरण मिलेंगे।

लार्ड कार्नवालिस का आगमन :—वारेन हैस्टिग्ज के बाद एक वर्ष आठ महीने तक मैकफर्सन ने शासन किया। इसके बाद सितम्बर सन् १७८६ ई० में लार्ड कार्नवालिस भारत का स्थायी गवर्नर जनरल होकर आया। कार्नवालिस एक परिश्रमी तथा समझदार मनुष्य था। प्रबन्धक के साथ-साथ वह एक अनुभवी सेनाध्यक्ष भी था। वह आयरलैंड के उच्चवश में से था और इगलैंड के बडे-बडे आदमियों पर उसका प्रभाव था। इगलैंड का प्रधानमन्त्री पिट उसे बहुत चाहता था। बोर्ड आफ कट्रोल के प्रधान से उसकी मैत्री थी। इन कारणो से उसे कई महत्वपूर्ण विशेषाधिकार प्राप्त हुए। कौंसिल के सभापति की दृष्टि से उसे एक विशेष वोट देने का अधिकार दिया गया। विशेष परिस्थिति में उसे कौंसिल की सम्मति के विरुद्ध कार्य करने का अधिकार दे दिया गया। वह भारत का प्रधान सेनापति भी बना दिया गया। इस प्रकार विशेष अधिकारो से सुसज्जित कार्नवालिस भारत में आया।

तृतीय मैसूर युद्ध के कारण :—कार्नवालिस के समय की सबसे महत्वपूर्ण घटना मैसूर का तीसरा युद्ध है। सन् १७८४ ई० में कम्पनी और हैदरअली के पुत्र तथा उत्तराधिकारी टीपू से सन्धि हुई, जिसमें कम्पनी ने टीपू सुल्तान को मैसूर का अधिपति स्वीकार कर लिया था और वचन दिया था कि हम कभी मैसूर के मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे और टीपू के साथ सदा मित्रता रक्खेंगे। परन्तु हैदरअली के हाथों में अंग्रेजो को जो लज्जाजनक हार पर हार उठानी पड़ी, वह उनके हृदय में काँटे की तरह खटक रही थी। सैन्य सगठन भी जो वह कुशल फ्रांसीसी अफसरो के नेतृत्व में कर रहा था, अंग्रेजो को सह्य न था। उससे अंग्रेजो को इतना डर लगता था कि अंग्रेज माताएँ टीपू का नाम लेकर अपने बच्चो को डरा दिया करती थी, इसलिए अंग्रेज टीपू से युद्ध करने के इच्छुक थे, उन्होने सैनिक तैयारियाँ आरम्भ कर दी। स्थिति को दृढ बनाने के लिए निजाम ने कार्नवालिस से पत्र-व्यवहार प्रारम्भ कर दिया और उसे वचन दिया कि यदि वह उनकी सहायता करेगा तो वह कर्नाटक का बालाघाट प्रान्त, जो उस समय टीपू के अधिकार में था, उसे दे देंगे। कुछ सरहद्दी प्रदेशो के विषय में टीपू तथा अंग्रेजो में पहले ही कटुता आ चुकी थी। इसलिए टीपू के विरुद्ध निजाम में तथा अंग्रेजो में सन्धि हो गई, जिसके अनुसार एक दूसरे ने एक दूसरे के शत्रु के विरुद्ध सहायता का वचन दिया। लार्ड कार्नवालिस ने मरहठो को भी कुछ समय के लिए अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न किया, क्योकि उनका भी टीपू से सीमावर्ती प्रदेश के बारे में झगडा था। जब टीपू को कार्नवालिस की इन कूटनीतिक चालो का पता चला तो उसने मरहठो से सफाई करनी चाही, परन्तु कार्नवालिस ने पूना के अंग्रेज रेजीडेण्ट को हर प्रकार इन प्रयत्नो को विफल बनाने के लिए लिखा। परिणामस्वरूप टीपू सफल न हो सका, और उसके बदले अंग्रेजो तथा पूना दरबार में टीपू के विरुद्ध सन्धि हो गई, जिसके अनुसार तै हुआ कि टीपू से जीता हुआ प्रदेश कम्पनी मरहठो तथा निजाम में बराबर बाँटा जायगा। पूना दरबार का इस प्रकार एक देशी नरेश के विरुद्ध अंग्रेजों से मिलना करना, अत्यन्त अवांछनीय था। नहीं कह सकते कि नाना फडनवीस उस समय पूना दरबार में मौजूद था, या नही और यदि था, तो सम्भव है कि उसका प्रभाव कम हो गया हो। जहाँ तक निजाम का सम्बन्ध है उसका आचरण सदैव ही विश्वासघातक रहता था।

युद्ध का बहाना :—जब तमाम तैयारियाँ हो गई तो कार्नवालिस को केवल एक बहाना ढूँडना बाकी रह गया, जो शीघ्र ही मिल गया। ट्रावनकोर का राजा अंग्रेजो का मित्र था और उसमें और टीपू में कुछ दिन से झगड़ा चला आ

रहा था। यह झगडा पत्र-व्यवहार द्वारा शान्तिपूर्वक तै हो सकता था, परन्तु कार्नवालिस जो उपरोक्त तैयारी के बाद किसी बहाने मात्र से ही टीपू पर आक्रमण करने को तैयार बैठा था, यह न चाहता था। उसने इस झगडे की आड ले ट्रावनकोर के राजा की सहायता पर युद्ध छेड दिया। परन्तु जिस ट्रावनकोर के नाम पर युद्ध छिडा था, उसका फिर सन्धि में कही जिक्र भी न आया।

युद्ध:—सन् १७६० ई० में एक सेना मद्रास से जनरल 'मीडोज' के नेतृत्व में मैसूर पर आक्रमण करने के लिए भेजी गई। परन्तु उसे पूर्णतया परास्त होकर नाकाम वापस लौटना पडा। 'मीडोज' की इस अपमानजनक हार को सुनकर कार्नवालिस स्वय एक सेना ले मैसूर की ओर बढा। निजाम और मरहठो की सेनाएँ भी अब मैसूर पहुँच चुकी थी। धन का लोभ देकर कार्नवालिस ने टीपू के कुछ योरुपियन अफसरो को भी अपनी ओर तोड लिया। एक साथ तीनो मोर्चों पर युद्ध-सचालन तथा अपने ही सेनापतियो में से कुछ शत्रु के साथ मिल जाने से टीपू को पगु कर दिया। फल यह हुआ कि टीपू को हार खानी पडी। बगलौर पर अग्रेजो का अधिकार हो गया। बगलौर विजय के बाद कार्नवालिस ने मैसूर की राजधानी श्रीरगमपट्टम पर चढाई की। यह देख कार्नवालिस के पास सन्धि प्रस्ताव भेजा; परन्तु कार्नवालिस ने उसे अस्वीकार कर दिया। लूट के लोभ तथा यश की इच्छा ने उसे अन्धा कर रक्खा था। लाचार हो टीपू को युद्ध जारी रखना पडा। कभी अग्रेजो की तो कभी टीपू की विजय होती रही। इसी बीच निजाम तथा मरहठा सेनाएँ भी मैसूर के बहुत-से भाग पर अधिकार करने में सफल हुई और वे श्रीरग-पट्टम में अग्रेजी सेना से जा मिली। यह देख टीपू बहुत निराश हो गया। उसने फिर सन्धि प्रस्ताव भेजा। कार्नवालिस अब भी सन्धि के लिए तैयार न था, परन्तु जब नाना फडनवीस ने उस पर बहुत जोर दिया तो उसे सन्धि करनी पडी, क्योंकि वह मरहठो की इच्छा के विरोध का साहस न कर सकता था।

श्रीरंगपट्टम की सन्धि:—२३ फरवरी सन् १७६८ ई० को दोनो दलो के बीच सन्धि हो गई, जिसके अनुसार टीपू के राज्य का आधा भाग कम्पनी, निजाम तथा मरहठो को मिल गया, जो उन्होंने बराबर-बराबर बाँट लिया। इसके अतिरिक्त युद्ध का खर्चा पूरा करने के लिए उसने तीन करोड तीस हजार रुपया दण्डस्वरूप देने का वचन दिया, जिसमें डेढ करोड रुपया तो उसने उसी समय दे दिया और शेष रुपयो की जमानत में उसने अपने दो प्राणप्रिय पुत्रो को बन्धक के रूप में कार्नवालिस के हवाले कर दिया। इस प्रकार मैसूर का तृतीय युद्ध समाप्त हुआ। टीपू को इससे

इतना दुःख हुआ कि उसने सर आराम पर लात मार दी और अपने अपमान का बदला लेने की शपथ ले ली।

कार्नवालिस तथा अवध:—जैसा कि वारेन हेस्टिंग्ज के समय वर्णन किया जा चुका है, कम्पनी की एक विशाल सेना, जिसके सब अफसर अङ्गरेज थे, अवध में छोड दीगई थी। इसका सब खर्च, जो लगभग पचास लाख रुपया वार्षिक था, नवाब को देना पडता था। हेस्टिंग्ज ने यह वचन दिया कि जब इस सेना की आवश्यकता न रहेगी, तब यह सेना वापस बुला ली जायगी। नवाब ने इस सेना को वापस बुलाने के लिए कार्नवालिस को लिखा, परन्तु कार्नवालिस ने सेना हटाने से साफ इन्कार कर दिया। इस प्रकार साम्राज्यलिप्सा के शिकार ब्रिटिश गवर्नर जनरल नवाब के ही रुपये से उसे निरन्तर पतनावस्था की ओर ले जाते रहे; क्योंकि इसी सेना के बल पर किसी-न-किसी दिन उसे राज्य से पृथक कर अवध ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाया जाने को था।

कार्नवालिस के अन्य सुधार—कार्नवालिस ने भारत आकर देखा कि कम्पनी के सब पदाधिकारी प्रायः रिश्वतखोर हैं। उनके इस आचरण की विवेचना कर वह इस परिणाम पर पहुँचा कि वेतन की कमी रिश्वत का मुख्य कारण है। इसलिए उसने बोर्ड आफ कण्ट्रोल तथा सचालको से अनुरोध कर कम्पनी के नौकरो का वेतन बढवा दिया। कार्नवालिस प्रत्येक महत्वपूर्ण पद पर अङ्गरेजो के नियुक्त करने के पक्ष में था। उसने नियम बना दिया कि छोटी-छोटी नौकरियों के अतिरिक्त कोई बडी नौकरी किसी भारतीय को न दी जाय। इस प्रकार भारतीय पूँजी के बल पर उसने अनेकों अंग्रेजो के शानदार जीवन की व्यवस्था की।

उसने कलक्टरो के पास केवल मालगुजारी का काम रहने दिया। दीवानी मुकदमे तै करने के लिए उसने प्रत्येक जिले में एक अङ्गरेज जज नियत किया। दीवानी की अपीलें सुनने के लिए उसने पटना, ढाका, मुर्शिदाबाद और कलकत्ते में अलग-अलग न्यायालय स्थापित किये। इन्ही के जज अपने हल्के में घूम कर फौजदारी की अपीलें भी सुनते थे। इस प्रकार घूमने के कारण यह न्यायालय सरकिट न्यायालय कहलाते थे। उक्त दोनो प्रकार के न्यायालयो के फौजदारी व दीवानी मुकदमो की अपीलें कलकत्ता स्थित सदर दीवानी तथा सदर निजामत अदालत में सुनी जाती थी। कार्नवालिस के समय से इन दोनो का प्रधान गवर्नर जनरल होने लगा। कार्नवालिस ने सब कानूनो को सकलित करके एक कोड में एकत्रित कराया, जो कार्नवालिस कोड के नाम से प्रसिद्ध है। न्यायालयो में वकीलो की

व्यवस्था की गई जो पक्ष-विपक्ष के लिए कानून की व्याख्या करते थे । इस प्रकार आधुनिक न्याय-प्रणाली की रूप-रेखा तैयार हुई । परन्तु इससे ग्राम-पचायत व्यवस्था का, जिनके द्वारा सीधा सच्चा और सस्ता न्याय प्राप्त होता था, सर्वथ नाश हो गया । प्राचीन-काल से भारतवर्ष में पचायत मर्यादा थी । पचायत में ग्राम के प्रभावशाली मनुष्य बिना पैसे ईमानदारी से स्थानीय मामलों का निबटारा करते थे । इन पचायतो के कार्य की प्रशसा सामयिक यूरोपियन यात्रियों ने भी की है पाँच पच तहाँ परमेश्वर तथा अन्य भारतीय लोकोक्तियाँ इनकी ईमानदारी के प्रतीक हैं । कार्नवालिस ने अपनी न्याय-व्यवस्था में इन्हे कोई स्थान न दे इन पर वज्रपात किया, अत. वतमान न्यायप्रणाली, जिसमें छोटे-छोटे मामलो को अत्यन्त लम्बा तथा खर्चीला कर दिया जाता है, प्रारम्भ हो गई और इसने भोले भारतीयों की आर्थिक कमर तोड दी । वर्तमान सरकार का पचायत-बिल उस प्राचीन प्रणाली को पुन: जीवित करने का प्रयत्न अर्थ तथा न्याय दोनो की दृष्टि से अत्यन्त श्रेयस्कर है ।

इस्तमरारी बन्दोबस्त :—वारेन हेस्टिंग्ज का भूमि प्रबन्ध स्थायी न था। उसने प्रारम्भ में वार्षिक तथा बाद में पच-वर्षीय बन्दोबस्त का आयोजन किया था। पाँच वर्ष के बाद एक आदमी को पृथक् करके उसकी भूमि दूसरे को दी जा सकती थी । इस नीति का एक बहुत बडा दुष्परिणाम यह हुआ कि किसानो ने भूमि की उन्नति व उसको उपजाऊ बनाने के प्रयत्न बन्द कर दिये । क्योकि यह वह तब ही कर सकते थे जबकि उन्हे विश्वास हो कि आगामी वर्षों में वही उस भूमि से लाभ उठायेंगे। पचवर्षीय बन्दोबस्त-योजना के अनुसार पाँच वर्ष बाद यह उनसे छीनकर दूसरो को दी जा सकती थी । दूसरा एक बहुत बडा परिणाम यह हुआ कि जो कम्पनी के कर्मचारियों को रिश्वत दे देता, उसे ही भूमि दे दी जाती । धीरे धीरे यह दोष इस सीमा तक पहुँच गया कि कम्पनी के डाइरेक्टरो ने कार्नवालिस को एक चिट्ठी में लिखा कि भूमि दस वर्ष के लिए जमीदारो को एक बार दे दी जाये और यदि इस प्रकार की व्यवस्था हितकर सिद्ध हो तो इस काल के पश्चात् उन्हें भूमि स्थायी रूप से दे दी जावे । लार्ड कार्नवालिस ने इस प्रश्न का अध्ययन किया और प्रथम बार ही भूमि स्थायी रूप से जमीदारो को देनी चाही । कुछ वाद विवाद के पश्चात् उसका यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ, जिसके अनुसार उसने बगाल में स्थायी बन्दोबस्त कर जमीदारो को स्थायी रूप से भूमि दे दी और मालगुजारी की दर भी सदा के लिए निश्चित कर दी गई ।

गुण :—एक स्थायी भूमिकर, जो एक बार नियुक्त कर दिया जाता है,

भूमि की उन्नति को ओर ले जाता है। जमीदार या कृषक जानता है कि यदि भूमि में कोई उन्नति कर ली जाती है तो वह उसका स्वयं का लाभ होगा किसी अन्य का नही।

भूमि को उपजाऊ बनाने का प्रयत्न उपज को वृद्धि की ओर ले जाता है। अधिक उपज देश को खाद्य-सकट से मुक्त कर अकाल इत्यादि से बचने का साधन पैदा करती है। स्थायी बन्दोबस्त के पश्चात् बंगाल में किसी दुर्भिक्ष का न होना इसका जागृत प्रमाण है। वर्तमान दुर्भिक्ष, जो बंगाल में पड़ा, उसका कारण उपज की कमी नही बल्कि चोर-बाजार और विदेशी सरकार की अन्न बाहर भेजने व उसे एकत्रित करने की नीति थी।

भूमिकर स्थायी होने का अर्थ यह हुआ कि अधिक उपज का लाभ किसान का लाभ हो गया। इस सचित-लाभ को उन्होने अन्य उद्योग-धन्धो में लगाना प्रारम्भ किया, जिससे आयकर की शक्ल में सरकार की आय में वृद्धि हो गई। इस लाभ का एक परिणाम यह हुआ कि प्रजा का रहन-सहन, शिक्षा इत्यादि उन्नति कर गई।

दोष :—इस्तमरारी बन्दोबस्त के दोषों पर भी दृष्टि डालना आवश्यक है। हर एक व्यक्ति जानता है कि कृषि-साधनो की उन्नति अनिवार्य है। सिंचाई के साधनों की वृद्धि व कृषि-सम्बन्धी अन्वेषण से जो कुछ उन्नति हो और फलस्वरूप जो उससे लाभ हो वह इस प्रकार के अनुसार कृषक या जमीदार का हो जाता है। यह सिद्धांत बिलकुल गलत है; गवर्नमेंट का उसमें भाग होना आवश्यक है। इसलिए उपज की वृद्धि के साथ-साथ भूमिकर में परिवर्तन उचित है। स्थायी बन्दोबस्त में ऐसा नही होता।

इसका उद्देश्य समस्त बगाल में अंग्रेज जमीदार बनाना था; प्रथम प्रयत्न में बन्दोबस्त के रचयिता ऐसा करने में सफल अवश्य हुए परन्तु इन अंग्रेज जमीदारों ने भूमि को उन्नत करने का कोई प्रयत्न न किया बल्कि आहिस्ता आहिस्ता उसे धनिक-वर्ग को बेच दिया। इस प्रकार भूमि प्राचीन कृषकों के जमींदारों के हाथ से निकलकर नये साहूकार जमीदारो के हाथ में आ गई। इस प्रकार अंग्रेजों को जमीदार बनाने का प्रयत्न प्राचीन कृषक वर्ग के प्रति अन्याय करके भी निष्फल रहा।

जमीदार अधिकतर कलकत्ता या किसी नगर के धनिक व्यापारी होने का एक बहुत बुरा परिणाम यह हुआ कि उनके कर्मचारी, जो गांव में जमीदारी का प्रबन्ध करने के लिए छोड़े जाते, मनमानी करने लगे। रिश्वत व बेगार लेना आरम्भ

हो गया। मध्यस्थ-वर्ग की उत्पत्ति ने बंगाल में निर्धन कृषक-वर्ग को जन्म दिया जो तमाम वर्ष खून पसीना एक करके अन्न पैदा करे, और उसके पुरस्कार-स्वरूप पायें भुखमरी, वस्त्राभाव अन्न-संकट।

जमींदार-प्रथा ने, जो स्वयं एक बहुत बड़ा शाप थी, स्थायी बन्दोबस्त द्वारा जमींदार को निरंकुशता प्रदान कर दी जिससे वह बेखटके बेचारे भोले किसान का अधिकाधिक शोषण कर सके।

कम्पनी का नया चार्टर :—सन् १७९३ ई० में कम्पनी को नया चार्टर मिला परन्तु इस बार पार्लियामेंट ने कम्पनी के व्यापार पर कुछ प्रतिबन्ध लगा दिया और आदेश दिया कि उसे अन्य व्यापारियों को प्रतिवर्ष ३००० टन व्यापार करने की आज्ञा देनी होगी। कम्पनी का भारत में ईसाई-धर्म प्रचार निषेध कर दिया गया और उसे आदेश दिया गया कि वह युद्ध आदि से दूर रहकर शान्ति-पूर्वक व्यापार करे।

कार्नवालिस की वापसी :—सन् १७९३ में लार्ड कार्नवालिस वापस बुला लिया गया और उसकी जगह सर जानशोर भारत का गवर्नर जनरल हुआ।

सर जानशोर

निजाम और मरहठे:—लार्ड कार्नवालिस के चले जाने के बाद १७९३ ई० में सर जानशोर गवर्नर जनरल होकर आया। उसने अपने शासन काल में हस्तक्षेप न करने की नीति का अनुसरण किया। निजाम और मरहठा युद्ध में उसने इस नीति का पूर्ण परिचय दिया।

युद्ध का कारण :—मुगल सम्राट् की आज्ञानुसार निजाम मरहठा को सालाना चौथ दिया करता था परन्तु कुछ दिन से अंग्रेजों की मित्रता से उन्मत्त निजाम ने चौथ अदा न की। जब पेशवा माधोरावनारायण का दूत उससे हिसाब करने के लिए हैदराबाद पहुँचा तो उसने उस दूत का बड़ा निरादर किया। फलस्वरूप युद्ध अनिवार्य हो गया। अब महादाजी सिंधिया का देहान्त हो चुका था उसकी जगह उसका वीर पौत्र दौलतराव सिंधिया गद्दी पर बैठ चुका था। निजाम के दुर्व्यवहार की सूचना पर एक मरहठा सेना उसके नेतृत्व में निजाम पर आक्रमण करने के लिए चल पड़ी। निजाम ने १७९० ई० की सन्धि के अनुसार सर जानशोर से सहायता की प्रार्थना की, परन्तु उसने सहायता देने से मना कर दिया, यहाँ तक कि कम्पनी की उस सबसीडियरी सेना ने भी जो निजाम के अधिकृत प्रदेश में

निजाम के खर्च पर रक्खी हुई थी, उसकी सहायता करने से इन्कार कर दिया। इस पर निजाम को बड़ा आश्चर्य हुआ। परिणाम यह हुआ कि मरहठों ने निजाम को १७६५ ई० में कुर्दला के स्थान पर परास्त किया और उसे मरहठों की सब शर्तों को स्वीकार करना पड़ा।

निजाम का क्षोभ—परन्तु सर जानशोर की इस नीति से निजाम अंगरेजों के विरुद्ध हो गया। उसने उसे लिखा कि कम्पनी की सेना उसके प्रदेश से हटा ली जाय और साथ ही साथ एक फ्रांसीसी अफसर से अपनी नई सेना तैयार करानी आरम्भ कर दी। सर जानशोर ने इसका विरोध किया परन्तु निजाम ने सैन्य संगठन जारी रक्खा। इस पर सर जानशोर ने कम्पनी की सहायक सेना उसके सीमान्त प्रदेश से हटाने से मना कर दिया। अब हैदराबाद के अंगरेज रेजीडेण्ट ने निजाम के पुत्र आलीजाह को उसके विरुद्ध भड़का दिया। विद्रोह शान्त कर दिया गया परन्तु अंगरेजों की कूटनीति से वह अत्यन्त क्षुब्ध हो उठा।

सर जानशोर तथा रुहेलखण्ड—सन् १७६४ ई० में रुहेलखंड के नवाब फैजुल्ला की मृत्यु हो गई। उसके बाद उसका छोटा बेटा गुलाम मुहम्मद अपने बड़े भाई अलीखाँ का वध कर गद्दी पर बैठा। सर जानशोर ने इस पर आपत्ति की। एक अंगरेजी सेना रुहेलखण्ड भेजी गई। रुहेले हार गये। फैजुल्ला के खानदान से रियासत छीनकर एक पिछले नवाब मुहम्मदअली के वंशज को दे दी गई।

सर जानशोर और अवध—सन् १७६७ ई० में अवध के नवाब आसफ-उद्दौला का देहान्त हो गया। उसकी जगह उसका बेटा वजीरअली गद्दी पर बैठा परन्तु सर जानशोर ने आसफउद्दौला के एक भाई सआदतअली को गद्दी का अधिकारी ठहराया और उससे सौदा कर अवध का नवाब बना दिया।

सर जानशोर की वापसी—सन् १७६८ ई० में सर जानशोर इंग्लैंड लौट गया और उसकी जगह वेलेजली गवर्नर जनरल होकर भारत आया।

प्रश्न

१. तृतीय मैसूर युद्ध के क्या कारण थे—उस युद्ध का क्या परिणाम हुआ?
२. कार्नवालिस के सुधारों का वर्णन करो।
३. इस्तमरारी बन्दोबस्त क्या था उसके गुण और दोष बताओ।

अध्याय २०

साम्राज्य वृद्धि का प्रथम युग

लार्ड वेलेजली

(१७६८—१८०५ ई०)

लार्ड वेलेजली के उद्देश्य —लार्ड वेलेजली के आने के साथ भारतीय राज्यों के अपहरण का वह अध्याय प्रारम्भ होता है जो लार्ड डलहौजी के समय समस्त भारत को अ गरेजी-राज्य में सम्मिलित करने के बाद समाप्त हुआ। लार्ड वेलेजली के एक पत्र द्वारा, जो उसने कलकत्ते से अपने एक मित्र को लिखा, उसका उद्देश्य पूर्णतया प्रकट होता है। उसने लिखा, 'मैं बादशाहतो के ढेर लगा दूँगा, विजय पर विजय प्राप्त कर मालगुजारी के ढेर के ढेर एकत्रित कर दूँगा। मैं इतनी शान, इतना धन तथा इतनी सेना इकट्ठा कर दूँगा कि मेरे महत्वाकांक्षी और धन-लोलुप मालिक त्राहि त्राहि चिल्लाने लगेंगे।" वास्तव में वेलेजली ने ऐसा ही किया।

सबसीडियरी एलायन्स अर्थात् सहायक सन्धि:—भारतीय रियासतो को पगु बनाने तथा अवसरानुकूल उन्हें अ गरेजी राज्य में सम्मिलित करने के लिए वेलेजली ने एक विशेष नीति का अनुसरण किया जो सबसीडियरी एलायन्स अर्थात् सहायक-सन्धि के नाम से प्रसिद्ध है। सबसिडी का अर्थ आर्थिक सहायता और एलायन्स का अर्थ सन्धि है। साराश यह है कि इस सन्धि के अनुसार प्रत्येक देशी नरेश कपनी को निश्चित आर्थिक सहायता दे, उससे सैनिक सहायता प्राप्त कर सकता था। इस सन्धि की पाँच मुख्य शर्तें थी—प्रथम इस सन्धि को स्वीकार करने वाला देशी नरेश अंगरेजो का आधिपत्य स्वीकार करे, दूसरे, वह उनकी अनुमति के बिना किसी से युद्ध अथवा सन्धि न करे। तीसरे, अ गरेजों के अतिरिक्त वह किसी यूरोपियन जाति के मनुष्यों को अपने यहाँ नौकर न रखें। चौथे वह अपनी रियासत में अ ग-रेजी सेना रक्खे जिसका खर्च वह स्वय बरदाश्त करे। यह सेना आवश्यकतानुसार उसकी रक्षा करे। आवश्यकता पड़ने पर गवर्नर जनरल इस सेना को राज्य के बाहर भेज सके। पाँचवे, सन्धि करने वाला देशी राजा अपने राज्य में एक अ गरेज रेजी-डेण्ट रक्खे और शासन-सबन्धी मामलो में उससे परामर्श करे।

सहायक-सन्धि लार्ड वेलेजली की नीतिपटुता और दूर-दर्शिता की द्योतक है। इस सन्धि से धीरे-धीरे एक देशी राज्य को इस स्थिति पर ले जाना था कि उन्हें आसानी से अंगरेजी राज्य में मिलाया जा सके। वे प्रत्येक भांति अंगरेजों के अधीन हो जाते थे और अंगरेजी सेना बिना किसी खर्च के स्थायी रूप से संगठित हो जाती थी। इसमें सन्देह नहीं कि उस समय नैपोलियन के भारत आने की संभावना थी और देशी राज्यों में फ्रांसीसियों का प्रभाव रोकने के लिए इसका निर्माण हुआ परन्तु इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि इस नीति में भारतीय राज्यों को विजय करने का उद्देश्य भी निहित था। यही कारण था कुछ रियासतें, जिन्होंने इसे स्वीकार करने से मना कर दिया, उन्हें वेलेजली ने युद्ध-द्वारा अपने अधिकार में कर लिया। सहायक-सन्धि की समालोचना करते हुए एक यूरोपियन विद्वान लिखता है— सबसीडियरी एलायन्स सिवाय धोखे के कुछ न था। उसका उद्देश्य इंगलैंड की जनता की आंखों में धूल डालना था, अर्थात् उन्हें यह दिखाना था कि गवनर जनरल ने देशी-रियासतों से मैत्री सम्बन्ध स्थापित किये हैं। ये देश प्रगटतया विजय नहीं किये जाते थे। वहां के नरेशों को राजत्व के समस्त चिन्हों सहित तख्त पर रहने दिया जाता था, जबकि वास्तविक सत्ता उनके हाथों से लेकर पोलिटीकल एजेन्ट के हाथों में दे दी जाती थी। भोले भाले भारत-निवासी इसके धोखे में आ गये। उनके सीधेपन से लाभ उठा वेलेज्ली ने सहायक सन्धि का ऐसा जाल बिछाया कि वह भारत को पूर्णतया ले डूबा।

वेलेजली तथा निजाम:—कुर्दला की पराजय ने निजाम को बहुत कमजोर बना दिया परन्तु वह अंगरेजों को सहायता न देने के कारण उनसे क्षुब्ध भी था। इसलिए वेलेजली का अनुमान था कि शायद निजाम भी सहायक संधि आसानी से स्वीकार न करे। परन्तु सहायक-सन्धि की प्रथा चालू करने के लिए निजाम से उपयुक्त कोई नरेश न हो सकता था। इसलिए वेलेजली ने हैदराबाद के अंगरेज रेजीडेन्ट कप्तान कर्कपैट्रिक तथा उसके सहायक कप्तान मैलकम द्वारा एक षड्यन्त्र रचा जिसमें उसने हैदराबाद के प्रधान-मन्त्री अजीमउल उमरा को अपनी ओर मिला और उसे धीरे-धीरे निजाम की नव-सेना, जो फ्रांसीसी अफसरों की अध्यक्षता में संगठित हुई थी, बरखास्त करने को कहा। उस सेना के कुछ अधिकारियों को भी उन्होंने अपनी ओर मिला लिया। इसी बीच उसने मद्रास सरकार को गुप्त आदेश भेजा कि वह चुपचाप एक सेना हैदराबाद भेज दे। जब यह सेना हैदराबाद पहुँच गई तब निजाम को अपने प्रधान-मन्त्री और अन्य अफसरों के विश्वासघात का पता चला परन्तु अब क्या हो सकता था। ऐसी परिस्थिति में अंगरेजी रेजीडेंट ने निजाम को सहायक

सन्धि स्वीकार करने को कहा। असहाय निजाम को उसे मंजूर करने के अतिरिक्त कोई चारा न था, इसलिए १ सितम्बर १७९८ ई० को निजाम ने कम्पनी के इस नये संधि-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये। फलस्वरूप हैदराबाद की स्वाधीनता सदा के लिए समाप्त हो गई। अंगरेज अफसरों के नेतृत्व में कम्पनी की ६ हजार सेना तोपखाने सहित निजाम के खर्च पर सदा के लिए निजाम राज्य में रख दी गई। निजाम ने अपने सब फ्रांसीसी अफसर निकाल दिये और उसने वचन दिया कि वह 'बिना अंगरेज-अधिकारियों की' आज्ञा के किसी यूरोपियन को अपने यहाँ नौकर न रक्खेगा। इंगलैंड के मन्त्रिमण्डल ने हैदराबाद की इस सन्धि पर विशेष सतोष प्रकट किया।

अङ्गरेज और टीपू:—सन् १७९२ ई० में अंगरेजों मरहठों और निजाम ने मिलकर टीपू पर आक्रमण किया था और उसका आधा राज्य आपस में बांट लिया था। टीपू पर तीन करोड़ रुपया युद्ध-दण्ड लगाया गया था। जिसमें से आधा उसने उसी समय दे दिया था और आधे के लिए उसने अपने दो पुत्रों को बन्धकों के रूप में कार्नवालिस को दे दिया था टीपू ने इस शेष धन को नियत अवधि के अन्दर चुका दिया। यही नहीं वरन् वह अधिक परिश्रम तथा उत्साह से अपनी खोई हुई शक्ति को पुनः प्राप्त करने के लिए सलग्न हो गया और अपनी योग्यता से उसने शीघ्र ही अपने देश तथा सेना की दशा ठीक कर ली। परन्तु अंग्रेजों का उसके राज्य का पनपना सर्वथा असह्य था। वह टीपू के अस्तित्व को ही अंगरेजी राज्य के लिए घातक समझते थे। यही कारण था कि वेलेजली ने भारत में प्रवेश करने से पहले आशा अन्तरीप में ही टीपू को कुचलने का दृढ़ संकल्प कर लिया था।

टीपू पर दोषारोपण:—टीपू पर आक्रमण करने के लिए कोई न कोई बहाना ढूंढना आवश्यक था। उन्होंने कहा कि टीपू अंग्रेजों पर आक्रमण करने वाला है। इसके लिए वह फ्रांसीसियों के साथ गुप्त षड्यन्त्र रच रहा है। कहा गया कि उसने मारीशस के फ्रासीसी गवर्नर के पास अपने विशेष दूत भेजे हैं। जिनके द्वारा उसने अंगरेजों के विरुद्ध फ्रांसीसियों से मेल करने का प्रयत्न किया है। तथा वह अफगानिस्तान के अमीर जमनशाह से गुप्त वातचीत कर रहा है। टीपू से उक्त आरोपों के विषय में बिना पूछताछ किये ही वेलेजली ने मद्रास के गवर्नर हैरिस को लिखा कि वह तुरन्त टीपू के विरुद्ध सेना एकत्रित करे। यद्यपि मद्रास के गवर्नर तथा उसके सेक्रेटरी ने वेलेजली को लिखा कि फ्रांस की जो सेना मारीशस द्वीप में थी, वह सब योरुप भेज दी गई है और फ्रांसीसी जहाज तक वहाँ से हटा लिये गये हैं, इसलिए फ्रांसीसियों तथा टीपू के बीच किसी षड्यन्त्र का होना असम्भव है;

किन्तु वेलेजली ने इसकी कोई परवाह न की। उसका उद्देश्य इन आरोपों की छान-बीन कर वास्तविक तथ्य पर पहुँचना न था। वह तो टीपू को कुचलने के लिये केवल एक बहाना ढूँढ रहा था। उसने मद्रास के गवर्नर को तैयारी जारी रखने का आदेश दिया। दूसरी ओर टीपू को धोखे में रखने के लिए उसने टीपू से मित्रता सूचक पत्र-व्यवहार प्रारम्भ कर दिया, जब उसकी सैनिक तैयारियाँ पूरी हो चुकी उसने टीपू से छेड़-छाड़ आरम्भ की। उसने मारीशस के गवर्नर से पत्र-व्यवहार का जिक्र करते हुये टीपू को लिखा कि आप यह न समझें कि मेरे देश के शत्रुओं तथा आपके बीच जो बातें हुई हैं उनकी ओर से मैं उदासीन हूँ।

आपकी इस नीति को देखते हुए एक अंग्रेज अफसर आपके दरबार में भेजा जायेगा, ताकि शान्ति बनाये रखने के लिये जिन-जिन जिलों की अंग्रेजों को आवश्यकता हो वह आपसे माँग लें। उत्तर की बिना प्रतीक्षा किये ही वेलेजली मद्रास के लिये चल दिया जिससे कि स्वयं युद्ध-क्षेत्र के निकट रह कर युद्ध का संचालन कर सके। यहाँ उसे टीपू का विनम्र उत्तर प्राप्त हुआ, परन्तु उसकी अव-हेलना करते हुये लार्ड वेलेजली ने जनवरी सन् १७९९ ई० में टीपू को साफ-साफ लिखा कि वह अपने समुद्र के किनारे के बन्दरगाह तथा नगर अंग्रेजों के हवाले कर दे, और २४ घंटो के अन्दर इसका उत्तर माँगा गया। इसको पत्र के बदले यदि युद्ध घोषणा कहें तो अधिक उपयुक्त होगा। टीपू भी यह अच्छी प्रकार समझ गया। अब उसे ज्ञान हुआ कि वही अंग्रेज, जिन्हें हैदर ने पूर्णतया परास्त करके भी छोड़ दिया था, किस प्रकार उसे मिटा देने के लिये कटिबद्ध थे। 'पराजित शत्रु की ओर उदारता दिखाना' भारतीय नरेशों का एक विशेष गुण रहा है, किन्तु अनेक बार उन्हें इस उदारता का गहरा मूल्य चुकाना पड़ा है।

उन्होंने टीपू के कुछ अफसरों को भी अपनी ओर मिला लिया था। इन विश्वासघातकों में टीपू का प्रधान मन्त्री पूर्निया तथा उसका एक दीवान मीर सादिक विशेष उल्लेखनीय हैं। सत्य यह है कि इन का विश्वासघात ही टीपू के सर्वनाश का कारण हुआ, क्योंकि टीपू को इनका पता न था। वह सीधेपन में इन्हें महत्वपूर्ण से महत्वपूर्ण स्थान पर नियुक्त करता रहा और वे उससे अनुचित लाभ उठा अङ्गरेजों को सहायता देते रहे।

घटनायें:—आक्रमण की सूचना पाते ही टीपू ने अपने विश्वस्त ब्राह्मण मन्त्री पूर्निया को मुकाबले के लिये भेजा। रायकोट नामक स्थान के निकट उसकी कम्पनी की सेना से मुठभेड हुई। किन्तु पूर्निया वास्तव में अंग्रेजों से मिला हुआ था। अतः युद्ध करने के बदले वह कम्पनी की सेना के दायें बायें चक्कर लगाता रहा। फल यह हुआ कि उक्त सेनायें आगे बढती रही और पूर्निया की सेना संरक्षक की भाँति इसके चारों ओर चलती रही। ज्योंही टीपू को कम्पनी की सैनिक प्रगति का पता चला, उसने तेजी से आगे बढकर मद्रास की सेना को मलावली के स्थान पर रोका, परन्तु अपने एक सेनापति कमरुद्दीन के विश्वासघात के कारण पूर्णतया पराजित हुआ। इसी बीच उसे सूचना मिली कि बम्बई की सेना एक दूसरे मार्ग से उसकी राजधानी श्रीरंगपट्टन की ओर बढ रही है। अतः कुछ सेना इधर छोड वह स्वयं उसे रोकने के लिये आगे बढा। परन्तु युद्ध पूर्णतया समाप्त भी न हो पाया था कि हैरिस की सेना श्रीरंगपट्टन पहुँच गई। टीपू तुरन्त राजधानी पहुँचा। बम्बई की सेना भी इसी बीच वहाँ पहुँच गई। दोनों सेनाओं ने मिलकर श्रीरंगपट्टन का घेरा डाल दिया। टीपू ने महत्वपूर्ण मोरचों पर अपने विश्वस्त सेनापति सैयद गफ्फार तथा सादिक अली को नियुक्त किया यद्यपि सादिक अली अंग्रेजों से मिला हुआ था तो भी गफ्फार की अटूट स्वामि भक्ति के कारण शीघ्र कम्पनी की सेनायें को सफलता प्राप्त न हो सकी। परन्तु कुछ समय पश्चात् अंग्रेजी सेना किले में प्रवेश करने में सफल हुई। अपने चारों ओर विश्वासघातक पदाधिकारियों का एक जाल देख टीपू आश्चर्यचकित रह गया, फिर भी उसने साहस न छोडा और अपने मुट्ठी भर आदमियों सहित बढती हुई अंग्रेजी सेना की ओर लपका और लडता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। श्रीरंगपट्टन पर अङ्गरेजों का अधिकार हो गया।

मैसूर राज्य का अन्त:—श्रीरंगपट्टन पर अधिकार प्राप्त करने के बाद उसका भाई करीम साहब उसके १२ बेटे तथा उसकी बेगमें कैद करके वेलोर नगर में जो कर्नाटक राज्य में स्थित है, रहने के लिए भेज दिये गये। अधिकांश भाग अङ्गरेजों राज्य में मिला लिया गया। कुछ भाग निजाम को दे दिया गया। शेष भाग पर

मैसूर के पुराने हिन्दू राजकुल का शासन रहने दिया। उस कुल का एक पञ्चवर्षीय बालक कृष्णराज राजा घोषित कर दिया गया और पूर्निया उसका संरक्षक नियुक्त कर दिया गया—

सन्धि की शर्तें वेलेजली की कूटनीति तथा दूरदर्शिता की द्योतक है। निजाम को कुछ भाग प्रदान करना उसे उचित अनुचित प्रत्येक मामले में सहयोग प्रदान करने के लिये खरीदना था। मैसूर का कुछ भाग प्राचीन हिन्दू वंश को प्रदान करना दूसरी महत्वपूर्ण धारा थी। जिसने सीधे-सादे भारतीय नरेशों की दृष्टि में कम्पनी के अनुचित हस्तक्षेप पर परदा डाल दिया। यदि वेलजली ऐसा न करता तो सम्भव था कि अंग्रेजों को देशी नरेशों की सगठित शक्ति का सामना करना पड़ता। यद्यपि सामयिक राजनैनिक विचार-धारा को देखते हुए इसकी विशेष आशा नहीं की जा सकती थी।

वैलेजली और अवधः—सन् १७९८ ई० में सर जानशोर ने नवाब वजीर-अली को कैद करके बनारस भेज दिया था और सआदतअली को उसकी जगह नवाब बनाया था। उसने नवाब से एक चिरस्थायी सन्धि की थी जिसके अनुसार घरेलू मामले, राजधानी, सेना तथा प्रजा पर नवाब का पूर्ण अधिकार रक्खा गया था। किन्तु सन्धि को हुए दो वर्ष भी न हुए थे कि वेलेजली ने उसे तोड़ने के लिए बहाने ढूँढने प्रारम्भ कर दिये।

इसी बीच वजीरअली बनारस से निकल भागा और अवध पहुँचा। कुछ लोगों को अपनी ओर मिला उसने गद्दी प्राप्त करने का षड्यन्त्र रचा। कम्पनी की सहायक सेना की सहायता से नवाब सआदतअलीखाँ ने इस विद्रोह को शान्त कर दिया, परन्तु इस घटना के आधार पर वेलेजली ने नवाब को लिखा कि नवाब स्वयं अपनी सेनायें कम कर केवल इतनी सेना रक्खे जितनी मालगुजारी वसूल करने या शाही जलसों आदि के लिये आवश्यक हो। वेलेजली ने यह पत्र कदाचित् इसलिये लिखा हो कि कहीं वजीरअली की भाँति वह भी कहीं विद्रोह न कर बैठे। उसने यह भी लिखा कि स्थगित सेना के बदले कम्पनी की कुछ पैदल तथा सवार पल्टनें बढ़ा दी जावें जिसका व्यय नवाब सहन करे।

नवाब उक्त प्रस्ताव को सुनकर चकित रह गया। १७९२ ई० की सन्धि के अनुसार वैलेजली को इस प्रकार हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार न था, परन्तु वेलेजली उचित अनुचित की परवाह करने वाले व्यक्तियों में न था। उसका एकमात्र उद्देश्य कम्पनी के राज्य की वृद्धि करना था। और यही उद्देश्य सदैव उसके सामने रहता था। नवाब अभी उक्त प्रस्ताव का उत्तर भी न भेज पाया था कि एक

नई पलटन अवध पहुंच गई। दूसरी पलटन भेजने की तैयारी की जाने लगी। इस पर नवाब ने अत्यन्त तर्कयुक्त तथा नम्रतापूर्ण पत्र वेलेजली को लिखा जिसमें उसने गवर्नर जनरल से प्रार्थना की कि उपरोक्त प्रस्ताव वापिस ले लिया जावे, परन्तु वेलेजली ने इस पत्र को लेने तक से इन्कार कर दिया और नवाब के अंग्रेज रेजीडेण्ट को लिखा कि यदि नवाब ने इस प्रकार भविष्य में कम्पनी सरकार की न्यायप्रियता और ईमानदारी पर सन्देह किया तो उचित दण्ड दिया जावेगा। कितना अहंकारपूर्ण उत्तर था। परन्तु यही नहीं—इसके बाद जनवरी १८०१ ई० में उसने नवाब को लिखा कि वह या तो कुछ वार्षिक पेंशन लेकर राजधानी से अलग हो जावे या जो दो नई पलटनें भेजी गई हैं उनके व्यय के लिये आधा राज्य कम्पनी के हवाले कर दे। साथ ही साथ उसने अङ्गरेज रेजीडेण्ट को लिखा कि यदि नवाब कोई आनाकानी करे तो सेना की सहायता से उसके आधे राज्य पर अधिकार कर लिया जावे। नवाब बेचारे ने बहुत अनुनय-विनय की परन्तु कौन सुनता था। कम्पनी की सेनायें चारों ओर फैली हुई थी। ऐसी दशा में नवाब कर ही क्या सकता था। लाचार होकर उसे नये सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर करने पड़े और अपने राज्य का आधा भाग कम्पनी को देना पड़ा।

वेलेजली के इंग्लैंड लौटने पर उसके इस प्रकार के कामों की बहुत निन्दा की गई। इस पर हेस्टिंग्ज की भांति पार्लियामेंट में आक्रमण किया गया। जिसमें पार्लियामेंट के एक सदस्य ने इस सन्धि की चर्चा करते हुये कहा कि "यदि यह सन्धि थी तो फिर खुले मैदान में जाते हुये किसी मुसाफिर पर डाकू के टूट पड़ने तथा उसके लूटने को भी सन्धि का नाम दिया जा सकता है।"

फर्रुखाबाद का अन्त:—इसके बाद वेलेजली ने फर्रुखाबाद की छोटी रियासत को अङ्गरेजी राज्य में मिला लिया यह रियासत अवध के अधीन थी। यहाँ पहले से एक अङ्गरेज रेजीडेण्ट रहता था। जब उसने रियासत के प्रबन्ध में अनुचित हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया तो लार्ड कार्नवालिस ने उसे वापिस बुला लिया था और वचन दिया था कि भविष्य में इस प्रकार उसके राज्य में हस्तक्षेप न किया जायेगा। लार्ड वेलेजली ने इस वायदे की कोई परवाह न करते हुये अपने भाई आर्थर वेलेजली को फर्रुखाबाद भेजा और उसे आदेश दिया कि किसी प्रकार नवाब को पेंशन के लिये तैयार कर उसकी रियासत कम्पनी को दिलवा दे। आर्थर वेलेजली नवाब को लखनऊ लिवा लाया और यहाँ साम, दाम, दण्ड, भेद सब साधनों से नवाब को एक लाख अठारह हजार रुपया वार्षिक पेंशन स्वीकार करने तथा रियासत

कम्पनी के हवाले करने के लिए तैयार कर लिया। इस प्रकार फर्रुखाबाद रियासत अङ्गरेजी राज्य में मिला ली गई।

अंग्रेज और तंजौर:—दक्षिणी भारत में तंजौर एक छोटी-सी मरहठा रियासत थी। १७वीं शताब्दी के मध्य में यह छत्रपति शिवाजी के पिता शाहजी की जागीर थी। शाहजी के पश्चात् तंजौर का राज्य शिवाजी के एक सौतेले भाई वेंकोजी को दिया गया था। कोरोमण्डल तट पर अंग्रेजो के सबसे पहले मददगारों में तंजौर का राजा था।

तंजौर के राजा प्रतापसिंह के बाद उसका पुत्र तुलजाजी गद्दी पर बैठा। उसके कोई पुत्र न था। अतः उसने अपने दत्तक पुत्र सार्वोजी को उत्तराधिकारी नियुक्त किया। इससे लाभ उठाकर अंग्रेजो ने अमरसिंह नामक तुलजाजी के एक सौतेले भाई को गद्दी पर बिठा दिया। उसने १७९३ ई० में कम्पनी से सहायक सन्धि करली।

धीरे-धीरे अंग्रेजों की इच्छा तंजोर राज्य को अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित करने की हो गई और उन्होंने तंजौर के रेजीडेण्ट द्वारा रियासत में तोड़-फोड़ आरम्भ कर दी।

जब वेलेजली भारत आया तो तुलजाजी के दत्तक पुत्र सार्वोजी को षड्यंत्रों का केन्द्र बनाया गया। पण्डितों से उसका अधिकार शास्त्रानुकूल सिद्ध कराया गया जिनके बल पर अंग्रेजों ने अमरसिंह को गद्दी से उतार सार्वोजी को तंजौर की गद्दी पर बैठा दिया। उसके बाद तुरन्त ही उन्होंने सार्वोजी से एक नये सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर करा लिये जिसके अनुसार उसने अपना सारा राज्य कम्पनी के हवाले कर दिया और स्वयं जीवन भर कम्पनी का पेंशनर होकर तंजोर के किले के अन्दर रहना स्वीकार कर लिया।

कर्नाटक और अंग्रेज:—कर्नाटक का नवाब मुहम्मदअली अंग्रेजों का घनिष्ठ मित्र था। उसके तथा कम्पनी के बीच चिरस्थायी मित्रता की सन्धि हो चुकी थी, जिसमें अंग्रेजो ने मुहम्मद अली और उसके राज्य की रक्षा के लिये अपनी एक सेना कर्नाटक में रखने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया था। उस सेना के खर्च के लिये नवाब ने ३० लाख रुपया सालाना देने का वचन दिया था। नवाब मुहम्मदअली यह धन निश्चित समय पर कम्पनी को देता रहा। यहाँ तक कि उसने कुछ जिलों की मालगुजारी इस अदायगी के लिये अलग कर रक्खी थी। जब मुहम्मदअली की मृत्यु के बाद उसका पुत्र उमदत्त-उल-उमरा कर्नाटक का नवाब हुआ तो वह भी अपने पिता की भाँति ठीक समय पर कम्पनी को यह धन देता रहा

ग्रौर सन्धि की शर्तों का भी ठीक-ठीक पालन करता रहा। ग्रतः कर्नाटक पर ग्रधि-कार करने को कोई बहाना ग्रासानी से न मिल सका।

इधर वेलेजली कर्नाटक को ग्रंग्रेजी राज्य में सम्मिलित करने के लिये उतारू था। ग्रन्य ग्रंग्रेज भी, जो जीवन भर नवाब को चूसते रहे थे, ग्रब यह देखकर कि वह पूर्णतया कर्जे में दब गया है ग्रौर उससे ग्रब कोई धन-प्राप्ति की ग्राशा नहीं की जा सकती—विलीनीकरण के पक्ष में थे, परन्तु कोई बहाना नहीं मिल रहा था ग्रौर न उमदत-उल-उमरा के जीते जी इस प्रकार का कोई बहाना मिलने की ग्राशा ही प्रतीत होती थी। ग्रत उसने नवाब की मृत्यु तक के लिये कर्नाटक का प्रश्न स्थगित कर दिया। सन् १८०१ ई० में सूचना मिली की नवाब कर्नाटक मृत्यु शय्या पर पडा है। तुरन्त ग्रंग्रेज सेना को ग्राज्ञा दी गई कि वह नवाब के महल को घेर ले ग्रौर कर्नल मैकलीन ने यह कहकर—कि नवाब की मृत्यु के बाद शांति भंग होने की ग्राशंका है, ग्रत: महल को सेना द्वारा सुरक्षित किया जाना ग्रावश्यक है—महल का घेरा डाल दिया। १५ जुलाई को नवाब की मृत्यु हो गई। ग्रन्त तक ग्रंग्रेज ग्रफसर नवाब के पास रहे परन्तु उसी दिन नवाब के बेटे शाहजादे ग्रलीहुसैन को महल से बाहर लाकर उन्होंने ग्रचानक उसे सूचना दी कि उसके बाप ग्रौर दादा ने हैदरग्रली तथा टीपू से गुप्त पत्र व्यवहार किया था जो श्रीरंगपट्टन के घेरे के समय ग्रंग्रेजों के हाथ लगा ग्रत गवर्नर जनरल की ग्राज्ञा है कि विश्वासघात के ग्रभियोग में वह ग्रपने पिता की गद्दी पर बैठने के बदले एक साधारण प्रजा की भांति जीवन व्यतीत करे ग्रौर एक सन्धि पर हस्ताक्षर कर कर्नाटक का राज्य कम्पनी को दे दे। कैसी विचित्र बात है कि नवाब उमदत-उल-उमरा के जीते जी इस गुप्त पत्र-व्यवहार की कभी चर्चा भी न हुई ग्रौर ग्रब इसके ग्राधार पर रियासत हडप की जा रही थी। कितना सच्चा था यह ग्रभियोग, इससे सिद्ध होता है। फिर भी शाहजादा ग्रलीहुसैन इस प्रस्ताव से सहमत नहीं हुग्रा। इस पर ग्रंग्रेजों ने नवाब के एक दूर के रिश्तेदार ग्राजमउद्दौला से बातचीत ग्रारम्भ कर दी। बात तै हो गई। फलस्वरूप ग्रलीहुसैन को बन्दी बना लिया गया ग्रौर ग्राजमउद्दौला को कर्नाटक का नवाब घोषित कर दिया गया। नवाब होते ही उसने कर्नाटक का सारा राज्य कम्पनी को दे दिया ग्रौर स्वयं पेंशन ले ग्रर्काट में रहने लगा।

सूरत का ग्रन्त—ग्रंग्रेजों ने ग्रपनी व्यापारी कोठी सर्वप्रथम सूरत में खोली थी। सूरत पर उन दिनों एक मुसलमान नवाब का शासन था, जो देहली सम्राट् के ग्रधीन था। ज्यों-ज्यों मुगल सम्राट् बलहीन होता गया, ग्रंग्रेजों का प्रभाव सूरत के नवाब पर बढता गया। यहाँ तक कि सूरत में एक प्रकार का दोहरा प्रबन्ध प्रारम्भ

हो गया। नाम में नवाब का शासन था, परन्तु सब नियम अंग्रेजों के परामर्श से बनाये जाते थे। सन् १७५६ से १७६६ ई० तक यही दोहरा प्रबन्ध चलता रहा वेलेजली ने इसे समाप्त करने की सोची। २ जनवरी सन् १७६६ ई० को नवाब की मृत्यु हो गई। उसने एक दूध पीता बच्चा अपना उत्तराधिकारी छोडा, परन्तु एक महीने बाद उसका भी देहान्त हो गया। इसके बाद उसका चचा सूरत की गद्दी पर बैठा। उस पर जोर दिया गया कि वह अपनी सेना को भग कर दे और एक लाख रुपये वार्षिक से अधिक खर्च दे, कम्पनी की एक सेना अपने यहाँ रक्खें। नये नवाब ने अपनी आर्थिक दशा का दिग्दर्शन कराते हुए अपनी लाचारी प्रकट की, परन्तु उसकी कोई न सुनी गई। जब उसने अधिक आग्रह किया तो लार्ड वेलेजली ने बम्बई के गवर्नर को आदेश दिया कि वह स्वयं जाकर नवाब से एक सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर करा ले, जिसके अनुसार वह सूरत की गद्दी को छोडकर कम्पनी की पेंशन स्वीकार कर ले। ऐसा ही हुआ। सैन्य बल का प्रदर्शन कर सूरत अंग्रेजी राज्य में मिला दिया गया और नये नवाब नसीरउद्दीन को पेन्शन दे दी गई।

अंग्रेज और मरहठे :—मरहठा सत्ता को नाश करने में सबसे अधिक भाग वेलेजली और उसके भाई आर्थर वेलेजली का है। वेलेजली के आने के समय राघोवा का पुत्र बाजीराव पेशवा की गद्दी पर बैठा। नाना फडनवीस उसकी कैद में था। महादाजी सिंधिया की जगह उसका पौत्र दौलतराव सिंधिया ग्वालियर की गद्दी पर था। होल्कर कुल में १५ अगस्त सन् १७६७ को तुकाजी की मृत्यु हुई। तुकाजी के दो बेटे थे। काशीराव और मल्हारराव और दो दासीपुत्र थे जसवन्तराव और विट्ठोजी दौलतराव सिंधिया की सहायता से काशीराव ने मल्हरराव को परास्त किया। वह युद्ध स्थल में ही वीरगति को प्राप्त हुआ और काशीराव इन्दौर की गद्दी पर बैठा। जसवन्तराव भाग कर नागपुर चला गया और विट्ठोजी कोल्हापुर। दौलतराव सिंधिया योग्य वीर और समझदार था। वह अंग्रेजों की कूटनीति को भली भाँति समझता था। वह जानता था कि अंगरेजों के चंगुल से बचने के लिये नाना फडनवीस की सेवायें मरहठा मण्डल के लिये कितनी मूल्यवान् हो सकती हैं। अतः सबसे पहला कार्य दौलतराव ने यह किया कि उसने पूना पहुँचकर नाना फडनवीस को कैद से मुक्त कर उसे फिर पेशवा का प्रधान मन्त्री बनवाया। नाना और दौलतराव में अब मित्रता बढ़ने लगी। बाजीराव भी इनके कहने में था। इस प्रकार मरहठा राज्य की बागडोर इन दोनों योग्य पुरुषों के हाथ में आ गई।

वेलेजली की इच्छा :—वेलेजली अच्छी प्रकार समझता था कि दौलतराव सिंधिया और नाना फडनवीस के हाथ में है। जब तक इन

को पूना से न हटाया जाये तब तक बाजीराव पर अंग्रेजो का जादू नहीं चल सकता। वह यह भी जानता था कि बाजीराव मरहठा सघ की कुंजी है। यदि किसी प्रकार वह अंग्रेजो से सहायक सधि कर ले तो धीरे-धीरे अंग्रेज समस्त मरहठा सघ पर छा जावें। यह सब बातें विचार वेलेजली दौलतराव सिन्धिया को पूना से हटाने का भरसक प्रयत्न करने लगा। उसने सिंधिया की अनुपस्थिति में करनल कालिन्स नामक एक अंग्रेज को सिंधिया दरबार में रेजीडेण्ट बनाकर भेजा। उसने प्रगट किया कि उक्त रेजीडेण्ट के भेजने का उद्देश्य सिंधिया और अंग्रेजों की मित्रता को पक्का करना है किन्तु उसका वास्तविक उद्देश्य महाराजा दौलतराव की अनुपस्थिति में सिंधिया राज्य के अन्दर फूट डलवाना तथा ऐसी स्थिति पैदा करना था जिससे मजबूर होकर दौलतराव अपनी सेना सहित पूना से उत्तर की ओर लौट आये। परन्तु कालिन्स इसमें अधिक सफलता प्राप्त न कर सका। अब वेलेजली ने अवध की सहायक सेना को आज्ञा दी कि वह अवध तथा सिंधिया राज्य की सीमा पर एकत्रित हो। वेलेजली ने प्रकट किया कि यह सैनिक प्रदर्शन अवध के विद्रोही तथा बन्दी उत्तराधिकारी वजीरअली की कार्यवाहियों को रोकने के लिए किया जा रहा है फिर भी वेलेजली को विश्वास था कि जब सिंधिया को इस प्रदर्शन का पता चलेगा तो वह अपने साम्राज्य की रक्षा के लिये चिन्तित हो उठेगा और पूना छोडकर ग्वालियर चला आवेगा। चाल सफल हुई दौलतराव सिंधिया को जब यह सूचना मिली तो उसे विश्वास हो गया कि अंग्रेज उसके राज्य पर हमला करना चाहते हैं। अत. वह छोडकर अपने राज्य की रक्षा के लिये उत्तर की ओर चला आया।

अब वेलेजली ने पूना के रेजीडेण्ट पामर को लिखा कि वह पेशवा पर जोर देकर उसे सहायक सन्धि स्वीकार करने के लिये तैयार करे। परन्तु नाना अभी पूना में मौजूद था। उसकी सलाह से पेशवा ने सहायक सन्धि स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। अभी मैसूर विजय न हुआ था इसीलिये वेलेजली अधिक आग्रह कर पेशवा को अप्रसन्न करना न चाहता था। यह सोच उसने पेशवा पर अधिक जोर नहीं दिया। परन्तु ज्योंही श्रीरंगपट्टन का पतन हुआ उसने पूना-स्थित अंग्रेज रेजीडेण्ट को लिखा कि वह शीघ्रातिशीघ्र पेशवा को सहायक सन्धि में फांसने का प्रयत्न करे। परन्तु नाना की दूरदर्शिता के कारण वह सफलता प्राप्त न कर सका। इसी बीच १३ फरवरी सन् १८०० को नाना फडनवीस की मृत्यु हो गई। अब अंग्रेजो का मार्ग सरल हो गया। वेलेजली ने पामर को लिखा कि वह दौलतराव के विरुद्ध बाजीराव को भडकाये और किसी प्रकार उसे एक बार पूना से भगाकर अंग्रेजी प्रदेश में ले आये। गवर्नर जनरल के आदेशानुसार पामर ने अपना जाल फैलाना आरम्भ कर

दिया। इसी समय गवर्नर जनरल ने मलिक जहानखाँ नामक टीपू के एक स्वामिभक्त विद्रोही को, जो श्रीरंगपट्टन के पतन के बाद भी एक विशाल सेना एकत्रित कर अंग्रेजों को परेशान कर रहा था, दमन करने के लिये पेशवा के राज्य से होकर सेना भेजने की आज्ञा माँगी। पेशवा ने बिना सोचे समझे आज्ञा दे दी। इस आज्ञा से लाभ उठा कर कम्पनी की सेना ने कई महत्वपूर्ण स्थानों पर अधिकार कर लिया। धीरे-धीरे यह प्रकट होने लगा कि इस सेना का गुप्त उद्देश्य पूना पर आक्रमण कर उसी प्रकार पेशवा को फाँसना था जिस प्रकार कुछ समय पहले मद्रास की सेना ने निजाम को फँसाया था। किन्तु अभी उसके लिये उपयुक्त अवसर न था क्योंकि पामर का कुचक्र अभी पूरे रूप से सफल नहीं हो पाया था। पामर की असफलता को देख वेलेजली ने कर्नल क्लोज को, जो इस प्रकार की तोड़-फोड़ में अत्यन्त सिद्धहस्त था, पूना का रेजीडेण्ट बनाकर भेजा और पामर को वापिस बुला लिया। परन्तु दौलतराव, ने जो अवसर पाकर पूना लौट आया था और पेशवा की नीति का संचालन कर रहा था, उसे सफल न होने दिया। इस पर वेलेजली को एक नया कुचक्र रचना पड़ा।

वेलेजली ने जसवन्तराव होल्कर को,—जो इस समय नागपुर में था और विठ्ठोजी को, जो इस समय कोल्हापुर में था, अपनी ओर तोड लिया और उसे दौलत राव सिंधिया के राज्य पर आक्रमण करने के लिये तैयार कर दिया। अंग्रेजों की सहायता से जसवन्तराव ने नागपुर से भागकर एक सेना एकत्रित की और सिंधिया राज्य पर आक्रमण करने आरम्भ कर दिये। जब दौलतराव को अचानक आक्रमण की सूचना मिली तो वह अपनी सेना का एक भाग पूना छोड़ मालवा पहुँचा। कई स्थानों पर उसमें तथा होल्कर में युद्ध हुए और कभी एक तो कभी दूसरा विजयी होता रहा।

दौलतराव की अनुपस्थिति से लाभ उठाकर अंग्रेजों ने विठ्ठोजी होल्कर से पेशवा के विरुद्ध विद्रोह करा दिया, परन्तु पेशवा की सेना ने विठ्ठोजी को परास्त कर उसे प्राणदण्ड दे दिया। जब होल्कर को यह पता लगा तो वह तुरन्त पूना की ओर लपका। जसवन्त को बढ़ते देखकर पेशवा ने अंग्रेजों से सहायक सन्धि करली। होल्कर पूना पहुँचा। उसने पेशवा की सेना को परास्त किया; परन्तु कम्पनी ने पेशवा की कोई सहायता न की। बाजीराव यह सब देख घबरा उठा और परास्त होते ही अंग्रेज रेजीडेण्ट की सलाह से पूना से भागकर बेसीन पहुँच गया।

बेसीन की संधि :—अब पेशवा पूर्णतया अंग्रेजों के चंगुल में था। वह उससे पूरा लाभ उठा सकते थे। यहां उन्होने बाजीराव को आश्वासन दिलाया कि वह फिर उसे पूना की गद्दी पर बैठा देंगे। उसके बदले वहीं १८०२ ई० में उसने

एक नये सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर किये जिसके अनुसार उसने अपने साम्राज्य में सहायक सेना रखना स्वीकार कर लिया। उसके खर्च के लिये अपना एक इलाका कम्पनी के नाम कर दिया और वचन दिया कि वह बिना अंग्रेजो की सलाह के किसी भारतीय नरेश से कोई सम्बन्ध कायम न करेगा। इस प्रकार पेशवा ने बेसीन की सन्धि से मरहठा-संघ को पतनोन्मुख कर दिया। यदि होल्कर से परास्त बम्बई की ओर भागने के बदले वह सिंधिया के पास चला गया होता, मरहठा साम्राज्य का इतना शीघ्र पतन न होता।

बाजीराव का पुनरभिषेक :—पेशवा से इस प्रकार संधि कर उसे पूना की गद्दी पर बैठने के लिये दक्षिण में एक विशाल सेना का आयोजन किया गया। हैदराबाद, मैसूर इत्यादि की सहायक सेनाए भी उससे आ मिली। मार्च सन् १८०३ ई० में कम्पनी विशाल सेना ने प्रस्थान किया। जसवन्तराव होल्कर को जब यह ज्ञात हुआ तो वह बाजीराव के भाई को, जिसे उसने बाजीराव के भागने पर पेशवा बना दिया था, पूना में निःसहाय छोड निजाम के नगर औरंगाबाद को लूटता इन्दौर की ओर चला गया। १३ मई को बाजीराव ने पूना में प्रवेश किया और फिर पेशवा की गद्दी ग्रहण कर ली।

दूसरा मरहठा युद्ध :—सिंधिया और भौंसला दोनो इस बात को अच्छी तरह समझते थे कि पेशवा का इस प्रकार विदेशियो के फन्दे में फँस जाना मरहठा स्वाधीनता के लिये अत्यन्त घातक है। वेलेजली भी जानता था कि बेसीन की संधि को मान्य बनाने के लिये उसे सिंधिया तथा भौंसला से स्वीकृत कराना आवश्यक है। परन्तु वह यह भी जानता था कि सन्धि की कुछ शर्तें ऐसी है कि उन पर सिंधिया की स्वीकृति मिलना असम्भव है। अतः वेलेजली ने भौंसला तथा सिंधिया को बिना सन्धि की प्रतिलिपि भेजे केवल यह कहकर, कि इस संधि का प्रभाव पेशवा तथा भौंसला व सिंधिया के सम्बन्ध पर बिलकुल न पडेगा, उनकी स्वीकृति प्राप्त करनी चाही। परन्तु सिंधिया अथवा भौंसला इस प्रकार मानने वाले न थे। दूसरी ओर सन्धि को उन्हे दिखाना युद्ध घोषित करना था। इसलिये वेलेजली बार-बार यही लिखता रहा कि संधि में सिंधिया तथा भौंसला के लिये कोई अहितकर बात नही है। अतः वे इसको स्वीकार कर लें और दूसरी ओर युद्ध की तैयारी आरम्भ कर दी। साथ ही उसने अपने ग्वालियर रेजीडेन्ट कर्नल कोलिन्स को लिखा कि वह सिंधिया के दरबारियो में से कुछ को अपनी ओर मिलाकर उसमें आंतरिक निर्बलता उत्पन्न करे जब सब तैयारी पूरी हो चुकी तो गवर्नर जनरल ने फिर सिंधिया तथा भौंसला से बेसीन की सन्धि की स्वीकृति चाही परन्तु सिंधिया ने लिखा कि इसका

उत्तर बिना संधि देखे तथा बिना उसके पेशवा से मिले नहीं दिया जा सकता। उधर पेशवा भी अपनी शोचनीय पराधीनता का अनुभव करने लगा था। उसने भी सिंधिया और भोंसला के पास अपने विशेष दूत भेजे और उन्हें सलाह के लिये शीघ्र पूना बुलाया। वेलेजली खूब समझता था कि मरहठा संघ के सदस्यों को पूना में एकत्रित होना कम्पनी के लिये कितना घातक था। अत. उसने एक ओर पेशवा पर दबाव डालना आरम्भ कर दिया कि वह सिंधिया तथा भोंसला को लिख भेजे कि वह पूना न आवें। दूसरी ओर सिंधिया को लिखना शुरू कर दिया कि उसका पूना पहुँचना कम्पनी की मित्रता को ठेस पहुँचाना होगा। इन सब प्रयत्नों का परिणाम यह हुआ कि इन नरेशों ने पूना जाना स्थगित कर दिया। इसी बीच वेलेजली ने युद्ध की पूरी तैयारी कर ली। अत: उसने अपने भाई आर्थर वेलेजली को एक गुप्त पत्र द्वारा आदेश दिया कि वह बिना उससे पूछे, जब स्थिति ठीक समझे महाराजा सिंधिया अथवा भोंसला पर आक्रमण कर दे दूसरी ओर लार्ड लेक को उत्तरी भारत से मरहठों से लोहा लेने के लिये नियत किया।

स्थिति पर इस प्रकार अधिकार कर वेलेजली ने संधि की एक एक प्रतिलिपि सिंधिया तथा भोंसला के पास भेज दी और शीघ्र उसकी स्वीकृति माँगी। इसके उत्तर में सिंधिया तथा भोंसला ने वेलेजली से प्रार्थना की कि बाजीराव के पास तक उनके दूतों के पहुँचने और लौटाने की प्रतीक्षा की जावे तब सब मामला शान्ति-पूर्वक तय हो जायेगा। परन्तु वेलेजली कहाँ मानने वाला था, वह अब युद्ध के लिये पूर्ण रूप से तैयार था इसलिये उसके संकेत से अंग्रेज रेजीडेण्ट सिंधिया दरबार छोड़ कर चला आया और ६ अगस्त सन् १८०३ ई० को वेलेजली ने कम्पनी और मरहठों के बीच युद्ध-घोषणा कर दी।

जसवन्तराव होल्कर की तटस्थता :—वेलेजली जानता था कि इस तैयारी के होते हुए भी संयुक्त मरहठा-शक्ति का सामना करना अत्यन्त दुस्तर है। इसलिये उसने पहले ही से जसवन्तराव होल्कर को सिंधिया संघ से पृथक् रखने का प्रयत्न किया था। अंगरेजों की ही सहायता से वह काशीराव होल्कर को गद्दी से उतारकर इन्दौर की गद्दी पर बैठा था। युद्ध के समय वेलेजली ने अपना एक दूत होल्कर की सेवा में भेजा, जिसने अंगरेजों की ओर से बड़े-बड़े झूठे वायदे किये। जसवन्तराव अंगरेजों की चाल में आ गया और उसने मरहठा-संघ के इस संकट के समय में तटस्थ रहना स्वीकार कर लिया। गायकवाड पहले ही मरहठा-मण्डल से पृथक् हो चुका था। पेशवा अंगरेजों की ओर था ही, इस प्रकार परिस्थिति

को अनुकूल बना अंगरेजों ने सिंधिया तथा भोंसला की शक्ति को तोडने का प्रयत्न किया।

असी का युद्ध :—युद्ध की घोषणा होते ही आर्थर वेलेजली पेशवा की नई सहायक सेना के साथ सिन्धिया का सामना करने के लिये आगे बढा, पूना और औरंगाबाद के बीच अहमदनगर में सिन्धिया का एक सुदृढ दुर्ग था। किलेदार को रिश्वत दे आर्थर ने इस पर अधिकार कर लिया। इसी बीच सिन्धिया और भोंसला ने अपनी सेनायें हैदराबाद की उत्तरी सीमा पर जमा कर ली। परन्तु यह सोचकर कि अंगरेजों की मुख्य सेना हैदराबाद में है, सिन्धिया अपनी पैदल सेना और तोपखाने को वरार की सरहद से मिले हुए असी नामक ग्राम में छोड आगे बढता चला गया। आर्थर वेलेजली इन सब बातों की सूचना लेता रहा था। इस स्थिति से लाभ उठाने के लिये वह तुरन्त असी पहुँचा और सिंधिया की अस्त-व्यस्त सेना पर आक्रमण कर दिया। फलस्वरूप असी के स्थान पर घोर संग्राम हुआ। मैदान अङ्गरेजो के हाथ रहा और सिन्धिया का तोपखाना अंगरेजो के हाथ लगा।

बुरहानपुर तथा असीरगढ़ विजय :—असी के युद्ध के बाद सिन्धिया और भोंसला की सेनायें निजाम के इलाके से हटकर खानदेश की ओर बढीं। इसी बीच अंग्रेजी सेना ने बुरहानपुर तथा असीरगढ के किले जीत लिये।

अरगॉव पर विजय :—अब कर्नल वेलेजली ने सिन्धिया तथा भोंसला को अलग-अलग करने का प्रयत्न किया। उसने सोचा कि एक साथ सिन्धिया के गुजरात प्रदेश पर तथा भोंसला के गाविलगढ किले पर आक्रमण किया जावे। इसी बीच सिन्धिया को धोखे में रखने के लिये उसने उससे सन्धि की बातचीत आरम्भ कर दी। सिन्धिया सन्धि की शर्तों पर विचार कर ही रहा था कि आर्थर वेलेजली की सेनाओं ने अरगाँव के किले पर आक्रमण कर उस पर अपना अधिकार कर लिया।

भोंसला के राज्य में विजय तथा देवगाँव की सन्धि :—साथ ही उन्होंने भोंसला के गाविलगढ के प्रसिद्ध किले पर आक्रमण कर दिया और उसे विजय कर लिया। दूसरी ओर एक सेना ने पूर्व दिशा में बढकर भोंसला राज्य के उडीसा प्रान्त पर अधिकार कर लिया। यह देखकर भोंसला बहुत भयभीत हुआ, वह सोचने लगा कि कहीं अगरेज नागपुर भी न ले लें। इसलिये उसने चुपचाप दिसम्बर १८०३ ई० में देवगाँव के स्थान पर अंगरेजो से सधि कर ली। उसने सहायक सधि की सब शर्तें स्वीकार कर ली और वचन दिया कि भविष्य में निजाम के राज्य में लूट-मार न करेगा। इसके अतिरिक्त उड़ीसा प्रान्त उसे अंगरेजो को देना पड़ा।

सिन्धिया से साम्राज्यव्यापी युद्ध :—जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है—वेलेजली ने सिन्धिया के समस्त साम्राज्य में एक साथ युद्ध छेड़ने की योजना बनाई थी। इसलिये लार्ड लेक को सिन्धिया के उत्तरी साम्राज्य पर आक्रमण करने के लिये नियत किया गया था। युद्ध-घोषणा होते ही वह अवध से रवाना हुआ और अलीगढ, देहली, आगरा और उनके निकटवर्ती समस्त प्रदेश पर विजय प्राप्त करता वह अलवर पहुँचा। यहाँ सिन्धिया तथा लार्ड लेक की सेनाओं में लासवाड़ी के स्थान पर घोर संग्राम हुआ जिसमें सिन्धिया हार गया। भड़ौच और बुन्देलखण्ड में भी उसकी सेनायें परास्त हो चुकी थी। भौंसला के सन्धि करने के कारण उसका साहस भी कुछ कम हो गया था। अंगरेज भी सन्धि करने के लिये उत्सुक थे क्योंकि वह भी लड़ाई में थक गये थे और निरन्तर लड़ाई के खर्च ने उनकी आर्थिक दशा शोचनीय कर दी थी।

सिर्जी अर्जुन गाँव की सन्धि :—दिसम्बर १८०३ ई० में सिन्धिया ने सिर्जी अर्जुन गाँव के स्थान पर अंगरेजों से सन्धि कर ली। उसने सहायक सन्धि की सब शर्तें मान ली। सिन्धिया राज्य के जो प्रान्त अंगरेज जीत चुके थे, कम्पनी के राज्य में मिला लिये गये।

की गद्दी पर अधिकार कर रक्खा है। काशीराव को इस प्रकार उसके न्यायोचित अधिकार से वंचित रखना उसके अधिकार का बलात् अपहरण है। अ गरेज कम्पनी अपने मित्र मरहठो के राज्य में इस प्रकार का अनुचित व्यवहार सहन नही कर सकती। इसलिये वह जसवन्तराव होल्कर के विरुद्ध युद्ध घोषित करती है।

युद्ध होल्कर से युद्ध आरम्भ हो गया। जनरल वेलेजली ने कर्नल मरे को, जो उस समय गुजरात में था, लिखा कि वह अपनी ओर से गायकवाड की सहायक सेना ले होल्कर की राजधानी इन्दौर पर आक्रमण करे। और स्वय चान्दोर का घेरा डालने के लिए आगे बढा, परन्तु दोनो को कोई सफलता न मिली। दूसरी ओर होल्कर ने बुन्देलखड स्थित अग्रेज सेना पर आक्रमण कर दिया और उसे बुरी तरह परास्त किया। यह देख लार्ड लेक तथा जनरल वेलेजली को स्थिति की गम्भीरता का पता चला। अब उन्होंने तीन ओर से होल्कर पर आक्रमण करने की योजना बनाई। सबसे मुख्य सेना उत्तर में जनरल लेक के अधीन दूसरी सेना दक्षिण में कर्नल वैलस के अधीन तथा तीसरी गुजरात में कर्नल मरे के अधीन होल्कर पर आक्रमण करने के लिये तैयार की गई। जनरल लेक ने एक सुव्यवस्थित सेना कर्नल मानसन के नेतृत्व में होल्कर राज्य पर आक्रमण करने के लिये भेज दी। इसी समय कर्नल मरे ने गुजरात की ओर से उज्जैन पर चढाई कर दी, परन्तु रसद समाप्त होने के कारण मरे को गुजरात वापिस लौटना पडा। और मानसन को होल्कर ने कोटा से लगभग तीस मील दक्षिण में ऐसी बुरी तरह हराया कि अ ग्रेजो के छाके छूट गये। सहस्रो जानें नष्ट हो गई। मानसन स्वय घबरा कर रणस्थल से भाग निकला। जनरल लेक ने उसकी सहायतार्थ सेना भेजी, परन्तु वह फिर परास्त हुआ। यह देख कर लार्ड लेक को बडा दुःख हुआ। विजय का एकमात्र कारण यह था कि होल्कर सेना में अङ्गरेजो का अमोघ अस्त्र रिश्वत व फूट न चल सका था। उक्त पराजय से अ ग्रेजो का बडा अपयश फैला और होल्कर की प्रसिद्धि बहुत बढ गई।

विराट सैन्य आयोजन :—होल्कर की सफलता ने वेलेजली को चकित कर दिया वह अ ग्रेजी सेनायें अपनी सरहद से बाहर निकाल चुका था। अब डर था कि कही वह कम्पनी के अधिकृत दोआब प्रदेश पर आक्रमण न कर दे इसलिये वेलेजली ने दिल्ली, आगरा, मथुरा में सेनायें बढाई और इन स्थानो तक पहुँचने के मार्गो की रक्षा का विशेष प्रबन्ध किया। परन्तु होल्कर इन सब सेनाओ को चीरता मथुरा आ पहुँचा और कम्पनी की सेना को परास्त कर उस पर अधिकार कर

लिया। जब होल्कर इधर बढ़ रहा था तब गुजरात से कर्नल मरे मालवा में तथा कर्नल वैलेस होल्कर राज्य के दक्षिणी भाग में विजय प्राप्त कर रहे थे। मथुरा पर अधिकार प्राप्त करने के बाद होल्कर दिल्ली पर अधिकार करने के लिये चला, परन्तु दिल्ली की रक्षा का बहुत अच्छा प्रबन्ध कर और उसे योग्य सेनापतियों के अधीन छोड़ लेक स्वयं होल्कर का पीछा करने के लिये मथुरा की ओर चला आया था। जब होल्कर को यह पता लगा तो वह दिल्ली छोड़ सहारनपुर की ओर चला गया। यहां उस सुमरू की बगम आदि देशी नरेशों से सहायता की आशा थी परन्तु वह पूरी न हुई, क्योंकि इन्हें पहले ही अङ्गरेजों ने खरीद लिया था। जब यहां होल्कर का किसी ने साथ न दिया तो वह भरतपुर की ओर चला और डीग के किले में दाखिल हो गया। लेक अपनी सेना लेकर डीग पहुँचा और किले का घेरा डाला। परन्तु इससे पहले, कि अङ्गरेजी सेना किले पर अधिकार करे, होल्कर एक दूसरे मार्ग से अपनी सेना सहित भरतपुर पहुँच गया। अङ्गरेजों ने भरतपुर के राजा रणजीतसिंह से कहा कि वह होल्कर को उसके हवाले कर दे। राजा के स्वाभिमान ने इसकी आज्ञा न दी इसलिये लेक भरतपुर पहुँचा और उसने किले का घेरा डाल दिया।

भरतपुर का घेरा :—भरतपुर का किला अत्यन्त सुदृढ़ बना हुआ था। अङ्गरेजी सेना ने बार-बार भरतपुर में प्रवेश करने का प्रयत्न किया, परन्तु असफल रही। अब राजा रणजीतसिंह को धन का प्रलोभन दे अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न किया गया, परन्तु वह भी निष्फल रहा। लाचार हो लेक ने भरतपुर से सन्धि की प्रार्थना की, परन्तु लेक के जोर देने पर भी उसने होल्कर को अंगरेजों के हवाले करना स्वीकार न किया। अन्त में लेक ने भरतपुर का घेरा उठा लिया और अङ्गरेजों तथा भरतपुर के राजा रणजीतसिंह में सन्धि हो गई।

होल्कर का भरतपुर से निकलना :—भरतपुर व अंगरेजों में सन्धि होने के बाद होल्कर भरतपुर से चलकर सिंधिया से आ मिला। इन दोनों बलवान नरेशों के मिलने से वेलेजली को बहुत घबराहट हुई, उसने लेक को सिंधिया का पीछा करने के लिये लिखा। परन्तु लेक भी युद्ध से थक चुका था। कम्पनी की आर्थिक कठिनाइयाँ बढ़ती जा रही थीं। इसलिए लेक पीछा न कर सका। इसी बीच लार्ड वेलेजली को इङ्गलैंड वापिस बुला लिया गया और उसकी जगह दोबारा लार्ड कार्नवालिस को भारत का गवर्नर जनरल बनाकर भेजा गया। वेलेजली ने अपने समस्त शासन-काल में कोई ऐसा कार्य न किया था कि कोई भारतवासी उसे प्रेम अथवा कृतज्ञता से याद करता। इंग्लैंड की पार्लियामेंट में उसके विरुद्ध मुकदमा चलाया गया, जिसमें कुछ स्पष्टवादी सदस्यों ने वेलेजली की नीति का सच्चा रूप प्रदर्शित

किया, परन्तु अन्त में वेलेजली की सराहना का एक प्रस्ताव पास कर यह मुकदमा उठा लिया गया। भारत में अङ्गरेजी राज्य के प्रत्येक संस्थापक पर उसके कुकृत्यों के कारणों से उनके ही देश में मुकदमा चलाया जाना उनकी अनुचित नीति का प्रबल प्रमाण है। -

प्रश्न

१. सहायक सन्धि क्या थी उसकी उचित व्याख्या करो।

२. सहायक सन्धि के कुचक्र से वेलेजली ने किन-किन भारतीय रियासतों का अपहरण किया ?

३. वेलेजली ने किस प्रकार मैसूर को अंग्रेजी राज्य में मिलाया ?

४. मरहठों की शक्ति तोड़ने के लिये वेलेजली ने क्या प्रयत्न किये ?

अध्याय २१

शांति का युग

लार्ड कार्नवालिस, सर जार्ज बार्लो तथा लार्ड मिन्टो

(१८०५-१३ ई०)

लार्ड कार्नवालिस तथा मरहठे :—कम्पनी की आर्थिक कठिनाइयों तथा पराजय के नग्न चित्र ने कार्नवालिस को विवश कर दिया कि वह तुरन्त मरहठों से सन्धि कर ले। उसने लार्ड लेक को लिखा कि वह सिंधिया तथा होल्कर से सन्धि के लिए पत्रव्यवहार करे। अभी पत्रव्यवहार चल ही रहा था कि भारत में आने के केवल तीन महीने बाद अक्तूबर १८०५ ई० में लार्ड कार्नवालिस का देहान्त हो गया।

सर जार्ज बार्लो तथा सिंधिया से सन्धि :—लार्ड कार्नवालिस की मृत्यु के पश्चात् गवर्नर जनरल की कौंसिल का प्रमुख सदस्य सर जार्ज बार्लो भारत का गवर्नर जनरल नियुक्त हुआ। देश की परिस्थिति तथा कम्पनी की आर्थिक कठिनाइयाँ इस समय युद्ध स्थगित कर होल्कर और सिंधिया से सन्धि करने को बाध्य कर रही थीं। इसलिये बार्लो ने कार्नवालिस की नीति का अनुसरण कर इन राजाओं से सन्धियाँ कर लीं। इस नई सन्धि ने १८०३ ई० की सिर्जी अर्जुनगांव की सन्धि को रद्द कर दिया। सहायक सन्धि का जुआ उसकी गर्दन से हटा लिया गया। गोहद का प्रान्त और ग्वालियर का किला उसको वापिस दे दिया गया। जयपुर, जोधपुर उदयपुर, कोटा आदि राजपूताने की रियासतें सिंधिया की अधिकृत रियासतें स्वीकार की गईं, और अंग्रेजों ने वचन दिया कि वह इन रियासतों तथा सिंधिया की अधिकृत अन्य रियासतों से कोई पृथक् सन्धि न करेंगे। दोआब में सिंधिया के जिन जिलों पर अंग्रे[illegible]न अधिकार कर रक्खा था, उनमें से कुछ सिंधिया को वापिस [illegible] दिये गये और [illegible] बदले में अंग्रेजों ने ४ लाख रुपया वार्षिक सिंधिया को देने का वचन दिया [illegible] चम्बल नदी सिंधिया के राज्य की सीमा स्वीकार कर ली गई सिंधिया के [illegible] सन् १८०३ ई० की सन्धि की अपेक्षा यह सन्धि कहीं अधि[illegible] सम्मानपूर्ण

होल्कर का प्रयत्न :—इसके बाद सर जार्ज बार्लो ने जसवन्तराव होल्कर से सन्धि प्रस्ताव रक्खा। उसने सन्धि करने से इन्कार कर दिया। यद्यपि वह बहुत समय से अपने देश से निर्वासित था। अपनी सेना का वेतन देने के लिए उसके पास धन की भी कमी थी। फिर भी उसका साहस न टूटा। वह अभी तक उत्तरी भारतीय नरेशों को मिला कर अंगरेजों को भारत से निकालने की सोच रहा था। १८०३ ई० के आरम्भ में वह अपने रहे-सहे साथियों को लेकर अजमेर से पंजाब की ओर बढ़ा। लार्ड लेक ने उसका पीछा किया। व्यास नदी के किनारे दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई। परन्तु कोई निर्णायक युद्ध न हो सका। लार्ड लेक को डर था कि कहीं महाराजा रणजीतसिंह होल्कर का साथ न दे दें। परन्तु अंगरेजों के प्रभाव से अथवा किसी अन्य कारणवश जब जसवन्तसिंह होल्कर ने महाराजा रणजीतसिंह से भारतवर्ष के नाम में सहायता की प्रार्थना की तो उसने सहायता देने के बदले उससे प्रार्थना की कि वह अंगरेजों से सन्धि कर ले। पंजाब में अब तक एक किवदन्ती प्रसिद्ध है कि "जसवन्तराव ने महाराजा रणजीतसिंह को लांछना देते हुए कहा कि यदि अपने एक विपत्तिग्रस्त अतिथि और देशवासी की ओर आपका यही धर्म-पालन है तो स्मरण रहे कि मेरे कुल में राज्य रह जायेगा, किन्तु आपके कुल की सत्ता का शीघ्र अन्त हो जायेगा।" यदि वह किवदन्ती सच है तो होल्कर की यह भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई। होलकर-कुल में राज्य अब तक चलता रहा, जब कि रणजीतसिंह का वंश शीघ्र ही समाप्त हो गया।

होल्कर से सन्धि :—महाराजा रणजीतसिंह का यह व्यवहार देख होल्कर को सन्धि स्वीकार करनी पड़ी। २४ दिसम्बर सन् १८०५ ई० को सन्धि हो गई जिसके अनुसार होल्कर का वह सारा राज्य, जिस पर अंगरेजों ने अधिकार कर लिया था, होल्कर को वापिस कर दिया गया और जसवन्तराव को अपने पूरे राज्य का स्वाधीन नरेश स्वीकार कर लिया गया।

वेलोर का गदर :—सर जार्ज के गवर्नर काल की दूसरी मुख्य घटना वेलोर का गदर था। उस गदर का एकमात्र कारण भारत में ईसाई मत प्रचार का उत्साह था। धीरे-धीरे यह उत्साह इस सीमा तक पहुँच गया कि भारतीय सेना को आज्ञा दी गई कि कोई सिपाही ड्यूटी पर या वर्दी पहने हुए अपना धार्मिक चिन्ह धारण न करे—जैसे तिलक आदि लगाना। इस पर जौलाई सन् १८०६ ई० की रात को वेलोर की छावनी के हिन्दुस्तानी सिपाही बिगड़ खड़े हुए। उन्होंने अपने कमांडिंग अफसर को मार दिया। बगावत शान्त कर दी गई और विद्रोहियों को कठोर दण्ड

दिया गया। टीपू सुल्तान के बेटे और उसके घर के अन्य लोग उस समय वेलोर में कैद थे। कहा गया कि उनका विद्रोह से अवश्य सम्बन्ध है, इसलिए उन्हें वेलोर से हटाकर बंगाल भेज दिया गया।

लार्ड मिन्टो का आगमन :—सन् १८०७ ई० में सर जार्ज बार्लो मद्रास का गवर्नर बना दिया गया और उसकी जगह लार्ड मिन्टो गवर्नर जनरल होकर आया।

कम्पनी की स्थिति :—लार्ड मिन्टो के आगमन के समय कम्पनी की दशा अत्यन्त शोचनीय थी। निरन्तर युद्ध के कारण राजकोष खाली हो चुका था। तीसरे मरहठा युद्ध की असफलता के कारण अंगरेजों की कीर्ति को भी धक्का पहुँचा था। अंगरेजी राज्य के अन्दर प्रजा दुखी एवं असंतुष्ट थी और डर था कि असन्तुष्ट प्रजा अपने विदेशी शासकों के विरुद्ध विद्रोह न कर बैठे। देश के अन्दर होल्कर, सिन्धिया तथा भौंसला जैसे प्रबल नरेशों के होते हुए इसकी और भी आशंका थी। सन् १८०७ ई० में यूरोप में टिलसिट के स्थान पर रूस के सम्राट और नैपोलियन के बीच सन्धि हुई, जिसमें इन दोनों सम्राटों ने भारत पर आक्रमण करने तथा उसे जीतकर आपस में बाँटने का निश्चय किया। इस प्रकार लार्ड मिन्टो के सामने बड़ी विकट परिस्थिति थी। मिन्टो ने इस परिस्थिति का धैर्यपूर्वक सामना किया, उसने सर्वप्रथम विदेशी संकट की ओर ध्यान दिया।

लार्ड मिण्टो तथा ईरान व अफगानिस्तान :—रूस तथा फ्रांस के भारत पर आक्रमण करने के दो ही मार्ग हो सकते थे। ईरान से होते हुए अथवा अफगानिस्तान के द्वारा। इसलिये इंगलैंड के मन्त्रियों ने रूस तथा फ्रांस के प्रयत्न को विफल करने के लिए जोन्स को इंग्लैंड का राजदूत नियुक्त करके ईरान भेजा। लार्ड मिण्टो ने सर जान मैलकम को उसकी सहायता के लिए रवाना किया। जोन्स के प्रयत्न से ईरान और इंग्लैंड में सन्धि हो गई। इसी बीच एक दूसरे राजदूत के प्रयत्न से जिसका नाम एलफिन्स्टन था और जो अफगानिस्तान भेजा गया था। अफगानिस्तान तथा अंग्रेजों के बीच में सन्धि हो गई; जिसके अनुसार एक-दूसरे ने एक दूसरे को संकट के समय सहायता देने का वचन दिया।

सिन्ध से सन्धि :—अफगानिस्तान तथा ईरान के अतिरिक्त लार्ड मिन्टो ने सिन्ध तथा पंजाब में अपने राजदूत भेजे। यह देश भी रूस तथा फ्रांस के जल तथा स्थल मार्ग में पड़ते थे। इसलिए इनसे मित्रता करना भी आवश्यक था। १३ अगस्त सन् १८०९ ई० को कम्पनी और सिन्ध के अमीरों के बीच एक सन्धि हो गई जिसके

नुसार दोनो सरकारों के बीच मित्रता तथा व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो गया। यह भी तय हुआ कि सिन्ध का एक राजदूत अंग्रेजो के यहाँ तथा अंग्रेजो का राजदूत सिन्ध में रहा करे और फ्रांसीसियो को सिन्ध में रहने की आज्ञा न दी जाये। इस प्रकार सिन्ध में अंग्रेजी एजेन्सी की स्थापना हो गई, जो शीघ्र ही अमीरो को ले डूबी।

लार्ड मिण्टो और महाराणा रणजीतसिंह —सतलज नदी के उस पार महाराणा रणजीतसिंह का राज्य था। वह नाम को काबुल के बादशाह का सामन्त था। रणजीतसिंह अनपढ किन्तु वीर और योग्य सेनापति था। उसमें दूरदर्शिता तथा नीतिज्ञता की कमी थी। अंग्रेज लोग पंजाब को मरहठा राज्य तथा अफगानिस्तान के बीच एक स्वतन्त्र राज्य रखना चाहते थे, जिससे दोनो के विरुद्ध उसे समयानुकूल प्रयोग किया जा सके। रणजीतसिंह स्वयं भी एक छोटे से स्वतन्त्र साम्राज्य का स्वामी बनना चाहता था। सन् १८०७ ई० में लार्ड मिण्टो का दूत सर चार्ल्स मेटकाफ रणजीतसिंह से जा मिला। उसने महाराजा को समझाया कि फ्रांसीसी पंजाब और अफगानिस्तान पर आक्रमण करना चाहते हैं। इसलिए उसे अंग्रेजो से सन्धि कर लेनी चाहिये। प्रारम्भ में सन्धि-वार्ता सफल न हो सकी, क्यो कि रणजीतसिंह सतलज और जमुना के मध्य स्थित सिक्ख रियासतो को अपने अधिपत्य में लेना चाहता था, जबकि अंग्रेज इसका विरोध कर रहे थे। परन्तु जब अंग्रेजो ने महाराजा को यह लाभ दिया कि वह अफगानिस्तान पर आक्रमण कर उत्तर और पश्चिम की ओर अपना साम्राज्य बढा लें और इसके बदले सतलज और जमुना के बीच का प्रदेश छोड दें तो उसकी समझ में आ गया। अत १८०६ ई० में रणजीतसिंह और अंग्रेजो के बीच सन्धि हो गई। इस प्रकार अपनी बाह्य स्थिति दृढ कर लार्ड मिण्टो देश के आन्तरिक संकट की ओर आकृष्ट हुआ।

मिण्टो तथा मरहठे :—१८०८ ई० में जसवन्तराव होल्कर बीमार पडा और एकाएक पागल हो गया। तुरन्त होल्कर दरबार में दो दल खडे हो गये। अन्त में अंग्रेजो के प्रयत्न से यह तय हुआ कि जसवन्तराव की उन्माद की अवस्था में उसकी रानी तुलसीबाई के नाम में अमीरखाँ, जो अंग्रेजो का मित्र तथा होल्कर का विश्वासपात्र था, राज्य का समस्त कारबार करे। थोडे दिनो बाद जसवन्तराव की मृत्यु हो गई और उसका दत्तक पुत्र मल्हारराव होल्कर गद्दी पर बैठा। तब भी राज्य की बागडोर अमीरखाँ के हाथ में ही रही। इस प्रकार अंग्रेजो के सौभाग्य से होल्कर की ओर से स्वत ही अंग्रेजो का भय दूर हो गया।

मिन्टो की तैयारी :—सन् १८१३ ई० में लार्ड मिण्टो वापस बुला लिया गया और उसकी जगह लार्ड हेस्टिग्ज भारत का गवर्नर जनरल बनाकर भेजा गया।

प्रश्न

१. सर जार्ज बार्लो ने किस प्रकार मरहठा राज्यों को अपनी पहली स्थिति पर पहुंचा दिया।

२. लार्ड मिन्टो ने फ्रांसीसी संकट का सामना करने के लिए क्या प्रयत्न किया।

अध्याय २२

साम्राज्य वृद्धि का द्वितीय युग

लार्ड हेस्टिंग्ज

(१८१३ ई०—१८२३ ई०)

✓ **सन् १८१३ ई० का चार्टर** :—कम्पनी के अधिकारों को जारी रखने के लिये पार्लियामेंट को हर बीस वर्ष बाद नया कानून पास करना पड़ता था जिसे चार्टर ऐक्ट कहते थे। १३१८ ई० में पिछले चार्टर को बीस वर्ष हो चुके थे इसलिए सन् १८१३ ई० मे पार्लियामेंट ने एक नया आज्ञापत्र प्रकाशित किया जिसे १८१३ ई० का चार्टर कहते हैं। कई वर्ष से नैपोलियन के कान्टीनेन्टल सिस्टम (Continental system) के कारण इग्लैंड की वस्तुओं के लिये योरुप का बाजार बन्द हो गया था इसलिये इस बात की आवश्यकता हो रही थी कि इस माल के लिये बाजार तलाश किया जावे। भारतवर्ष से अच्छा और कौन जगह हो सकता था। इसलिये इग्लैंड की गवर्नमेंट ने नवीन चार्टर से समस्त अंग्रेज व्यापारियों को भारत से व्यापार करने की आज्ञा दे दी परन्तु चीन के व्यापार का ठेका अगले २० वर्ष तक और ईस्ट इण्डिया कम्पनी को दे दिया गया। इस आज्ञापत्र से लाभ उठा कर इङ्गलैंड के व्यापारियों ने अपने देश का अच्छा व बुरा सब माल भारत में खपाना चाहा। इस चार्टर के अनुसार कम्पनी को एक लाख रुपया वार्षिक भारत में शिक्षा के लिए खर्च करना भी अनिवार्य हो गया।

भारतीय उद्योग-धन्धों का नाश :—अंग्रेजों के भारत आने से हजारों वर्ष पूर्व भारत के बने हुए कपडे और अन्य माल भारतवर्ष के बने हुए जहाजो में लदकर चीन, जापान, लंका, अरब, कम्बोडिया, मिश्र, इटली आदि सब देशों में जाते थे। उद्योग-धन्धों की दृष्टि से उस समय भारत संसार का सबसे उन्नत देश था। अपनी समृद्धि के कारण वह संसार में सोने की चिड़िया पुकारा जाता था।

१६ वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक हिन्दुस्तान का बना हुआ तरह-तरह का माल विशेषकर कपड़ा इङ्गलैंड में जाकर बिकता था, परन्तु १८१३ ई० के चार्टर के बाद अंग्रेज चाहते थे कि भारत इङ्गलैंड को कच्चा माल दे और उसके बदले वहाँ का बना हुआ माल खरीदा करे। इसका अर्थ था भारतीय उद्योग धन्धो पर वज्रपात

क्लाइव के समय
में
ब्रिटिश भारत।
ब्रिटिश भारत।

वेलेजली के समय
ब्रिटिश भारत।
डेलहौज़ी के समय
ब्रिटिश भारत
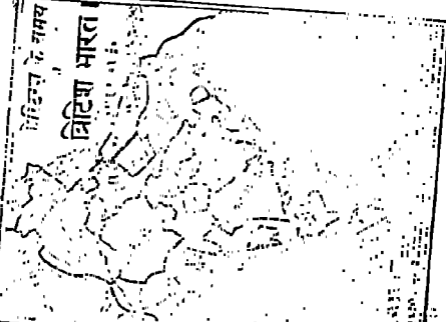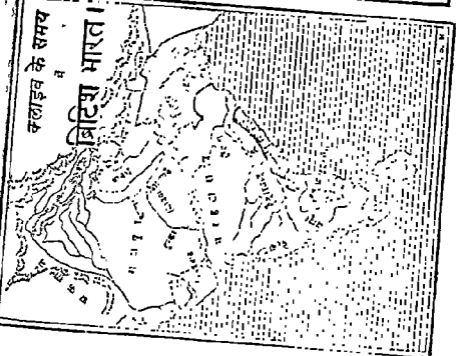
श्रौर इंगलैंड के धन्धों का प्रोत्साहन, वास्तव में यही हुआ। जो-जो मुख्य उपाय इस नीति को सफल बनाने में उपयोग किये गये, उन्हें संक्षेप में इस प्रकार कहा जा सकता है। इंगलैंड के बने हुए माल को नाममात्र महसूल पर या बिना महसूल भारत में आने दिया जाय और इंगलैंड में भारत के बने हुये माल पर इतना महसूल लगाया जावे कि वहां इंगलैंड के बने हुए माल से सस्ता न बिक सके।

भारत के अन्दर चुङ्गी के नियम तथा चुंगी की दर में इस प्रकार परिवर्तन किया जावे कि रुई इत्यादि कच्चा माल इंगलैंड भेजने म आसानी हो और उसे भारतवासियों को बेचने में कठिनाई हो जिससे भारत का बाजार भी भारत-व्यापार के लिए बन्द हो जाय। अंग्रेज व्यापारियों और कारीगरों को भारत में रहने और काम करने के लिए धन की सहायता और अन्य सुविधाएँ दी जाएँ, और भारतीय कारीगरों पर हर प्रकार का दबाव डालकर उनकी कारीगरी के रहस्यों का पता लगाया जावे।

उपरोक्त साधन इस कठोरता से प्रयोग में लाये गए कि धीरे-धीरे भारतीय उद्योग-धन्धों का सर्वनाश हो गया। श्री सुन्दरलाल जी ने "भारत में अंग्रेजी राज्य" प्रसिद्ध पुस्तक में भारतीय धन्धों के सर्वनाश का इतना स्पष्ट वर्णन दिया है कि पाठक के रोमांच खड़े हो जाते हैं और वह अंग्रेज व्यापारियों के चरित्र पर आश्चर्य चकित हो दांतों तले अंगुली दबालेता है। कहा जाता है कि माल पर चुंगी की दर ६० या ७० प्रतिशत से ६०० प्रतिशत तक कर दी गई। व्यापार-क्षेत्र में वीभत्स अत्याचार की दैनिक क्रियायें हो गईं। फल यह हुआ कि भारतवर्ष के सब उद्योग-धन्धे सर्वथा चौपट हो गये। क्या कपड़ा, क्या जहाजों का उद्योग, क्या लोहे के उद्योग-धन्धे, क्या कागज का व्यापार तथा क्या अन्य भिन्न-भिन्न धन्धे—सब का मलियामेट हो गया और उनके सर्वनाश पर हुआ—संसार में सभ्य कहलाने वाले इंगलैंड के उद्योग-धन्धों का उत्थान—जिसके परिणामस्वरूप सौ वर्ष के अन्दर ही धन-धान्य पूर्ण भारत संसार का सबसे निर्धन देश हो गया।

इसलिये हैस्टिग्ज गोरखों से छेड़-छाड करना चाहता था। परन्तु उसने युद्ध का प्रगट कारण दूसरा ही बनाया। सारन और गोरखपुर जिलों में भारत और नेपाल की सरहदें मिलती थी। १८१२ ई० के अन्त में सरहद की कुछ भूमि कम्पनी और नेपाल राज्य के बीच विवादग्रस्त थी। इसमें बुटवल और स्योराज नामक गांव मुख्य थे। इस प्रकार के विवाद जब कभी होते थे तो वह दोनों देशों के संयुक्त कमीशन के सुपुर्द कर दिये जाते थे। कमीशन का फैसला दोनों देशों को मान्य होता था। परन्तु इस बार हेस्टिंग्ज ने शान्तिपूर्वक मामले का निबटारा करने के बदले गोरखपुर से कम्पनी की सेना भेज कर उस भूमि पर अधिकार कर लिया। इस इलाके में कुछ थाने स्थापित कर अंग्रेजी सेना वापिस चली आई। हेस्टिंग्ज समझता था कि गोरखे उसकी इस अनधिकार चेष्टा को शांतिपूर्वक सहन कर लेंगे, परन्तु जब कुछ दिन बाद गोरखा-सेना ने नये अंग्रेजी थानों पर आक्रमण कर इस इलाके पर अधिकार कर लिया तो हेस्टिंग्ज को मामले की गम्भीरता का अनुभव हुआ। युद्ध के अतिरिक्त अब कोई चारा न था। दोनों राज्यों की सरहद बिहार में कोसी नदी से पंजाब में सतलज नदी तक लगभग ६०० मील तक मिलती थीं। गवर्नर जनरल ने इस सरहद पर पांच अलग-अलग स्थानों से पांच सेनाओं द्वारा आक्रमण का प्रबन्ध किया। एक जनरल आक्टर लोनी के नेतृत्व में लुधियाने से, दूसरी मेरठ से तीसरी बनारस से, चौथी मुर्शिदाबाद से तथा पांचवी कोसी नदी के तट से। यह सब सेनायें काठमांडू में मिलने के लिये थी। नेपाल दरबार ने भी उनका सामना करने के लिए बारह हजार सेना एकत्रित की; परन्तु उनके पास न इतने अच्छे हथियार थे और न इतना धन ही कि वे अधिक समय तक युद्ध संचालन कर सकते। फिर भी जिस वीरता से गोरखों ने अंग्रेजों का मुकाबिला किया वह संसार में चिरस्मरणीय रहेगी; वीर बलभद्रसिंह ने मेरठ से जाने वाली सेना के देहरादून मोरचे पर दांत खट्टे कर दिये। इस सेना का सेनापति जनरल जिलेस्पी युद्ध में काम आया। अन्य तीन सेनाओं का भी यही हुआ। केवल लुधियाने की ओर से जनरल आक्टर लोनी दृढ़तापूर्वक मालवां के प्रसिद्ध दुर्ग तक पहुँचा। यहाँ सरदार अमरसिंह ने टक्कर उसका सामना किया। इसी बीच आक्टर लोनी को और सहायता प्राप्त हो गई और मालवा के किले पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। इसी समय अवध के निकट कुमायूं और गढवाल के सहायक शासक नेपाल दरबार के विरुद्ध अंग्रेजों से मिल गये। इस प्रकार नेपाल साम्राज्य के दो सबसे अधिक उर्वर भाग अंग्रेजों के अधिकार में आ गये। लाचार होकर १८१५ ई० में नेपाल राज्य को सन्धि करनी पड़ी जो सिगौली की सन्धि के नाम से प्रसिद्ध है।

सिगौली की सन्धि :—इस सन्धि के अनुसार नैपाल नरेश ने गढ़वाल और कुमायूं के जिले अंग्रेजों को देना स्वीकार कर लिया। तराई का बहुत बड़ा भाग भी उसने अंग्रेजों के लिये खाली कर दिया। काठमांडू में एक अंग्रेज रेजीडेण्ट रहने लगा और गोरखों ने वचन दिया कि वह भविष्य में अंग्रेजों के साथ मित्रतापूर्वक व्यवहार करेंगे। इस सन्धि से अंग्रेजों को बड़ा लाभ हुआ। उन्हें १ करोड़ रुपया वार्षिक का प्रान्त प्राप्त हो गया। इसके अतिरिक्त ग्रीष्म के लिये नैनीताल मसूरी इत्यादि रमणीक स्थान प्राप्त हो गये।

कच्छ, हाथरस तथा मुरसान :—सिन्ध के दक्षिण तथा काठियावाड़ के उत्तर-पश्चिम में कच्छ, एक छोटा-सा स्वाधीन राज्य था। नैपाल युद्ध के समय कच्छ के डाकुओं ने काठियावाड़ के किसी हिस्से में डाका डाला। काठियावाड़ के राजा अंग्रेजों के मित्र थे। हेस्टिंग्ज ने मित्र-भलाई का बहाना ले कच्छ पर आक्रमण कर दिया और उस पर विजय प्राप्त कर अपने संरक्षण में ले लिया।

इसी प्रकार हाथरस और मुरसान नामक जाट रियासतों पर अधिकार प्राप्त किया गया। इन रियासतों पर आक्रमण करने के लिए अंग्रेजों के पास कोई बहाना न था। हाथरस का किला हिन्दुस्तान के प्रसिद्ध किलों में से था १८१७ ई० के प्रारम्भ में अचानक कम्पनी की सेना ने पहुँच कर चारों ओर से हाथरस के किले को घेर लिया और राजा दयाराम से कहा गया कि वह कुछ अंग्रेज अफसरों को किला अन्दर से देख लेने दें, जिससे कि भरतपुर का किला विजय करने में सहायता मिल जाये। क्योंकि हाथरस का किला भी भरतपुर के नमूने का बना हुआ था। हाथरस और भरतपुर में मित्रता थी, इसलिये राजा ने इस मांग को पूरा करने से इन्कार कर दिया। इसलिये किले पर गोलाबारी शुरू कर दी गई। जब राजा ने देखा कि किला उसके हाथ में नहीं रह सकता तो वह रात्रि को उसे छोड़कर चला गया। इस प्रकार हाथरस पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया।

मुरसान के राजा भगवन्तसिंह ने जब देखा कि हाथरस पर अंग्रेजों का कब्जा हो गया है तो उसका साहस टूट गया। इसलिए उसने बिना लड़े ही किला और राज्य कम्पनी को दे दिये।

हेस्टिंग्ज और पिण्डारी :—नैपाल युद्ध के समाप्त होने पर हेस्टिंग्ज की साम्राज्य पिपासा और अधिक बढ़ गई। और उसने मरहठा-साम्राज्य को अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित करने का दृढ़ संकल्प किया। परन्तु युद्ध घोषित करने से पूर्व उसने मरहठों की सैन्य शक्ति को कम करना चाहा। यह उनके अत्यन्त विश्वास-पात्र

तथा वीर सेनानी पिण्डारियो का दमन करके हो सकती थी। इसलिए मरहठों से छेड़-छाड करने से पूर्व हेस्टिंग्ज ने पिण्डारियो को नष्ट करना चाहा।

पिण्डारियो को अग्रेजो ने डाकू और लुटेरे कहकर बदनाम किया है। वास्तव में पिंडारी दक्षिण भारत की एक पठान जाति थी। वे लोग प्रारम्भ से ही दक्षिण के भारतीय नरेशो के यहां सेना में सवार होते थे। इनके पास अपने घोड़े होते थे। हजारो पिंडारी मरहठो की सेनाओ में नौकर थे और मरहठो के सबसे अधिक विश्वस्त और वीर सेनानियो में गिने जाते थे, इनकी स्वय ही पलटनें होती थी और उनमें हिन्दू सैनिक भी भर्ती कर लिये जाते थे। इनके तीन प्रमुख सरदार थे—अमीरखां, करीमखां और चीतू। अमीरखां होल्कर के यहां उच्च पदाधिकारी था और जसवन्तराव होल्कर की मृत्यु के बाद नाबालिग राजा मल्हाराव का शासन भार वहन कर रहा था। करीमखां और चीतू दौलतराव सिंधिया की सेना में रह चुके थे। इनका मुख्य पेशा खेती बाडी था। कम्पनी के अफसरो ने स्वयं उन्हें उकसा कर मरहठो और राजपूतो विशेषकर जयपुर इत्यादि के इलाके इनसे लुटवाये थे। कम्पनी के इलाके पर आक्रमण करने के दो उदाहरण प्राप्त हैं। एक १८०८—९ में गुजरात के किसी भाग पर, दूसरा १८१२ ई० में मिर्जापुर और शाहबाद में।

वास्तव में मरहठो की इस उच्च सैनिक शक्ति को तोडने के लिए अग्रेजों ने पिंडारियो को डाकू और हत्यारे कहकर दबाना चाहा। पिंडारियो से झगडा मोल लेने के लिए सन् १८१५ ई० में अग्रेज सेना की एक टुकडी ने बिना गवर्नर की आज्ञा के पिंडारियो के एक जत्थे पर आक्रमण कर दिया। इससे क्रुद्ध होकर पिंडारियो ने कृष्णा नदी के किनारे-किनारे समस्त अग्रेजी राज्य में लूट-मार प्रारम्भ कर दी। यह देख हेस्टिंग्ज ने इनको दमन करने के लिए चारो ओर विशाल सैन्य संगठन आरम्भ कर दिये। यह सैन्य सगठन वास्तव में पिंडारियो के दमन के लिये नही वरन् मरहठा-साम्राज्य पर आक्रमण करने के लिये थे। पिंडारियो का दमन केवल एक बहाना था।

कई स्थानो पर पिंडारियो तथा कम्पनी की सेनाओ में मुठभेड हुई, अन्त में पिंडारी परास्त हुये और जो पिंडारी सरदार अपने साथियो के साथ विश्वासघात करके अग्रेजो से मिल गये, उन्हें जागीर दे दी गई। करीमखां को रियासत टोंक मिली। चीतू जगल में भाग गया, कहा जाता है वहा एक चीते ने उसे फाड डाला।

चौथा मरहठा युद्धः—मरहठा सघ के पाँच प्रमुख सदस्य थे—पेशवा सिंधिया, होल्कर, भोंसला और गायकवाड। गुजरात का गायकवाड इस सघ से पहले ही पृथक् हो अगरेजो से मिल गया था। अब केवल चार रह गये थे।

सिंधिया से नई सन्धि :—सिन्धिया को हेस्टिंग्ज ने बिना युद्ध ही नीचा दिखाया। सन् १८०७ ई० की सन्धि के अनुसार यह तै पाया था कि जयपुर, जोधपुर आदि राजपूताने की रियासतें सिन्धिया की सामन्त रियासतें समझी जायेंगी और अगरेजी को उनसे कोई पत्र-व्यवहार करने का अधिकार न होगा। परन्तु लार्ड हेस्टिंग्ज ने इस सन्धि की कोई परवाह न करते हुए सन् १८१७ ई० में कर्नल टाड को मेवाड, मारवाड, जयपुर, कोटा और बूंदी की पाच रियासतों के लिए कम्पनी का एजेण्ट नियुक्त किया। टाड अत्यन्त कुशल राजनीतिज्ञ और विद्वान् था। उसने राजपूतों को बढाकर उनके हृदय में मरहठो और मुसलमानों के प्रति बहुत घृणा पैदा कर दी और सिन्धिया को बिना पता दिये उसने इन रियासतो से सहायक सन्धि करली, परन्तु सन्धि को सिंधिया से स्वीकृत कराना आवश्यक था। इसके लिये हेस्टिंग्ज ने इन रियासतो में भेजी हुई सहायक सेनायें सिंधिया साम्राज्य के उत्तरी भाग में एकत्रित करली और तब सिन्धिया से इस सन्धि को स्वीकार करने की प्रार्थना की। इस प्रकार अपने राज्य को कम्पनी की सेनाओ से घिरा देख सिन्धिया ने नये सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये।

पेशवा का अन्त :—सन् १७५१ में दूमाजी गायकवाड और पेशवा बालाजीराव में एक सन्धि हुई थी, जिसके अनुसार उक्त गायकवाड ने गुजरात का आधा भाग पेशवा को दे दिया था। पेशवा ने अपने इस इलाके का मियादी पट्टा गायकवाड के ही नाम लिख दिया। जिसके बदले दूमाजी गायकवाड ने सवा पाँच लाख रुपया पेशवा को दे दिया था। इस समय पट्टे की अवधि समाप्त होने वाली थी इसलिये पट्टे को बदलवाने तथा पिछला सब हिसाब साफ कराने के लिये बडौदा दरबार ने गगाधर शास्त्री नामक एक चतुर ब्राह्मण को पूना भेजा। गगाधर शास्त्री के पूना पहुँचते ही वहाँ के अगरेज रेजीडेण्ट एलफिन्सटन ने उससे मिलकर पेशवा के विरुद्ध षड्यन्त्र करने आरम्भ कर दिये। पेशवा का एक मन्त्री त्र्यम्बकजी ने उसकी चालो को सफल न होने दिया। इसलिये त्र्यम्बकजी को दण्ड देने की योजना बनाने में एलफिन्सटन रत रहने लगा। इसी बीच में एक दिन गगाधर पेशवा के साथ तीर्थयात्रा को गया। वहाँ १४ जौलाई १८१५ ई० को कुछ अपरिचित लोगो ने शास्त्री का वध कर दिया। अगरेजो ने पेशवा तथा उसके साथी त्र्यम्बकजी को इस हत्या का दोषी ठहराया और पेशवा से त्र्यम्बकजी को अपने हवाले करने को कहा, परन्तु पेशवा ने उसको देने से मना कर दिया। इस पर एलफिन्सटन ने पूना को घेरने की धमकी दी। पेशवा डर गया और उसने अपने प्रिय मन्त्री त्र्यम्बकजी को अ

के हवाले कर दिया। त्र्यम्बकजी पहले थाने के किले में और बाद में चुनार के किले में कैद रक्खा गया। यहीं उसने घुल-घुल कर प्राण त्याग दिये।

त्र्यम्बकजी को इस प्रकार समाप्त करने के बाद अग्रेजों ने पेशवा का अन्त करने की सोची। उन्होंने पेशवा पर यह दोष लगाया कि गंगाधर शास्त्री के वध में उसका स्वयं ही हाथ था। इस अपराध के बदले उससे उसके राज्य का अधिकांश उर्वर प्रान्त मांगा गया और संगीनों के बल पर वह पेशवा से ले लिया गया। परन्तु पेशवा को विश्वास हो गया कि अंगरेज उसे समाप्त कर देने पर उतारू है। इसीलिये उसने सैनिक तैयारियाँ प्रारम्भ कर दी। अंग्रेज रेजीडेण्ट एलफिंसटन इस समय किर्की चला गया। बाजीराव की फौज ने रेजीडेन्सी को फूंक दिया और किर्की पर आक्रमण कर दिया। अंग्रेजों ने तुरन्त पेशवा पर आक्रमण कर दिया परन्तु प्रधान सेनापति बापू गोखले की वीरता तथा युद्ध-कौशल भी पराजय को न रोक सके। इसके बाद अष्टी के स्थान पर उसकी दोबारा हार हुई और बापू गोखले मारा गया। विवश होकर पेशवा को सन्धि करनी पड़ी जिसके अनुसार पेशवा राज्य अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया और बाजीराव को आठ लाख रुपया वार्षिक पेंशन देकर कानपुर के निकट बिठूर नामक स्थान पर रहने की आज्ञा हुई।

हेस्टिंग्ज और भोंसला राज्य।—दूसरे मरहठा-युद्ध के समय राघोजी भोंसला नागपुर का राजा था। नागपुर के रेजीडेण्ट ने बार बार जोर डाला कि वह कम्पनी के साथ सहायक सन्धि करले। परन्तु राघोजी ने जीते जी कम्पनी के साथ इस प्रकार का सम्बन्ध स्वीकार न किया। १८१६ ई० में राघोजी की मृत्यु हो गई उसके बाद उसका पुत्र परसाजी नागपुर की गद्दी पर बैठा। वह कुछ कमजोर था जिसके कारण वह शासन-कार्य चलाने के अयोग्य था। इसलिये राघोजी भोंसला ने मरते समय अपने एक भतीजे अप्पा साहब को शासन कार्य चलाने के लिये नियुक्त किया था। फल-स्वरूप अप्पा साहब ने समस्त शासन कार्य सभाल लिया। अब हेस्टिंग्ज ने अंग्रेज रेजीडेण्ट जेनकिन्स को लिखा कि वह किसी न किसी प्रकार अप्पा साहब को सब्सीडियरी सन्धि के जाल में फँसाने का प्रयत्न करे। २४ अप्रैल सन् १८१६ ई० को ठीक आधी रात के समय किसी प्रकार अप्पा साहब को घर और डरा कर उससे परसाजी की ओर से सहायक सन्धि पर हस्ताक्षर करा लिये। सन्धि के अनुसार अप्पा साहब ने राजा की अधिकांश सेना को भंग कर कम्पनी की सहायक सेना रखना स्वीकार कर लिया और उसके खर्चे के लिये २० लाख से ३० लाख रुपया वार्षिक तक देने का वचन दिया। इस समय नागपुर में दो दल थे—एक दल भोंसला और पेशवा में मेल करवाना चाहता था, दूसरा अंग्रेजों की अध्यक्षता में

अप्पा साहब को सामने करके इस मित्रता का विरोध कर रहा था। प्रथम दल अप्पा साहब द्वारा की गई सहायक सन्धि के विरुद्ध था, क्योंकि इस दल की सन्ख्या प्रतिदिन बढती जा रही थी। इसलिये अंग्रेजों को डर हुआ कि कहीं किसी दिन यह दल इस सन्धि को रद्द कराने का प्रयत्न न करे। इसी बीच फरवरी सन् १८१७ ई० को, जब अप्पा साहब किसी कार्यवश नागपुर से बाहर गया हुआ था, पुरुणाजी अपने बिस्तरे पर मरा पाया गया। यद्यपि समस्त नागपुर में चर्चा फैल गई कि हत्या का अपराधी रेजीडेण्ट जेन्किन्स है तो भी गवर्नर जनरल ने इसकी कोई परवाह न की।

पुरुणाजी की मृत्यु के बाद अप्पा साहब नागपुर की गद्दी पर बैठा परन्तु अब उसे स्वयं सहायक सन्धि का बोझ असह्य प्रतीत हुआ क्योंकि राज्य की कुल आय ६० लाख रुपया थी। इस सन्धि के अनुसार ३० लाख रुपया कंपनी की सहायक सेना को देना निश्चित हो गया था। उसने गवर्नर जनरल को सन्धि संशोधन करने को लिखा परन्तु हेस्टिंग्ज ने कोई परवाह न की। इसके बदले सैनिक तैयारियाँ आरम्भ कर दी। यह देख अप्पाजी ने रेजीडेन्सी पर आक्रमण कर दिया। अंग्रेजों ने बाल-बच्चों सहित सीता-वरदी की पहाड़ी पर शरण ली। भोंसला की सेना के एक भाग ने वहाँ भी उनका पीछा किया। परन्तु इसी समय अंग्रेजों की सहायता के लिये और अंग्रेजी फौज आ गई और भोंसला सेनायें पराजित हुई। नागपुर के पास दूसरी लड़ाई में भी अप्पा साहब की हार हुई और उसने आत्म समर्पण कर दिया। उसे राज्य से उतार दिया गया और भोंसला राज्य का लगभग आधा अत्यन्त उपजाऊ भाग कंपनी ने अपने राज्य में मिला लिया और शेष भाग राघोजी भोंसले के एक वंशज को दे दिया गया जो अभी दूध पीता बच्चा ही था। उसकी नाबालगी में राज्य का शासन रेजीडेण्ट के सुपुर्द कर दिया गया। अप्पा साहब पर पुरुणाजी की हत्या का दोष लगाया गया और फैसला किया गया कि उसे इलाहाबाद के किले में कैद रक्खा जाये। परन्तु जब वह इलाहाबाद ले जाया जा रहा था, तो मार्ग

के हवाले कर दिया। त्र्यम्कजी पहले थाने के किले में और बाद में चुनार के किले में कैद रक्खा गया। यहीं उसने घुल-घुल कर प्राण त्याग दिये।

त्र्यम्बकजी को इस प्रकार समाप्त करने के बाद अंग्रेजों ने पेशवा का अन्त करने की सोची। उन्होंने पेशवा पर यह दोष लगाया कि गंगाधर शास्त्री के वध में उसका स्वयं ही हाथ था। इस अपराध के बदले उससे उसके राज्य का अधिकांश उर्वर प्रान्त माँगा गया और सगीनों के बल पर वह पेशवा से ले लिया गया। परन्तु पेशवा को विश्वास हो गया कि अंगरेज उसे समाप्त कर देने पर उतारु हैं। इसीलिये उसने सैनिक-तैयारियाँ प्रारंभ कर दीं। अंग्रेज रेजीडेण्ट एलफिन्सटन इस समय किर्की चला गया। बाजीराव की फौज ने रेजीडेन्सी को फूँक दिया और किर्की पर आक्रमण कर दिया। अंग्रेजों ने तुरन्त पेशवा पर आक्रमण कर दिया परन्तु प्रधान सेनापति बापू गोखले की वीरता तथा युद्ध-कौशल भी पराजय को न रोक सके। इसके बाद अष्टी के स्थान पर उसकी दोबारा हार हुई और बापू गोखले मारा गया। विवश होकर पेशवा को सन्धि करनी पड़ी जिसके अनुसार पेशवा-राज्य अंग्रेजी-राज्य में मिला लिया गया और बाजीराव को आठ लाख रुपया वार्षिक पेंशन देकर कानपुर के निकट बिठूर नामक स्थान पर रहने की आज्ञा हुई।

हेस्टिंग्ज और भोंसला राज्यः—दूसरे मरहठा-युद्ध के समय राघोजी भोंसला नागपुर का राजा था। नागपुर के रेजीडेण्ट ने बार बार जोर डाला कि वह कम्पनी के साथ सहायक सन्धि करले। परन्तु राघोजी ने जीते जी कम्पनी के साथ इस प्रकार का सम्बन्ध स्वीकार न किया। १८१६ ई० में राघोजी की मृत्यु हो गई उसके बाद उसका पुत्र पुरुपाजी नागपुर की गद्दी पर बैठा। वह कुछ कमजोर था जिसके कारण वह शासन-कार्य चलाने के अयोग्य था। इसलिये राघोजी भोंसला ने मरते समय अपने एक भतीजे अप्पा साहब को शासन कार्य चलाने के लिये नियुक्त किया था। फल-स्वरूप अप्पा साहब ने समस्त शासन कार्य संभाल लिया। अब हेस्टिंग्ज ने अंग्रेज रेजीडेण्ट जेनकिन्स को लिखा कि वह किसी न किसी प्रकार अप्पा साहब को सब्सीडियरी सन्धि के जाल में फँसाने का प्रयत्न करें। २४ अप्रैल सन् १८१६ ई० को ठीक आधी रात के समय किसी प्रकार अप्पा साहब को घर और डरा कर उससे पुरुपाजी की ओर से सहायक सन्धि पर हस्ताक्षर करा लिये। सन्धि के अनुसार अप्पा साहब ने राजा की अधिकांश सेना को भंग कर कम्पनी की सहायक सेना रखना स्वीकार कर लिया और उसके खर्चे के लिये २० लाख से ३० लाख रुपया वार्षिक तक देने का वचन दिया। इस समय नागपुर में दो दल थे—एक दल भोंसला और पेशवा में मेल करवाना चाहता था, दूसरा अंग्रेजों की अध्यक्षता में

अप्पा साहब को सामने करके इस मित्रता का विरोध कर रहा था। प्रथम दल अप्पा साहब द्वारा की गई सहायक सन्धि के विरुद्ध था, क्योंकि इस दल की सख्या प्रतिदिन बढती जा रही थी। इसलिये अग्रेजो को डर हुआ कि कहीं किसी दिन यह दल इस सन्धि को रद्द कराने का प्रयत्न न करे। इसी बीच फरवरी सन् १८१७ ई० को, जब अप्पा साहब किसी कार्यवश नागपुर से बाहर गया हुआ था, पुरुपाजी अपने बिस्तरे पर मरा पाया गया। यद्यपि समस्त नागपुर में चर्चा फैल गई कि हत्या का अपराधी रेजीडेण्ट जेंकिन्स है तो भी गवर्नर जनरल ने इसकी कोई परवाह न की।

पुरुपाजी की मृत्यु के बाद अप्पा साहब नागपुर की गद्दी पर बैठा परन्तु अब उसे स्वय सहायक सन्धि का बोझ असह्य प्रतीत हुआ क्योंकि राज्य की कुल आय ६० लाख रुपया थी। इस सन्धि के अनुसार २० लाख रुपया कपनी की सहायक सेना को देना निश्चित हो गया था। उसने गवर्नर जनरल को सन्धि सशोधन करने को लिखा परन्तु हेस्टिंग्ज ने कोई परवाह न की। इसके बदले सैनिक तैयारियाँ प्रारम्भ कर दी। यह देख अप्पाजी ने रेजीडेन्सी पर आक्रमण कर दिया। अग्रेजों ने बाल-बच्चों सहित सीता-बल्दी की पहाड़ी पर शरण ली। भोंसला की सेना के एक भाग ने यहाँ भी उनका पीछा किया। परन्तु इसी समय अग्रेजो की सहायता के लिये और अग्रेजी फौज आ गई और भोंसला सेनायें परास्त हुई। नागपुर के पास दूसरी लडाई में भी अप्पा साहब की हार हुई और उसने आत्म समर्पण कर दिया। उसे राज्य से उतार दिया गया और भोंसला राज्य का लगभग आधा अत्यन्त उपजाऊ भाग कपनी ने अपने राज्य में मिला लिया और शेष भाग राघोजी भोंसले के एक वशज को दे दिया गया जो अभी दूध पीता बच्चा ही था। उसकी नाबालगी में राज्य का शासन रेजीडेण्ट के सुपुर्द कर दिया गया। अप्पा साहब पर पुरुपाजी की हत्या का दोष लगाया गया और फैसला किया गया कि उसे इलाहाबाद के किले में कैद रक्खा जाये। परन्तु जब वह इलाहाबाद ले जाया जा रहा था, तो राचूरी नामक स्थान पर अपनी गारद की आँख बचा कर वह भाग निकला और बहुत दिन तक इधर उधर फिरता रहा। अन्त में वह जोधपुर पहुँचा और शेष जीवन जोधपुर नरेश के अतिथि के रूप में व्यतीत किया। यद्यपि अग्रेजों ने उसे बार बार माँगा परन्तु जोधपुर के महाराजा ने उसे देने से इन्कार कर दिया। यहीं पर उसकी मृत्यु होगई।

हेस्टिंग्ज और होल्कर :—जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है जसवन्तराव होल्कर की मृत्यु के बाद मल्हाराव होल्कर इन्दौर की गद्दी पर बैठा था और अग्रेजो का विश्वासपात्र अमीरखाँ शासन का सारा कार्य करता था। अगरेजों की तोड़-फोड़ की नीति से इन्दौर में दिन प्रति दिन कुशासन और अराजकता बढ़ती

जा रही थी। एक दिन अफगान सरदारो ने जसवन्तराव होल्कर की रानी तुलसीबाई का वध कर दिया। इससे व्यवस्था और भी खराब हो गई। ऐसी दशा में लार्ड हेस्टिंग्ज ने होल्कर राज्य पर आक्रमण कर दिया। दिसम्बर सन् १८१७ ई० में महीदपुर नामक स्थान पर राजा की सेना और कपनी की सेना में युद्ध हुआ। होल्कर सेना अत्यन्त वीरता से लडी परन्तु सेनापति अब्दुलगफ्फारखाँ के विश्वासघात के कारण परास्त हुई और माण्डेश्वर के स्थान पर मल्हाराव होल्कर की ओर से कपनी के साथ सहायक सन्धि कर ली गई और होल्कर का बहुत-सा राज्य अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया। अब्दुलगफ्फारखाँ को अपनी सेवा के बदले मालवा में जाओरा की रियासत मिली।

मरहठा-साम्राज्य के पतन के कारण :—मरहठा राज्य के पतन का प्रथम कारण यह था कि उन्होने सैन्य-सचालन व सगठन की ओर ध्यान देना बन्द कर दिया। उन्होने यह देखने का कभी प्रयत्न न किया कि ससार का विज्ञान नये शस्त्र बना कर प्रगतिशील देशो को शक्तिशाली बना रहा है और इसीलिये वे भी यदि दूसरे समकालीन देशो की बराबरी करना चाहते हैं तो उन शस्त्रो से अपने को सुसज्जित करें। पेशवा बाजीराव प्रथम ने जब पुर्तगाली लोगो से बेसीन का प्रदेश जीता था, वहा पुर्तगालियो ने तोप, बन्दूक बनाने के कारखाने बना रक्खे थे। यद्यपि मरहठो ने यह सब देखा तो भी उनकी आँखें न खुली कि ससार के उन्नत देश किस प्रकार युद्ध के शस्त्र बनाकर अपने आपको सबल बनाने का निरन्तर प्रयत्न कर रहे हैं। नये कारखाने खोलना तो अलग रहा, उन कारखानो को भी जो उन्हें बेसीन में मिले, वह जारी न रख सके। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि सैनिक विज्ञान की ओर से मरहठे कितने उदासीन थे।

बाबर ने भारतवर्ष को तोपखाने के बल पर जीता, योरुपीय जातियाँ भी तोपखाने का प्रयोग भली भाँति जानती थी। इसकी सहायता से उन्होने अपनी शक्ति और व्यापार ससार के समस्त देशो में अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक बढाया। मरहठो ने यह सब देखा, परन्तु फिर भी तोप बनाने की कला की ओर वे सर्वथा उदासीन रहे। माहदजी सिंधिया जैसे योग्य पुरुष और नाना फडनवीस जैसे योग्य राजनीतिज्ञो ने भी क्या इस ओर ध्यान नही दिया ? समझ में नही आता। ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ निर्मूल धार्मिक व जातीय बन्धनो ने इन्हे इस ओर प्रवृत्त होने से रोका है। क्योकि मशीन पर काम करना, इजन चलाना इत्यादि ऐसे कार्य हैं जिन्हें कुछ निम्न समझा जाता था। इस प्रकार युद्ध के एक प्रबल शस्त्र के लिये वे विदेशियो पर ही निर्भर रहते रहे। चूँकि मरहठो का गुरिल्ला युद्ध तोपखाने व पैदल पलटन के सम्मुख

सफलता प्राप्त न कर सका था इस कारण लोप हो गया और चूँकि कोई अन्य युद्ध-कला उसकी स्थानपूर्ति को न आई, इसलिये मरहठे अशक्त होते चले गये। पेशवाओं ने पूना में विज्ञान के प्रभाव से तोपखानों की स्थापना की, परन्तु उनका यह प्रयत्न असफल रहा। क्योंकि पर्याप्त संख्या में मरहठे पैदल फौज में भरती न हो सके, जिससे तोपखाने का सफल प्रयोग किया जा सके और उनकी जगह पर यह प्रबल अस्त्र विदेशियों के हाथों में दे दिया गया जो सदैव अपने महाद्वीप के लोगों से (अर्थात् यूरोपीय लोगों से) सहानुभूति रखते रहे। यह सब देखकर एक दूरदर्शी पुरुष कह सकता था कि अपनी वीरता के होते हुये भी मरहठे अंग्रेजों के विरुद्ध अन्त में सफलता प्राप्त नहीं कर सकेंगे।

मरहठे प्रकृति से ही नियन्त्रण पसन्द नहीं करते। सामूहिक प्रयत्न के प्रति भी वे उदासीन रहे, सफल सैनिक के लिये नियन्त्रण और सामूहिक प्रयत्न की कितनी आवश्यकता है, वर्णन नहीं की जा सकती। यदि सैनिक अपनी-अपनी स्वतन्त्र योजना पर काम करें और अपने सेनापति की आज्ञा की अवहेलना करें तो कितनी ही वीर सेना क्यों न हो अधोगति को प्राप्त होगी। पानीपत की तीसरी लड़ाई तथा अन्य युद्धों पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होगा कि जब भी मरहठे किसी भी युद्ध में पराजित हुए तो इसका मूल कारण उनका सैनिक नियन्त्रण में न रहना व विभक्त सैन्य सचालन था। मरहठा शासन-प्रणाली इस दोष के लिये उत्तरदायी है। जागीरदार प्रथा से वे इतने स्वच्छन्द और स्वतन्त्रता-प्रिय तथा स्वार्थी हो गये कि वह दोष की सीमा पर पहुँच गया, जिससे कि जब कभी समस्त मरहठा-साम्राज्य पर भी सकट आया तो वे एक न हो सके। पेशवा, सिंधिया, होल्कर कभी अंग्रेजों के विरुद्ध एक सम्मिलित योजना न बना सके। फलस्वरूप एक के बाद दूसरा परास्त होता चला गया। यशवन्तराय होल्कर सदैव अकेला ही रहा और अन्त में जब अंग्रेजों ने सिंधिया और भोंसला को परास्त कर उस पर आक्रमण किया तो उसकी आँखें खुलीं और उसने मरहठा सरदारों को एक होने व अंग्रेजों के विरुद्ध सामूहिक कार्यवाही करने की प्रार्थना की, परन्तु यह विलम्बपूर्ण था और अब कुछ न हो सकता था।

समय का कुछ ऐसा चक्कर आया कि इस समय मरहठा-सघ में योग्य नेताओं का सर्वथा अभाव हो गया। महादाजी सिंधिया अगस्त १७९५ ई० में ससार से चल बसे। दूसरी ओर माधवराव नारायण का देहान्त अक्टूबर १७९५ ई० में हो गया। नाना फड़नवीस १८०० ई० के आरम्भ काल में देहान्त कर गये। इन द्रामपरचयेठो की और कोई योग्य अनुभवी पुरुष न रहा। जब कि अंग्रेज

लोगों में से एक से एक योग्य व्यक्ति जैसे लार्ड वैलेजली व उसका भाई सर आर्थर वैलेजली, लार्ड लेक इत्यादि इस समय भारत में आये।

उपरोक्त कारणों के साथ-साथ हम यह भी देखते हैं कि मरहठा सैनिक शक्ति, राजनीति और बाह्यज्ञान में अंग्रेजों से बहुत कम थे। प्रथम युद्ध में ही अंगरेजों को मरहठा राज्य की पूर्ण सूचना थी। उनका गुप्तचर विभाग मरहठा की सेना उनके पारस्परिक सम्बन्ध, उनके पारिवारिक संघर्ष और भिन्न-भिन्न जागीरदारों की स्थिति की पूर्ण सूचना अंगरेजों को दे चुका था। अंगरेज हर एक सूचना प्राप्त करने और उनसे लाभ उठाने के लिये सदैव तैयार रहते थे। इसके प्रतिकूल मरहठों को अंगरेजों की किसी बात का भी पता न था। उन्हें इंग्लैंड, वहाँ के शासन प्रबंध, अंगरेजों के उपनिवेश, उनके चरित्र, विचार और युद्ध-सामग्री इत्यादि की कुछ भी सूचना न थी। इस सूचना के बल पर अंगरेज अपनी पूर्ण तैयारी कर सकते थे, जब कि मरहठे सदैव अन्धकार में रहते थे। उपरोक्त कारणों से मरहठा सत्ता शीघ्र ही भारत में समाप्त हो गई।

हेस्टिंग्ज की वापसी:—इस प्रकार मरहठा-शक्ति को क्षीण कर १८२३ ई० में हेस्टिंग्ज इंग्लैंड वापस गया। कम्पनी के डाइरेक्टरों ने उस मरहठा विजय के उपलक्ष्य में ६० हजार पौंड इनाम दिये।

प्रश्न

१. सन् १८१३ ई० के चार्टर एक्ट पर एक टिप्पणी लिखो।
२. अंग्रेजों ने भारतीय उद्योग धंधों का सर्वनाश कैसे किया?
३. नेपाल युद्ध के क्या कारण थे—इसका क्या परिणाम हुआ?
४. लार्ड हेस्टिंग्ज ने मरहठों की शक्ति को कैसे तोड़ा?
५. मरहठों के पतन के क्या कारण थे?

अध्याय २३

ब्रह्मा-विजय का सूत्रपात

लार्ड एमहर्स्ट

(१८२३—२७)

एमहर्स्ट और ब्रह्मा की पहली लड़ाई (१८२४—२६ ई०) :— हेस्टिंग्ज के बाद लार्ड एमहर्स्ट गवर्नर जनरल नियुक्त हुआ। अपने आने के कुछ ही महीने बाद उसने ब्रह्मा से युद्ध आरम्भ कर दिया। सर जान शोर के शासन-काल तक ब्रह्मा के राजा और अंग्रेजों के बीच किसी प्रकार का झगड़ा नहीं हुआ और भारतीय तथा अंग्रेज व्यापारी सहर्ष रगून में व्यापार करते रहे। इसके पश्चात् दोनों में वैमनस्य बढ़ने लगा। लार्ड वेलेजली के शासन-काल में लगभग तीस हजार ब्रह्मा-निवासी अराकान से भागकर चटगाँव में बस गये। ब्रह्मा के राजा ने अंग्रेजों को उनके लौटा देने को लिखा, परन्तु उन्होंने ऐसा करने से मना कर दिया। लार्ड मिण्टो के शासन काल में चटगाँव के निवासियों ने किंग बेरिंग (King Berring) अंग्रेज के नेतृत्व में कई बार अराकान पर आक्रमण किया और बहुत-सा सामान लूट कर ले आये। ब्रह्मा के राजा ने लार्ड मिण्टो से इसकी शिकायत की, परन्तु उसने कोई ध्यान न दिया। किंग बेरिंग की मृत्यु के बाद भी यह आपत्ति समाप्त न हुई, उसके स्थान पर अब उसी तरह के और लोग खड़े हो गये और ब्रह्मा की प्रजा पर बराबर धावे मारते रहे। इस पर ब्रह्मा नरेश बहुत क्रोधित हुआ और उसकी आज्ञा से रगून में कुछ अंग्रेजी जहाज पकड़ लिये गये। लार्ड मिण्टो के लिखने पर ब्रह्मा-नरेश ने उन्हें मुक्त कर दिया। सन् १८१२ ई० में ब्रह्मा के राजा ने आसाम के स्वतन्त्र राज्य को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया। परन्तु सीमा पर आसाम के निर्बल शासक की जगह वीर और बलवान् जाति के शासक को अंग्रेज सहन न कर सके। ब्रह्मा और अंग्रेजी राज्य की सीमा एक होने के कारण प्रतिदिन समस्यायें खड़ी रहने लगीं। लार्ड हेस्टिंग्ज के शासन-काल के अन्तिम वर्ष अर्थात् सन् १८२३ ई० में अंग्रेजों ने शाहपुरी द्वीप पर, जो अराकान के निकट ही स्थित है, बलात् अधिकार कर लिया। इससे युद्ध का टलना असम्भव हो गया। इसलिए लार्ड एमहर्स्ट

ने सिलहट और मनीपुर के बीच एक छोटी-सी स्वतन्त्र रियासत कच्छप से सन्धि करके वहाँ अपनी सेनायें एकत्रित करनी आरम्भ करदी और शीघ्र ही युद्ध की घोषणा कर दी।

लार्ड एमहर्स्ट ने तीन सेनायें ब्रह्मा पर आक्रमण करने को भेजी, दो स्थल-मार्ग से और एक जल-मार्ग से। ब्रह्मा की सेनाओं का प्रधान सेनापति महाबुन्देला एक विशाल सेना के साथ गवर्नर जनरल को बन्दी करने के लिये सोने की जंजीर लेकर आसाम के मार्ग से आगे बढा और अंग्रेजों की स्थलीय सेनाओं को परास्त कर दिया। सम्भव था कि वह आसाम होता हुआ बंगाल में आ पहुँचता यदि ब्रह्मा का राजा उसे दक्षिण की ओर न भेजता; परन्तु तीसरी सेना ने, जो आर्कबोल्ड की अध्यक्षता में मद्रास से आयी थी, रंगून पर अधिकार कर लिया। रंगून-निवासी पहले ही सब सामान ले नगर छोडकर भाग गये थे, इसलिये इस सेना को रसद इत्यादि भी प्राप्त न हो सकी और चारो ओर पराजय के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे। जिनकी सूचना से कलकत्ते तक में तहलका मच गया। इसी बीच बैरकपुर हत्याकाण्ड ने सेना में और सनसनी पैदा कर दी, परन्तु गवर्नर ने स्थिति पर विजय प्राप्त कर सेनाओं पर सेनायें ब्रह्मा भेजनी प्रारम्भ कर दी और ब्रह्मा में प्रवेश करके दोनावू के स्थान पर युद्ध किया। ब्रह्मा-सेनापति महाबुन्देला इस क्षेत्र में सैन्य-सञ्चालन कर रहा था। वह उत्तर में अंगरेजी सेनाओं को परास्त करके दक्षिण की ओर चला आया था। ब्रह्मा के सैनिक ऐसी वीरता तथा साहस से लड़े कि अंगरेजों के छक्के छूट गये, परन्तु उनके सौभाग्य से सन् १८२५ ई० में गोली लग जाने से महाबुन्देला धराशायी हुआ और उसकी सेना रणक्षेत्र से भाग गई। अब अंगरेजों ने अराकान पर अधिकार कर लिया। इसके पश्चात् अंगरेजी बेडा कई नगरों तथा कस्बों को जीतता हुआ यान्दावू तक पहुँच गया। यहाँ से ब्रह्मा की राजधानी आवा केवल चालीस मील की दूरी पर थी। इसलिये ब्रह्मा के राजा ने अंगरेजों से सन्धि कर ली। यान्दावू के स्थान पर जनवरी सन् १८२६ ई० में अंगरेजों और ब्रह्मा के राजा में सन्धि हो गई। अंगरेजों को आसाम, अराकान, टिन्नासरिम के देश मिले। युद्ध के खर्चे की पूर्ति के लिये ब्रह्मा के राजा ने एक करोड़ रुपया दिया और एक अंगरेज रेजीडेण्ट भी अपने दरबार में रक्खा। कहने को तो इस युद्ध में सब प्रकार से अंगरेजों को ही लाभ हुआ, परन्तु वास्तव में उनकी हानि भी बहुत हुई थी। इस युद्ध के कारण कम्पनी पर दस करोड़ रुपये का ऋण हो गया था। अनेको सैनिक भी पेचिश, बुखार तथा अन्य रोगों से पीड़ित होकर मर गये थे।

बैरकपुर हत्याकाण्ड :—उस समय हिन्दुस्तानी सिपाहियों के साथ बहुत

अनुचित व्यवहार किया जाता था। उन्हे अपना सब सामान लाद कर कूच करना पड़ता था। एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने का खर्च उन्हे स्वय बरदाश्त करना पड़ता था। यह अत्यन्त अन्याय था। इसकी सैकडो शिकायतें की जा चुकी थी, परन्तु उनकी कभी कोई सुनवाई न हुई। इस समय जब बैरकपुर की हिन्दुस्तानी पलटन को कूच की आज्ञा दी गई, तो सामान ले जाने के लिये उन्हे बैलगाडी तक न दी गई और आज्ञा मिली कि उन्हे समुद्र के रास्ते रगून जाना होगा। समुद्री यात्रा भारतीय अपने धर्म के विरुद्ध समझते थे। उन्हे जाति-बहिष्कार का भय था, उक्त पलटन के पास कपडो तक की भी व्यवस्था न थी, इसलिये उन्होंने अपनी शिकायतें अपने अफसर के सामने रखी परन्तु कोई सुनाई न हुई। इस पर पलटन ने कूच से इन्कार कर दिया। जिस पर उन्हे गोली से उडा दिया गया।

भरतपुर:—सन् १८२६ ई० में राजा बलवन्तसिंह की मृत्यु पर भरतपुर की गद्दी के लिये उत्तराधिकारी का प्रश्न उठा। सन् १८२६ ई० में एमहर्स्ट ने लार्ड कम्बरमियर को भेजकर भरतपुर के किले पर अधिकार कर लिया। यह वही किला था, जिसे विजय करने में वेलेजली के शासन-काल में वीर सेनापति तथा सेनाध्यक्ष लेक भी असफल रहा था।

प्रश्न

१. बर्मा के प्रथम युद्ध का क्या कारण था इस युद्ध का क्या परिणाम हुआ ?
२ बैरकपुर के हत्याकाण्ड पर एक टिप्पणी लिखो।

अध्याय २४

सुधार-काल

लार्ड विलियम बैंटिक (१८२८-३५ई०)

लार्ड एमहर्स्ट के पश्चात् लार्ड विलियम बैंटिक गवर्नर जनरल होकर भारत आया। राज्य-विस्तार की अपेक्षा उसने आन्तरिक सुधार की ओर विशेष ध्यान दिया जिससे कम्पनी की आर्थिक दशा अच्छी हो जाये। वह भारतवर्ष से पूर्णतया परिचित था; क्योंकि इससे पहले वह मद्रास प्रांत का गवर्नर रह चुका था।

राज्य-विस्तार :—(कुर्ग) भारत में पदार्पण करते ही लार्ड विलियम बैन्टिक ने मैसूर के निकट कुर्ग की रियासत के मामले में हस्तक्षेप किया। कुर्ग अत्यन्त सुन्दर, रमणीय और स्वास्थ्य के लिये हितकर स्थान है। कम्पनी और कुर्ग के बीच १७९० ई० में स्थायी मैत्रिक सन्धि हुई थी।

लार्ड हेस्टिंग्ज के समय में कुर्ग के राजा वीर राजेन्द्र की मृत्यु हुई और उसके बाद उसका एक पुत्र गद्दी पर बैठा। वह अत्यन्त निर्दयी तथा क्रूर सिद्ध हुआ। यहाँ तक कि यह अफवाह फैली कि वह अपनी बहिन तथा उसके पति का वध करना चाहता है। इस बहिन को पिछले राजा ने उत्तराधिकारी भी चुना था इसलिये वर्तमान राजा को यह भी डर था कि कहीं प्रजा उसका पक्ष लेकर विद्रोह न कर बैठे। इस बहिन तथा उसके पति ने भागकर अंगरेजी रेजीडेण्ट के यहाँ मैसूर में शरण ली। राजा कैद करके बनारस भेज दिया गया और कुर्ग का रमणीय प्रदेश अंगरेजी राज्य में मिला लिया गया।

कछार :—जैसा कि लार्ड एमहर्स्ट के समय में बतलाया गया है ब्रह्मा विजय करने से पूर्व अंगरेजों ने कछार के राजा गोविन्दचन्द्र नारिन से सन्धि कर ली थी। सन् १८३० ई० में किसी राजा ने गोविन्दचन्द्र का वध कर दिया। राजा के कोई पुत्र न था, इसलिये बैंटिक ने रियासत को अंगरेजी राज्य में सम्मिलित कर लिया।

मैसूर में हस्तक्षेप :—टीपू सुल्तान की वीरगति के बाद सन् १७९९ ई० में अंगरेजों ने मैसूर राज्य का एक भाग मैसूर के हिन्दू राजकुल को लौटा दिया था और उससे संधि कर ली थी। तब से इस समय तक मैसूर के राजा सन्धि के

पालन करते रहे थे, परन्तु सन् १८३१ ई० में मैसूर शासन-प्रबन्ध में अनेक झूठे-सच्चे दोष निकाले गये और लार्ड विलियम ने बिना राजा से उनकी व्याख्या कराये राज्य का शासन-प्रबन्ध राजा से वापस ले अंगरेज अफसरों को सौंप दिया। तब से सन १८८१ ई० तक एक कमीशन मैसूर का शासन करता रहा।

सिन्ध और पंजाब :—लार्ड विलियम बैंटिक का सबसे महत्वपूर्ण कार्य सिन्ध में जहाज और सेना भेजकर उसके जल की थाह लेना तथा उस प्रान्त का भौगोलिक अध्ययन करना था, कहा गया कि इंगलैंड के बादशाह विलियम चतुर्थ ने पंजाब के महाराज रणजीतसिंह के पास उपहार स्वरूप एक घोड़ा गाड़ी भेजी है, जिसे केवल जल मार्ग से ही पंजाब भेजा जा सकता है। इस बहाने इस योजना को सफल बना सिन्ध नदी और पंजाब के जल-मार्ग का ठीक ठीक अन्वेषण किया गया।

महाराजा रणजीतसिंह और बैंटिक का मिलन :—उक्त उपहार के साथ बैंटिक ने महाराजा रणजीतसिंह से मिलने की प्रार्थना स्वीकार कर ली। फलस्वरूप सन् १८३१ ई० में रोपड़ के स्थान पर बड़े ठाट-बाट के साथ विलियम बैंटिक और महाराजा रणजीतसिंह की भेंट हुई। इस भेंट के अवसर पर यह तै हुआ कि पदच्युत अफगान बादशाह शाहशुजा को आगे करके पहले सिन्ध पर और फिर अफगानिस्तान पर आक्रमण किया जाय और इन्हें आपस में बाँट लिया जाय। १८३३ ई० में शाहशुजा ने पहले सिन्ध पर और फिर कन्धार पर आक्रमण किया, परन्तु काबुल के बादशाह दोस्त मुहम्मद ने उसे परास्त कर निकाल दिया और १८३४ ई० में उसे फिर लुधियाने में आश्रय लेना पड़ा।

आर्थिक सुधार :—लार्ड एमहर्स्ट के शासन-काल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की आर्थिक दशा बहुत शोचनीय हो गई थी, इसलिये कम्पनी के संचालक बार बार लार्ड विलियम बैंटिक को लिखते रहे कि वह कम्पनी की आर्थिक दशा को दृढ़ करने की ओर विशेष ध्यान दे। स्थिति सुधारने के लिए बैंटिक ने सर्वप्रथम सेना तथा माल-विभाग के अपव्यय में कमी की। उसने नियम बना दिया कि कलकत्ते से चार सौ मील की परिधि में ठहरी हुई सेना को केवल आधा भत्ता मिलेगा। इससे सेना में बहुत असन्तोष फैला, परन्तु कम्पनी के संचालक खर्च में कमी चाहते थे, इसलिये असन्तोष के होते हुए भी बैंटिक अपने इस परिवर्तन पर अटल रहा। दूसरे माल-विभाग में बहुत-सी मालगुजारी लोगों के नाम कई-कई वर्ष से शेष पड़ी थी। बैंटिक ने हिसाब की जाँच करा शेष वसूल कराया। तीसरे कुछ जमींदारों की भूमि की मालगुजारी माफ थी यह इस अधिकार से लाभ उठा कर प्राय अपनी सम्पूर्ण भूमि पर मालगुजारी न देते थे। बैंटिक ने उनके कागजों की जाँच-पड़ताल कराई

ग्रौर वह जमीन, जो मालगुजारी मे मुक्त थी, अलग कर उनकी शेष भूमि पर मालगुजारी निश्चित कराई। उसने राबर्ट बर्ड से संयुक्त प्रान्त का बन्दोबस्त कराया ग्रौर यहाँ तीस वर्षीय बन्दोबस्त तथा मद्रास में रैयतवाडी बन्दोबस्त का ग्रायोजन किया, जिससे समय-समय पर भूमि की जाँच-पडताल होती रही, इसी समय इलाहाबाद में माल समिति (Board of Revenue) स्थापित की। मालवा की ग्रफीम पर टैक्स लगा उसने राजकीय ग्राय में विशेष वृद्धि की। उसने माल विभाग के कर्मचारियो का वेतन कम कर दिया ग्रौर स्वयं प्रधान सेनापति की पदवी धारण कर उसने वेतन की बचत की। उसने ग्रासाम तथा कछार में चाय की खेती करनी प्रारम्भ कर दी। इस प्रकार उसने कम्पनी की ग्रार्थिक स्थिति दृढ करने का सफल प्रयत्न किया।

शासन-सम्बन्धी सुधार :—लार्ड विलियम बैंटिक ने कार्नवालिस द्वारा स्थापित की हुई प्रान्तीय दौरा तथा ग्रपील की ग्रदालतें तोड दी, क्योंकि इससे न्याय में बडी रुकावट हो गई थी। प्रथम तो मुकद्दमे तै होने में बडी देर लगती थी दूसरे इसका खर्च बहुत था तीसरे लोगो को सन्तोष नही होता था। उसने दीवानी ग्रपीलों का कार्य सदर ग्रदालतों को तथा सेशन की ग्रदालतो का काम कमिश्नरो को दे दिया, परन्तु जब यह व्यवस्था भी सन्तोषजनक सिद्ध न हुई तो प्रत्येक जिले के डिस्ट्रिक्ट जजो को यह कार्य दे दिया गया। ग्रब तक ग्रदालत की सब कार्यवाही फारसी भाषा में होती थी इससे साधारण वर्ग को बडी कठिनाई होती थी। बैंटिक ने ग्रासानी के लिये उर्दू को ग्रदालती भाषा घोषित कर दिया। लार्ड कार्नवालिस ने भारतीय लोगो के लिए उच्चपदो का द्वार बन्द कर दिया था। यद्यपि उसकी इस ग्राज्ञा का पूर्णतया पालन नहीं किया तो भी इसका यह प्रभाव ग्रवश्य पडा कि उच्चपद प्राय ग्रगरेज लोगो को मिलते रहे। लार्ड विलियम बैंटिक ने इस प्रतिबन्ध को हटा कर भारतीय लोगो के लिए उच्च नौकरियो का द्वार खोल दिया। इससे ग्रार्थिक लाभ भी हुग्रा क्योंकि यूरोपीय ग्रधिकारियो को भारतीयो की ग्रपेक्षा ग्रधिक वेतन देना पडता था। लार्ड विलियम बैंटिक से पहले कलक्टर ग्रौर मैजिस्ट्रेट ग्रलग ग्रलग होते थे। उसने इन दोनो पदो को एक कर दिया, जैसा कि ग्रब तक चला ग्राता है। इससे बचत भी हुई।

सामाजिक सुधार :—ग्रङ्गरेजो ने भारतवासियो के धार्मिक ग्रौर सामाजिक रीति-रिवाजो में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नही किया था। राजनीति के साथ धर्म का मेल करके पुर्तगालियो की तरह वह ग्रङ्गरेज जाति को संकट में डालना नही चाहते थे। ग्रङ्गरेजो ने पुर्तगालियो के व्यवहार से शिक्षा ग्रहण की, परन्तु उनके

इसलिए असम्भव था कि सती, बाल-हत्या आदि अमानुषिक प्रथाओं के विरुद्ध जो भाव धीरे-धीरे जागृत हो रहा था, उसकी उपेक्षा करते। सती-प्रथा का मूल कारण हिन्दू स्त्रियों का पतिव्रत धर्म था। प्रारम्भ में विधवा हिन्दू स्त्रियां अपने मृत पति के साथ चिता में जलकर प्राण दे देती थीं; परन्तु पीछे आकर यह प्रथा बहुत कठोर हो गई थी और स्त्रियां बलात् चिता में जलने के लिए बाध्य की जाने लगीं। लार्ड बैंटिक ने इस भीषण प्रथा का अन्त कर देने का सकल्प किया। राजा राममोहनराय आदि शिक्षित भारतीय भी सती प्रथा के विरुद्ध थे; इससे प्रोत्साहित होकर लार्ड बैंटिक ने दिसम्बर सन् १८२९ ई० में एक प्रस्ताव पास किया, जिससे सती का रिवाज कानून के विरुद्ध बतलाया गया, नये कानून के अनुसार सती होने में सहायता देना कत्ल के अपराध के बराबर ठहराया गया। बंगाल में इस कानून का विरोध हुआ। कट्टर लोगों ने गवर्नर जनरल की नीति के विरुद्ध प्रिवी कौंसिल में अपील की, परन्तु वह सफल न हुई।

अन्य कुरीतियों ने भी गवर्नर जनरल का ध्यान आकर्षित किया। उड़ीसा के खोन्द लोगों में नर-बलि की प्रथा प्रचलित थी। राजपूताना, अजमेर, खानदेश आदि कुछ स्थानों में स्त्रियों का व्यापार होता था। राजपूताना तथा काठियावाड़ में राजपूतों में शिशु-हत्या का प्रचार था। गवर्नर जनरल ने इन प्रथाओं को रोकने के लिये योग्य अफसर नियुक्त किये और कई वर्ष के घोर परिश्रम के पश्चात् यह प्रथायें बन्द हुई। सन् १८३२ ई० में एक दूसरा कानून पास हुआ जिससे गुलामी की प्रथा उठा दी गई।

ठगी :—ठगों के समूह में सभी जातियों तथा धर्मों के लोग थे। ये लोग मनुष्यों को लूटते, मारते तथा उनका वध कर देते थे। ये अधिकतर मध्य भारत में पाये जाते थे। अपने इस कार्य को पूरा करने के लिये पहले वे यात्रियों के साथ हो जाते। उनके हृदय में पूर्ण विश्वास पैदा कर लेते थे, परन्तु निर्जन वन में पहुँच कर वे उनके गले में छोटा सा कपड़ा कसकर उनका गला घोट देते थे और उन्हें मार देते थे। उन्होंने अपनी स्वयं की भाषा बना रक्खी थी जिसे उनके अलावा और कोई न समझ सकता था। ये अपने दिल की बात किसी से न कहने की शपथ लेते थे। वे काली माई की पूजा करते थे। लार्ड विलियम बैंटिक ने मेजर स्लीमैन की अध्यक्षता में इसके लिए एक अलग विभाग खोला। उनमें से अधिकतर पकड़े गये। उन्हें फाँसी पर चढ़ा दिया गया। इन लोगों की प्रवृत्ति बदलने के लिए जबलपुर में एक दस्तकारी का स्कूल खोला। वे वहाँ पर दस्तकारी सीखकर अच्छे कारीगर हो गये और अपनी जीविका ईमानदारी से कमाने लगे।

शिक्षा :—सन् १८१३ ई० के आज्ञा पत्र में भारतीयो की शिक्षा की व्यवस्था की गई और कम्पनी के सचालको ने इसके लिए एक निश्चित धनराशि की स्वीकृति दी। राजा राममोहनराय की सहायता से कलकत्ते में सन १८१६ ई० में हिन्दू कालिज तथा सन् १८१८ ई० में सीरामपुर में एक कालिज पाश्चात्य-शिक्षा अर्थात् अंग्रेजी शिक्षा की उन्नति के लिए खोला गया। सन १८८० ई० में एक कालिज कलकत्ते में खोला गया। इसी बीच में भारतीय पण्डितो तथा पाश्चात्य विद्वानो में भाषा-सम्बन्धी प्रश्न उठ गया। भारतीय लोग भारतीय भाषाओं पर परन्तु पाश्चात्य विद्वान् अंग्रेजी भाषा पर जोर दे रहे थे। वे भारतीय लोगो की उन्नति के लिए अङ्गरेजी भाषाओं को सर्वश्रेष्ठ समझते थे। राजा राममोहन राय आदि एक भारतीय वर्ग भी पश्चात्य विद्या के पक्ष में था। सन् १८३५ ई० में लार्ड मैकाले ने, जो गवर्नर जनरल की कौंसिल का मेम्बर था, एक मसविदा तैयार किया। अंगरेजी शिक्षा के पक्ष का समर्थन जोर से किया गया। पूर्वी भाषा तथा साहित्य की निन्दा की गई। ७ मार्च सन् १८३५ ई० के प्रस्ताव द्वारा शिक्षा के लिये दी जाने वाली रकम केवल अंगरेजी भाषा पर ही खर्च की जाने लगी। इस प्रकार शिक्षा में बहुत अधिक परिवर्तन हो गया। सस्कृत तथा अरबी के स्कूल भी रहे, परन्तु उनमे लोग उदासीन होते चले गये। जन-साधारण में शिक्षा प्रचार न हो सका। विदेशी भाषा शिक्षा का माध्यम हो जाने से अध्ययन में विचार-स्वतन्त्रता और मौलिकता का विशेष अभाव रहा।

१८३३ ई० का चार्टर :—जब इग्लैंड की पार्लियामेण्ट ने देखा कि कम्पनी की जिम्मेदारियाँ तथा उसका राज्य भारत में बढता जा रहा है, परन्तु इतना होते हुए भी उसकी दशा बहुत शोचनीय हो रही है और उसका दिवाला निकल रहा है, तो वह निरन्तर भारतीय शासन में हस्तक्षेप करने लगी तथा कम्पनी पर नियन्त्रण रखने लगी। १८३३ ई० का आज्ञापत्र, जो लार्ड विलियम बैंटिक के समय में कम्पनी के पास आया, इसका द्योतक है। यह आज्ञापत्र फिर २० वर्ष के लिये जारी किया गया। इस समय इग्लैंड की व्यवसायी क्रान्ति के कारण इग्लैंड के व्यापारियो को बाहर के देशो में अपने माल के बेचने की बडी आवश्यकता थी। अत इस बात पर विचार करके कम्पनी से चीन के व्यापार का ठेका छीन लिया गया। कम्पनी को केवल भारत में शासन करने की आज्ञा दी गई। यह परिवर्तन इसलिये भी किया गया कि कम्पनी राज-व्यवस्था पर अधिक ध्यान दे सके। गवर्नर जनरल की कौंसिल में ला मेम्बर और बढा दिया गया। इस प्रकार अब उसकी कौंसिल में चार मेम्बर हो गये। मैकाले प्रथम ला-मेम्बर नियुक्त हुआ। गवर्नर जनरल को ब्रिटिश भारत

के लिये कानून बनाने की आज्ञा मिल गई। कौंसिल को इस नये कानून का भार सौंपा गया। बम्बई तथा मद्रास के प्रान्त पूर्ण रूप से गवर्नर जनरल के अधीन कर दिये गये। यूरोपीय लोगों को भारत में अपनी बस्तियाँ बनाने की आज्ञा दी गई।

सबसे अधिक महत्वपूर्ण घोषणा, जो इस चार्टर द्वारा पार्लियामेंट ने की, वह यह थी कि कोई भी भारतीय जो ब्रिटिश भारत का निवासी है, अपने धर्म, जन्म-स्थान तथा वंश और रंग के कारण किसी पद या नौकरी से वंचित नहीं किया जायेगा। उन्हें नौकरी बेरोक-टोक मिलेगी।

प्रश्न

१. लार्ड विलियम बैंटिक के सुधारों का विस्तृत वर्णन करो।

२. १८३३ में चार्टर पर एक टिप्पणी लिखो।

अध्याय २५

अफ़गान-समस्या

लार्ड आकलैंड तथा लार्ड एलनबरा

(१८३८—४४ ई०)

सर चार्ल्स मेटकाफ़:—सन् १८३५ ई० में लार्ड विलियम बैंटिक विलायत लौट आया और एक वर्ष पश्चात् लार्ड आकलैंड गवर्नर जनरल नियुक्त होकर आया। इस बीच में कलकत्ता कौंसिल का प्रमुख सदस्य सर चार्ल्स मेटकाफ गवर्नर जनरल का कार्य करता रहा। अपने थोड़े से शासनकाल में मेटकाफ ने प्रेस तथा समाचार पत्रों से प्रतिबन्ध हटा दिये। कम्पनी के संचालक उसके सुधार से बहुत अप्रसन्न हुए और उसके स्थान पर लार्ड आकलैंड को गवर्नर जनरल नियुक्त करके भेजा।

अफ़गानिस्तान में अंग्रेजी मिशन—रणजीतसिंह से सन्धि करने तथा सिन्ध नदी का अन्वेषण करने के पश्चात् अलक्जेण्डर 'बर्नस' नामक एक चतुर अंग्रेज लैफ्टिनेण्ट १८३२ ई० में मध्य एशिया की ओर भेजा गया। इसका कारण अंग्रेजों को रूस के आक्रमण का डर था। इसलिये भारत और मध्य एशिया के बीच की शक्तियों को कम्पनी की ओर करने के लिये बर्नस को भेजा गया था। बर्नस की पार्टी सबसे पहले अफगानिस्तान पहुँची। एक साल तक मध्य एशिया में घूमने के बाद सन् १८३३ ई० में अनेक मानचित्रों तथा लाभदायक सूचना सहित ये लोग भारत वापिस आये।

सन् १८३६ ई० में बर्नस को दूसरी बार व्यापारी मिशन पर काबुल भेजा गया। इस मिशन का उद्देश्य यह भी था कि अफगानिस्तान को रूस के विरुद्ध अपने पक्ष में कर लिया जाय, परन्तु इसमें सफलता प्राप्त न हो सकी और बर्नस तथा उसके साथियों को शीघ्र ही भारत लौटना पड़ा।

अफ़गानिस्तान के दो प्रभावशाली वंश:—अफगानिस्तान में उस समय दो प्रभावशाली वंश थे। एक दुर्रानी और दूसरा बारकजाई। अहमदशाह अब्दाली, जिसने मरहठों के विरुद्ध पानीपत के तृतीय युद्ध में सफलता प्राप्त की थी, प्रथम वंश से था और उसके मन्त्री बारकजाई वंश से थे। धीरे-धीरे मन्त्रियों की शक्ति बढ़ती

गई और अहमदशाह अब्दाली के पोते जमानशाह के शासन-काल में उनकी शक्ति इतनी बढ़ गई कि उनमें से एक ने, जिसका नाम फतहखाँ था, उसे कैद कर लिया और उसकी आँखें निकलवा ली। जमानशाह का छोटा भाई शाहशुजा कई वर्ष तक अपने भाई के नाम से युद्ध करता रहा, परन्तु असफल ही होता रहा और अन्त में उसे अपना देश छोड लुधियाने में अ गरेजो की शरण लेनी पडी। उधर १८२६ ई० में फतहखाँ की मृत्यु के पश्चात् उसका भाई दोस्तमुहम्मदखाँ गद्दी पर बैठा, जिसके शासन-काल में बर्न्स मिशन अफगानिस्तान पहुँचा। इस समय की स्थिति अच्छी न थी। इसके पूर्वी भाग पर महाराजा रणजीतसिंह का दाँत था। पेशावर के उपजाऊ प्रांत पर तो उसने अधिकार ही कर लिया था। पश्चिम की ओर फारिस का बादशाह रूस की सहायता से हिरात-विजय करने की चेष्टा कर रहा था। इसलिये जब बर्न्स दूसरी बार काबुल पहुँचा और रूस के विरुद्ध उसे अपने पक्ष में करना चाहा तो दोस्त मुहम्मदखाँ ने उसे उनके मित्र रणजीतसिंह से अपना पूर्वी प्रदेश वापस दिलाने की माँग की। इसे अ गरेजो ने स्वीकार न किया। उधर अभी बर्न्स काबुल में ही था कि फारिस ने हिरात का घेरा डाल लिया। अत. अ गरेजो की सन्धि से किसी भी ओर के संकट से मुक्ति की सम्भावना न देख दोस्त मुहम्मद रूस को अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न करने लगा। उसने रूस के राजदूत की बडी आवभगत की और बर्न्स की ओर से बिल्कुल उदासीन हो गया। इगलैड के प्रधानमन्त्री पामर्स्टन को जब इसकी सूचना मिली तो उसने आक्लैड को युद्ध का सकेत दिया। २' अप्रैल सन् १८३८ ई० में बर्न्स वापिस बुला लिया गया और लार्ड आक्लैड शाहशुजा तथा रणजीतसिंह की सहायता से युद्ध की तैयारी करने लगा।

अफगानिस्तान की पहली लड़ाई:—दो सेनायें अफगानिस्तान की विजय के लिये तैयार की गईं। एक पजाब मे दूसरी बम्बई मे। बम्बई की सेना सिन्ध और बिलोचिस्तान से होती हुई पजाब की सेना खैबर के रास्ते से अफगानिस्तान पहुँची। शाहशुजा भी इनके साथ था। थोडे ही दिनो में इस सेना ने बहुत से अफगान सरदारो को शाहशुजा की ओर कर काबुल पर अधिकार कर लिया। कधार गजनी तथा जलालाबाद भी अगरेजो के अधिकार में आ गये। शाहशुजा काबुल का अमीर घोषित कर दिया गया। वह अगरेज रेजीडेण्ट मेक्नाटन की सरक्षता मे शासन करने लगा। दोस्तमुहम्मद को कैद करके कलकत्ते भेज दिया गया परन्तु युद्ध इतनी शीघ्रता से समाप्त होने वाला न था। इस प्रारम्भिक सफलता का एकमात्र कारण केवल यह था कि अगरेजो ने अफगानिस्तान के अनेको सरदारो को

झूठे-सच्चे वायदे कर अपनी ओर मिला लिया था। सत्ता प्राप्त करने के बाद एक ओर तो अंगरेजों ने अपने वायदों को पूरा करने की कोई चेष्टा न की, दूसरी ओर मीर जाफर के शासन की भांति वे छोटे-छोटे कार्यों में भी हस्तक्षेप करने लगे। इसलिये वीर तथा आत्माभिमानी अफगानों को उनकी उपस्थिति असह्य हो उठी, और व अंग्रेजों से बदला लेने को उद्यत हो गये। उन्होंने समझ लिया कि उनकी आपत्तियों का मूल कारण शाहशुजा है इसलिये वे दोस्तमुहम्मदखां के पुत्र अकबरखां के *झण्डे के नीचे एकत्रित हुए और विद्रोह कर दिया। शाहशुजा को जब यह पता* लगा तो उसने काबुल से भागकर फिर भारत में आश्रय लेने का विचार किया। परन्तु इसस पहले कि वह इस विचार को क्रियात्मक रूप दे, बर्नेस के, जो शाहशुजा के साथ काबुल आया था, टुकड़े-टुकड़े कर दिये।

अब अफगानिस्तान के सरदारों ने मेकनाटन का वध करना चाहा, मेकनाटन इसी बीच अकबरखां और उसके विश्वास-पात्र अमीरों में फूट डालने का प्रयत्न कर रहा था, परन्तु उसका भेद खुल गया, जिससे अफगान बहुत क्रोधित हुए और उन्होंने एक दिन मेकानाटन को मौत के घाट उतार दिया। अपने नेताओं की इस प्रकार हत्या से अंग्रेजी सेना घबरा उठी। उसके सेनापतियों ने अकबरखां से प्रार्थना की कि उन्हें भारत लौटने की आज्ञा दी जाये और वचन दिया कि हम यहां से जाते जाते ही दोस्त मुहम्मदखां को अफगानिस्तान लौटा देंगे। अकबरखां ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली परन्तु मार्ग में असंख्य अफगानों और बिलोचियों ने इस पर आक्रमण कर दिया और १६००० की सेना में से केवल एक डाक्टर ब्राइडन इस हत्याकाण्ड की सूचना देने जनरल सेल के पास जलालाबाद पहुंचा।

इस समाचार को सुनकर लार्ड आकलैंड के होश उड़ गये। उसने तुरन्त एक सेना जलालाबाद भेजी, परन्तु उसे कम्पनी के सचालकों ने वापस बुला लिया और उसके स्थान पर लार्ड ऐलिनबरो (१८४२-४४) को गवर्नर जनरल बनाकर भेजा।

लार्ड ऐलिनबरो :—लार्ड ऐलिनबरो ने आते ही जनरल पोलक को एक विशाल सेना सहित अफगानिस्तान भेजा। काबुल पहुंचकर इस सेना ने नगर को *खूब लूटा, परन्तु शीघ्र ही स्थिति फिर बिगड़ने लगी इसलिये लार्ड* ऐलिनबरो ने अकबरखां से सन्धि कर ली। दोस्तमुहम्मदखां को मुक्त कर दिया गया और उसे फिर अफगानिस्तान का अमीर स्वीकार कर लिया गया और सब अंग्रेजी सेनायें अफगानिस्तान छोड़कर चली आईं।

सिन्ध के अमीर सन् १८४३ ई० :—अफगान युद्ध की पराजय से अंग्रेजों की बड़ी अपकीर्ति फैली। योरुप में भी अंग्रेजो के शत्रुओं ने उनकी खूब खिल्ली

पड़ाई। इसलिये मान-मर्यादा को बनाये रखने के विचार से इंग्लैंड के शासक और लार्ड ऐलिनबरो ने तै किया कि किसी बड़े देश को विजय करके अंग्रेजी साम्राज्य में मिलाया जाय। दूसरे अफगान युद्ध में खर्च भी बहुत हुआ था। उसकी पूर्ति के लिये धन की भी बड़ी आवश्यकता थी। विलियम बैंटिक के समय से अंग्रेज व्यापार तथा युद्ध-सम्बन्धी कार्यों के लिये सिन्ध नदी पर अधिकार करना चाहते थे। इन सब बातों को ध्यान में रखकर ऐलिनबरो ने सिन्ध जीतने की सोची। सिन्ध के अमीरों और अंग्रेजों के बीच युद्ध होने का यही वास्तविक कारण था। यह कहा गया कि अमीर अङ्गरेजों के विरुद्ध षड्यन्त्र रच रहे थे और वह प्रकटतया अफगान युद्ध के समय अफगानों से सहानुभूति रखते थे, परन्तु यह दोषारोपण झूठ था। अंग्रेज इतिहासकारों ने भी स्वीकार किया है कि सिन्ध के अमीरों ने अंग्रेजों का कुछ नहीं बिगाड़ा था और उनके देश पर अधिकार करने में लार्ड ऐलिनबरो का सरासर अन्याय था।

सिंध:—अमीर बिलोची जाति के थे और बिलोचिस्तान से आकर भारत में आ बसे थे। सन् १८३२ ई० में उन्होंने अंग्रेजों से सन्धि करके ऐलेग्जेण्डर बर्नर्स को सिंध नदी से नावें लेकर पंजाब तक जाने की आज्ञा दे दी थी। सन् १८३६ ई० में अफगानों से युद्ध होने वाला था तो उन्होंने बम्बई की सेना को भी अपने देश से होकर जाने दिया था। इस प्रकार सिन्ध के अमीर अंग्रेजों के मित्र थे, परन्तु इन सब बातों के होते हुए भी लार्ड ऐलिनबरो ने सन् १८४३ ई० में सिन्ध-विजय करने के लिये सेना भेज दी। इनका अध्यक्ष सर चार्ल्स नेपियर था। उसने मियानी और हैदराबाद की लड़ाइयों में अमीरों को परास्त करके राजकोष को स्वतन्त्रता से लूटा। एक फ्रांसीसी लेखक ने तो यहां तक लिखा है कि अंग्रेज पदाधिकारी अमीरों के अन्तःपुर में घुस गये और वहां उन्होंने बेगमों के रत्नजटित आभूषण और बहुमूल्य वस्त्र तक, उतरवा लिये। सिन्ध-विजय के पूर्व नेपियर ने स्वयं एक पत्र में लिखा था—"सिन्ध पर अधिकार करना हमारे लिये उचित नहीं है। फिर भी हम इसे कार्य को करेंगे, और यह धूर्तता बहुत लाभदायक होगी।"

ग्वालियर:—दौलतराव सिन्धिया की मृत्यु के बाद १८२७ ई० में उसकी विधवा रानी ने एक लड़के को गोद ले लिया था—यही दत्तक पुत्र अब तक गद्दी का स्वामी था परन्तु लार्ड एलिनबरो के समय उसके दरबार में दो प्रतिद्वन्दी दल हो गये थे, जिनके कुचक्रों ने ग्वालियर राज्य में बहुत अराजकता उत्पन्न कर दी इसलिये गवर्नर जनरल ने सर ह्यूगफ को एक सेना सहित ग्वालियर की दशा ठीक करने के लिये भेजा। उसने २६ दिसम्बर सन् १८४३ ई० को महाराजाज

स्थान पर मरहठों को पराजित किया। परिणाम-स्वरूप राज्य प्रबन्ध एक कौंसिल के हाथ में सौंप दिया गया और उसे रेजीडेण्ट के परामर्श से काम करने का आदेश दिया गया।

एलिनबरो की वापसी :—ग्वालियर-विजय के बाद १८४४ ई० में सचालकों ने एलिनबरो को वापिस बुला लिया।

प्रश्न

१. प्रथम अफगान युद्ध के क्या कारण थे। इस युद्ध का संक्षिप्त वर्णन करो, तथा बताओ कि इसका क्या परिणाम हुआ ?

२. सिंध विजय पर एक नोट लिखो।

अध्याय २६

पंजाब-विजय का सूत्रपात

लार्ड हार्डिङ्ग

(१८४४–४८ ई०)

आगमन :—सन् १८४४ ई० में लार्ड एलिनवरो ने शासन-भार लार्ड हार्डिङ्ग के सुपुर्द कर दिया और इङ्गलैंड लौट गया।

महाराजा रणजीतसिंह :—अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण के पश्चात् पंजाब में बड़ी गड़बड़ी मच गई थी। सिक्ख सघ अर्थात् खालसा ने १८६४ ई० में लाहौर को जीत लिया और झेलम से लेकर यमुना तक के समस्त प्रदेश पर अपना अधिकार कर लिया। सिक्ख लोग बहुत सी मिसलों में बँटे हुए थे। रणजीतसिंह का दादा चतुर्रसिंह सुकेर कुचिया मिसल का नेता था। उसने अपने पड़ोसियों की भूमि जीत कर उस पर अपना अधिकार कर लिया था। उसके पुत्र महासिंह ने भी इस कार्य को जारी रखा और अपनी शक्ति को बढ़ा लिया। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र रणजीतसिंह उत्तराधिकारी हुआ। वह बड़ा योग्य तथा पराक्रमी पुरुष था।

रणजीतसिंह का जन्म :—रणजीतसिंह का जन्म १७८० ई० में हुआ था। जिस समय उसने आस पास के देशों पर विजय प्राप्त करनी प्रारम्भ की, वह लड़का ही था। कुछ ही वर्षों में उसने अपने लिये एक राज्य बना लिया। जमानशाह से उसने लाहौर ले लिया और १८०२ ई० में उसने अमृतसर को भी जीत लिया। अगले पाँच वर्षों में उसकी शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती गई। उसने सब मिसलों को अपने आधीन करके एकता के सूत्र में बाँधकर एक सुदृढ़ सिक्ख राज्य स्थापित करने की चेष्टा की। वह चाहता था कि सरहिन्द के राज्यों पर भी अधिकार कर ले। ये सभी राज्य कम्पनी की संरक्षकता में थे, इसलिए रणजीतसिंह को अङ्गरेजों के सम्पर्क में आना पड़ा।

अङ्गरेजों से सन्धि :—सन् १८०९ ई० में नेपोलियन बोनापार्ट के भय से अपनी आन्तरिक तथा वाह्य स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिये अग्रेजों ने मत्का-

निस्तान, सिन्ध, विलोचिस्तान इत्यादि से सन्धि की । इन देशो ने अंग्रेजी राज्य को अपने यहाँ रखने का वचन दिया । यह सन्धि-कार्य सर चार्ल्स मेटकाफ को सौंपा गया था। उसने अपनी सारी चतुराई तथा कूटनीति का उपयोग करके रणजीतसिंह से सन् १८०६ ई० में अप्रैल के महीने में अमृतसर में सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर करा लिये । सतलज के इस पार का प्रदेश रणजीतसिंह ने छोड दिया । इस प्रकार रणजीतसिंह तथा अंगरेजो में मैत्री- सम्बन्ध स्थापित हो गया । रणजीतसिंह ने अपनी मृत्यु-पर्यन्त इस मैत्री और सन्धि का पूर्णतया पालन किया ।

रणजीतसिंह की शक्ति तथा सैनिक प्रबन्ध :—सन् १८०६ ई० की सधि के पश्चात् रणजीतसिंह ने अपनी शक्ति बहुत बढा ली थी । उसके पास एक विशाल सेना थी, जिसमें हिन्दुस्तानी और गोरे अफसर दोनो ही नियुक्त थे, जिन्होने उसे योरुपीय ढग की शिक्षा दे शक्तिशाली बना लिया था । उसकी सहायता से रणजीतसिंह ने सम्पूर्ण पजाब को अपने आधीन कर लिया था । उसने सिन्धु नदी के तट पर अटक को जीत लिया था, और उसे अपने राज्य की सीमा बनाया । सन् १८१८ ई० में मुलतान उसके हाथ लगा । कुछ दिन पश्चात् उसने काश्मीर जीत लिया । इस विजयोत्सव पर लाहौर और अमृतसर में तीन रात तक खूब रोशनी की गई थी । सन् १८२३ ई० में एक विशाल सेना लेकर उसने अफगानों और पठानों को पराजित किया, और पेशावर पर अपना अधिकार कर लिया । खैबर तक उसने सारे देश को रोद डाला और अपने शत्रुओ के हृदय में भय उत्पन्न कर दिया। उसके सेनाध्यक्ष हरिसिंह नलुआ का नाम सुनकर पठानो के हृदय काप उठते थे। उनकी स्त्रियाँ अपने बच्चो को हरिसिंह नलुवा का नाम लेकर सुला दिया करती थी। सिन्धु नदी और सुलेमान पर्वत के बीच के प्रदेश को, उसने पहले ही जीत लिया था।

लार्ड विलियम बैंटिक से भेंट तथा सन्धि :—रणजीतसिंह इस बात को अच्छी प्रकार जानता था कि उसका अगरेजो के साथ मैत्री-सम्बन्ध रखने से क्या लाभ है ? इधर लार्ड विलियम बैंटिक भी उसके साथ मैत्री सम्बन्ध बनाये रखने का इच्छुक था । फलतः सन् १८३१ ई० में रोपड नामक स्थान पर दोनो की भेंट हुई । गवर्नर जनरल ने बडे आदर तथा सत्कार के साथ रणजीतसिंह का स्वागत किया और सन्धि की। यह सन्धि-सम्बन्ध सदा के लिये स्थापित हो गया और रणजीतसिंह ने उसे सिन्ध तथा सतलज के ऊपरी भाग के किनारे व्यापार की आज्ञा दे दी।

रणजीतसिंह का शासनप्रबन्ध :— रणजीतसिंह ने अपने समस्त राज्य को चार प्रान्तो में विभक्त कर दिया था। काश्मीर, मुल्तान, लाहौर, तथा पेशावर। ये प्रान्त परगनो में विभक्त थे। प्रत्येक प्रान्त का अधिकारी नाजिम कहलाता था।

उसके नीचे कारदार होते थे। वह योग्य मनुष्यों को उच्च पदों पर नियुक्त करता था। उनके कार्यों की देख-भाल वह स्वयं ही करता था। किसानों की पैदावार का ⅓ भाग कभी-कभी ½ भाग तक लिया जाता था। रणजीतसिंह कृषक-वर्ग के हित का खूब ध्यान रखता था। अकाल इत्यादि पडने पर वह तकावी आदि बाँटता था। न्याय साधारण नीति से होता था। कभी-कभी बडा कठोर दण्ड दिया जाता था। ऋण वसूल करने के लिये कृषकों के माल तथा पशुओं को नीलाम नहीं किया जा सकता था। ऋण सम्बन्धी मामलों का फैसला पचों की सहायता द्वारा स्थानीय कारदार करते थे। दीवानी आदि के मुकद्दमों का फैसला पचायतों में होता था। फौजदारी के कानून बहुत कडे थे। यदि किसी चोर या डाकू का पता किसी गाँव विशेष में लगता था तो समस्त ग्राम उसका उत्तरदायी होता था। जुर्माना तथा अंग-भंग ही साधारण दण्ड थे। प्राण-दण्ड नहीं दिया जाता था। कभी-कभी अपराधी के मस्तक को गर्म लोहे से दाग दिया जाता था। कभी-कभी उन्हें काला मुँह करके गधे पर बिठलाकर घुमाया जाता था। रणजीतसिंह बहुत मितव्ययी था, इसलिये उसने बहुत-सा धन अपने यहाँ इकट्ठा कर लिया था।

सैनिक-प्रबन्ध :—रणजीतसिंह की सेना में पैदल, घुडसवार तथा तोपखाना सम्मिलित थे। सेना को योरुपीयन युद्ध-प्रणाली की शिक्षा दी गई थी। जाट तथा सिक्ख अधिक भर्ती किये जाते थे। उन्हें जमीन दी जाती थी। और साल में दो बार फसल कटने के समय कुछ रुपया भी दिया जाता था। वेतन देने तथा तरक्की देने का कोई विशेष नियम न था। महाराजा रणजीतसिंह को घोड़ों का खूब शौक था। उसकी अश्वशाला में सभी प्रकार के घोडे रहते थे। उसके कठोर नियन्त्रण में रहकर सिक्ख सेना ने बहुत उन्नति की और अंग्रेज़ों के साथ युद्ध में अपनी वीरता का परिचय दिया।

रणजीतसिंह की मृत्यु :—कठिन परिश्रम करने के कारण रणजीतसिंह का स्वास्थ्य खराब हो गया था। सन् १८३६ ई० में रणजीतसिंह पर लकवा गिरा और बहुत औषधियों तथा उपचार करने पर भी वह स्वस्थ्य न हो सका। सन् १८३६ ई० में उसका देहान्त हो गया। उसकी मृत्यु के समय सिक्खों का राज्य उत्तर में लद्दाख और तिब्बत तक और दक्षिण की ओर खैबर दर्रे से लेकर सिन्ध तक फैला हुआ था। पूर्व की ओर सतलज नदी उसकी सीमा थी।

रणजीतसिंह का चरित्र :—महाराजा रणजीतसिंह ने उस कार्य को सफलता की उच्चतम श्रेणी तक पहुँचाया जिसे गुरु अर्जुन तथा गोविन्दसिंह ने प्रारम्भ किया था। उसका कद ५ फीट ६ इंच था। रणजीतसिंह बड़ा वीर और

निर्भीक सिपाही था, उसे घोडे की सवारी करने तथा आखेट खेलने का बड़ा शौक था। उसमें दृढ-प्रतिज्ञा का विशेष गुण था। युद्ध करने में उसे आनन्द आता था। वह वीर पुरुषो का सत्कार करता था। उन्हें पुरस्कार देता था। सेनापति के रूप में वह अपने सिपाहियो का प्रेम-पात्र बन गया था। वे उसकी प्रतिज्ञा का पालन करते थे और उसके लिये प्राणो की बलि देने को तैयार रहते थे। वह अपना कार्य नियत समय पर करता था। स्वय कट्टर सिक्ख होते हुए भी वह किसी धर्म या सम्प्रदाय के लोगो से घृणा नही करता था। उसने किसी को सिक्ख धर्म स्वीकार करने के लिये बाध्य नही किया। यद्यपि उसके व्यवहार से प्रसन्न होकर बहुत से लोगो ने सिक्ख धर्म स्वीकार कर लिया। इन्ही सब गुणो के कारण वह अस्त-व्यस्त सिक्ख जाति को एक सूत्र में बाँधकर तथा उसे योरुपियन ढग की शिक्षा देकर एक सुदृढ सिक्ख राज्य स्थापित करने में सफल हुआ। अपने समय के अधिकाश राजाओ और बादशाहो की तरह उसे शराब पीने तथा ऐश आराम का जीवन व्यतीत करने का काफी शौक था। इतना होते हुए भी विलास में पडकर उसने कभी अपने कार्य की हानि नही होने दी। वह स्वय पढा लिखा न था, परन्तु वह विद्वानो का आदर-सत्कार करता था। वह शिक्षा के महत्व को समझता था। उसकी बुद्धि बडी तीक्ष्ण थी और नई बातो को जानने के लिये वह सदा उत्सुक रहता था। वह इतिहास तथा साहित्य-प्रेमी था। युद्ध में वह बडा निर्भीक था। वह अपने भाग्य का निर्माता स्वय था। यद्यपि उसकी एक आँख चेचक में जाती रही थी और चेहरे पर दाग होने के कारण उसकी आकृति बहुत ही भद्दी हो गई थी तो भी उसका लोगो पर तथा अपने कर्मचारियो पर बडा रौब रहता था।

रणजीतसिंह के बाद पजाब की दशा :—महाराजा रणजीतसिंह की मृत्यु के पश्चात सिक्ख साम्राज्य में अराजकता फैलने लगी, सिक्ख सेना ने एक के बाद दूसरे राजवंशज को गद्दी पर बैठाया। अन्त में दलीपसिंह गद्दी पर बैठा। अल्पायु होने के कारण उसकी माता रानी जिन्दा राज्य-कार्य करने लगी। रानी की सरक्षता में प्रधान मन्त्री राजा लालसिंह, जो रानी का विशेष कृपापात्र था, अधिक प्रभाव-शाली हो गया। प्रभाव तथा पद ने लालसिंह की आकांक्षायें प्रज्वलित कर दी। दूसरी ओर सिक्ख-सेना का प्रभाव निरन्तर बढ़ता जा रहा था, जिसके कारण उस पर नियन्त्रण रखना दिन पर दिन कठिन समस्या होती जा रही थी। अग्रेज पजाब की इस स्थिति को गम्भीरता पूर्वक देख रहे थे। इससे लाभ उठाने के लिये उन्होने प्रधान मन्त्री लालसिंह तथा प्रधान सेनापति तेजसिंह से पत्र-व्यवहार करना आरम्भ किया। और सैनिक तैयारियाँ भी आरम्भ कर दी। फीरोजपुर, लुधियाना, अम्बाला,

तथा मेरठ की छावनियों में सैनिक संख्या तथा युद्ध-सामग्री में विशेष वृद्धि की गई। इस प्रकार तैयारी करने के बाद लार्ड हार्डिंग उचित अवसर की प्रतीक्षा करने लगा, जो शीघ्र ही प्राप्त हो गया।

सतलज नदी के इस पार कुछ प्रदेश महाराजा पटियाला आदि कई सिक्ख नरेशों का था। यह सब राजा अंगरेजों के संरक्षण में थे। इनके अतिरिक्त थोड़ा भूभाग लाहौर दरबार का भी था, जिसका अङ्गरेजों से कोई सम्बन्ध न था। महाराजा रणजीतसिंह के साथ जो सन्धि की गई थी। उसमें तै हुआ था कि अङ्गरेज इस प्रदेश में कोई हस्तक्षेप न करेंगे। कनिंघम लिखता है कि मार्च सन् १८४५ ई० के लगभग कुछ सिक्ख सवार इस प्रदेश-स्थित एक नगर की रक्षा के लिये भेजे गये गवर्नर जनरल के एजेण्ट मेजर ब्राडफुट ने इसका अर्थ यह लगाया कि सिक्ख सेना, जिसका यह सवार एक भाग है, अङ्गरेज-प्रदेश पर आक्रमण करने के लिये आ रही है। इसलिये जब उन सवारों ने फिरोजपुर के निकट सतलज पार करके टकपुरा नामक उक्त नगर में पहुँचना चाहा, तो मेजर ब्राडफुट ने उन्हें सतलज पार करने के बदले वापस जाने की आज्ञा दी। यद्यपि उन्होंने मेजर को अपना उद्देश्य पूर्णतया स्पष्ट कर दिया, फिर भी उसने उन्हें सतलज पार करने की अनुमति न दी। लाहौर-दरबार इससे अत्यन्त क्षुब्ध हुआ। अपनी सरहद के निकट अंगरेजो की सैनिक तैयारियों को भी वह ध्यान-पूर्वक देख रहा था, और समझ गया था कि अंगरेजों का विचार शांति भंग करने का है। इसलिये उन्हें सिक्ख सैनिकों को इस प्रकार सतलज पार करने से रोकना युद्ध की प्रारम्भिक छेड़-छाड़ प्रतीत हुई। वीर-सिक्ख अपने इस अपमान तथा अनुचित हस्तक्षेप का बदला लेने के लिये क्रोधान्ध हो उठे, परन्तु उन्हें ज्ञान न था कि अंगरेज-कूटनीति के शिकार उनके प्रधान-मन्त्री तथा प्रधान-सेनापति गुप्त-रूप से उन्हें पतन के अंध-कूप की ओर ले जा रहे थे।

अङ्गरेजो की सैनिक तैयारियाँ पूरी हो चुकी थी। सिक्ख समुदाय में वह विश्वासघात का बीज बो चुके थे। अब वह उचित बहाने की प्रतीक्षा कर रहे थे। स्थिति की गम्भीरता का अनुभव कर लार्ड हार्डिञ्ज ने कलकत्ते से पंजाब की सरहद के लिये प्रस्थान कर दिया। लाहौर-दरबार को जब इसकी सूचना मिली, तो उसका धैर्य्य तथा शान्ति जाती रही। इसलिये जब लालसिंह तथा तेजसिंह ने सिक्ख-सेना को सतलज पार कर अंगरेजी सरहद पर आक्रमण करने का आदेश दिया तो उन्होंने इसका सहर्ष स्वागत किया। उन्हें बिल्कुल ज्ञात न था कि लालसिंह तथा तेजसिंह ने यह आज्ञा अंगरेजों की इच्छानुकूल ही दी है।

नवम्बर सन् १८४५ ई० के मध्य में लालसिंह के आधीन सिक्ख-सेना लाहौर

से चल पडी। अंगरेजो को युद्ध का बहाना मिल गया और दिसम्बर १८४५ को गवर्नर जनरल ने महाराजा दलीपसिंह के साथ युद्ध-घोषणा कर दी।

मुदकी का सग्राम —दिसम्बर सन् १८४४ ई० को मुदकी में दोनों ओर की सेनाओ के बीच घमासान युद्ध हुआ। अंगरेज इतिहास-लेखको का कथन है कि सिक्खो ने अत्यन्त वीरता के साथ अ गरेजो का सामना किया, जिसके कारण अ गरेजों को भारी हानि उठानी पडी। परन्तु मैदान अ गरेजो के हाथ रहा। कहा जाता है कि मुदकी की पराजय का कारण अ गरेजी सेना की वीरता नही, वरन् लालसिंह तथा तेजसिंह का विश्वासघात था। क्योकि उन्होंने बारूद तथा छर्रों तक में मिश्रण कर उसे बेकार कर दिया था।

मुदक की लडाई के बाद फीरोजपुर में घोर सग्राम हुआ, जिसमें प्रथम बार विजय सिक्खो की रही। अ गरेजा की भयकर क्षति को देखकर लार्ड हार्डिंग इतना घबरा उठा कि उसी दिन उसने अ गरेज अफसरो तथा उनके बाल बच्चो को पीछे हटा लेने का प्रबन्ध कर लिया। यदि पूरी सिक्ख सेना उस समय आगे बढ जाती तो उस दिन का सग्राम ही निर्णायक सिद्ध होता। नही कहा जा सकता कि सिक्ख नेताओ ने क्यो ऐसी आज्ञा न दी। इतिहास-लेखक विलियम एडवर्ड्स लिखता है कि अवश्य ही लालसिंह का विश्वासघात उसका उत्तरदायी था। वह किसी प्रकार नहीं चाहता था कि उसकी सेनाएँ विजय प्राप्त करें।[१]

इसका परिणाम यह हुआ कि उसने अ गरेजो को युद्ध सामग्री तथा सेना मँगाने का अवसर प्रदान कर दिया, इसलिए जब दूसरी बार उसी स्थान पर युद्ध हुआ तो विजय अ गरेजो के हाथ रही। परन्तु गवर्नर जनरल सिक्ख वीरता को देख चकित रह गया। फीरोजशहर की लडाई में अनेक बडे-बडे अ गरेज अफसरो तथा सैनिको की मृत्यु हो चुकी थी। इसलिए गवर्नर जनरल को भय हुआ कि कहीं अ गरेज परास्त न हो जायें। उसे यह भी डर हुआ कि कही पटियाला का राजा सिक्ख सेना की बागडोर सम्भाल, उन्हें सगठित कर अ गरेजो के उद्देश्य को असफल न कर दे। इस आशका को दूर करने के लिए उन्होने पटियाला नरेश को वचन दिया कि यदि उसने कम्पनी का साथ दिया तो युद्ध के बाद उसका पद सतलज के उस पार की सब रियासतो में ऊँचा कर दिया जावेगा और विजय के बाद जो प्रदेश कम्पनी को मिलेगा, उसका एक भाग भी उसे दे दिया जावेगा।

इस प्रकार अपनी स्थिति को दृढ कर अ गरेज सेना सतलज पार कर लाहौर की ओर बढ़ी। अलीवाल के स्थान पर एक छोटी सी लडाई हुई, जिसमें अ गरेज-सेना ने एक सिक्ख दस्ते पर गोली चलाकर उसे भगा दिया।

मुदकी, फीरोजशहर और अलीवाल, की पराजय के बाद सिक्ख सेना को विश्वास हो गया कि लालसिंह, तेजसिंह और कुछ अन्य नेता अंगरेजों के साथ मिले हुए हैं। इसलिए उन्होंने जम्मू के राजा गुलाबसिंह को अपना नेता चुना; परन्तु उसे भी अंगरेजों ने अपनी ओर तोड़ लिया। फल यह हुआ, उसने सिक्ख-सेना को सतलज नदी के किनारे सुबराव नामक ऐसे स्थान पर पहुँचा दिया, जहाँ नदी को पार कर सकना असम्भव था। वहाँ अंग्रेज-सेना ने उसे चारों ओर से घेर लिया। समस्त सिक्ख-सेना कटकर मर गई और सतलज नदी लाशों से भर गई। नदी का पानी रक्त-वर्ण हो गया। इस प्रकार लालसिंह, तेजसिंह तथा गुलाबसिंह के विश्वासघात से अजेय सिक्ख जाति का सर्वनाश हुआ।

लाहौर की सन्धि :—सुबराव की लड़ाई के बाद फरवरी सन् १८४६ ई० में हार्डिंग लाहौर पहुँचा और अंग्रेजों तथा सिक्खों में सन्धि हो गई, परन्तु शीघ्र ही बदलकर भैरोवाल के स्थान पर एक दूसरी सन्धि हुई। गुलाबसिंह को उसके देश-द्रोह के पारितोषिक रूप काश्मीर का विशाल राज्य, शेख इमामुद्दीन से छीनकर एक करोड़ रुपया लेकर दे दिया गया। परन्तु कहा जाता है कि लालसिंह ने गुलाबसिंह के काश्मीर पर कब्जा करने में बाधायें डालीं, इसलिए लालसिंह की सत्ता समाप्त कर दी गई। बाद में उसे कैद करके देहरादून भेज दिया गया। रानी फिन्दाँ को १५००० पौंड वार्षिक की पेन्शन देकर राज्य-प्रबन्ध से वंचित कर दिया गया। दलीपसिंह के नाबालिग रहने के समय तक के लिए आठ सरदारों की एक कौंसिल बना दी गई। तेजसिंह उस कौंसिल का एक सदस्य रहा और यह तै कर दिया गया कि यह कौंसिल अंगरेज रेजीडेण्ट के आदेशानुसार समस्त राज्य-प्रबन्ध करे। युद्ध के दण्ड रूप एक बहुत विशाल धन-राशि लाहौर दरबार से वसूल की गई। दरबार की सेना का एक बड़ा भाग तोड़ दिया गया और उसकी जगह कम्पनी की सेना पंजाब में नियुक्त की गई, जिसका खर्च लाहौर दरबार पर डाला गया।

सिक्ख-युद्ध के बाद लार्ड हार्डिंग के शासन-काल में कोई महत्वपूर्ण घटना नहीं हुई। जनवरी १८४८ ई० में वह इंग्लैंड वापस चला गया।

प्रश्न

१. रणजीतसिंह के जीवन तथा शासन-प्रबंध पर प्रकाश डालो।
२. प्रथम सिक्ख-युद्ध के क्या कारण थे— इस युद्ध में सिक्खों की पराजय क्यों हुई ?

अध्याय २७

साम्राज्य-वृद्धि का तीसरा काल

(लार्ड डलहौजी १८४८-५६ ई०)

आगमन :— १८४८ ई० में लार्ड डलहौजी भारत का गवर्नर जनरल होकर आया। उसके आगमन से भारत में साम्राज्य-वृद्धि का तीसरा युग प्रारम्भ होता है। इंग्लैंड का मन्त्रिमण्डल तथा कम्पनी के संचालक उसकी साम्राज्यवादी नीति से सर्वथा सहमत थे। इससे डलहौजी को और भी प्रोत्साहन मिला। फल यह हुआ कि उचित, अनुचित, न्याय-अन्याय किसी का ध्यान न कर वह अपने शासनकाल पर्यन्त साम्राज्य-वृद्धि में निरन्तर संलग्न रहा और भारत में रहे-सहे देशी राज्यों का अन्त करना आरम्भ कर दिया। सर्वप्रथम पंजाब लार्ड डलहौजी की साम्राज्यवादी नीति का शिकार हुआ।

द्वितीय सिक्ख युद्ध :— प्रथम-सिक्ख-युद्ध के बाद भैरोवाल की सन्धि में पंजाब का प्रबन्ध करने के लिए एक कौंसिल बना दी गई थी, जिसको आदेश दिया गया था कि वह पंजाब में अंग्रेजी रेजीडेण्ट की सलाह से कार्य करे। सन्धि की इस धारा से लाभ उठाकर सामयिक अंग्रेजी रेजीडेण्ट सर फ्रेडरिक करी ने पंजाब की स्वाधीनता का अपहरण करने की भूमिका बांधनी आरम्भ कर दी। उसने प्रत्येक उच्च पद से देशवासियों को निकालकर उनकी जगह अंग्रेज भरती करने आरम्भ कर दिये। इससे पंजाबियों में असन्तोष बढने लगा।

भैरोवाल की सन्धि के बाद मुलतान में दो अंग्रेज कमिश्नर रखे गये थे और मुलतान का वार्षिक कर बढा दिया गया था। मुलतान का दीवान मूलराज इस वृद्धि से सन्तुष्ट न था, इसलिए जब मुलतान के अंग्रेज पदाधिकारियों ने उसके शासन में अनुचित हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया तो वह बहुत क्षुब्ध हुआ और अपने पद से स्तीफा देने के लिए तैयार हो गया। इसी बीच पंजाब के रेजीडेण्ट करी ने काहनसिंह नामक एक सिक्ख सरदार को दो अंग्रेजो अफसर तथा सेना सहित मुलतान का उचित प्रबन्ध करने को भेजा। मूलराज पदच्युत कर दिया गया और उसकी जगह काहनसिंह मुलतान का दीवान नियुक्त हुआ। नगर में शान्ति तथा सुरक्षा रखने के लिए अंग्रेज अफसरों ने उक्त अवसर पर मुलतान के सब नगर-द्वारों पर-

अंग्रेज गारद नियुक्त कर दी, परन्तु मुलतान की सेना में इस घटना से बड़ा असन्तोष फैला। उन्हें मुलतान का शासन सिक्खों के हाथों से अंग्रेजों के हाथों में जाता हुआ प्रतीत हुआ। इससे क्रुद्ध होकर मुलतानियों ने दोनों अंग्रेज अफसरों का वध कर डाला। इस दुर्घटना का कारण मुलतानियों की स्वाधीनता पर आक्रमण प्रतीत होता है पर रेजीडेण्ट करी ने मुलतान-विद्रोह को सगठित विद्रोह घोषित किया और महाराजा दलीपसिंह की मां झिन्दाकौर तथा मूलराज दोनों को इसका उत्तरदायी ठहराया। करी के इस अभियोग की बिना जाँच-पड़ताल किये ही महारानी झिन्दाकौर बन्दी बनाकर बनारस भेज दी गई। समस्त पंजाब, विशेषतया सिक्ख जाति महारानी को माता-तुल्य समझती थी। इसलिए उसके साथ इस व्यवहार को देखकर समस्त सिक्ख जाति में असन्तोष की आग भड़क उठी और उसकी सहानुभूति दीवान मूलराज तथा मुलतान के विद्रोही सिपाहियों की ओर हो गई।

एक अन्य घटना ने सिक्ख जाति को युद्ध के लिए बाध्य कर दिया। लाहौर कौंसिल के प्रसिद्ध सदस्य राजा शेरसिंह का पिता सरदार चतरसिंह अटारी वाला पंजाब के हजारा प्रान्त का शासक था। वह अत्यन्त स्वतन्त्रता-प्रिय तथा निर्भीक व्यक्ति था। उसकी पुत्री की सगाई महाराजा दलीपसिंह के साथ हुई थी। परन्तु विवाह सम्पन्न होते समय रेजीडेण्ट करी ने चतरसिंह को लिखा कि बिना उसकी स्वीकृति के विवाह नहीं हो सकता। चतरसिंह का आत्मसम्मान अपने व्यक्तिगत मामलों में अंग्रेजों के इस अनुचित हस्तक्षेप को सहन न कर सका। वह पहले ही से अंग्रेजों की कूटनीति से अप्रसन्न था। इसलिए वह तथा राजा शेरसिंह देश, धर्म तथा खालसा राज्य की रक्षा के लिए कटिबद्ध हो गये और अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी।

घटनायें:—गवर्नर जनरल के आदेशानुसार लार्ड गफ ने नवम्बर १८४८ ई० में रावी नदी को पार किया। चुनाव के तट पर रामनगर के स्थान पर युद्ध हुआ, इस में किसी पक्ष की विजय न हुई। सादुल्लापुर के संग्राम में सिक्खों को बहुत क्षति हुई। जनवरी १८४९ ई० में चिलियानवाला में घोर संग्राम हुआ। यद्यपि सिक्ख-सेना अंग्रेज-सेना से कम थी, फिर भी अंग्रेज बुरी तरह परास्त हुये। उनके अनेक अफसर खेत रहे और बहुत-से सिपाही काम आये, परन्तु इसी समय शेरसिंह तथा अन्य सिक्ख सरदारों में मतभेद उत्पन्न हो गया। जिससे लाभ उठाकर अंग्रेजी सेना ने २२ फरवरी सन् १८४९ ई० को गुजरात के संग्राम में ही पंजाब की स्वाधीनता तथा सिक्खों की राजसत्ता दोनों का अन्त हो गया। उधर मुलतान में भी ६ महीने तक वीरता से मुकाबला करने के बाद दीवान मूलराज ने आत्मसमर्पण कर

दिया। कहा जाता है कि किसी विश्वास-घातक ने उसके मैगजीन में आग लगा दी जिसने उने हतोत्साह कर दिया और वह आत्मसमर्पण के लिये बाध्य हो गया।

युद्ध का अन्त—गुजरात विजय के पश्चात् द्वितीय सिक्ख-युद्ध समाप्त हो गया। महाराजा दलीपसिंह को गद्दी से उतार दिया गया। उनसे एक पत्र पर हस्ताक्षर करवा लिये, गये जिसमें लिखा था 'वह तथा उसके वंशज सदैव के लिये पंजाब अंगरेजो के सुपुर्द करते है।' उसे २०००० पौंड की वार्षिक पेन्शन और राजकुमार की उपाधि मिली। बाद में वह इंग्लैंड चला गया जहाँ उसने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया। मूलराज पर मुकदमा चलाया गया और उसे प्राणदण्ड दिया गया। पंजाब का अंगरेजी राज्य में सम्मिलित करना सर्वथा अनुचित था। महाराजा दलीपसिंह अल्पायु था, इसलिये पंजाब प्रान्त के झगडो के लिये उसे दोषी ठहरा, उसके राज्य तथा सम्पत्ति का अपहरण करना अत्यन्त अन्यायपूर्ण था। पंजाब के झगडा का प्रबन्धकारी वर्ग ही दोषी कहा जा सकता था। जिसमें अंगरेज पदाधिकारी भी सम्मिलित थे। इस प्रकार निरपराध दलीपसिंह का राज्य से वंचित करना पूर्णतया अनधिकार चेष्टा थी, जिसे किसी प्रकार न्यायसंगत नहीं ठहराया जा सकता।

पंजाब का शासन प्रबन्ध—पंजाब का प्रबन्ध करने के लिये एक बोर्ड की स्थापना की गई। सर हैनरी लारेन्स तथा उसका भाई जान लारेन्स व मैंसल इसके सदस्य नियुक्त हुये। सिक्खो के हथियार छीन लिये गये। सिक्ख सरदारों की जायदादें जब्त कर ली गई। उक्त बोर्ड ने कुछ दीवानी तथा फौजदारी सुधार किये। अंगछेद इत्यादि के कठोर दण्ड स्थगित कर दिये गये। भूमि का उचित प्रबन्ध करने के लिये किसान तथा जमींदारा के अधिकार की जाँच कराई गई और उपज का चौथाई भाग भूमि-कर नियुक्त किया गया। कृषि की उन्नति के लिये सिंचाई की योजना बनाई गई। उक्त बोर्ड ने शिक्षा तथा सामाजिक सुधार की ओर भी ध्यान दिया। सन् १८५३ ई० में यह बोर्ड तोड दिया गया और सर जान लारेन्स को प्रथम चीफ कमिश्नर नियुक्त कर पंजाब का सूबा उसके सुपुर्द कर दिया गया।

बर्मा का दूसरा युद्ध—प्रथम बर्मा-युद्ध के पश्चात् यांडाबू की सन्धि के अनुसार ब्रिटिश कम्पनी को बर्मा में पैर जमाने का अवसर मिल गया था। बहुत से अंगरेज व्यापारी बर्मा के दक्षिणी समुद्र तट पर बस गये। यह व्यापारी नित्य नई सुविधाओं के इच्छुक रहने लगे, इनकी बहुत सी अनुचित माँगो को बर्मा के शासक ने स्वीकार करने से मना कर दिया। इस अस्वीकृति का एक कारण अंगरेजी व्यापारियो का देशी लोगो के साथ अनुचित व्यवहार भी था। इन व्यापारियों ने गवर्नर

जनरल से रंगून के शासक की शिकायत की। लार्ड डलहौजी ने बर्मा के बौद्ध राजा को लिखा कि वह रंगून के शासक को उचित व्यवहार का आदेश दे तथा उसके अनुचित व्यवहार से हुई हानि की पूर्ति करे। इस पत्र की प्राप्ति पर महाराजा ने रंगून के गवर्नर को बदल दिया और आदेश दिया कि नया गवर्नर अंगरेज व्यापारियों के साथ न्याय-संगत व्यवहार करे, परन्तु व्यापारियों ने इस नये गवर्नर की शिकायत की। गवर्नर जनरल ने बिना छानबीन किये, व्यापारियों की शिकायत को सत्य मान लिया। उसने फिर बर्मा के महाराजा को लिखा कि वह तुरन्त इन व्यापारियों की शिकायतों को दूर करें और एक लाख पौंड बतौर हर्जाने के दें। अभी महाराजा उत्तर भी न देने पाया था कि अप्रैल सन् १८५२ ई० में अंगरेज युद्ध-पोतों ने एक ब्रह्मी जहाज को पकड़ लिया और जब ब्रह्मी रक्षकों ने उसकी वापसी की प्रार्थना की तो उन्होंने रंगून और ढाका के तटों पर गोलाबारी आरम्भ कर दी; बस युद्ध आरम्भ हो गया।

युद्ध:—अंगरेजी सेना ने मर्तबान पर अधिकार कर लिया और रंगून के बौद्ध-मन्दिर को जीत प्रोम पर भी अंग्रेजों का अधिकार हो गया। युद्ध के दिनों में निरपराध ब्रह्मी जनता का खूब संहार किया गया और बर्मा का सबसे अधिक उपजाऊ प्रान्त पीगू महाराजा से छीनकर कम्पनी के राज्य में मिला लिया गया। इसके बाद युद्ध का अन्त हो गया। इसके फलस्वरूप बंगाल की खाड़ी का सम्पूर्ण समुद्र-तट कुमारी अन्तरीप से मलाया प्रायद्वीप तक अंग्रेजों के अधिकार में आ गया।

लैप्स की नीति:—सम्पूर्ण पंजाब तथा ब्रह्मा के अधिकतर भाग को विजय द्वारा अंग्रेजी साम्राज्य में सम्मिलित करने के बाद लार्ड डलहौजी ने आठ अन्य देशी राज्यों का अन्त कर उन्हें ब्रिटिश राज्य में विलीन कर लिया। इनमें से सात एक विशेष नीति के अन्तर्गत, जिसे अंगरेजी में लैप्स की नीति कहते हैं, साम्राज्य में सम्मिलित हुये। लैप्स की नीति का अर्थ था कि जिन देशी नरेशों ने कम्पनी के साथ मित्रता की सन्धि कर रक्खी थी या जो अंगरेजों के अधीन थे, उनके यदि कोई पुत्र न हो तो वे बिना अंगरेजों की अनुमति के किसी को गोद न ले सकते थे, यदि वे अथवा उनकी रानी इस नियम का उल्लंघन कर किसी को गोद लें तो वह बालक रियासत का अधिकारी नहीं हो सकता था वरन् केवल राजा की व्यक्तिगत जायदाद का अधिकारी हो सकता था। यह नियम यद्यपि पहले से लागू था, लार्ड डलहौजी ने इसका बड़ी कठोरता से पालन किया और भारतीय नरेशों को गोद लेने की आज्ञा न दे, बहुत-से राज्यों का अस्तित्व मिटा डाला।

सतारा:—सबसे पहला भारतीय राज्य, जिसका इस नीति के अनुसार

हुआ, सतारा था। यहाँ के राजा शिवाजी के वशज थे। इन्ही राजाओ की सहायता से अंगरेजो ने पेशवा बाजीराव का अन्त किया था। सन १८४८ ई० में वहाँ के राजा अप्पासाहब के निधन पर लार्ड डलहौजी ने विधवा महारानी को पुत्र गोद लेने की आज्ञा न दी। तदनुसार सतारा अंगरेजी राज्य में विलीन कर लिया गया। सन १८५७ ई० की क्रान्ति के बाद यद्यपि महारानी ने मल्का विक्टोरिया के नाम इस अन्याय के विरुद्ध प्रार्थना-पत्र भी भेजा तो भी कोई परिणाम न हुआ।

नागपुर का अपहरण:—नागपुर के अन्तिम राजा राघोजी भौसला तृतीय की मृत्यु ११ दिसम्बर सन् १८५३ ई० को हुई। यद्यपि राजा अत्यन्त नेक तथा बुद्धिमान था तो भी लार्ड डलहौजी ने उस पर अनेक दोष लगा विधवा महारानी के दत्तक पुत्र को स्वीकार करने से मना कर दिया और नागपुर को अंगरेजी राज्य में सम्मिलित करने की घोषणा कर दी।

झाँसी:—१८५३ ई० में झाँसी के राजा गंगाधरराव का देहान्त हो गया। मृत्यु से पहले राव ने विधिवत् दामोदरराव नामक एक बालक को गोद ले लिया था तो भी लार्ड डलहौजी ने फैसला किया कि इस दत्तक पुत्र को राज्य का कोई अधिकार नहीं। फलस्वरूप मार्च सन् १८५४ ई० में झाँसी अंगरेजी राज्य में मिला ली गई। इस अन्याय के प्रतिशोध-स्वरूप ही १८५७ के स्वतन्त्रता-समर में झाँसी की प्रसिद्ध रानी लक्ष्मीबाई ने शस्त्र धारण कर अंगरेजो के विरुद्ध सैनिक मोर्चा खोला।

इसी नीति के अन्तर्गत सम्बलपुर तथा जेतपुर का अपहरण कर उन्हें अंगरेजी राज्य में सम्मिलित किया गया।

उपाधियों का अन्त:—लार्ड डलहौजी ने उपरोक्त नीति को उपाधियो पर भी लागू किया। उसने घोषित किया कि यदि अंग्रेजो के अधिनस्थ किसी व्यक्ति को राजा की उपाधि प्रदान की गई है और उसके कोई पुत्र नहीं है तो उसका दत्तक पुत्र बिना उनकी अनुमति के उपाधि को धारण नही कर सकता। इस नियम के अन्तर्गत तंजोर के राजा तथा कर्नाटक के नवाब की उपाधियाँ छीन ली गई। इसी प्रकार १८५३ ई० में पेशवा बाजीराव द्वितीय की मृत्यु के बाद उसके दत्तक पुत्र नाना साहब को पेशवा की स्वीकृत ८ लाख रुपया वार्षिक पेंशन बन्द कर दी गई। यही नहीं वरन् लार्ड डलहौजी ने यह भी प्रस्ताव किया कि अन्तिम मुगल सम्राट् को पदवी धारण करने की आज्ञा न दी जाय, किन्तु डाइरेक्टरों ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। फिर भी मुस्लिम वर्ग में इससे अत्यन्त क्षोभ फैला, जो १८५७ ई० की क्रान्ति में प्रकट हुआ।

अवध का विलीनीकरण:—साम्राज्य-प्रिय डलहौजी की आँखें बहुत दिन से अवध पर लगी हुई थी। सन् १८५१ ई० में उसने लखनऊ के रेजीडेंट

कर्नल स्लीमैन से अवध के शासन-प्रबन्ध के विषय में रिपोर्ट माँगी, जिससे उसे कोई बहाना मिल जावे तो वह अवध की स्वतन्त्रता का अपहरण कर सके। स्लीमैन ने अपनी रिपोर्ट में अवध के कुप्रबन्ध तथा नवाब वाजिदअलीशाह के चरित्र का अत्यन्त अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन दिया।

डलहौजी को उचित बहाना मिल गया और जब १८५४ ई० में नये रेजीडेण्ट जनरल ओटरम ने भी स्लीमैन की रिपोर्ट का समर्थन किया तो वह स्वयं अवध को जांच के लिए लखनऊ गया। वहां से लौटकर, उसने ओटरम को लिखा कि वह लखनऊ के अन्तिम नवाब वाजिदअलीशाह को १२ लाख रुपये की पेंशन स्वीकार करने तथा अवध का राज्य कम्पनी के सुपुर्द करने के लिए बाध्य करे। परन्तु वाजिदअलीशाह ने इस प्रकार की सन्धि करने से इन्कार कर दिया, इसपर डलहौजी के आदेशानुसार घोषणा कर दी गई कि अवध का राज्य अँगरेजी राज्य में सम्मिलित कर लिया गया है। अवध का विलीनीकरण अत्यन्त अन्यायपूर्ण कार्य था। अवध के नवाब अँगरेजो के मित्र रह चुके थे। दूसरे डलहौजी का यह कार्य अवध की सन्धि के सर्वथा विरुद्ध था।

कम्पनी का नया आज्ञापत्र (१८५३ ई०):—सन् १८१३ में कम्पनी को फिर नया आज्ञापत्र मिला, इसके अनुसार कम्पनी का अस्तित्व कायम रक्खा गया, परन्तु उसके व्यापार-सम्बन्धी सभी अधिकार छीन लिए गये। डाइरेक्टरो की संख्या २४ से घटा कर १७ कर दी गई और इसमें से छः को निर्वाचित करने का अधिकार सम्राट् को दे दिया गया। सचालको के अधिकतर अधिकार बोर्ड आफ कन्ट्रोलर को दे दिये गये। भारतीय शासन के पदाधिकारियो की नियुक्ति के लिए इण्डियन सिविल सर्विस की परीक्षा का प्रादुर्भाव हुआ। इसके अनुसार केवल योग्य व्यक्ति ही उच्च पदाधिकारी हो सकते थे। पहले की भाँति डाइरेक्टर अब अपने सम्बन्धियों को ही उक्त पदो पर आसीन न कर सकते थे। सन् १८३३ ई० में एक ला मेम्बर गवर्नर जनरल की कौंसिल का सदस्य नियुक्त किया गया था। इस आज्ञापत्र के अनुसार यह सदस्यता स्थायी कर दी गई। गवर्नर जनरल को बंगाल के कार्यभार से मुक्त कर उसे सम्पूर्ण भारत के शासन-भार का उत्तरदायी किया गया। बंगाल के शासन के लिये एक लेफ्टिनेण्ट गवर्नर नियुक्त किया गया। गवर्नर जनरल की कौंसिल के सदस्यो की संख्या १२ कर दी गई। इस आज्ञापत्र द्वारा कम्पनी का ध्यान भारतवर्ष की शासन-व्यवस्था, यहाँ के निवासियो की शिक्षा, भूमि-प्रबन्ध, सेना इत्यादि की ओर केन्द्रीभूत किया गया। इसके कुछ दिन बाद सर चार्ल्स वुड ने १८५४ ई० में अपना प्रसिद्ध शिक्षा-पत्र भेजा, जिसके अनुसार शिक्षा-विभाग को

स्थापना हुई तथा यूनिवर्सिटी स्थापित की गई, इस प्रकार डलहौजी के समय में आधुनिक शिक्षा-प्रणाली की नींव पड़ी।

शासन-सुधार —लार्ड डलहौजी ने शासन सम्बन्धी अनेक सुधार किये। अंगरेजी साम्राज्य दो प्रकार के प्रान्तों में विभक्त था। एक जिसका विकास अंगरेज फैक्टरियों से आरम्भ होकर हुआ, यह प्रेजीडेन्सी कहलाये। दूसरे वह सूबे जो नये ब्रिटिश राज्य में मिले, वह नान रेग्यूलेशन प्रान्त कहलाये। इनके शासन में पुराने सूबों की अपेक्षा स्थानीय लोगों को कहीं अधिक स्वतन्त्रता प्रदान की गई। लार्ड डलहौजी ने सैनिकों के आराम और स्वास्थ्य की ओर विशेष ध्यान दिया। उसकी सलाह से गोरखे और सिक्खों की पलटनें बनाई गईं तथा योरुपीय सेना में वृद्धि की गई। उसने सार्वजनिक निर्माण-कार्य के लिये सार्वजनिक विभाग अर्थात् Public Work Department की स्थापना की। सार्वजनिक कार्यों के लिये उसने जनता से ऋण लेने की प्रथा आरम्भ की। उसके आर्थिक सुधारों के परिणामस्वरूप भारत की आय २४५ लाख से बढकर ३०७ ½ लाख हो गई। लार्ड डलहौजी ने भारतवर्ष में प्रथम रेलवे की स्थापना की, जो ईस्ट इण्डिया रेलवे के नाम से अब तक चली आती है। डाक व तार की उचित व्यवस्था कर उसने भारत के कोने-कोने को जोड दिया। इन सुधारों से व्यापार को बहुत प्रोत्साहन मिला। दो पैसे के कार्ड से सूचना प्राप्त कर जनता ने विशेष सुविधा का अनुभव किया। सिंचाई के साधनों की प्रगति देने के लिये उसने गंगा की नहर निकलवाई। १८५४ ई० में सर चार्ल्स वुड के अधिकार-पत्र की प्राप्ति पर उसने भारतीय जनता की शिक्षा की ओर भी विशेष ध्यान दिया।

वापसी :—सन् १८५६ ई० में डलहौजी इंग्लैंड वापस लौट गया, वहाँ पर चार वर्ष बाद उसका देहान्त हो गया।

प्रश्न

१. लार्ड डलहौजी ने पंजाब को किस प्रकार अंग्रेजी राज्य में मिलाया ?
२. लैप्स की नीति क्या थी; इसके अंतर्गत डलहौजी ने किन किन राज्यों का किया ?
३. लार्ड डलहौजी ने क्या-क्या शासन सम्बन्धी सुधार किये ?

अध्याय २८

१८५७ की राज्य-क्रांति

फरवरी १८५६ में डलहौजी के पश्चात् लार्ड केनिंग भारतवर्ष का गवर्नर-जनरल नियुक्त होकर आया। अपनी कुशाग्र बुद्धि एवं शासन-सम्बन्धी योग्यता के सम्बन्ध में वह पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर चुका था। भारत के शासन का भार सँभालने से पहले वह इंग्लैंड में पोस्ट मास्टर जनरल रह चुका था। वह बड़ा परिश्रमी एवं योग्य था, परन्तु डलहौजी की भाँति महत्वाकांक्षी न था। किसी निश्चय पर पहुँचने में उसको विलम्ब तो अवश्य होता था, परन्तु इसके पश्चात् वह धैर्य तथा दृढ़ता से अपने निश्चय पर स्थिर रहता था। इस पर भी उसने अपने शासनकाल में अनेकों ऐसे कार्य किये थे, जिनकी आलोचना किये बिना नहीं रहा जा सकता। हो सकता है कि यदि वह शान्तिकाल में गवर्नर जनरल हुआ होता, तो कदाचित् उसकी गणना सुधारकों में हो जाती।

जिस समय केनिंग भारत में आया तो ऐसा प्रतीत होता था कि उसको सर्वप्रथम मध्य एशिया की समस्या का सामना करना पड़ेगा। १८५५ ई० में तेहरान से ब्रिटिश राजदूत अपमानित करके निकाल दिया गया था। अगले वर्ष फारिस की सेनाओं ने सन्धि का उल्लंघन करके हिरात पर अधिकार कर लिया। इंग्लैंड की सरकार ने केनिंग को युद्ध की घोषणा करने का आदेश दिया। एक अंग्रेजी सेना फारिस की खाड़ी में भेज दी गई, जिसने बुशहर पर अधिकार कर लिया और शत्रु को अन्य अनेकों स्थानों पर परास्त किया। अन्त में दोनों दलों में सन्धि हो गई। फारिस ने हिरात को खाली करने और अफगानिस्तान की आंतरिक व्यवस्था में हस्तक्षेप न करने का वचन दिया। इस युद्ध के परिणामस्वरूप अफगान अमीर दोस्त मुहम्मद के साथ १८५५ तथा ५७ में दो सन्धियाँ हुईं, जो क्रान्तिकाल में अंग्रेज के लिए बड़ी हितकर सिद्ध हुईं।

हिन्दू शासकों की शिकायतों से लाभ उठाकर मुसलमानों का यह एक षड्यन्त्र था। यथार्थ में देश को विदेशियों के चंगुल से स्वतन्त्र करने के लिए यह एक देशव्यापी आन्दोलन था जिसमें हिन्दू और मुसलमानों ने एक होकर मातृभूमि की परतन्त्रता की बेडियाँ काटने का बीडा उठाया था। इस महान् क्रान्ति के, जिसमें प्रथम बार अंग्रेजी शासनकाल में सच्ची राष्ट्रीयता का आभास मिलता है, अनेकों कारण थे, जिनको चार मुख्य भागों में विभाजित किया जा सकता है —राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा सैनिक।

राजनीतिक कारण :—डलहौजी की साम्राज्यवादी नीति एवं अति प्राचीन गोद लेने की प्रथा की तिरस्कार पूर्ण अवहेलना ने देश भर में असन्तोष एवं क्षोभ की लहर फैला दी थी। इस अन्यायपूर्ण नीति के हिन्दू और मुसलमान दोनों शिकार बने थे। पी० ई० राबर्ट्स की दृष्टि में यह नीति क्रांति का कोई विशेष कारण नहीं ठहरती। उसका कहना है कि यदि चर्बी लगी कारतूसों का प्रश्न न उठ खड़ा होता तो देशी शासकों का यह रोष कुछ समय पश्चात् स्वयमेव ठण्डा हो जाता, परन्तु कर्नल स्लीमैन ने १८५३ में लिखा था, 'मैं देशी राज्यों को (ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा के लिए) बाँध समझता हूँ और ये सब राज्य विलीन कर दिये जायेंगे, तो हमको देशी सेना की दया पर आश्रित होना पडेगा, जिस पर हमारा पर्याप्त नियन्त्रण रहना सभव नहीं है।' स्लीमैन के यह शब्द १८५७ में अक्षरश: सत्य सिद्ध हुए। डलहौजी के काल में सिक्खों की महान शक्ति का अन्त हो चुका था, अवध की मुख्य मुसलमानी रियासत अंगरेजी साम्राज्य में विलीन कर ली गई थी। छत्रपति शिवाजी महाराज की प्रारम्भिक राजधानी सितारा तथा नागपुर को भी हडप लिया गया था। मुगल-साम्राज्य का लगभग अन्त कर दिया गया था और जो कुछ अवशिष्ट था, उसके लिए के यह निर्धारित कर दिया गया था कि बहादुरशाह के पश्चात् उसका उत्तराधिकारी उसके राजकीय भवन में सम्राटोचित शान-बान से नहीं रह सकता तथा। अङ्गरेज अफसरों एवं कर्मचारियों की उस समय की बातों से यह सर्वथा प्रकट था कि उन्होंने न्याय एवं अन्याय के पचड़े में न पडकर प्रत्येक सम्भव साधन का प्रयोग करके भारत के समस्त राज्यों को समाप्त करने का निश्चय कर लिया था। उदाहरण के लिए सर चार्ल्स नेपियर ने अपने एक पत्र में लिखा था, "यदि बारह वर्ष के लिए मैं भारत का सम्राट् बन जाऊँ······तो एक भी भारतीय नरेश न रहे। निजाम का नाम सुनने को न मिले,···नैपाल हमारा हो जाय···।"डलहौजी ने बाजीराव पेशवा के दत्तक पुत्र नाना साहब की पैन्शन बन्द कर दी थी। क्योंकि नाना साहब बाजीराव का दत्तक पुत्र था, इसलिए वह पेशवा की पदवी एवं उसके अधिकारों का

दावेदार था। उसकी पेन्शन बन्द कर देना नितान्त अन्याय था। परिणाम-स्वरूप नाना साहब अंग्रेजो का कट्टर शत्रु बन गया था। १८५७ के प्रारम्भिक महीनो में यही नाना साहब क्रान्ति का अग्रगण्य दूत बना।

सामाजिक कारण :—सामाजिक दृष्टिकोण से प्रत्येक देशी राज्य का अँगरेजी साम्राज्य में सम्मिलित किये जाने का बडा भारी प्रभाव पडा था। इस प्रकार एक देशी राज्यघराने का तो अन्त ही हो जाता था, परन्तु इसके साथ ही अनेको मनुष्यों की जीविका का भी अन्त हो जाता था और कहावत है कि जीवन से जीविका प्यारी होती है। फिर तो 'मरता क्या न करता' वाली बात हुई। इसके साथ-साथ विजित प्रान्तो में जागीरदारो एव जमीदारो के साथ बडा कटुतापूर्ण व्यवहार किया गया। अंगरेज अफसरो ने, जो विजय के गर्व में उन्मत्त हो रहे थे, देशी परम्परा तथा प्रथाओं का लेशमात्र भी ध्यान न करके मनमाना करना आरम्भ कर दिया था। बैंटिक के भूमि सम्बन्धी नियमो के कारण अनेको जमीदार निर्धन हो गये थे और उन लोगो ने क्रान्ति के आन्दोलन में सहर्ष भाग लिया। क्रान्ति से पूर्व पाँच वर्षो में बम्बई के इनाम कमीशन ने ८०,००० जागीरो का अन्त कर दिया था अवध के ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाये जाने पर उसकी आन्तरिक व्यवस्था में जो परिवर्तन किये गये, उनके कारण प्रान्त की जनता में बडा भारी क्षोभ फैल गया था। अप्रैल १८५६ में अवध में जेम्स उट्रम के स्थान पर जैकसन चीफ कमिश्नर नियुक्त किया गया, जिसको प्रान्त वासियो के हितो से लेशमात्र भी सहानुभूति नही थी। नवाब की सेना तोड दी गई, जिसके कारण सैनिको की जीविका का आश्रय जाता रहा। अवध केताल्लुकेदारो के अधिकारो की बडी कडी जाँच की गई। जैक्सन के शासन-काल में ही अवध में क्रान्ति के चिन्ह प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होने लगे थे, और यद्यपि जैकसन के स्थान पर हेनरी लारेंस को नियुक्त कर दिया गया था, जिसने क्षोभ को शान्त करने के प्रयत्न किये तो भी अवध के ताल्लुकेदारो ने क्रान्ति में महत्वपूर्ण भाग लिया। केनिंग की एक घोषणा ने जिसका आगे उल्लेख किया जायगा, उनको और भी अधिक उत्तेजित कर दिया था।

धार्मिक कारणः—धार्मिक दृष्टिकोण से अंगरेजों का आधिपत्य हिन्दू और मुसलमान दोनो को ही असह्य था। फिर ईसाई बनाने की प्रथा निरन्तर जोर पकडती जा रही थी और अधिकाश जनता की यह धारणा थी कि केनिंग को भारतवासियों को ईसाई बनाने के लिए ही भारतवर्ष भेजा गया था। मैकाले ने, जो गवर्नर जनरल की कौंसिल का सदस्य रह चुका था, हिन्दू पौराणिक गाथाओ की बडी तिरस्कारपूर्ण 'शैली' में आलोचना की थी। सती की प्रथा को बन्द कर दिया गया था,

प्रभाव भी उस समय सामान्य जनता पर अच्छा नहीं पड़ा था। रेल, तार आदि का प्रयोग भी ऐसे वातावरण में दानवीय एवं सर्वथा स्वार्थपूर्ण प्रतीत होता था। इन साधनों के द्वारा जनता को ऐसा लगा कि सरकार उनको बरबस धर्म-परिवर्तन करने पर बाध्य करना चाहती है। विधवा-विवाह के लिए नियम पास कर दिया गया था और इसके साथ ही साथ यह भी नियम बना दिया गया था कि धर्म-परिवर्तन करने के कारण कोई मनुष्य अपनी पैत्रिक सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जा सकता। ये सब ऐसी बातें थी, जिनके कारण सामान्य मस्तिष्क में भय एवं सन्देह पैदा होने लगे थे।

सैनिक कारणः—इस समय भारतवर्ष में २ लाख ३३ हजार भारतीय सैनिक एवं ४५ हजार ३ सौ बाईस अङ्गरेज सैनिक थे। दिल्ली और इलाहाबाद में कोई अङ्गरेजी सेना नहीं थी और इलाहाबाद से कलकत्ता तक केवल दीनापुर के अतिरिक्त, जहाँ अङ्गरेजी सैनिकों का एक रेजीडेण्ट था, कोई अङ्गरेजी सेना नहीं थी। इसका एक कारण तो यह था कि भारत से अङ्गरेजी सेना का कुछ भाग क्रीमिया के युद्ध (१८५४–५६) में भाग लेने के लिए भेज दिया गया था। बहुत अङ्गरेज सैनिक अफसर डलहौजी ने शासन-प्रबन्ध के कार्य को चलाने के लिए नियुक्त कर दिये थे, इसलिए भी अङ्गरेजी सेना की संख्या में कमी उनकी निर्बलता का एक कारण बन गई थी। मद्रास और बम्बई की सेना की अपेक्षा बंगाल की सेना पर नियन्त्रण रखना अधिक कठिन था क्योंकि उसमें ब्राह्मण तथा राजपूत आदि सवर्ण हिंदू अधिक थे। उनका अनुशासन भी पिछले कुछ दिनों से ढीला पड़ गया था। अफगानिस्तान में जाकर सैनिक सेवा करना उनको पसन्द नहीं था और अब वे लोग वहाँ से लौट कर आये तो उनके स्वजातियों ने उन पर जातिच्युत होने का दोषारोपण किया। जैसा कि गत अध्यायों में वर्णन किया जा चुका है, १८२४ में ४७ वीं रेजीमेंट को इसलिए तोड़ दिया गया क्योंकि उसने ब्रह्मा में जाकर युद्ध करने से इन्कार कर दिया। १८४४ में बंगाल की चार रेजीमेंटों ने सिन्ध में जाकर तब तक युद्ध करने से इन्कार कर दिया जब तक कि उनको अतिरिक्त अलाउन्स न दे दिया जाये। १८४६ में गोविन्दगढ़ में ६६ वीं देशी पैदल पलटन ने गदर कर दिया था और १८५२ में ३८ वीं बंगाल देशी पैदल सेना ने ब्रह्मा में युद्ध करने से इन्कार कर दिया और उनका ऐसा करना न्यायोचित था। भारतीय सेना का ऐसा करने का प्रमुख कारण यह था कि उनको अंग्रेज सैनिकों की अपेक्षा बहुत कम वेतन मिलता था और उनसे बहुत अधिक काम लिया जाता था तथा अधिक भय के स्थान पर पहले उनको ही भेजा जाता था। इसके अतिरिक्त देशी सेना में अपनी ही शक्ति द्वारा स्वदेश को दासता की शृङ्खला में जकड़ने की नीति के कारण कुछ आत्म-घृणा भी हो चली थी

फिर हिन्दू सैनिक समुद्र यात्रा को धार्मिक दृष्टिकोण से त्याज्य समझते थे। १८५६ में जनरल सर्विस एनलिस्टमेंट एक्ट (सामान्य सेना भर्ती कानून) पास किया गया, जिसके अन्तर्गत किसी ऐसे व्यक्ति को सेना में भर्ती नहीं किया जा सकता था, जो जहाँ भी उसको भेजा जाय, जाने के लिए तैयार न हो। अब तक तो स्वर्ण हिन्दू सैनिकों की समुद्र-यात्रा न करने एवं भारत से बाहर विदेशों में युद्ध न करने की मर्यादा का सम्मान किया जाता था, परन्तु इस कानून के द्वारा इसका अन्त कर दिया गया। परिणाम-स्वरूप हिन्दू सैनिकों को इसके द्वारा बड़ी उत्तेजना मिली।

इस प्रकार देशी सेना में असंतोष की अग्नि और धीरे-धीरे सुलग ही रही थी कि चर्बी लगी कारतूसों ने इस अग्नि को प्रचंड रूप से धधकाने में योग दिया। देशी सैनिकों को, एक नये प्रकार की एनफील्ड रायफल दी गई थी, जिसमें प्रयोग की जाने वाली कारतूसों में चर्बी लगी हुई थी। यह अफवाह फैली कि ब्रिटिश सरकार ने हिन्दू और मुसलमान दोनों को धर्मच्युत करने के लिये उनमें गाय और सुअर की चर्बी लगवाई है। यह तथ्य है, वुलविच के कारखानों, में जहाँ पर ये कारतूसें तैयार की गई थी, इनके बनाने में चर्बी का प्रयोग किया गया था। सैनिकों के रोष का ठिकाना न रहा। उनको समझाने का प्रयत्न किया गया, परन्तु जितना ही अधिक प्रयत्न किया जाता उतना ही अधिक उनका रोष बढ़ता जाता। इस वातावरण में मार्च १८५७ में बैरकपूर (बंगाल) में एक देशी रेजीमेंट को तोड़ दिया गया। फिर अप्रैल में मेरठ में जब एक अंग्रेज कर्नल ने देशी अश्वारोहियों के एक रेजीमेंट को परेड के अवसर पर उन कारतूसों को प्रयोग करने को कहा तो उन्होंने इन्कार कर दिया। कोर्ट मार्शल के द्वारा उनको दस-दस वर्ष के कारावास का दण्ड दिया गया। ९ मई को सबके सामने उनकी सैनिक वर्दी उतारकर और उनके हाथों में हथकड़ी डालकर उनकी मान-हानि की गई। इस समय तो उन्होंने कुछ नहीं किया, क्योंकि उनके सामने गोरों की एक पलटन भरी हुई बन्दूकें और नगी तलवारें लिये खड़ी थी और वे सब निःशस्त्र थे, परन्तु जब उनको जेल की ओर ले जाया जा रहा था, तो उनको, उनके साथियों को बुरा-भला कहते और अपने कमाँडिंग अफसर को गाली देते सुना गया था।

क्रान्ति की प्रगति तथा दमन :—१० मई १८५७ को रविवार के दिन मेरठ छावनी से तीन देशी पल्टनों ने विद्रोह का झंडा ऊंचा किया। अपने अफसरों को मारकर कारावास से अपने साथियों को मुक्त करके उन्होंने दिल्ली की ओर कूच किया। दूसरे दिन प्रातःकाल स्वतन्त्रता के ये अग्रदूत दिल्ली जा पहुँचे और वहाँ के सैनिक भी अपने अंग्रेज अफसरों का वध करके उनसे आ मिले। फिर

मिलकर लाल किले में घुसे और बहादुरशाह को, जो अब तक अंग्रेज के हाथ की कठपुतली बना हुआ था, भारत का वास्तविक मुगल सम्राट घोषित किया। अंग्रेजों के सौभाग्य से लगभग तीन सप्ताह तक क्रान्ति ने कोई उग्र रूप धारण नहीं किया, क्योंकि मेरठ के सैनिकों ने आवेश में आकर नियत तिथि से पहले ही विद्रोह कर दिया था। यदि ऐसा न होता और जैसी सुव्यवस्थित योजना बनाई गई थी उसके ही अनुसार कार्य होता तो सम्भवतः भारतवर्ष सौ वर्ष पहले ही स्वतन्त्र हो गया होता और उसका अंग भारत तथा पाकिस्तान में भंग न होता। तीन सप्ताह के अवकाश में अंग्रेजों ने अपनी स्थिति को बहुत कुछ संभाल लिया था। उनको इस समय अफगानिस्तान के अमीर दोस्तमुहम्मद और पंजाब के सिक्खों से बड़ी सहायता मिली। दोस्तमुहम्मद १८५५ और ५७ की सन्धियों के अनुसार तटस्थ बना रहा और सिक्ख पल्टनों ने अपने देशवासियों का साथ न देकर अंग्रेजों का साथ दिया। लाहौर में देसी पल्टनों को तोड़ दिया गया और जान निक्लसन की अध्यक्षता में एक बलदस्ता व्यवस्थित कर दिया गया।

इस समय अंग्रेजों को सबसे अधिक चिन्ता दिल्ली पर फिर से अधिकार करने की थी। कैनिंग और जान लारेंस कमाण्डर-इन-चीफ एन्सन पर दिल्ली की ओर कूच करने के लिये जोर दे रहे थे, परन्तु आवश्यक सामग्री और युद्ध-सामग्री वाहिनी गाडियों के अभाव में वह ऐसा करने को तैयार नहीं था। इस बीच अवध, रुहेलखण्ड और मध्य भारत के अनेकों प्रान्तों में भी विद्रोह की आग भड़क उठी। २९ मई से ५ जून तक नसीराबाद राजपूताना में, नीमच (ग्वालियर राज्य) में, बरेली में और लखनऊ, बनारस—तथा कानपुर में क्रान्तिकारियों का प्रभुत्व छा गया था। उधर बुन्देलखण्ड में, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई पथ-प्रदर्शिका बनी हुई थी। चारों ओर से इन क्रान्तिकारियों के दल दिल्ली की ओर अग्रसर हो रहे थे, परन्तु अवध में, विशेषतया कानपुर में नाना साहब ने सैनिकों को, जो पाँच जून को दिल्ली के लिये प्रस्थान कर चुके थे, रोका और अंग्रेजी ठिकानों का घेरा डाल दिया उधर लखनऊ में भी सैनिकों ने दिल्ली न जाकर रेजीडेन्सी के ऊपर आक्रमण करना ही अधिक ठीक समझा। परन्तु अवध के विद्रोह का वर्णन करने से पहले हम दिल्ली की ओर चलते हैं।

एन्सन ने अम्बाला से दिल्ली की ओर कूच किया, परन्तु २७ मई को करनाल में हैजे के कारण उसका देहान्त हो गया। उसके पश्चात् हैनरी बर्नार्ड कमाण्डर बना और ४ जून को मेरठ से विल्सन भी उससे आ मिला। ८ जून को दोनों की संयुक्त सेनाओं ने क्रान्तिकारियों की एक टुकड़ी को बादलीसराय में परास्त किया। दिल्ली का घेरा डालने वाली यह सेना स्वयं वहाँ जाकर घिर गई। परन्तु अंग्रेजों

के सौभाग्य से इस समय उनको पंजाब से बहुत बडी सहायता मिली। यद्यपि अंगरेजो को यह आशका थी कि सिक्ख जाति अपनी हाल ही में खोई गई स्वतन्त्रता को प्राप्त करने के लिये कहीं क्रान्तिकारियों का साथ न देने लगे, परन्तु देश का दुर्भाग्य था कि सिक्खो ने अंगरेजो के प्रति बड़ी निष्ठा एवं स्वामी भक्ति का परिचय दिया। पंजाब और अफगानिस्तान की ओर से सर्वथा निःशक होकर निकल्सन भी अपने चलदस्ते को लेकर दिल्ली आ पहुँचा। १४ सितम्बर को काश्मीरी दरवाजा तोड दिया गया। ६ दिन की घमासान लडाई के पश्चात् नगर अगरेजो के हाथ आ गया। अगरेज सेना ने किले में घुसकर बहादुर को बन्दी बना लिया। बादशाह के समक्ष ही उसके दो पुत्रो को होडसन नामक एक अंगरेज ने अपनी पिस्तौल का निशाना बनाया।

पहले वर्णन किया जा चुका है कि जून के प्रथम सप्ताह में समस्त अवध में क्रान्ति की ज्वाला प्रज्वलित हो चुकी थी और लखनऊ एव कानपुर की ओर प्रान्त भर से क्रान्तिकारी उमडे चले आते थे। कानपुर में अगरेजी ठिकानो का ६ जून तक और लखनऊ मे रेजीडसी का १ जौलाई से १६ नवम्बर तक घेरा डाला गया। इन ही दोनों नगरो के इर्द-गिर्द क्रान्ति के सबसे भयंकर युद्ध लडे गये थे। इलाहाबाद में एक अगरेज अफसर की अध्यक्षता में एक सिक्ख सेना दुर्ग की रक्षा कर रही थी, परन्तु उसका पतन हुआ ही चाहता था कि ११ जून को नील ने अपनी सेना की सहायता से इस पर दृढ अधिकार स्थापित कर लिया। अब से अवध प्रान्त में इलाहाबाद अगरेजो की कार्यवाही का केन्द्र बना। नील के इलाहाबाद पहुँचने के १२ दिन पश्चात् हैवलोक भी फारिस के युद्ध के पश्चात् वहां जा पहुँचा। लखनऊ और कानपुर की रक्षा का भार हैवलोक को दिया गया। ७ जून को वह अपनी सेना लेकर कानपुर के लिए रवाना हुआ और बडी कठिनाई के पश्चात् कानपुर पहुँचा। उसके कानपुर पहुँचने के पूर्व ही वहां के अगरेजो ने अपनी रक्षा का उपाय न देखकर नाना साहब के सामने, जो बिठूर में बैठा हुआ क्रान्ति का पथ प्रदर्शन कर रहा था, आत्म समर्पण कर दिया था। अंग्रेजों को नगर छोडकर इलाहाबाद चले जाने की आज्ञा दे दी गई थी। परन्तु जब वे नावो में बैठकर चले तो दग्ध हृदय जोशीले सैनिको ने उन पर गोली चलाई। केवल चार अपनी जान बचाकर भाग निकले। शेष को वहीं मृत्यु के घाट उतार दिया गया। नील को वहां पर छोडकर हैवलोक ने लखनऊ के लिये प्रस्थान किया, परन्तु उसको लखनऊ में पदार्पण करने में सफलता प्राप्त न हो सकी और लाचार उसको फिर कानपुर आना पडा। इस बीच कानपुर में नील की बडी दयनीय दशा हो गई थी, परन्तु हैवलोक ने कुछ समय पश्चात् आकर

के ग्रा जाने से कानपुर में ग्रंग्रेजो की स्थिति फिर सम्भल गई। ग्रब हैवलोक ने ग्रपनी शक्ति को भली प्रकार सुदृढ करके फिर लखनऊ की ग्रोर प्रस्थान किया ग्रौर २५ सितम्बर को वह लखनऊ में घुसने में सफल हो गया। इससे पाँच दिन पहले दिल्ली पर भी ग्रग्रेजो का ग्रधिकार हो चुका था।

दिल्ली के पतन ग्रौर लखनऊ में हैवलोक की सहायता के पहुँचने के साथ साथ क्रान्ति का प्रथम ग्रध्याय समाप्त हो जाता है। निस्सन्देह क्रान्ति का मेरु दण्ड टूट चुका था। परन्तु भारत को दूसरी बार विजय करने के लिए ग्रभी ग्रगरेजो को बहुत कुछ करना था। लखनऊ में हैवलोक, ग्रौर उट्रम सहायतार्थ पहुँच भले ही गये थे, परन्तु वे स्वय भी वहाँ जाकर घिर गये थे। उन तक इंगलैंड से भी सहायता ग्रा पहुँची थी ग्रौर ग्रा रही थी। सर कोलिन कैम्पबैल ने ग्रवध ग्रौर रुहेलखण्ड को मध्यभारत को रोज ने बम्बई से चलकर फिर से विजय किया।

९ नवम्बर को कोलिन कैम्पबैल ५००० सेना लेकर लखनऊ की ग्रोर चला ग्रौर १६ तारीख को भयकर युद्ध के पश्चात् नगर में प्रवेश करने में सफल हुग्रा। नगर से युद्ध में भाग न लेने वाले ग्रग्रेजो को निकालकर ग्रौर नगर से ४ मील बाहर ग्रालम बाग में उट्रम की ग्रध्यक्षता में ४ हजार सैनिको को छोडकर २७ नवम्बर को कानपुर के लिए रवाना हुग्रा। इस बीच तांतियाँ टोपी, जो एक मरहठा ब्राह्मण था, ग्रपनी विशाल सेना लेकर कालपी से कानपुर की ग्रोर ग्रा चुका था ग्रौर उसने जनरल विडहम को, जिसके सरक्षण में कानपुर था, बुरी तरह परास्त कर खदेड दिया था। परन्तु वीर तांतिया टोपी की सेना कैम्पबैल की सेना से परास्त हुई। इसके पश्चात् कैम्पबैल ग्रवध ग्रौर रुहेलखण्ड को पुनर्विजय करने के लिए बढा। गोरखो की एक सेना नैपाल-नरेश के एक योग्य सेनापति जगबहादुर की ग्रध्यक्षता में उससे लखनऊ के बाह ग्रा मिली। पहली मार्च तक लखनऊ पर फिर से ग्रग्रेजो का ग्राधिपत्य हो गया परन्तु इस समय क्रान्तिकारियो को कोई विशेष जन-क्षति नहीं उठानी पडी। मार्च के ग्रन्त में लार्ड केनिंग ने यह घोषणा की कि ग्रवध के ग्रतिरिक्त सब ताल्लुकेदारो की जायदाद जब्त कर ली गई है। इस घोषणा ने जले पर नमक का कार्य किया ग्रौर ग्रवध में क्रान्तिकारियो ने यथाशक्ति ग्रग्रेजी सत्ता को नष्ट करने का प्रयत्न किया, परन्तु ग्रव्यवस्था के कारण सफलता प्राप्त न हो सकी, यद्यपि वर्ष पर्यन्त उनके छापेमार ग्राक्रमण होते रहे। मई में कैम्पबैल ने बरेली पर ग्रधिकार कर लिया ग्रौर बडे पैमाने पर उत्तरी भारत में युद्ध व्यवहारिक रूप से लगभग समाप्त ही हो गया।

उधर मध्यभारत तथा बुन्देलखण्ड में झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ग्रौर तांतिया

टोपी की अध्यक्षता में प्रारम्भ में क्रान्ति ने 'अच्छी प्रगति की थी; परन्तु क्रांति की यह प्रगति स्थायी न हो सकी। रोज ने ८ जनवरी १८५८ को मऊ से चलकर रायगढ पर अधिकार कर लिया और फरवरी में सौगढ़ को बचा लिया। मार्च में उसने झाँसी को घेर लिया और बेतवा के युद्ध में, जिसमें तांतिया टोपी ने उसको खूब छकाया था, क्रान्तिकारियों को परास्त कर वह झाँसी पर भी आधिपत्य जमाने में सफल हो गया। फिर कूँच का भयंकर युद्ध हुआ। रोज को ऐसा लगा कि मध्यभारत की क्रान्ति को वह पूर्णतया कुचल चुका है और वह अपने पद से पृथक् भी हो चुका था कि इतने में ही एक भयंकर सूचना पाकर वह चौंक उठा। झाँसी की रानी और तांतिया टोपी ने जिनको चारों ओर से अंगरेज सेनायें घेर रही थीं, इस आशय से कि सिन्धिया की सेना उनका साथ देगी, ग्वालियर की ओर प्रस्थान किया। अपनी इस जोखिमपूर्ण आशा में उनको सफलता प्राप्त हुई। यद्यपि सिन्धिया अपनी सेना लेकर उनसे युद्ध करने के लिये आगे बढा परन्तु सेना सिन्धिया का साथ छोड़कर रानी लक्ष्मीबाई और तांतिया टोपी से आ मिली और सिन्धिया बड़ी कठिनता से जान बचाकर आगरे भाग गया। ग्वालियर पर क्रान्तिकारियों का आधिपत्य हो गया। वहाँ का कोष और गोला बारूद भी उनके हाथ आया और पुनः नाना साहब को वहाँ का पेशवा घोषित कर दिया। रोज ग्वालियर पर क्रान्तिकारियों का आधिपत्य स्थापित होते देखकर तिलमिला उठा। वह तांतिया टोपी से बहुत भयभीत था। उसको भय हुआ कि यदि तुरन्त ग्वालियर पर अधिकार न किया गया तो नर्बदा से दक्षिण की ओर का सारा देश तांतिया की आवाज पर उसके पीछे हो जायेगा और उस समय स्थिति को काबू में रखना असम्भव होगा। वह अपनी सेना लेकर ग्वालियर पहुँचा। रानी लक्ष्मीबाई स्वयं मर्दाने वस्त्र धारण किये घोड़े की पीठ पर युद्धक्षेत्र में अपने सैनिकों को उत्तेजित करती हुई वीरगति को प्राप्त हुई। दो भयंकर युद्धों के पश्चात् ग्वालियर पर भी अंगरेजों का अधिकार हो गया। रानी लक्ष्मीबाई के अदम्य उत्साह, अनुपम शौर्य और सुन्दर सेनापतित्व की उसके शत्रु अंग्रेजों ने भी मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की है।

यद्यपि यत्र-तत्र अब भी क्रान्ति की अग्नि सुलग रही थी, तथापि क्रांति की प्रचंड ज्वाला पर अधिकार पा लिया गया था। क्रान्ति के कुछ वीर सेनानी अब भी सफलता की अन्तिम आशा को लिए इधर उधर भटक रहे थे। वीर तांतिया दक्षिण-भारत तथा बुन्देलखण्ड के बीच कुछ समय तक घूमता रहा और अन्त में अप्रैल १८५९ में उसको कुछ देशवासियों ने अंगरेजों के सुपुर्द कर दिया, जिन्होंने उसको कानपुर हत्याकाण्ड का दोषी ठहराकर फाँसी के तख्ते पर लटका दिया

देश को विदेशियों से स्वतन्त्र करने की मनोकामना पूरी न हो सकी। मेरठ की छावनी में निश्चित समय से पूर्व क्रांति का फूट पड़ना, सिख और गोरखों का अंग्रेजो की सहायता करना, क्रांति के प्रारम्भ होने के पश्चात् यथोचित व्यवस्था न होना, सम्पूर्ण क्रान्तिकारी दलों का एक नियंत्रण एवं अनुशासन में न होना, देशी राज्यों की समयोचित सहायता न करना आदि ऐसे कारण थे जो क्रान्ति की असफलता के लिए उत्तरदायी हैं। कदाचित् देश के भाग्य में आगामी नब्बे वर्ष की दासता और लिखी थी।

अंग्रेजों की सफलता के कारण:—यद्यपि क्रान्ति एक वृहत् क्षेत्र में फैली हुई थी, तो भी उसका प्रभाव स्थानीय ही रहा। संयुक्त प्रान्त, रुहेलखण्ड, अवध, नर्वदा एवं चम्बल के बीच का प्रान्त तथा बंगाल और बिहार के पश्चिमी प्रांत तक ही क्रान्ति मुख्यतया सीमित रही। दोस्तमुहम्मद के अधीन अफगानिस्तान अंग्रेजों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाये रहा। सिंध भी शान्त रहा और जार्ज लारेंस की अध्यक्षता में राजपूताना भी अब तक स्वामिभक्त बना रहा। निस्सन्देह क्रान्ति-काल में इन लारेंस भाइयों ने इंग्लैंड की बड़ी अमूल्य सेवा की। नर्वदा के दक्षिण में कोई महत्वपूर्ण आन्दोलन नहीं हुआ, यद्यपि कोल्हापुर में देशी सेना ने अवश्य विद्रोह कर दिया था। मध्य एवं पूर्वी बंगाल में निरन्तर शान्ति बनी रही और नैपाल ने तो अपूर्व स्वामि-भक्ति का परिचय दिया।

झाँसी की रानी, अवध की बेगमों तथा अन्य छोटे-छोटे शासकों के अतिरिक्त और किसी नरेश ने क्रान्तिकारियों का साथ नहीं दिया। सिन्धिया और होल्कर सच्चे स्वामिभक्त रहे। यद्यपि उनकी सेनाओं ने अवश्य विद्रोह कर दिया था। सरहिन्द के सरदारों ने, जिनमें पटियाला और जींद के शासक विशेषतया उल्लेखनीय हैं, हार्दिक स्वामि-भक्ति का परिचय दिया। अंगरेजी सत्ता को भारत में इस समय सुस्थिर बनाये रखने में ग्वालियर के मन्त्री सर दिनकरराव और हैदराबाद के सर सालारजंग ने जो महान् कार्य किया उसका आसानी से मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। सिंधिया को स्वामिभक्त बनाये रखने का कार्य केवल दिनकरराव का ही था। सिंधिया के विद्रोह करते ही समस्त मरहठा-मण्डल ने क्रान्ति में भाग ले लिया होता। जनरल इनीज के शब्दों में "उसकी (सिंधिया की) स्वामि-भक्ति ने अंगरेजों के लिये भारत की रक्षा की।" इसी प्रकार हैदराबाद में सर सालारजंग ने, जिसका नाम राइस होल्म्स के शब्दों में "प्रत्येक अंगरेज को कृतज्ञता एवं प्रशंसा के साथ लेना चाहिए।" क्रान्ति की चिनगारी को प्रज्वलित नहीं होने दिया।

झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई और उसके पश्चात् तांतिया टोपी तथा नाना

साहब के अतिरिक्त क्रान्तिकारियों में कोई योग्य नेता भी नहीं था। उधर अंगरेजों की ओर लारेंस भाई, उट्रम, हैवलौक, निकोल्सन आदि बड़े कर्तव्यनिष्ठ एवं साहसी सेनानी थे। देहली पर अंग्रेजों का पुनः अधिकार हो जाने के कारण क्रांतिकारियों में कुछ नैराश्य भी छा गया और इसलिये रोज एवं कैम्पबैल का कार्य कुछ सरल हो गया था।

अंगरेज इतिहासकार कैनिंग की दैनिक दया का बड़ा राग अलापते हैं और कहते हैं कि अंग्रेजों ने चिढ़ाने के लिए उसका नाम क्लीमेन्सी केनिंग (दया-मूर्ति) रख लिया था। परन्तु भ्रान्ति के पश्चात् अंग्रेजी शासन ने जो प्रतिशोध की भावना का परिचय दिया, उससे रोमांच ही जाता है और हृदय कम्पित हो जाता है। वृक्षों पर फांसी लटकाई गई, जिन पर मर जाने पर भी, शव लटका रहता था। जीवित मनुष्यों की खाल खिचवाई गई और जीवित को ही अग्नि में भून डाला गया। इन बेचारों का एक-मात्र दोष था देश-प्रेम। सच है संसार में स्वतन्त्रता के दीवानों का ऐसा ही अभिनन्दन होता है।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अन्तः— यों तो ब्रिटिश पार्लियामेंट ने १८५३ के चार्टर एक्ट में ही सिविल सर्विस की नियुक्ति प्रतियोगिता द्वारा करके और कम्पनी के डाइरेक्टरों की संख्या २४ से १८ करके और उनमें से ६ को ब्रिटिश सम्राट् द्वारा मनोनीत करके भारत के शासन में अपनी शक्ति को बहुत-कुछ बढ़ा लिया था, परन्तु १८५८ के ऐक्ट के अनुसार तो कम्पनी के शासन को सर्वथा समाप्त ही कर दिया। यद्यपि कम्पनी ने इसका बड़ा भारी विरोध किया और कहा कि जिस समय पार्लियामेंट अटलांटिक के दूसरी ओर अमरीका साम्राज्य को खो रही थी, उस समय ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत में एक नये एवं अत्यन्त महत्वपूर्ण साम्राज्य को जन्म दिया और उसका शासन भारतवर्ष में पार्लियामेंट के किसी भी उपनिवेश के शासन से बुरा नहीं रहा है, परन्तु उसकी एक न सुनी गई और भारतवर्ष में कम्पनी के शासन का अन्त कर दिया गया। बोर्ड आफ कण्ट्रोल के प्रधान के स्थान पर भारत सेक्रेटरी की नियुक्ति की गई। उसकी सहायता के लिये १५ सदस्यों की एक कौंसिल नियुक्त की गई। प्रारम्भ में ये सदस्य जीवन-भर के लिये नियुक्त किये गये थे, परन्तु इसके पश्चात् उनकी नियुक्ति १० से १५ वर्ष के लिये होने को थी। इनमें से ८ की नियुक्ति सम्राट् करता था और ७ की कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स। इसके पश्चात् यदि कोई स्थान रिक्त होता तो कौंसिल ही स्वयं उसकी पूर्ति कर लेती थी। यद्यपि कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स की अधिकांश शक्ति सेक्रेटरी आफ स्टेट फार इण्डिया के हाथ में चली गई थी, तो भी इसका कुछ प्रभाव कौंसिल में शेष रह गया था।

नये एक्ट के अनुसार केनिंग ही सबसे पहला भारत का वाइसराय तथा गवर्नर जनरल नियुक्त किया गया और १ नवम्बर १८५८ को इलाहाबाद में उसने नये शासन-प्रबन्ध की घोषणा की। इसी समय उसने महारानी विक्टोरिया की घोषणा भी पढकर सुनाई, जिसमें कहा गया था कि अंग्रेजी सरकार की इच्छा भारत में ब्रिटिश साम्राज्य को और अधिक बढाने की नही है। (कम्पनी के काल में भी ऐसी घोषणाएँ अनेको बार की गई थी)। घोषणा में देशी नरेशो के अधिकारो का मान-सम्मान करने तथा धार्मिक सहिष्णुता का वचन दिया गया और कहा गया कि महारानी की यह इच्छा है कि कोई मनुष्य जाति या धर्म के कारण किसी पद से वंचित न रक्खा जाय, जिसके योग्य वह अपनी शिक्षा, योग्यता तथा ईमानदारी के कारण हो। उन सब क्रान्तिकारियो को, जो अब तक ब्रिटिश सरकार के विरोध में शस्त्र धारण किये हुए थे और जिन्होने किसी अंग्रेज को नही मारा था, क्षमा करने की घोषणा की गई थी। घोषणा के अन्त में भारतीय जनता की भौतिक एवं नैतिक उन्नति के साधन जुटाने का वचन किया गया था और कहा गया था कि "उनकी समृद्धि में हमारी शक्ति, उनके सन्तोष में हमारी सुरक्षा और उनकी कृतज्ञता में हमारा पुरस्कार होगा।"

जागीरदारो और सरदारों को सनद प्रदान की गई और उनको पुत्र गोद लेने का अधिकार दे दिया गया। देशी राज्यो की सत्ता सुनिश्चित कर दी गई, परन्तु उनके अधिकार सीमित कर दिये गये। ब्रिटिश मध्यस्थ के अतिरिक्त वे किसी विदेशी शक्ति या आपस में भी एक दूसरे से कोई सम्बन्ध नही रख सकते थे। उनकी सैनिक शक्ति भी बहुत अधिक सीमित कर दी गई। आन्तरिक व्यवस्था में उनको स्वतन्त्रता प्रदान कर दी गई थी, परन्तु ३० अप्रैल १८६० ई० को केनिंग ने घोषणा की कि भारत की (अङ्गरेजी) सरकार को प्रत्येक रियासत के आन्तरिक शासन में हस्तक्षेप करने या सम्पूर्ण शासन को अपने हाथ में लेने का पूर्ण अधिकार है, जब वह देखे कि ऐसा करना आवश्यक है।

शासन के इस परिवर्तन से भारत के शासन-प्रबन्ध में कोई विशेष परिवर्तन नही हुआ। १८५३ के चार्टर एक्ट ने कानून बनाने के लिए गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी के सदस्यो की संख्या पहले ही बढाकर १२ कर दी थी। १८६१ के इण्डियन कौंसिल एक्ट ने गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी के सदस्यो की सख्या ४ से ५ कर दी थी और लेजिस्लेटिव कौंसिल के लिए कम से कम ६ और अधिक से अधिक १२ और अतिरिक्त सदस्यो का आयोजन किया गया था जिनमें से आधे गैर सरकारी हों

और गवर्नर जनरल उनको मनोनीत करता था। दूसरे गवर्नर एवं लेफ्टिनेंट गवर्नर के प्रान्तों में भी लेजिस्लेटिव कौंसिल स्थापित कर दी गई।

इस प्रकार ढाई सौ वर्ष पूर्व एलिजाबेथ के राज्य-काल में जिस कम्पनी का भारत के साथ व्यापार करने के लिए जन्म हुआ था, विक्टोरिया के काल में भारत एक वृहत् साम्राज्य को जन्म देकर उसका अन्त हुआ। कम्पनी ने अपने काल में मुगल-साम्राज्य और मरहठा-शक्ति के उत्थान तथा पतन को देखा और अन्त में उनके भग्नावशेषों पर भारतीय धन और जन की सहायता से ब्रिटिश साम्राज्य के भव्य भवन का निर्माण किया। इस निर्माण-कला में अंगरेजों की कूट नीति, चालाकी तथा साहस अपना ही था।

प्रश्न

१. १८५७ ई० के स्वतन्त्रता-संग्राम के क्या कारण थे ?

२. १८५७ ई० की राज्य-क्रान्ति क्यों असफल हुई ?

अध्याय २६

ब्रिटिश सम्राट् के आधिपत्य में भारत

केनिंग का शासन

क्रान्ति के पश्चात् :—१८५७ की राज्य क्रान्ति की भयानक एवं लोमहर्षक घटनाओं के पश्चात् भारत में अपेक्षाकृत शान्ति का युग प्रारम्भ हुआ। यह युग भौतिक तथा मानसिक प्रगति का युग रहा है, जिसमें यातायात के साधनों और व्यापार के क्षेत्र में उन्नति हुई। और शासन तथा वैधानिक सुधारों की ओर ध्यान दिया गया। यद्यपि ये सुधार भारतीय दृष्टिकोण से यथेष्ट तथा ऐसे नहीं थे जैसे कि होने चाहिएँ थे।

इस समय तक सीमाओं के अन्तर्गत भारत की विजय समाप्त हो चुकी थी। सरक्षित राजघरानों की स्थिति और दर्जा निश्चित हो चुका था। भारतीय नरेशों ने, देश के साथ द्रोह करके केनिंग के शब्दों में ब्रिटिश सत्ता को राज्य क्रान्ति के साथ तूफान में बह जाने से बचा लिया था। इसीलिये तब से ब्रिटिश साम्राज्य को सुरक्षित रखने के लिए इन नरेशों को बनाये रखना अंगरेजी नीति का एक मुख्य अंग रहा था। अपने राज्य और गोद लेने की प्रथा की गारण्टी मिल जाने से अब इनको अपने राज्य ब्रिटिश साम्राज्य में मिल जाने का कोई भय नहीं रहा। इसलिए ब्रिटिश सरकार के साथ उनके सम्बन्धों का नया युग प्रारम्भ हुआ। अब वे उसके अधिक निकट सम्पर्क में आने लगे। अब ब्रिटिश सरकार भी उनकी स्थिति और शासन-प्रबन्ध के सम्बन्ध में अपेक्षाकृत अधिक रुचि लेने लगी और सतर्क रहने लगी। गवर्नर जनरल देशीय नरेशों के शुभ शासन के लिये उनको शासन-सम्बन्धी शिक्षा और सलाह देते और यदि कभी वे लोग सुशासन के मार्ग से विचलित होते, तो उनको पहले समझाने और सच्चे मार्ग पर लाने का प्रयत्न करते और अन्त में जब देखते कि इस व्यवहार से कोई लाभ नहीं हो सकता तो एजेंसी स्थापित करते या किसी रेजीडेण्ट को रख देते या फिर राजा या नवाब को पदच्युत करके उसके वंश के किसी और आदमी को स्थानापन्न कर देते थे। इस प्रकार देशी राज्यों की स्वतन्त्रता नाम-मात्र की थी। वास्तव में ये नरेश ब्रिटिश सर-

कार की इच्छा के विरुद्ध कुछ भी करने का साहस नहीं कर सकते थे; क्योंकि वे सर्वथा शक्तिहीन और पंगु थे।

लार्ड केनिंग, जो कम्पनी द्वारा नियुक्त किया हुआ अन्तिम गवर्नर जनरल था, सम्राट् के अधीन प्रथम वाइसराय और गवर्नर जनरल बना। १८५८ में उसको अर्ल बना दिया गया था। भयंकर प्रतिशोध के वातावरण में केनिंग ने शान्ति-स्थापन के लिये बड़ी समझदारी से काम लिया। उन भारतीय नरेशों को, जिन्होंने अंग्रेजी सरकार की सहायता की थी, सरकार की ओर से बड़ी-बड़ी जागीरें, उपाधियाँ और आर्थिक पारितोषिक भी दिये गये थे। निजाम को वह सब प्रान्त, जो १८५३ में उसने अंगरेजों को दे दिया था, लौटा दिया गया और पाँच लाख पौंड का ऋण जो उसे कम्पनी को देना था, क्षमा कर दिया। यह ऋण उस अङ्ग्रेजी सेना के व्यय से सम्बन्ध रखता था, जो निजाम की सहायतार्थ उसी के व्यय पर उसके यहाँ रक्खी जाती थी। अवध की सीमा पर स्थित वनों से आच्छादित एक प्रान्त नैपाल को दे दिया गया। सिंधिया, भूपाल की बेगम, बड़ौदा के गायकवाड़ और अन्य राजपूत नरेशों को या तो जागीरें प्रदान की गईं या उनके कर में कमी कर दी गई और १८६१ में अनेकों नरेशों और भारतीय राजनीतिज्ञों को 'सर' की उपाधि से अलंकृत किया गया। ये उपाधियाँ साम्राज्यवाद के कारखाने में बनी हुई दासता की चमकने वाली बेडियाँ थी, जिनको दुर्भाग्यवश भारतीय जनता अति प्रसन्न होकर धारण करती थी और जिनको प्राप्त करने के लिए बहुधा प्रयत्न करती थी।

कार्यकारिणी :—केनिंग के काल में गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में एक महत्वपूर्ण वैधानिक परिवर्तन हुआ अब तक यह कौंसिल केवल एक सलाह देने वाली समिति थी। प्रत्येक समस्या पूरी कौंसिल के सामने रक्खी जाती और बहुमत से उस पर निर्णय किया जाता था। कानून मेम्बर की नियुक्त पहले ही हो चुकी थी। और कार्य-विभाजन की प्रथा का सूत्रपात हो चुका था। इसके पश्चात् इस प्रथा को इंलैंड से दो अधिक सदस्यों की नियुक्ति करके और आगे बढ़ाया गया। १८६१ के इण्डिया कौंसिल एक्ट के गवर्नर जनरल को यह अधिकार दे दिया था कि वह कौंसिल के किसी भी सदस्य को कोई विशेष कार्य दे सकता था और इनसे कौंसिल के सदस्यों के विभाग पृथक्-पृथक् हो गये, जिनमें वे अत्यन्त महत्वपूर्ण समस्याओं के अतिरिक्त अपने अनुसार कार्य कर सकते थे। महत्वपूर्ण समस्यायें गवर्नर जनरल के समक्ष उपस्थित की जाती थी और मतभेद होने पर बहुमत से उनका निर्णय किया जाता था। कार्य-विभाजन की इस प्रथा का एक अच्छा परिणाम यह निकला कि शासन-प्रबन्ध का कार्य शीघ्रता और उत्तमता से होने लगा।

आर्थिक समस्या :—१८५७ की राज्य-क्रान्ति के पश्चात् सरकार के सामने सबसे विकट समस्या आर्थिक थी। क्रान्ति के पश्चात् चार वर्ष तक ३ करोड ६० लाख का घाटा रहा। इस आर्थिक दुर्व्यवस्था को ठीक करने के लिए जेम्स विल्सन को १८५६ में भारतवर्ष भेजा गया। वह अपने काल का एक महान् अर्थ-शास्त्री था और उसको अर्थ-सम्बन्धी समस्याओं का सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक पर्याप्त-ज्ञान था, परन्तु नियुक्ति के केवल आठ महीने पश्चात् ही उसका देहान्त हो गया। उसके पश्चात् उसके कार्य को उसके उत्तराधिकारी सेमुअल लैंग ने, जो पार्लियामेण्ट का सदस्य था, पूरा किया। विल्सन ने सरकार की आय बढाने के लिए तीन मुख्य करो का प्रस्ताव रक्खा था। आय कर व्यापार, तथा पेशो पर लाइसैंस और देशीय तम्बाकू पर टैक्स। इनमें से केवल आय कर ही स्वीकृत किया गया। इसके अतिरिक्त उसने दस प्रतिशत आयात-कर और नोट के चलन का भी प्रस्ताव किया। उसने सिविल और सैनिक व्यय में आवश्यक सुधार सुझाये। इन सब सुधारो को उसके उत्तराधिकारी ने पूरा किया। उपरोक्त बचत और नमक-कर की वृद्धि से १८६२ तक इन दोनों योग्य मन्त्रियो ने अपने परिश्रम से आय को बढाकर व्यय के बराबर कर दिया।

चाय की खेती :—केनिङ्ग के काल में अंग्रेजी सरकार को कुछ ऐसे प्रश्नो का भी निवटारा करना पडा जो औपनिवेशिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण थे। १८५० के लगभग यह ज्ञात हुआ कि आसाम में और हिमालय के ढालो पर चाय की और नीलगिरि पर्वत पर कहवे की बहुत अच्छी पैदावार हो सकती है। इसके परिणाम-स्वरूप इंग्लैंड से कुछ मनुष्य चाय और कहवे का उत्पादन करने के लिए भारत आये। जिस भूमि की उनको आवश्यकता थी, उसको 'बेकार' कहते थे और वह राज्य-भूमि थी। बेकार पडी भूमि के नियम बनाये गये और इन यूरोप-निवासी या अन्य लोगों को ३ हजार एकड तक भूमि देने का नियम बनाया गया। इस पर कोई भूमि-कर नही देना पडता था। हाँ, प्रारम्भ में अवश्य एक निश्चित धन देना पडता था।

आन्तरिक सुधार :—इस काल में कुछ और आन्तरिक सुधार भी किये गये। १८६१ में भारतीय सेना की सख्या १२००० और अगरेजी सेना की संख्या घटाकर ७६००० नियत कर दी गई। १८५७ में लन्दन विश्वविद्यालय के आदर्श पर कलकत्ता, बम्बई और मद्रास विश्वविद्यालय स्यापित किये गये। ब्रिटिश ब्रह्मा के प्रान्त टेनासरिम, पीगू और अराकान एक चीफ कमिश्नर के अधीन व्यवस्थित किये गये। सबसे पहला चीफ कमिश्नर सर आर्थर फेयर था जिसने भूमि का बहुत अच्छा बन्दोबस्त किया था। डलहौजी विजयों के पश्चात् उसने ब्रह्मा का ऐसा

प्रबन्ध किया था कि वहाँ शान्ति-काल में ब्रिटिश सेना रखने की आवश्यकता नहीं रही थी और उस सेना को भारतवर्ष में बुला लिया गया था। प्राचीन सुप्रीम कोर्ट और सदर अदालत की प्रथा का अन्त करके प्रत्येक प्रेजीडेन्सी में एक हाईकोर्ट स्थापित कर दिया गया था। मैकाले का जाब्ता फौजदारी कानून जो १८३७ में तैयार किया गया था, १८६० में लागू किया गया।

भूमि-सम्बन्धी सुधार :—यह पहले ही वर्णन किया जा चुका है कि लार्ड कार्नवालिस के स्थायी बन्दोबस्त से कृषकों के अधिकारों की समुचित रक्षा नहीं होती थी। १८५८ में कम्पनी के डाइरेक्टरों ने घोषणा की थी—"बंगाल के किसानों के सब अधिकार समाप्त हो चुके हैं और अब उनको जमींदार अपनी इच्छा से किसी भी समय बेदखल कर सकते हैं।" यद्यपि १७९३ के नियमों में एक धारा में सरकार को कृषकों के अधिकारों की रक्षा करने का अधिकार दिया गया था, परन्तु १८५९ में बंगाल-भूमि-कर-एक्ट पास किया गया जो आगरा और मध्य-प्रान्त में भी लागू किया गया। इस कानून से उन सब किसानों को, जो बारह वर्ष से अधिक समय से खेती कर रहे थे, मौरूसी अधिकार प्राप्त हो गये। उनका लगान जब चाहे तब इच्छानुसार नहीं बढ़ाया जा सकता था। जिन प्रान्तों में स्थायी बन्दोबस्त किया गया था, वहाँ के किसानों का लगान स्थायी कर दिया गया था, परन्तु दुर्भाग्यवश इस एक्ट के परिणाम-स्वरूप अदालतों में मुकदमों की संख्या बहुत अधिक बढ़ गई।

इस काल में एक ऐसा परिवर्तन सम्भव प्रतीत होने लगा था जिसके फल-स्वरूप समस्त भारतवर्ष में एक कृषक-क्रान्ति पैदा हो जाती। लगभग समस्त बंगाल, एक चौथाई मद्रास प्रेजीडेन्सी और संयुक्त प्रान्त के एक भाग में स्थायी बन्दोबस्त था। देश के शेष भाग में यह बन्दोबस्त बीस या तीस वर्ष में होता था। इन दोनों प्रथाओं की लाभ और हानियों पर बड़ा विवाद चलता था। स्थायी बन्दोबस्त की लाभ और हानियों का वर्णन लार्ड कार्नवालिस के अध्याय में किया जा चुका है। दूसरी प्रथा से राज्य को यह लाभ था कि वह समयानुसार भूमि का मूल्य बढ़ जाने पर नया बन्दोबस्त करके अपना भाग प्राप्त कर सकती थी। इसमें भी सन्देह नहीं कि यदि भूमि की व्यवस्था सावधानी से और अधिक काल तक के लिए की जाय तो उससे भूमि की उन्नति करने और जनता की समृद्धि में कोई विशेष अड़चन नहीं पड़ती। इसके प्रतिकूल यदि समस्त देश में बङ्गाल की भूमि की स्थायी व्यवस्था कर दी जाती तो सरकार को समय-समय पर बन्दोबस्त करने की परेशानी और व्यय न उठाना पड़ता। इसके अतिरिक्त विशेषज्ञों के अनुसार स्थायी

बन्दोबस्त हो जाने पर मनुष्यो की मितव्ययता की भावना जागृत हो जाती और वे अपनी भूमि की उन्नति के लिए उसमें अधिक पूंजी लगाने और बन्दोबस्त का समय निकट आने पर भूमि कर बढ जाने के भय से किसानो की अपनी खेती को कम करने की प्रथा बन्द हो जाती और इस प्रकार जनता की समृद्धि बढ जाने से सरकार की आय भी अन्य कर लगाकर बढ जाती और इस प्रकार भूमि की हानि की कमी उससे पूरी हो जाती। इतना ही नही, कतिपय मनुष्यो के विचार में दुर्भिक्ष-काल में मृत्यु-सख्या की वृद्धि का कारण भी यह समय-समय पर भूमि-व्यवस्था करना था, क्योकि बार-बार के बन्दोबस्त से किसानो का लगान बढ जाता था और वे इतने दरिद्र तथा क्षीण हो जाते थे कि अकाल की कठिनाइयो को सहन करना उनकी शक्ति से बाहर हो जाता था। अब इसमें लेशमात्र भी सन्देह नही है कि लगान की असहनीय वृद्धि के गतकाल में अनेको उदाहरण थे। इस तथ्य का आधार भारतीय समालोचको का ही कथन नही है, चार्ल्स इलियट, ग्राण्ट, रसैल और कर्नल मैक्लीन आदि ने भी मध्यप्रान्त के प्रथम बन्दोबस्त के समय लगान की वृद्धि का विरोध किया था। १८७५ ई० मे सर आकलैंड कोलविन ने बम्बई में लगान की अधिकता की बडी निन्दा की थी। १८७९ में सर विलियम हण्टर ने गवर्नर जनरल की कौंसिल में कहा था,"दक्षिणी भारत के किसानो को आराम पहुँचाने के मार्ग में सबसे प्रमुख कठिनाई यह है कि सरकार इतना अधिक भूमि कर कृपको से वसूल करती है कि इसको देने के पश्चात् किसान के पास इतना भोजन नही बचता जिससे वह अपना और अपने कुटुम्ब का पालन वर्ष भर कर सके।"

१८६१ में कर्नल बेयर्ड स्मिथ ने यह विश्वास करके कि भूमि-व्यवस्था और दुर्भिक्ष-काल में अधिक मृत्यु-सख्या में गहरा सम्बन्ध था, (यद्यपि यह बात सर्वथा एव सर्वत्र सत्य नही थी) यह प्रस्ताव रक्खा कि बन्दोबस्त के नियम समस्त भारत वर्ष में लागू किये जाने चाहिएँ। उस समय के लगभग सब भारतीय राजनीतिज्ञो और बंगाल तथा उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त प्रदेश (जो आजकल उत्तर प्रदेश है) के लेफ्टिनेण्ट गवर्नर आदि ने इस पर अपनी अनुमति प्रकट की। उधर इंग्लैंड में भी इसके समर्थको की कमी नही थी। सर जान लारेन्स ने जोरदार शब्दो में इसका समर्थन किया और जौलाई १८६२ में सर चार्ल्स वुड ने, जो सेक्रेटरी आफ स्टेट था, भारतीय सरकार के नाम यह महत्वपूर्ण घोषणा की कि कैबिनेट ने समस्त भारत में स्थायी बन्दोबस्त प्रचलित करने का निश्चय कर लिया है। पाँच वर्ष पश्चात् दूसरे सेक्रेटरी सर स्टेफोर्ड नार्थकोट ने इस निर्णय की पुष्टि की और यह घोषणा की कि सरकार भूमिपतियों के हित तथा ब्रिटिश सरकार को (भारतवर्ष में) स्थायी बनाने

के विचार से भूमि-कर के कुछ अंश का बलिदान करने के लिए तैयार थी। इस सम्बन्ध में इंगलैंड और भारत के बीच बड़ा पत्र-व्यवहार चला, परन्तु परिणाम कुछ न निकला और यह प्रस्ताव उठाकर अलमारी में बन्द कर दिया गया। इसका कारण लार्ड मेयो का विरोध बतलाया जाता है। १८८३ में निश्चित रूप से यह प्रस्ताव सदा के लिए त्याग दिया गया।

केनिंग की वापसी :—लार्ड केनिंग का स्वास्थ्य अधिक परिश्रम करने तथा अपनी पत्नि की आसामयिक मृत्यु के कारण बहुत गिर गया था और १८६२ में उसने अपने पद से त्याग-पत्र दे दिया। इंग्लैंड लौट जाने के तीन मास पश्चात् उसका देहान्त हो गया। अंग्रेज लोग उसकी गणना भारत के उत्तम गवर्नर जनरलों में करते हैं। मानसिक गुणों में अनेकों अंग्रेज शासक बढ़-चढ़कर थे। उसने कुछ भूलें भी कीं। भारत की राज्य-क्रान्ति के समय वह हवाश हो गया था और उसमें किंकर्तव्य-विमूढ़ता तथा हिचकिचाहट पैदा हो गई थी; परन्तु शान्ति और अथक परिश्रम के कारण उसने सफलता प्राप्त की और भारत का प्रथम वाइसराय बना, उसके अथक परिश्रम ने उसको मार डाला। उसने अपने उत्तराधिकारी लार्ड एलगिन से कहा था, "भोजन के समय तक मैं (काम करते-करते) इतना थक जाता हूँ कि बोल भी नहीं सकता।" अपनी न्याय-प्रियता, कर्तव्य-परायणता, विशाल-हृदयता और आचरण की उच्चता के कारण सब लोग उसका मान करने लगे थे। अपने पिता केनिंग की भांति, जो इंग्लैंड का प्रधान मन्त्री था, उसने अपने कर्तव्य का पालन करते हुए परलोक की यात्रा की।

प्रश्न

१. १८५७ ई० की क्रांति के बाद केनिंग के समय भारतीय शासन में क्या सुधार हुए ?
२. केनिंग के चरित्र पर एक नोट लिखो।

अध्याय ३०

लार्ड एलगिन, लार्ड लारेन्स तथा अफगानिस्तान के साथ सम्बन्ध

लार्ड एलगिन —लार्ड एलगिन ग्रोक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के क्राइस्ट चर्च कालिज में डलहोजी ग्रोर केनिंग का समकालीन ग्रोर मित्र रह चुका था। भारत का वाइसराय नियुक्त होने से पहले वह जमाइका ग्रोर कनाडा का गवर्नर जनरल भी रह चुका था ग्रोर इस प्रकार उसको ग्रोपनिवेशिक शासन का ग्रच्छा ज्ञान था। १८५७ में जब यह सेना लेकर चीन जा रहा था तो लार्ड केनिंग की प्रार्थना पर उसने ग्रपनी सेना भारत उतार ली थी। १८६२ में कलकत्ता ग्राकर उसने ग्रपने पद का भार सँभाला, परन्तु नवम्बर १८६३ में उसका देहान्त हो गया।

सीमा-प्रश्न :—जिस समय लार्ड एलगिन का देहान्त हुग्रा तो उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर स्थिति बडी गम्भीर हो रही थी। उसके पश्चात् लार्ड लारेंस उसका उत्तराधिकारी बनाया गया। लारेन्स को इस प्रान्त ग्रोर यहाँ के निवासियों के सम्बन्ध में ग्रच्छा ज्ञान था। उन्नीसवी शताब्दी के प्रारम्भ से ही पेशावर से उत्तर ग्रोर सिन्ध नदी के पश्चिम की ग्रोर कट्टर मुसलमान वहाबियो का एक उपनिवेश ग्राबाद था। पटना में उन लोगो की एक एजेन्सी थी ग्रोर गुप्त साधनो द्वारा समस्त भारतवर्ष में उनका प्रभाव फैला हुग्रा था। ब्रिटिश शासन के प्रत्येक विरोधी को इनके यहाँ शरण मिलती थी। १८५३ ग्रोर १८५८ में उनको दण्ड देने के लिए सेनाएँ भेजी गई थी, परन्तु १८६३ में फिर उन्होने पजाब में विद्रोह प्रारम्भ कर दिया था। इस समय सर नैवाइल चैम्बरलेन को ६००० सैनिको के साथ उनको दबाने के लिए भेजा गया परन्तु उसको १५,००० सैनिको का सामना करना पडा। तीन सप्ताह तक ग्रग्रेजी सेना ग्रागे न बढ़ सकी ग्रोर उसको बचाव की लडाई लडनी पडी। कलकत्ता-कौंसिल चिन्तित होकर ग्रग्रेजी सेना को पीछे लौटने की ग्राज्ञा देने का विचार कर रही थी परन्तु स्थानापन्न वाइसराय डेनिसन ग्रोर कमाण्डर-इन-चीफ रोज ने युद्ध को जारी रखना ही ग्रावश्यक समझा। दिसम्बर में वहाबी लोग परास्त हुए। इसके तीन सप्ताह पश्चात् जनवरी १८६४ को लारेन्स ने ग्रपना पद सँभाला।

लारेन्स का परिचय :—फरवरी १८५९ से सर जान लारेन्स सेक्रेटरी ग्राफ स्टेट की कौंसिल का सदस्य रहा था। ग्रग्रेजो ने उनको 'भारत का रक्षक' तथा

"विजय का सस्थापक" आदि नामो से विभूषित किया था। १८६० में उसको बम्बई का गवर्नर बनाया जा रहा था, परन्तु उसने इन्कार कर दिया। वह योग्य, दृढ-निश्चयी तथा हठी था और अपने कर्मचारियो से काम लेने में बडा कठोर था, परन्तु जो उसको अपने कार्य से प्रसन्न रखते थे, उनकी वह प्रत्येक समय सहायता करने को तैयार रहता था। सर जार्ज बार्लो के पश्चात् यह नियम बना दिया गया था कि किसी भी सिविलियन को गवर्नर जनरल नहीं बनाया जायगा, परन्तु जान लारेन्स के सम्बन्ध में इस नियम का पालन नहीं किया गया। इसका कारण यह था कि उससे शासन-सम्बन्धी बडी-बडी आशाएँ की जाती थी। यद्यपि वह उन सब आशाओ को पूरा नहीं कर सका, जिस कार्य को डलहौजी ने आरम्भ किया था, परन्तु जो राज्य-क्रान्ति के कारण बीच ही में अधूरा रह गया था, उसको पूर्ण करने का उसने प्रयत्न किया और देश में रेल, नहर आदि की ओर विशेष ध्यान दिया गया; परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि लारेन्स अपने आधीन कर्मचारियो में कार्य-विभाजन की कला में निपुण नहीं था। वह स्वय छोटी-छोटी बातो में इतना उलझा रहता था कि सामान्य शासन प्रबन्ध के कार्य में इससे हानि होती थी। स्वय बहुत अधिक परिश्रमी था और प्रात.काल ६ बजे से शाम के ५॥ बजे तक काम करता रहता था और इस बीच में केवल आधा घण्टा खान-पान में व्यतीत करता था।

भूटान की समस्या :—उसने भूटान राज्य को एक छोटे-से युद्ध के पश्चात् ब्रिटिश साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया था। भूटानी लोग अ ग्रेजो के सम्पर्क में कूँच विहार के झगडे से १७७२ में आये थे। १७८३ में अ ग्रेजी सरकार ने एक व्यापारिक मण्डल भूटान भेजा, परन्तु उसको कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई। १८२६ में आसाम पर अ ग्रेजी आधिपत्य स्थापित हो जाने से अ ग्रेज भूटानियो के और अधिक सम्पर्क में आ गये। इस समय इन भूटानियो ने आसाम में जाने वाले मार्गों पर अधिकार कर रखा था। आरम्भ में सन्धि की असफल बातें चलती रहीं। एक बार यह निश्चित हुआ कि द्वारो पर भूटानियो का ही अधिकार रहे और वे अ ग्रेजों को वार्षिक कर दे दिया करें, परन्तु अन्त मे चलकर अ ग्रेजो ने इन द्वारों पर अधिकार प्राप्त कर लिया और भूटानियो को कर देने लगे। परन्तु उनके बगाल और आसाम पर छुटपुट के आक्रमण निरन्तर जारी रहे। अ ग्रेज इतिहासकारो के अनुसार अ ग्रेजी सरकार ने इन आक्रमणो का विरोध किया परन्तु कुछ फल न हुआ। १८६३-६४ में भूटानियो ने लार्ड एलगिन द्वारा भेजे हुए एक एलची को बहुत अपमानित किया और उससे एक सन्धि पर, जिसमें उनको आसाम जाने वाले द्वारों पर अधिकार दे दिया गया था, हस्ताक्षर करा लिये। भारतीय सरकार ने इस सन्धि को

स्वीकार करने से इन्कार कर दिया और भूटान सरकार से उन सब ब्रिटिश प्रजाजनों को, जिनको भूटानियो ने पिछले पाँच वर्ष से वन्दी बना रक्खा था, वापस करने की माँग की। जब कोई उत्तर नही मिला तो अंग्रेजी सरकार ने पश्चिमी द्वारों पर आधिपत्य स्थापित कर लिया और उनके लिये, जो धन दिया जाता था, वह बन्द कर दिया। १८६५ में भूटानियो ने अंग्रेजी राज्य पर आक्रमण कर दिया और अंग्रेज सेनापतियो का सारा सामान छीन लिया गया। इस अपमान से अंग्रेजो में बडा तहलका मचा, परन्तु जनरल टोम्बस ने अंग्रेजी सरकार की गत-श्री को पुनर्स्थापित करने का सफल प्रयत्न किया। नवम्बर मे दोनो दलो में सन्धि हो गई। सन्धि की शर्तों के अनुसार भूटानियो ने वार्षिक कर के बदले १८ द्वार अंग्रेजो के सुपर्द कर दिये। लारेन्स की शान्तिमयी नीति की उस समय कुछ उग्रदलीय अंग्रेजो ने कडी आलोचना की थी परन्तु इसके द्वारा पैदा हुई स्थायी शान्ति ने सिद्ध कर दिया कि लारेन्स का यह कार्य ब्रिटिश साम्राज्य के लिए दूरदर्शिता से भरा हुआ था। इसके पश्चात अंग्रेज सरकार और भूटानियो के सम्बन्ध सदा वडे अच्छे बने रहे। १८० मील लम्बा और २० से ३० मील तक चौडा वह भूभाग जो भूटानियो ने अंग्रेजो को दे दिया, उससे उनको वडा लाभ हुआ। वह सम्पूर्ण भाग चाय के वागो से भर गया था।

कृषकोपयोगी एक्ट :—सर जान लारेन्स के सम्बन्ध में एक और प्रशसनीय बात यह कही जाती है कि वह किसानो का पक्ष करता था। उसी के शासन-काल में कृषको की दशा को सुधारने के लिये १८६८ में पंजाब तथा अवध टीनेन्सी-एक्ट बनाये गये। इन बिलो को पास करने के लिए उसने भारतीय-भूमिपतियो, यूरोपियन जमीदारो, जिनके पास बडे-बडे चाय आदि के क्षेत्र थे, पत्रकारो, सेक्रेटरी आफ स्टेट तथा अपनी कौंसिल के अधिकतर सदस्यो के बृहत् विरोध का सामना किया था। पंजाब में इस एक्ट द्वारा उन सब किसानो को मौरूसी अधिकार प्राप्त हो गये, जो एक निश्चित समय तक खेती करते रहे थे। वंगाल के लेफ्टिनेण्ट गवर्नर के शब्दो में यह एक्ट "सन्तुष्ट कृषक-वर्ग की रक्षार्थ एक स्वतन्त्रता-पत्र" सिद्ध हुआ। लार्ड डलहौजी ने जब अवध को ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाया था, तो वहाँ ताल्लुकेदारो के साथ बड़ा कठोर व्यवहार किया गया था। राज्य-क्रान्ति के बाद में लार्ड केनिंग ने यह घोषणा कर दी थी कि जो लोग शीघ्रता से क्रान्तिकारियो का साथ छोडकर ब्रिटिश राज्य के वफादार हो जायेंगे उनको क्षमा कर दिया जायगा। इस घोषणा के अन्तर्गत लगभग ६० प्रतिशत भूमिपतियो को पहले से भी अधिक अधिकार प्राप्त हो गये थे। ऐसा करने में ब्रिटिश सरकार की यह धारणा थी कि

यदि जमींदारों और ताल्लुकेदारों के साथ अच्छा व्यवहार किया गया तो वे भारत में अंग्रेजी राज्य के स्तम्भ सिद्ध होंगे और अपने इस विचार में वे सर्वथा सत्य थे, परन्तु ताल्लुकेदारों को इतने अधिक अधिकार दे दिये गये थे कि किसानों की दशा अत्यन्त दयनीय हो गई थी। कृषकों की शोचनीय अवस्था को सुधारने के विचार से १८६८ का अवध टीनेंसी एक्ट एक प्रयत्न था। इस एक्ट के अनुसार ½ प्रतिशत से भी कम किसानों को मौरूसी अधिकार दिये जाने चाहियें। जिन किसानों के लगान चढ़ाये गये थे, उनको कृषि की उन्नति के साधनों के लिए, जो निरन्तर प्रयोग किये जाते थे, मुआवजा दिया जाना चाहिये, और बिना अदालत में प्रार्थनापत्र दिये किसी का लगान नहीं बढ़ाया जाना चाहिए। इस कृषक नीति का बड़ा कट्टर विरोध किया गया और कहा गया कि सरकार ने जमींदारों के साथ बड़ा अन्याय किया है। परन्तु हैनरीमेन और जान तथा रिचार्ड के स्ट्रेची और इंग्लैंड में जान स्टुअर्ट मिल ने लारेंस की इस नीति का पूरा समर्थन किया। जान स्ट्रेची के शब्दों में यह सब-कुछ "लार्ड लारेंस के दृढ़ निश्चय के कारण ही सम्भव हो सका था।" उसके विचार में और भी अधिक सम्पन्न किया जा सकता था।

इस प्रकार सर जान लारेंस ने पंजाब और अवध के किसानों की रक्षार्थ वही काम किया जो कैनिंग ने बंगाल के कृषकों के लिए किया था। आर० सी० दत्त ने अपनी 'विक्टोरिया काल में भारत' नामक पुस्तक में लिखा है—"भारत में इससे अधिक लाभदायक कानून ब्रिटिश सरकार ने पहले कभी नहीं बनाया था यह ऐसा कानून था, जिसका आधार भारत के प्राचीन अलिखित रीति-रिवाज थे और जिसमें बड़ों (जमींदारों) के अधिकार का मान और निर्बलों की रक्षा का ध्यान रक्खा गया था।"

भयङ्कर दुर्भिक्ष :—लार्ड लारेंस के काल में भारतवर्ष में दो बार भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा। १८६६ के प्रथम दुर्भिक्ष ने बिहार और बंगाल में बड़ा उग्र रूप धारण किया था। प्रत्यक्ष तथा भौगोलिक विचार से इस प्रांत की स्थिति दो प्रेजीडेन्सियों के बीच बड़ी अच्छी प्रतीत होती थी, परन्तु वास्तव में यह प्रांत अपनी प्राकृतिक बनावट और यातायात के साधनों के अभाव में अन्य प्रान्तों से पृथक् था। उत्तर-पश्चिम की ओर जंगलों और पहाड़ियों के कारण और पूर्व की ओर समुद्र के तट पर अच्छे बन्दरगाह न होने के कारण यहाँ पर भोजन-सामग्री का पहुँचाना बड़ा कठिन कार्य था। महानदी यद्यपि पर्याप्त बड़ी है, परन्तु उसमें जहाज नहीं चलाये जा सकते। सड़कों का अभाव था और जो एक-दो सड़कें थीं भी, उन पर पहिये वाली गाड़ियाँ चल नहीं पाती थीं और उन पर केवल खच्चर या गधे चल सकते थे। ऐसे

प्रांत में दुर्भिक्ष ने कैसा ताण्डव नृत्य किया होगा, इसका अनुमान सहज ही में लगाया जा सकता है। दुर्भिक्ष कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में लिखा था—"सघन-वन, (जिसमें कोई मार्ग नही था) और भयानक सागर (जिसमें जहाज चल या ठहर नही सकते थे) के बीच इन मनुष्यो की ऐसी (शोचनीय) दशा थी, जैसी कि उस जहाज के यात्रियो की होती है, जिनके पास भोजन सामग्री नही रहती।" ऐसा बतलाया जाता है कि इस भयकर दुर्भिक्ष में दस से बीस लाख तक मनुष्य काल-कवलित हो गये और सरकार के करते कुछ न बना। इन मनुष्यो की मृत्यु का उत्तरदायित्व विशेषकर बंगाल के लेफ्टिनेण्ट गवर्नर सर सैसिल बीडन पर है, जिसने यह पूर्ण आश्वासन दिया था कि अन्नाभाव की कोई सकटपूर्ण स्थिति नही है। परन्तु लारेंस को भी इस अपराध से वचित नही रखा जा सकता। उसने स्वयं लिखा था—"मैं स्वय उसकी धारणा उलट सकता था। और कदाचित् मुझे करना चाहिए था, मैं स्वय को ऐसा न करने के लिए अपराधी ठहराता हूँ।" दुर्भाग्य कभी अकेला नही आता, दुर्भिक्ष के तुरन्त पश्चात् बडी भयंकर तथा विनाशकारी बाढ़ आई, जिसके कारण उडीसा के निम्न प्रदेशो में रहने वाले मनुष्यो की दशा और भी अधिक शोचनीय हो गई। लारेंस ने लिखा था—"जो अनावृष्टि से बच गये थे, उनको अतिवृष्टि (बाढ) ने जलमग्न कर दिया।" दूसरे दुर्भिक्ष में, जो १८६८—६९ में बुन्देलखण्ड और राजपूताना में फैला, शीघ्र ही उसका प्रबन्ध करने के प्रयत्न किए गये और ब्रिटिश सरकारने प्रथम बार यह नियम बनाया कि सरकारी कर्मचारियों का यह कर्त्तव्य था कि वे प्रत्येक सम्भव प्रयत्न द्वारा मनुष्यो को भूख के कारण न मरने दें, परन्तु इस नियम का पालन जैसा होना चाहिये था कभी न हो सका। १८६२ से १८६६ तक मध्य प्रान्त में रिचर्ड टेम्पिल ने अच्छा शासन-प्रबन्ध किया और तीस वर्ष के लिए भूमि का बन्दोबस्त किया।

आर्थिक व्यवस्था :—सर जॉन लारेन्स के काल में भारत की आर्थिक व्यवस्था ठीक नही थी, परन्तु इसमें सर्वथा उसीका ही दोष नही था। विशेष परिस्थिति के कारण १८६६ ई० में एक व्यापारिक सकट आ पडा। इस समय अमरीका में गृह-युद्ध चल रहा था और उत्तरी राज्यो के जहाजी बेडे ने दक्षिणी राज्यो के बन्दरगाहो को घेर रखा था, इसलिए वहाँ से लकाशायर के पुतलीघरों को रूई नही आ सकती थी, इस दशा में भारतीय कपास की माँग बढ गई। बरार, नागपुर आदि प्रान्तो की भूमि का, जहाँ पर कपास की खेती अधिक होती है, मूल्य बढ गया। इन्ही दिनो बन्दोबस्त भी चल रहा था, इसलिए अनेको स्थानो में लगान की दर बढाकर नियत की गई। कपास के व्यापार में धडाधड से लोगो ने

पूँजी लगाई, नये बैंक भी खोले गये। परन्तु अमरीका के गृह-युद्ध के समाप्त होते ही भारतीय कपास की माँग एकदम ही गिर गई, क्योंकि अमरीका की कपास का रेशा भारतीय कपास के रेशे की अपेक्षा अधिक लम्बा होता है। ओवेरण्ड और गर्नें नामक प्रसिद्ध व्यापारिक फर्मों का दिवाला निकल गया, आगरा और बम्बई बैंको ने भुगतान बन्द कर दिया। बम्बई बैंक सरकार के नियन्त्रण में था। यद्यपि आरम्भ में लारेंस को कजूस कहा जाता था क्योंकि उसने सरकारी व्यय में काट-छाँट करना आरम्भ किया था, परन्तु नेपियर, फ्रेरे तथा रोज आदि के कहने से सार्वजनिक भवन-निर्माण, सिंचाई के साधनो की उन्नति और यूरोपियन सेनाओ के लिए बारिग बनवाने में उसने बहुत धन व्यय किया। यूरोपीय सैनिको के लिए अधिकाधिक सुविधायें प्रदान करने और उनके लिए भव्य निवास-स्थान बनाने में उसको विशेष एव व्यक्तिगत अभिरुचि थी। उसको फ्लोरेन्स नाइटिंगेल के वे शब्द, जो उसने उस समय कहे थे, जब उसने यह सुना कि लारेन्स भारत का वाइसराय होकर जा रहा है, अच्छी तरह याद थे—"अपने कार्य की अधिकता में हमको और हमारी स्वच्छता सम्बन्धी बातो को भी याद रखना, जिन पर लाखो मनुष्यो का स्वास्थ्य एवं जीवन अवलम्बित है।" परन्तु याद रखना चाहिए कि लारेंस ने यूरोपियन सैनिकों की सुविधाओ पर ही विशेष ध्यान दिया था। सेना के ऊपर अंग्रेजी सरकार का व्यय ४५७४०००० रुपये से बढकर ५ करोड ४५ लाख रुपया हो गया था। लारेंस ने उत्पादक साधनों के लिए ऋण की प्रथा को भी जारी किया था। उसके पाँच वर्ष के शासनकाल में उसकी आर्थिक व्यवस्था का परिणाम बजट में २५ लाख का घाटा था।

परराष्ट्र-नीति :—पंजाब के ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाये जाने पर साम्राज्य की सीमा अफगानिस्तान के पर्वतो से जा मिली थी, परन्तु सीमा लाइन सुनिश्चित नही थी और उसमें उलट-फेर होता रहता था। दक्षिण में बिलोचिस्तान से उत्तर में चितराल तक एक ऐसा प्रान्त था जिसमें स्वतन्त्र पठान जाति रहती थी। १८८३ तक ये लोग अफगानिस्तान के अमीर का नाममात्र को आधिपत्य स्वीकार करते थे, परन्तु वास्तव में थे वे सर्वथा स्वतन्त्र। ये लोग बडे भयानक, झगडालू और लूट-मार करने वाले थे और भारतीय राज्य पर उनके लूट-मार के आक्रमण निरन्तर ही होते रहते थे। इस कारण से पंजाब सरकार के लिए यह एक सिरदर्द बना हुआ था। उनको दण्ड देने के लिए सेनायें भेजी जाती थी, परन्तु पर्वतीय प्रदेश होने और इन लोगो के कुशल लडाकू होने के कारण बडी-बड़ी सेनायें भेजनी पड़ती थी। १८६३ में, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, वहाबियो के विरुद्ध ६००० की एक

सेना भेजी गई थी और १८६८ में कृष्ण पर्वत के पठानो को पाठ सिखाने के लिये १२००० सैनिको की एक सेना भेजी गई।

इस प्रकार हम देखते है कि पश्चिमोत्तर सीमा की समस्या अत्यन्त असन्तोषजनक थी। इसका समुचित प्रबन्ध करने के सम्बन्ध में भी भिन्न भिन्न विचार थे। कतिपय लोगों का विचार था कि ब्रिटिश साम्राज्य को पीछे हटकर सिंध नदी को अपनी सीमा निर्धारित करनी चाहिये। इसके विरुद्ध 'आगे बढो' नीति के समर्थक थे जिनके विचार में कबाइली प्रान्तो पर आधिपत्य करके अफगानिस्तान की सीमा से ब्रिटिश साम्राज्य की सीमा मिला देनी चाहिये थी। इस दल में जो और अधिक उग्र थे, उनका विचार था कि अफगानिस्तान का बटवारा करना चाहिए और यदि अवसर हाथ लग जाय तो सम्पूर्ण अफगानिस्तान को ही विजय कर लेना चाहिए। लारेन्स की नीति थी कि कबाइलियो को स्वतन्त्र ही छोडा जाय, उनके साथ मैत्री सम्पादन किया जाय। अफगानिस्तान के सम्बन्ध में वह चाहता था कि 'यहाँ के वास्तविक शासको के साथ मित्रता रक्खी जाय, परन्तु उनके आन्तरिक झगडा में कोई हस्तक्षेप न किया जाय।" निस्सन्देह लारेंस की नीति सबसे अधिक लाभदायक एव योग्यतापूर्ण थी। १८७८ तक आवश्यक परिवर्तनो के अतिरिक्त इसी नीति का पालन किया जाता रहा। लार्ड लिटन ने जब इस नीति में परिवर्तन किया तो उसका बडा विनाशकारी परिणाम हुआ, और १८८१ के पश्चात् १९१९ तक फिर इसी नीति का पालन किया गया, क्योकि यद्यपि ब्रिटिश सरकार ने अफगानिस्तान की सुरक्षा की गारण्टी दे दी थी, परन्तु उसकी आन्तरिक व्यवस्था में कोई हस्तक्षेप नही किया गया।

दोस्त मुहम्मद एक शक्तिशाली एव योग्य शासक था। ब्रिटिश साम्राज्य के साथ उसके सम्बन्ध का पहले वर्णन किया जा चुका है। १८६३ में उसका देहान्त हो जाने पर उसके सोलह पुत्रो में उत्तराधिकार के लिए भयकर युद्ध आरम्भ हो गया। शेरअली, जो दोस्त मुहम्मद का सर्वप्रिय पुत्र था, जैसे तैसे करके तीन वर्ष तक अमीर बना रहा। परन्तु अफजल ने उसको १८६६ में काबुल से और एक वर्ष बाद कन्दहार से निकाल बाहर किया और उसने हिरात में जाकर शरण ली, परन्तु १८६७ में, अफजल का देहात हो गया और उसके पश्चात् उसका बडा पुत्र अजीम अमीर बना। अप्रैल १८६८ में शेरअली के पुत्र याकूबखाँ ने कन्दहार पर फिर अधिकार कर लिया और सितम्बर में शेरअली ने काबुल पर भी आधिपत्य कर लिया और इस प्रकार एक बार फिर शेरअली अमीर बन गया। अजीम और उसका बडा भाई अब्दुर्रहमान जनवरी १८६९ में पराजित हुए। अजीम फारिस भाग गया, जहाँ कुछ समय पश्चात् उसका देहान्त हो गया।

अफगानिस्तान के गृह-युद्ध के कारण अंग्रेजी सरकार की स्थिति बड़ी विकट हो रही थी। लारेंस ने बड़ी योग्यता से काम किया। उसने अफगान राजकुमारों के पारस्परिक युद्ध में भाग न लेने का निश्चय कर लिया था। उसके इस निश्चय का कारण यह भी बतलाया जाता है कि दोस्तमुहम्मद अंगरेज सरकार का मित्र था। उसने राज्य-क्रान्ति-काल में अंगरेजी सरकार के साथ शान्त रहकर मित्रता का परिचय दिया था और एक बार लारेंस से कहा था कि उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्रों के उत्तराधिकार-युद्ध में कोई हस्तक्षेप न किया जाय। इसलिये लारेंस की नीति थी कि जो समरभूमि में विजयी होकर अपना अधिकार स्थापित कर ले, उसको अमीर स्वीकार किया जाय। परिणामस्वरूप १८६४ में शेरअली को अफगानिस्तान का शासक स्वीकृत कर लिया गया। इसके दो वर्ष पश्चात् जब अफजल ने काबुल पर अधिकार कर लिया तो उसको काबुल अधिपति और शेरअली को कन्दहार तथा हिरात का स्वामी मान लिया गया। जब कन्दहार पर भी उसका अधिकार हो गया तो सरकार ने इसको भी मान लिया और अब शेरअली को हिरात का ही स्वामी स्वीकृत कर लिया गया। परन्तु इस नीति का एक बड़ा दुष्परिणाम यह था कि अफगानिस्तान की गद्दी के लिये, इससे गृह-युद्ध को प्रोत्साहन मिलता था और अफगान राजकुमारों की दृष्टि में अंगरेजी स्वीकृति का कोई मूल्य न था।

रूस की समस्या :—इस बीच में रूस दक्षिण की ओर बढ़कर अफगानिस्तान की सीमा तक आने का प्रयत्न कर रहा था। १८६४ में उसकी सेनायें खोकन्द, बुखारा और खीवा तक, जो केस्पियन सागर और पश्चिमी चीन के बीच तीन मुख्य खान रियासतें थी, आ पहुँची थीं। इन दुर्बल एवं अव्यवस्थित रियासतों का रूसी साम्राज्य में मिलाया जाना केवल कुछ समय की ही बात थी, परन्तु रूस की यह प्रगति लारेंस के शासन-काल के अन्तिम दिनों में अधिक स्पष्टरूप से दृष्टिगोचर होने लगी थी। १८६५ में ताशकन्द को रूसी साम्राज्य में मिला लिया गया। १८६७ में जनरल कौफमेन को तुर्किस्तान का गवर्नर जनरल बनाया गया और समरकन्द पर भी, जो बुखारा का एक भाग था, एक वर्ष पश्चात् अधिकार स्थापित हो गया। इस पर सर जान लारेंस ने इंग्लैंड की सरकार पर रूस के साथ दोनों देशों के प्रभाव-क्षेत्रों की सुनिश्चित सीमा निर्धारित करने के हेतु जोर दिया। लारेंस के विचार में यदि प्रभाव-क्षेत्रों की यह सीमा निश्चित हो जाती तो फिर रूस के भय का कोई कारण नहीं था। बुखारा, खीवा और खोकन्द पर रूसी आधिपत्य स्थापित होने में अंग्रेजों को कोई विशेष आपत्ति नहीं थी, यदि अधिक दक्षिण की ओर रूस बढ़ने का विचार न करे।

१८६८ में शेरअली के अमीर बनने पर लारेंस ने उसको बहुत से हथियार और ६०, ००० पौंड दिये, परन्तु इससे आगे और किसी कार्य के लिये अपने आपको वचनबद्ध करने से उसने इन्कार कर दिया। सर हेनरी रेलिन्सन ने, जब वह सेक्रेटरी आव स्टेट की कौंसिल का सदस्य था, २० जौलाई १८६८ को यह प्रस्ताव रखा था कि भारत की अंग्रेजी सरकार को अभी बढकर बिलोचिस्तान में बोलान दर्रे पर क्वेटा पर अधिकार कर लेना चाहिये, अफगानिस्तान के अमीर के साथ मैत्री-सम्पादन करके प्रत्येक वर्ष उसको कुछ धन देना चाहिये। लारेंस इस नीति का विरोधी था। इस विषय पर कि बोलान दर्रे की रक्षा पश्चिम की ओर से या पूर्व की ओर से अच्छी हो सकती थी, सैनिक विशेषज्ञों में मतभेद था। इसके अति- रिक्त लारेंस को विश्वास था कि अफगानिस्तान की आन्तरिक व्यवस्था में हस्तक्षेप करने का परिणाम युद्ध होगा और वह इस बात में भी विश्वास नहीं करता था कि शेरअली के साथ झगडा करके रूस को आक्सस नदी पर रोकने प्रयत्न किया जाय। उसने कहा—रूस की कठिनाइयो को, आगे बढकर ऐसे प्रदेश में उसके साथ युद्ध करके, जहाँ सैनिक कार्यवाही ठीक नहीं हो सकती, कम करना बडी भारी मूर्खता होगी। उसका पूर्ण विश्वास था कि भारत में अंग्रेजी राज्य की सुरक्षा के लिए अफ- गानिस्तान के आन्तरिक झगडो में न फँसा जाय और अपनी सीमा पर एक सुसज्जित सेना रक्खी जाय। उसने एक बार कहा था कि अफगान लोग अपने पहले आक्रान्ताओं को अपना कट्टर शत्रु और उनके पश्चात् आने वाले शत्रुओं को अपना मित्र तथा मुक्त करने वाले समझेंगे। उपरोक्त तथ्य से सर्वथा प्रकट हो जाता है कि लारेंस की नीति को "महान् अकर्मण्यता" की नीति का नाम देना निराधार था। उसने अपनी चतुर नीति से अंग्रेजो के प्रति रूस की जागरूक घृणा को भोथरा कर दिया था। उसके पश्चात् मेयो नार्थब्रुक तथा पाँच सेक्रेट्रियो ने इसी नीति का पालन किया। जब लार्ड सेलिसबरी और लिटन ने इस नीति को बदला और उसके प्रतिकूल कार्य किया, तब उसका बडा भयंकर दुष्परिणाम अंगरेजी सरकार को भुगतना पडा।

प्रश्न

१. लार्ड लारेन्स के समय भूटानियो के साथ अंग्रेजो के कैसे सम्बन्ध रहे ?
२ लार्ड लारेन्स ने आर्थिक तथा शासन-सम्बन्धी क्या सुधार किये ?
३. लार्ड लारेन्स के समय अंग्रेजों और अफगानिस्तान के कैसे सम्बन्ध रहे ?

अध्याय ३१

अफगान समस्या तथा आर्थिक सुधार

लार्ड मेयो तथा लार्ड नार्थब्रूक

आगमन :—जनवरी १८६९ में लारेंस वापस इंग्लैंड चला गया और वहाँ पर ब्रिटिश सरकार ने उसको लार्ड की उपाधि से विभूषित किया। उसके पश्चात् लार्ड मेयो भारतवर्ष का वाइसराय नियुक्त किया गया। इससे पहले वह तीन बार आयरलैंड का सेक्रेटरी रह चुका था।

शेरअली के साथ सम्बन्ध —यह निश्चित किया गया था कि लारेंस इंग्लैंड वापस जाने के पहले अफगानिस्तान के अमीर शेरअली से मुलाकात करे, परन्तु शेरअली अपने देश की आन्तरिक व्यवस्था अच्छी न होने के कारण न आ सका और लारेंस वापस इंग्लैंड चला गया और जब मार्च १८६९ में शेरअली अम्बाला आया तो उसको लारेंस के स्थान पर उसका उत्तराधिकारी मेयो मिला, परन्तु अफगान-नीति में कोई परिवर्तन नहीं किया गया। क्योंकि इस सम्बन्ध में मेयो लारेंस के पद-चिन्हों पर ही चलना चाहता था। मुलाकात के समय शेरअली ने अंग्रेजी सरकार के साथ और गहरे सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा प्रकट की। वह चाहता था कि अफगानिस्तान और भारत की सरकार के बीच एक सुनिश्चित सन्धि हो जाय। अंग्रेजी सरकार वार्षिक सहायता के रूप में एक निश्चित धनराशि दे और आवश्यकता पड़ने पर सेना तथा अस्त्र-शस्त्र से उसकी सहायता करे, उसके तथा उसके राजवंश के राज्याधिकार की सहायता का वचन दे और उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके बड़े पुत्र याकूबखाँ के स्थान पर छोटे पुत्र अब्दुल्ला जान को अफगानिस्तान का अमीर स्वीकार करे। शेरअली की इन सब बातों को लार्ड मेयो और इंगलैंड की सरकार स्वीकृत करने के लिए तैयार नहीं थे। लार्ड मेयो के समक्ष एक बड़ी विकट समस्या थी। वह शेरअली की सब माँगों को भी स्वीकार नहीं कर सकता था और यथासम्भव शेरअली की मित्रता को स्थिर बनाये रखना चाहता था। वह अपने व्यक्तिगत सुन्दर आचरण के कारण इस कार्य में सफल हुआ।

मेयो ने शेरअली की सन्धि आदि की माँगों को स्वीकार नहीं किया, परन्तु उसने यह लिखित वचन दिया कि अगरेजों की नैतिक सहायता उसको सदा प्राप्त

रहेगी और जब अंग्रेजी सरकार वांछनीय समझेगी तब गोला-बारूद और धन से सहायता करेगी। उसको यह भी बतलाया गया कि यदि उसको पदच्युत करने का प्रयत्न किया गया तो सरकार इस बात को बहुधा बुरा मानेगी। इस मुलाकात से शेरअली को कितना सन्तोष हुआ, यह कहना तो कठिन है, परन्तु वह एक अंश तक सन्तुष्ट अवश्य था। वह लार्ड मेयो के आचरण से विशेषतया आकृष्ट था और उसके साथ उसकी मित्रता हो गई थी। उसके सम्मान में लगाये गये दरबार की तड़क-भड़क और अंग्रेजी सरकार की सैनिक शक्ति ने उसको बहुत प्रभावित किया था। उसने अपने देश में वापस लौटकर उन सुधारों के करने का भी प्रयत्न किया जो मेयो ने उसको सुझाये थे, परन्तु उनमें उसको अधिक सफलता प्राप्त न हो सकी अंगरेजी फैशन का भी उस पर ऐसा प्रभाव पड़ा था कि उसने काबुल के जूता बनाने वालों को अंगरेजी ढंग का ही जूता बनाने का आदेश दिया था।

रूस के साथ सम्बन्ध :—सर जान लारेंस की अफगानिस्तान में हस्तक्षेप न करने की नीति का दूसरा आवश्यक अंग यह था कि रूस के साथ अंगरेजों का सम्बन्ध बिल्कुल साफ रखा जाय। लारेंस ने स्पष्ट शब्दों में यह घोषणा कर दी थी कि दोनों के बीच एक सुनिश्चित सीमा निर्धारित होनी चाहिए और यदि रूस उस सीमा को पार करके भारतवर्ष की ओर अग्रसर होता है तो ममार के प्रत्येक भाग में इंग्लैंड का रूस के साथ युद्ध आरम्भ हो जायगा। लारेंस की नीति को कार्यान्वित करने के लिए इस समय कुछ प्रयत्न भी किया गया। मेयो रूस से भयभीत नहीं था, राष्ट्र सचिव क्लेरेण्डन तथा राजकुमार गोटशाकोफ के बीच सन्धि-चर्चा आरम्भ हुई उसका विचार था कि रूस अंग्रेजी शक्ति से अनभिज्ञ था। यूरोप में ब्रिटिश पर-राष्ट्र-सचिव क्लेरेण्डन तथा राजकुमार गोर्टशाकोफ के बीच सन्धि-चर्चा आरम्भ हुई और १८६६ में कलकत्ता मे डगलस फोर्सिथ को भारत की सरकार का दृष्टिकोण रूसी अधिकारियों के सामने रखने के लिए सेंटपीटर्सबर्ग भेजा गया। परिणाम स्वरूप रूस ने शेरअली को आक्सस के दक्षिण में अफगानिस्तान का अमीर स्वीकार कर लिया, परन्तु एक शर्त रखी गई कि शेरअली इस नदी के उत्तर में बुखारा राज्य की सीमाओं का सम्मान करे। अभी अफगानिस्तान की उत्तरी सीमा निश्चित होनी शेष थी और इसमें बहुत समय लगा। १८७१ में रूसी लोगों का कहना था कि बदख्शाँ अफगानिस्तान के अन्तर्गत नहीं था, परन्तु १८६३ में लम्बी चौड़ी बातचीत के पश्चात् ब्रिटिश लाइन को स्वीकार कर लिया गया।

अफगानिस्तान की सीमाओं से सम्बन्ध रखने वाला अंगरेजों और रूस का यह समझौता मध्य एशिया की राजनीति की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात थी और यदि बाद में चलकर यूरोप की गुत्थियाँ इसमें हस्तक्षेप न करतीं तो एक अत्यन्त

कठिन एवं भयानक समस्या का निपटारा हो गया होता। १८७० के लगभग रूसी तुर्किस्तान के गवर्नर जनरल कौफमेन ने अफगानिस्तान के अमीर के साथ पत्र-व्यवहार आरम्भ किया और यद्यपि उसके पत्र सर्वथा निर्दोष थे तो भी कतिपय मनुष्यों का विचार है कि ब्रिटिश सरकार उनको बन्द करने की माँग कर सकती थी। भारत सरकार को ऐसा करने का पर्याप्त कारण था क्योंकि रूस ने वचन दिया था कि वह अफगानिस्तान को अपने प्रभाव-क्षेत्र से सर्वथा बाहर मानेगा। शेरअली भी इस पत्र-व्यवहार से बड़ा परेशान था और वह इन सब पत्रों को गवर्नर जनरल के पास भेजता रहता था। लार्ड मेयो ने रूसी अधिकारियों को यह लिखने के बजाय कि वे अफगानिस्तान के अमीर के साथ ब्रिटिश सरकार के द्वारा पत्र-व्यवहार किया करें, अमीर को यह आश्वासन दिया कि वे पत्र केवल शिष्टाचार-सम्बन्धी थे और शेरअली की अकारण परेशानी पर उसकी भर्त्सना की।

आर्थिक सुधार :—पिछले अध्याय में हमने देखा कि सर जान लारेंस इंग्लैंड जाते समय २५ लाख का घाटा छोड़कर गया था। इस घाटे को पूरा करने की समस्या थी। इस कार्य पर सर रिचर्ड टेम्पिल तथा स्ट्रेची भाइयों ने मेयो की सहायता की और उसने आय तथा व्यय को समान करने का दृढ संकल्प कर लिया। कमी को पूरा करने के लिए बड़ी कठोर कार्यवाही की गई। जिन प्रान्तों में नमक के ऊपर नाम-मात्र का कर था, वहाँ पर नमक-कर बढा दिया गया और आय-कर भी पहले एक, फिर दो और अन्त में तीन प्रतिशत बढा दिया गया। सर्वसाधारण और विशेषज्ञों ने भी इनका विरोध किया परन्तु सब व्यर्थ रहा। आय-कर की वृद्धि को बड़ा कठोर एव अन्याय-पूर्ण बतलाया गया और इसके वसूल करने में भी बड़ा भारी व्यय होता था। छानबीन के पश्चात् यह पता चला कि सफल नियन्त्रण के अभाव में अधिक व्यय करने वाले विभाग धन की व्यर्थ ही मूर्खता के साथ पानी की तरह बहाते थे। उनके इस भयंकर व्यय में लगभग दस लाख प्रति वर्ष की कमी की गई। आरम्भ में इस साधनो द्वारा आर्थिक सकट को दूर करने का विचार था, परन्तु बाद में इनको स्थायी रूप दे दिया गया। अब तक तो यह प्रथा प्रचलित थी। गवर्नर जनरल अपनी कौंसिल की सलाह से प्रान्तीय कोषों को धन की स्वीकृति किया करता था। कार्य-विशेष के लिए धन-राशि नियत होती थी, जिसको और किसी कार्य में व्यय नही किया जा सकता था। यदि बम्बई या मद्रास के शासक अपने सुन्दर तथा मितव्ययी प्रबन्ध के कारण कुछ बचत कर लेते थे तो उनके इस प्रशसनीय कार्य से उनको कोई लाभ नही होता था, क्योंकि उनसे यह आशा की जाती थी कि बचत के धन को साम्राज्य के कोष में जमा कर दें। शासन-प्रबन्ध का इतना अधिक केन्द्रीकरण

के कारण मितव्ययता की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था और प्रान्त सरकारें अपने प्रान्तो के लिए अधिक से अधिक धन की माँग करती थी और उनको पाई पाई व्यय करने का प्रयत्न करती थी। १८७० में रिचार्ड तथा जान स्ट्रेची के प्रयत्नों के फलस्वरूप एक महत्वपूर्ण सुधार किया गया। प्रत्येक प्रान्त को प्रतिवर्ष एक नियत धनराशि दी जाने लगी, जिसमें प्रत्येक पाँचवें वर्ष परिवर्तन हो सकता था, परन्तु उस धन को भिन्न भिन्न विभागों में व्यय करने के कतिपय परिमित अधिकार उनको दे दिये गए थे। इस प्रथा की श्री आर० सी० दत्त ने अपनी 'विक्टोरिया काल में भारत नामक पुस्तक में कड़ी आलोचना की है। उनका कहना है कि 'इस प्रथा के अनुसार कृषकों पर कर का भार अधिक बढ़ गया था।' परन्तु इससे इतना लाभ अवश्य हुआ कि एक भाग में व्यय होने से बचा हुआ धन दूसरे विभाग में व्यय किया जा सकता था और इसके द्वारा लारेंस के काल के घाटे को ही पूरा नहीं किया गया वरन् अब बजट में बचत भी होने लगी तथा सुप्रबन्ध, मितव्ययता और अच्छे नियन्त्रण के कारण कर का भार कुछ हल्का हो गया था।

लार्ड मेयो की मृत्यु :—ब्रिटिश काल में सर्वप्रथम लार्ड मेयो के समय में भारत की जनसंख्या के आँकड़े तैयार किये गये। उसने कृषि तथा व्यापार-विभाग भी खोले। १८७२ में जब वह अण्डेमान द्वीप में जल कैदियो के निवास का निरीक्षण करके पोर्टब्लेयर में अपनी नाव की ओर जा रहा था तो एक कट्टर पठान ने, जो उसका पीछा कर रहा था, पीछे से आकर उसके शरीर में छुरा घोंप दिया और उसकी ऐहिक लीला समाप्त कर दी। वह भारत का गवर्नर जनरल रहा। उसको अपनी राजनीतिज्ञता दिखाने का पर्याप्त समय नहीं मिला। निस्सन्देह यदि वह कुछ और समय तक गवर्नर जनरल बना रहता तो अपने काल की समस्याओं को सुलझाने में सफल हो जाता। उसने अपनी महान् शक्ति और महान् कार्य क्षमता से अपने अधीनस्थ वर्ग को प्रभावित कर दिया था। वह अकेले परराष्ट्र-विभाग से ही सन्तुष्ट नहीं था वरन् उसने सार्वजनिक कामों का विभाग भी स्वयं ही लिया था। रिचर्ड टेम्पिल ने उसके अदम्य साहस की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। उसके प्रभावशाली व्यक्तित्व का उन सब लोगों पर, जो उसके सम्पर्क में आते थे, गहरा प्रभाव पड़ता था।

लार्ड नौर्थब्रुक तथा अफगान-समस्या

लार्ड नौर्थब्रुक का परिचय ;—लार्ड मेयो की हत्या के पश्चात् लार्ड नौर्थब्रुक भारतवर्ष का वाइसराय नियुक्त किया गया। इससे पहले वह प्रधान मन्त्री

ग्लैडस्टन का युद्ध-विभाग में अण्डर सेक्रेटरी रह चुका था। वह शासन-प्रबन्ध के कार्य में बड़ा सावधान एवं गम्भीर था यथा स्वतन्त्रता पूर्वक निर्णय की उसमें पर्याप्त क्षमता थी; परन्तु न तो वह एक अच्छा लेखक था और न सुवक्ता ही था। उसका चरित्र ऊँचा था और उसका हृदय दयापूर्ण भावनाओं से परिपूर्ण था, परन्तु प्रत्यक्ष रूप से वह दयालु प्रकट नहीं होता था। लारेंस की नीति की अपेक्षा उसकी नीति को "महान् अकर्मण्यता" की नीति की संज्ञा देना अधिक न्यायसंगत होगा। १८७३ में उसने स्वयं लिखा था "मेरा उद्देश्य टैक्स सटकना (एकत्रित करना) और अनावश्यक कानूनों को बन्द करना रहा है" फिर ग्यारह वर्ष पश्चात् उसने लिखा "मेरी नीति का मुख्य आशय कार्य को शान्ति-पूर्वक चलता रहने देना था—देश को आराम देना" उसका विचार था कि राज्य-क्रान्ति के पश्चात् भारत में आवश्यकता से अधिक सुधार किये जा चुके थे और अधिक सुधारों की आवश्यकता नहीं थी।

आन्तरिक व्यवस्था :—नौर्थब्रुक ने भारत में आते ही बंगाल के लेफ्टिनेण्ट गवर्नर कैम्पवैल के ग्रामीण म्युनिसिपैलिटी-संस्थापन-सम्बन्धी बिल को रद्द किया। आर्थिक क्षेत्र में उसने रिचर्ड टेम्पिल के शब्दों में बड़ी योग्यता का परिचय दिया। दुर्भिक्ष के एक वर्ष १८७३-७४ को छोड़कर उसके समय में भारतवर्ष में समृद्धिकाल रहा। इसके दो मुख्य कारण थे—लार्ड मेयो के आर्थिक सुधारों का प्रभाव और स्वेज नहर के १८६६ में खुल जाने से सामुद्रिक व्यापार की उन्नति की। इंग्लैंड में इस समय तक लगभग सब ही आयात चुंगियों को हटाकर स्वतन्त्र व्यापार की नीति को पूर्णतया अपना लिया गया था। भारतवर्ष में भी नौर्थब्रुक ने इस नीति को कार्यान्वित करने के लिए सफल प्रयत्न किए। १८६० तक भारतवर्ष में आयात १० प्रतिशत और निर्यात पर ३½ प्रतिशत चुंगी ली जाती थी। सर जान लारेंस ने

करने के लिए जोर दिया परन्तु उसने कहा कि भारत की आर्थिक दशा इसको सहन नही कर सकती, इसके अतिरिक्त ऐसा करना एक भयवार राजनीतिक भूल होगी। अपने दृष्टि-कोण को पूरा करने के लिए उसने कन्जरवेटिव सेक्रेटरी आॉव स्टेट की भी परवाह नही की। वह आय-कर का पक्षपाती नही था और इस आधार पर उसकी आर्थिक व्यवस्था की आलोचना की जाती है। लार्ड मेयो की हत्या के पूर्व आय-कर घटाकर ६ प्रतिशत कर दिया गया था, परन्तु नौर्थब्रुक ने उसका सर्वथा ही अन्त कर दिया। नमक-कर में कमी करने के स्थान पर उसने आय-कर का अन्त कर दिया क्योकि वह यूरोप-निवासी वडे वड़े व्यापारी और भूमिपतियो के हित का दीन जनता के हित की अपेक्षा अधिक ध्यान रखता था। उसकी इस नीति का रिचर्ड टेम्पिल एवं जान स्ट्रेची ने ही विरोध नही किया वरन् आर्गिल के ड्यूक ने भी, जो उस समय सेक्रेटरी आॉव स्टेट था, इसके विरोध में लिखा था "मेरे विचार में नमक-कर संशोधन और आय कर के अन्त करने के झगडे में आपने धनी वर्ग को, जो सबसे अधिक शक्ति सम्पन्न और शोर मचाने वाला है, मुक्त करने का प्रयत्न किया है।" भारतीय जनता की आवाज को तो कोई सुनने वाला था ही नही। कभी-कभी उसको भारतीय दीन कृषको का भी ध्यान हो जाता था क्योंकि १८८१ में उसने लार्ड लिटन को लिखा था, "मेरा सदा ही यह विचार रहा है कि लगान की दर बहुत ऊँची कर दी गई है और मै सर्वदा स्ट्रेची की राय पर बड़ा सन्देह प्रकट करता रहा हूँ क्योकि वह लगान को और भी ज्यादा करने के पक्ष में है।

दुर्भिक्ष :—नौर्थब्रुक के काल में १८७३—७४ में विहार और बङ्गाल के भागों में जहाँ पर आबादी बहुत अधिक थी, एक दुर्भिक्ष पड़ा, परन्तु इस बार नौर्थब्रुक और बंगाल का लिफ्टिनेण्ट गवर्नर कैम्पवैल इस विषय में बड़ सतर्क थे और उन्होने संकल्प कर लिया था कि इस बार १८६५ के दुर्भिक्ष की पुनरावृत्ति नही होने दी जायगी। ब्रह्मा से बहुत अधिक चावल खरीदा गया। उसके लाने और भूखी जनता में बाँटने के लिए व्यय की चिन्ता नही की गई। अनेको स्थानो पर क्षुधा-पीड़ित जनता के केन्द्र स्थापित कर दिये थे। परिणाम-स्वरूप ६५ लाख व्यय करना पड़ा। यह सत्य है कि इस धन-राशि में कुछ ऐसा व्यय किया गया था जो अनावश्यक था, परन्तु नौर्थ ब्रुक की आर्थिक क्षेत्र में मितव्ययता के कारण वह दुर्भिक्ष के व्यय को इसी बचत से सहन कर सका।

गायकवाड़ तथा नौर्थब्रुक :—लार्ड नौर्थब्रुक के काल में एक और अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना घटी। एक कमीशन नियुक्त करके बड़ोदा के शक्तिशाली राना मल्हारराव पर अभियोग लगाया गया १८७० में वह बड़ौदा के सिंहासन पर आरूढ़

हुआ। उस पर यह आरोप लगाया गया कि सिंहासनारूढ होने के समय से ही उसका शासन-प्रबन्ध अत्यन्त बुरा रहा है । जो कमीशन जाँच करने के लिए नियुक्त किया था, उसने १८७४ में अपनी रिपोर्ट में लिखा था कि मल्हारराव ने अपने मृत भाई के सम्बन्धियों तथा स्त्रियों के साथ बड़ा ही अमानुषिक व्यवहार किया था और बैंक वालों और व्यापारियों को लूटा था । इसके पश्चात् उसको अपना शासन-प्रबन्ध सुधारने के लिए अठारह महीने का समय दिया गया, परन्तु इस समय में उसके शासन में किसी प्रकार का कोई संशोधन नहीं हुआ। अन्त में १८७५ में उस पर ब्रिटिश रेजीडेन्ट, कर्नल फेयर को विष देने का अपराध लगाकर अभियोग चलाया गया। अभियोग का निर्णय करने वालों में ग्वालियर और जैपुर के महाराजा, निजाम का प्रधान मन्त्री दिनकरराव और तीन ब्रिटिश अफसर थे । ब्रिटिश अफसरों ने उसको दोषी ठहराया; परन्तु भारतीय न्यायाधीशों ने उसको निर्दोष ठहराया । यह बड़ी विकट स्थिति थी। लार्ड सेलिसबरी ने, जो इस समय सेक्रेटरी ऑव स्टेट था, नौर्थ ब्रुक को लिखा कि मल्हरराव को कुप्रबन्ध के आधार पर पदच्युत कर दिया जाय और उसमें इस अपराध का कोई जिक्र तक भी न आये । ऐसा ही किया गया। अङ्गरेज शासकों की साम्राज्यवृद्धि की यह एक नीति थी कि पहले किसी-किसी देशीय स्वतन्त्र शासक पर कुप्रबन्ध का दोष लगाते, उसके सम्बन्ध में वीभत्स अत्याचारों की कल्पित कथायें प्रचलित करते और फिर उसको पदच्युत कर देते थे । मल्हारराव के पदच्युत किये जाते ही जनता क्षुब्ध हो उठी और विद्रोह का भय लगने लगा। अङ्गरेजी सरकार ने शीघ्रता और गुप्त रूप से मल्हरराव को मद्रास पहुँचाया और उसके स्थान पर राजवंश के एक बालक को राजा घोषित करके सर माधवराव को, जो एक मरहठा राजनीतिज्ञ था, उसका प्रधान मन्त्री नियुक्त किया । बड़ौदा राज्य पर अपने अफसरों के द्वारा नियन्त्रण स्थापित कर लिया। और यह दिखाने के लिये, कि सरकार देशी सत्ता को मिटाना नहीं चाहती है, एक बालक को राजा बना दिया गया।

अफगान-रूस समस्या :—नौर्थ ब्रुक के शासन-काल में मध्य एशिया की समस्या बड़ी विकट होती जा रही थी क्योंकि रूस निरन्तर अफगानिस्तान की उत्तरी सीमा की ओर बढ़ने का प्रयत्न कर रहा था । रूस की दक्षिण की ओर यह प्रगति अनिवार्य थी। १८६४ में गोर्टशाकोफ ने लिखा था कि रूस उसी राजनीतिक नियम से दक्षिण की ओर बढ़ने के लिए बाध्य हो रहा है जिससे अंग्रेज लोग भारत में उत्तर की ओर हिमालय तक बढ़ने के लिए लाचार हुये थे । संसार का इतिहास बतलाता है कि कोई भी शक्तिशाली राष्ट्रों के साथ स्थायी सीमा रखने के लिए

सन्तुष्ट नहीं हो सकता। अंग्रेजों की व्यापारिक ईस्ट इण्डिया कम्पनी का ही इतिहास यह बतलाता है कि बार बार यह घोषणा करने पर भी कि और नवीन प्रदेशों पर अधिकार स्थापित नहीं किया जायगा, वह निरन्तर एक के पश्चात् दूसरे प्रदेश को हड़प करती चली गई। इंग्लैंड की भाँति रूस ने भी अनेक बार यह घोषणा की थी कि अब वह इस सीमा से आगे नहीं बढ़ेगा; परन्तु मध्य एशिया के निर्बल राज्यों को देखकर उसके मुँह में पानी भर आया था, या इन प्रदेशों के मनुष्य उसकी चौकियों पर आक्रमण कर बैठते थे, बस आगे बढ़ने का बहाना मिल जाता था। परन्तु अनेकों अङ्ग्रेज राजनीतिज्ञों और भय-त्रस्त शेरअली को रूस की प्रगति ऐसी प्रतीत होती थी कि रूस ने बड़े सोच विचार के पश्चात् ऐसा करने की योजना पहले ही तैयार कर रक्खी थी। १८६६ में रूसियों ने कैस्पियन सागर के पूर्वी तट पर क्रानोवोड्स्क पर अधिकार कर लिया। १८७३ में खीवा भी उनके अधिकार में आ गया। इसके एक महीने पश्चात् शिमला में वाइसराय और अफगान राजदूत के बीच एक कान्फ्रेंस हुई। अफगानिस्तान के अमीर का विश्वास अंग्रेजी सहायता में कम होता जा रहा था और इस कान्फ्रेंस के पश्चात् भी इस भावना में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। सीस्तान की सीमा के सम्बन्ध में, जिसके ऊपर अफगानिस्तान और फारिस में झगड़ा चल रहा था, जो फैसला अंग्रेजों ने दिया उससे अफगानिस्तान का अमीर बड़ा हताश हुआ। कान्फ्रेंस में अफगान राजदूत ने कहा कि रूस की दक्षिण की ओर प्रगति ने अफगान जनता को बेचैन बना दिया है और उनको रूस के शान्ति बनाये रखने के आश्वासनों पर विश्वास नहीं है और इसलिये वे अंग्रेजी सरकार के साथ और घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं। नौर्थ ब्रुक राजदूत की बात से प्रभावित हुआ और उसने सेक्रेटरी से इस बात की आज्ञा माँगी कि वह शेरअली को धन, जन तथा अस्त्र-शस्त्र से सहायता करे यदि शेरअली पूर्ण रूप से ब्रिटिश सरकार की शिक्षा माने और उसी के अनुसार कार्य करे। यदि वह ऐसा करने के लिए तैयार हो जाता है तो अंग्रेजी सरकार आवश्यकता पड़ने पर अर्थात् जब कोई अफगानिस्तान पर आक्रमण करे तो अङ्ग्रेजी सरकार उसकी सहायता करेगी। परन्तु इस आवश्यकता का निर्णय करना अंग्रेजी सरकार के ही हाथ में होगा। परन्तु ब्रिटिश कैबिनेट ने उसको यह अधिकार नहीं दिया और लिख दिया कि मेयो के अनिश्चित प्रण की पुनरावृत्ति कर दो। अफगान राजदूत ने कहा कि यदि रूस अफगानिस्तान पर आक्रमण करता है तो अंग्रेजी सरकार को उसको अपना शत्रु मानना चाहिये, परन्तु इसमें नौर्थ ब्रुक को यह आपत्ति थी कि वह ऐसा लिखित में नहीं दे सकता था क्योंकि अभी तक रूस के साथ अंग्रेजों की मित्रता थी और

ऐसा लिख देने का यह अर्थ होता था कि दोनों के बीच मनमुटाव चल रहा है। शेर अली ने ५००० राइफलें तो स्वीकार कर ली यद्यपि उसने दस लाख रुपया, जो अंग्रेजी सरकार उसको देना चाहती थी, अस्वीकृत कर दिया था।

शेरअली के साथ कोई घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित न हो सका, यद्यपि १८६६ में तो उससे यह आशा नहीं की जा सकती थी कि वह अमीर बना रहेगा; परन्तु १८७३ तक जब यह चर्चा चली, उसने अपने आपको एक योग्य एवं दृढ़ शासक सिद्ध कर दिया था। इसलिये उसके साथ घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित कर लेना अभीष्ट था। ऐसा प्रतीत होता है कि शेरअली ने अपने हृदय में यह निश्चय कर लिया था कि उसको अंग्रेजों या रूसियों के साथ, जिनकी सेनायें दो ओर से उसके एकाकी राज्य को घेरे हुए थी, मित्रता करना आवश्यक था। यदि सम्भव होता तो वह बेचारा दोनों ही से दूर रहने में अपना सौभाग्य समझता, परन्तु इन दोनों में से वह अंग्रेजों की मित्रता को अपेक्षाकृत अच्छा समझता था। इस समय शेरअली के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने का अर्थ लारेंस की नीति को बदलना नहीं था वरन् समयानुसार उसमें आवश्यक परिवर्तन करना था। शिमला-कान्फ्रेंस से शेरअली सर्वथा हताश हो गया। नौर्थब्रुक का आचरण भी मेयो-जैसा नहीं था जिसके कारण शेरअली उसकी ओर आकृष्ट होता। उल्टे वाइसराय ने शेरअली की बड़ी भर्त्सना की; क्योंकि उसने धोखे से पकड़ कर अपने बड़े पुत्र याकूबखाँ को बन्दी बना लिया था और अब्दुल्लाजान को अपनी मृत्यूपरान्त अमीर बनाना चाहता था। इस समय से आगे प्रत्यक्ष रूप से तो शेरअली व्यर्थ ही अंगरेजी सरकार को अप्रसन्न करने के भय से रूसी पत्रों का स्वागत नहीं करता था; परन्तु मन ही मन वह अङ्गरेजों से फिर गया था। इसी समय १८७४ में इंग्लैंड में उदार दल के स्थान पर अनुदार दल की सरकार बनी और नौर्थब्रुक के स्थान पर लार्ड लिटन वाइसराय बनकर भारत आया, जो अनुदार दल का आदमी था।

मार्च १८७४ में ग्लेडस्टन के स्थान पर डिजरायले इंग्लैंड का प्रधान मन्त्री और लार्ड सेलिसबरी सेक्रेटरी ऑव स्टेट बना। दोनों ही एशिया में रूस की नीति को सशंक नेत्रों से देखते थे और भारत सरकार के अफगानिस्तान के साथ सम्बन्धों को असन्तोष-जनक समझते थे। इसमें कुछ अंश तक वे ठीक भी थे। यदि वे रूसी सरकार के ऊपर अफगानिस्तान की सुरक्षा के लिये जोर देते तो उनका पक्ष भी दृढ़ हो जाता और 'लारेंस नीति' से भी उनको विचलित न होना पड़ता, परन्तु रूस के बजाय उन्होंने काबुल पर दबाव डालना आरम्भ किया। सेक्रेटरी आव स्टेट की कौंसिल के एक सदस्य ने यह प्रस्ताव रक्खा कि ऐसी विकट परिस्थिति में अङ्गरेजों

की ओर से केवल भारत-सरकार का एक एजेण्ट काबुल में रहे और वह भी एक मुसलमान। सेलिसबरी ने यह बात मान ली और यह प्रस्ताव रक्खा कि शेरअली से काबुल में एक अंगरेज रेजीडेण्ट को स्वीकृत करने के लिए कहा जाय। नौर्थब्रुक और उसकी सम्पूर्ण कौंसिल ने इसका विरोध किया। उन्होंने कहा कि शेरअली १८६६ और १८७३ में रूसी आक्रमण से बहुत भयभीत हो गया था। परन्तु उसको आश्वासन दिलाया गया था कि भय का कोई कारण नहीं है। उनकी रक्षार्थ सन्धि की प्रार्थना को अनावश्यक बतलाकर अस्वीकृत कर दिया गया। अब वह यह सोचेगा कि रूस का भय वास्तविक और ऐसा गम्भीर है कि एक अङ्गरेज रेजीडेण्ट रखने की आवश्यकता प्रतीत होती है। इस योजना से वह कदापि सहमत नहीं हो सकता। फलस्वरूप नौर्थब्रुक ने सेलिसबरी को लिखा, 'मैं अमीर के सम्बन्ध में आपके सन्देहों से सहमत नहीं हो सकता, यहाँ पर कोई भी सरकारी आदमी ऐसे विचार नहीं रखता।' परन्तु सेक्रेटरी ने इस बात की तनिक भी परवाह नहीं की और काबुल के लिए एक मिशन भेजने का प्रस्ताव रक्खा। नौर्थब्रुक ने फिर इसका विरोध किया अन्त में अपने पद से त्याग-पत्र दे दिया। त्याग-पत्र देने के व्यक्तिगत कारण बतलाये जाते हैं, परन्तु कारण चाहे कुछ भी रहे हों, यह प्रकट था कि नौर्थब्रुक सेलिसबरी के सेक्रेटरी रहते हुए वाइसराय पद पर काम नहीं कर सकता था। व्यापारिक चुङ्गी पर दोनों में पहले ही झगड़ा हो चुका था, जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है और नई अफगान-नीति के सम्बन्ध में उसकी दृढ़ धारणा थी कि यह सर्वथा मर्खतापूर्ण थी तथा केनिङ्ग द्वारा प्रतिपादन और लारेंस तथा मेयो द्वारा अनुमोदित नीति के सर्वथा प्रतिकूल थी। मैलेट के शब्दों में सेलिसबरी तथा नौर्थब्रुक की मनोवृत्तियाँ ही एक दूसरे के प्रतिकूल थीं। सेलिसबरी को परम्परा तथा उदाहरण से घृणा थी, जबकि नौर्थब्रुक अनुभव तथा तथ्य का पक्षपाती था; इसलिये इन दो प्रतिकूल मनोवृत्तियों का सामंजस्य असम्भव था। इंग्लैंड को प्रस्थान करने के पूर्व उसने सेलिसबरी को चेतावनी दी थी कि शेरअली को उसकी इच्छा के विरुद्ध अपने यहाँ एक एजेण्ट रखने के लिए बाध्य करने का अर्थ 'अङ्गरेजों को अफगानिस्तान में एक अनावश्यक तथा अपव्ययी युद्ध में (बरबस) ढकेलना था।'

प्रश्न

१. लार्ड मेयो ने अफगानिस्तान के साथ मित्रता के सम्बन्ध स्थापित करने के लिये क्या किया ?

२. लार्ड मेयो के समय रूस से कैसे सम्बन्ध रहे ?

३. लार्ड मेयो के आर्थिक सुधारों का वर्णन करो ।
४. अफगानिस्तान के सम्बन्ध में नार्थब्रुक की क्या नीति रही ?
५. लार्ड नार्थब्रुक की आन्तरिक नीति का वर्णन करो ।
६. लार्ड नार्थब्रुक के समय गायकवाड से कैसे सम्बन्ध रहे ?

अध्याय ३२

लार्ड लिटन तथा अफगानिस्तान

नौर्थब्रुक के पश्चात् लिटन भारत का वाइसराय नियुक्त किया गया। वह बडा योग्य था और कवि, निबन्धकार तथा एक सुवक्ता भी था। भारत में आने के पूर्व कूटनीतिज्ञ सेना में रहने के कारण वह यूरोप के अनेको दरबारो में रह चुका था, उसमें एक अन्तर्राष्ट्रीय यात्री तथा साहित्यिक के गुण वर्तमान थे। वह भारतवर्ष में नई अफगान-नीति का सूत्रपात करने के लिए आया था। १८७६ में ग्लेडस्टन के स्थान पर डिजरायले, ड्यूक आव आर्गिल के स्थान पर सेलिसबरी सेक्रेटरी और नौर्थब्रुक के स्थान पर लिटन वाइसराय बन गये थे। अधिकारियों के व्यक्तित्व तथा उनके विचारो में पूर्ण भिन्नता हो गई थी और इससे अधिक परिवर्तन नहीं हो सकता था। नई साम्राज्यवादी नीति का परिणाम यह हुआ कि भारत सरकार को तीन वर्ष के भीतर ही दूसरा भयकर अफगान-युद्ध करना पड़ा। जिसके परिणाम-स्वरूप इग्लैड में अनुदार दल की पराजय और भारत में लार्ड लिटन की कीर्ति का अन्त हो गया।

लार्ड लिटन शेरअली के साथ एक सुनिश्चित एवं व्यापारिक संधि का प्रस्ताव लेकर आया था। वह शेरअली की सब शर्तों को एक नियत वार्षिक आर्थिक सहायता उसके छोटे पुत्र अब्दुल्लाजान को उसका उत्तराधिकारी स्वीकृत करना तथा सन्धि आदि द्वारा ब्रिटिश सहायता का विदेशी आक्रमण के समय सुनिश्चित वचन स्वीकृत करने का अधिकार देकर भेजा गया था। परन्तु ये शर्तें तभी पूरी हो सकती थीं जब वह हिरात में एक अंग्रेज रेजीडेण्ट को रखने के लिए तैयार हो जाय। रक्षा-सम्बन्धी सन्धि करने के लिए यह शर्त सर्वथा न्याय-सगत मानी जा सकती है, परन्तु यदि शेरअली इसके लिए तैयार न हो तो उस पर एक मिशन के लादने वा उसकी अस्वीकृति को युद्ध का कारण बनाने का अङ्गरेजी सरकार को कोई अधिकार नहीं था। लार्ड लिटन को इस नई नीति का प्रतिपादन करने के लिए उपयुक्त साधन एवं समय नियत करने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की गई थी और कहना न होगा कि जो विनाशकारी घटनाएँ इस नई नीति के परिणाम-स्वरूप घटित हुई, उनका उत्तरदायित्व एक-मात्र उसी पर है। क्योंकि सेलिसबरी ने अपने पद के अन्तिम दिनो में वाइसराय का पथ-प्रदर्शन न करके अनुसरण करना आरम्भ कर दिया था।

अफगान अमीर को यह सूचना देने के लिए कि विक्टोरिया ने 'भारत की साम्राज्ञी' उपाधि ग्रहण कर ली थी एक शिष्ट-मण्डल अफगानिस्तान भेजने के लिए प्रस्ताव रक्खा गया, जिसको शेरअली ने यह कहकर कि 'यह अनावश्यक था अस्वीकृत कर दिया। इसी समय काबुल से ब्रिटिश एजेण्ट ने लिखा कि 'शेरअली की अस्वीकृति के दो मुख्य कारण थे—प्रथम वह ब्रिटिश राजदूत की अपने कट्टर देशवासियों से सुरक्षा की गारण्टी नहीं दे सकता था और दूसरे यदि वह ऐसा एक अधिकार अङ्गरेजों को देता तो रूसियों को भी उसे यह अधिकार देना पड़ता।' निस्सन्देह यह बात सत्य थी और यदि भारत की अङ्गरेजी सरकार अफगानिस्तान के साथ अच्छे सम्बन्ध स्थापित रखना चाहती थी, तो उसके लिए सबसे अच्छा मार्ग यह था कि शेरअली की सब मांगों को पूरा कर दिया जाता और अगरेज रेजीडेण्ट के हिरात में रखे जाने पर जोर न दिया जाता, परन्तु लार्ड लिटन ने शेरअली के इस व्यवहार को 'ब्रिटिश हितों की घृणायुक्त अवहेलना करना ठहराया और उसको चेतावनी दी कि इस प्रकार वह अफगानिस्तान को ब्रिटिश मित्रता तथा सहायता से वंचित कर रहा था।' वाइसराय की कौंसिल के तीन सदस्यों ने उसकी इस धारणा का विरोध किया और कहा कि शेरअली का व्यवहार सर्वथा न्याय सगत था और अङ्गरेजी सरकार का उस पर इस प्रकार दबाव डालना बिलकुल अन्याय था। अक्टूबर में यह निश्चय किया गया कि काबुल में रहने वाला अग्रेजी सरकार का मुसलमान एजेण्ट शिमला में लार्ड लिटन से मुलाकात करे और लौटकर मुलाकात की बातों को शेरअली को बतलाये। मुलाकात में लार्ड लिटन ने एजेण्ट से कहा कि ग्रेट ब्रिटेन और रूस के बीच अफगानिस्तान की स्थिति 'दो विशाल लौह बर्तनों के बीच एक छोटे से मिट्टी के बर्तन' जैसी थी, और यदि शेरअली अग्रेजों का मित्र रहता है तो इगलैंड की शक्ति 'उसके चारों ओर लोहे के घेरे की भाँति फैलाई जा सकती थी और यदि वह उनका शत्रु बन जाता है तो उसको एक नरसल की भाँति तोड़ा जा सकता था।'

१८७६ में कलात के खान के साथ सीमान्त अफसर राबर्ट सैंडमेन ने एक सन्धि की, जिसके द्वारा क्वेटा पर आधिपत्य स्थापित करने का अधिकार अग्रेजों को मिल गया। इसके बदले में खान को बिलोचिस्तान के अन्य सरदारों के ऊपर अधिकार दिया गया और वह महान खान बन गया। शेरअली ने अग्रेजों द्वारा क्वेटा पर आधिपत्य स्थापित होने का अर्थ यह लगाया कि कधार पर आक्रमण का यह पहला कदम था। क्योंकि क्वेटा बोलान दर्रे पर स्थित है जो भारत को अफगानिस्तान से मिलाता है। उसको भली प्रकार याद था कि पहले अफगान युद्ध में क्वेटा के आधार

से ही चलकर अंग्रेजो ने उसके देश पर विजय प्राप्त की थी।

जनवरी १८७७ में पेशावर में सर लेविस पेली और शेरअली के मन्त्री सैयद नूर मुहम्मद के बीच, जिसने १८७३ में नौर्थब्रुक के साथ बातचीत की थी, कान्फ्रेंस हुई; परन्तु इसका कोई फल नही निकला; क्योंकि अफगान राजदूत ने ब्रिटिश अफसर की अफगानिस्तान में रहने की बात को सर्वथा अस्वीकार कर दिया। लिटन या तो शेरअली के ऐसा करने के कारणो को ठीक प्रकार समझ नही सका था या फिर जान बूझकर उसने समझने और उनको मानने से इन्कार कर दिया। नूरमुहम्मद ने कहा 'ब्रिटिश जाति महान् एव शक्तिशाली है और अफगान लोग उसकी शक्ति का सामना नही कर सकते, परन्तु अफगानी स्वेच्छाचारी और स्वतन्त्रता-प्रिय होते है। और जीवन से भी अधिक अपनी मान-मर्यादा को प्रिय समझते है।' कोई भी अमीर यदि यह पता चल जाय कि किसी भी प्रकार वह विदेशी नियन्त्रण में है अफगानिस्तान का अमीर नही रह सकता। अफगान लोग यह भली प्रकार जानते थे कि उनकी शासन-सम्बन्धी अनेको बातें अङ्गरेज राजनीतिक अफसरो को रुचिकर सिद्ध नही हो सकती। सैयद नूरमुहमद ने कहा था 'हम आप पर अविश्वास करते है और डरते है कि आप लोग हमारे सम्बन्ध में अनेको प्रकार की रिपोर्ट लिख-लिख कर भेजेंगे, जिन के आधार पर किसी दिन हमारा बडा विरोध किया जायेगा।' यह निश्चयात्मक रूप से नही कहा जा सकता कि शेरअली ने वाइसराय के पत्रो आदि को कहाँ तक समझा, परन्तु इतना अवश्य निश्चय है कि लिटन ने शेरअली की परिस्थिति-विशेष को अच्छी प्रकार नही समझा। इन दिनो बाजारो में यह बडी गर्म अफवाह थी कि इग्लैंड और रूस ने अफगानिस्तान के बँटवारे के सम्बन्ध में समझौता कर लिया है और इस समझौते को दृढ बनाने के विचार से ड्यूक आव एडिनबरा तथा एक रूसी राजकुमारी का वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित हो चुका है। अपने लम्बे-लम्बे पत्रो में लिटन ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि शेरअली का राजदूत भेजना यह अर्थ रखता है कि वह अङ्गरेजी रेजीडेण्टो को अपने यहाँ रखने की अनुमति देता है और इंग्लैंड तथा अफगानिस्तान के सम्बन्धो का आधार १८५५ की सन्धि है तथा मेयो एवं नौर्थब्रुक के आश्वासनो का कोई स्थायी मूल्य नही था। सम्भवत इसी समय से शेरअली रूस की ओर अधिकाधिक आकृष्ट होने लगा था, यद्यपि यह भी सत्य है कि यदि उसकी शक्ति में होता तो वह किसी भी योरुपीय शक्ति से झगडा मोल न लेता। मार्च में सैय्यद नूरमुहम्मद का पेशावर में देहान्त हो गया। लार्ड लिटन ने तुरन्त इस अवसर से लाभ उठाकर कान्फ्रेंस की समाप्ति की घोषणा कर दी जबकि मृत राजदूत का उत्तराधिकारी शेरअली से नये सुझाव प्राप्त कर रवाना हो चुका था।

अब अफगान दरबार से पत्र-व्यवहार सर्वथा बन्द कर दिया गया। यद्यपि लार्ड लिटन ने अफगान लोगो को यह आश्वासन दिया था कि, 'जब तक उनका शासक या दूसरे आदमी उनको अ ग्रेजी राज्य या उनके मित्रो के ऊपर हिंसात्मक कार्य करने के लिये उत्तेजित नही करते तब तक एक भी ब्रिटिश सैनिक अफगानिस्तान के भीतर बिना बुलाये न घुसने दिया जायेगा।'

निस्सन्देह राजनीतिक वातावरण दिन प्रतिदिन क्षुब्ध होता जा रहा था। परन्तु अभी तक कोई ऐसा कार्य नही किया गया था जिसके ऊपर बहुत अधिक पश्चात्ताप करना पडता। लार्ड लिटन के इस कथन में सत्य था कि 'उस समय मध्य एशिया की परिस्थिति के दृष्टि-कोण से अ ग्रेजो के अफगानिस्तान के साथ सम्बन्ध सन्तोषजनक नही थे।' शेरअली एक स्वतन्त्र शासक था और अगरेजी सरकार को उसको रूस के साथ सम्बन्ध स्थापित न करने देना या अपने यहाँ अङ्गरेज रेजीडेण्ट रखने पर बाध्य करने का कोई नैतिक अधिकार नही था, परन्तु लार्ड लिटन ने इसी मार्ग का अनुसरण किया और ब्रिटिश सरकार को भी इसी मार्ग पर चलने के लिये बाध्य किया, सर जेम्स स्टीफन के शब्दो से लिटन तथा सरकार की मनोवृत्ति का पता चलता है—'काबुल के अमीर और कलात के खान जैसे सरदारो के साथ व्यवहार इस आशय से करना चाहिये कि उनकी स्थिति हमारी (अग्रेजो की) स्थिति से नीची है यद्यपि वे किसी भी प्रकार हमारे अधीन नहीं है, क्योकि किसी सुनिश्चित सधि आदि से वे महारानी (विक्टोरिया) का कर्त्तव्य पालन करने के लिये बाध्य नही है। उनकी निम्न स्थिति का तात्पर्य यह है कि उनसे किसी ऐसी नीति का अनुसरण करने की आज्ञा नही दी जा सकती जो हमारे लिये भयकारी हो। इन राज्यो के साथ हमारे सम्बन्ध इस तथ्य पर आश्रित है कि हम उनसे कहीं अधिक शक्तिशाली एव सभ्य है। और वे अपेक्षाकृत निर्बल तथा असभ्य है।'

पेशावर कान्फ्रेंस के समाप्त होने पर लिटन ने अपना ध्यान उत्तरी पश्चिमी सेना के कबाइलियो की ओर दिया, और उनके प्रान्तो में होकर अपनी चौकियो को अफगानिस्तान के और निकट स्थापित करने की अपनी उत्कट अभिलाषा प्रकट की। काश्मीर महाराज के साथ 'न्यूनाधिक गुप्त प्रबन्ध' करके उसने गिलगित में ब्रिटिश एजेन्सी स्थापित की। इस पर कप्तान कैवेगनरी ने उसको समझाया कि इस नीति के परिणाम-स्वरूप शेरअली के साथ मित्रता सर्वथा असम्भव हो जायगी। लार्ड लिटन की पुत्री के लेखानुसार सीमान्त प्रदेश के पुराने एव अनुभवी अफसरों ने भी इसका विरोध किया था। साराश यह है कि वाइसराय के विरोधियो ने इसकी इस नीति को अत्यन्त रहस्यमय एव धूर्ततापूर्ण ठहराया। वे चाहते थे कि सीमान्त-नीति

की भांति सीधी सच्ची तथा निष्कपट होनी चाहिए, परन्तु लार्ड लिटन तो इस समय जैसाकि उसने भी स्वय स्वीकार किया है 'अफगान शक्ति को क्षीण करने और धीरे-धीरे उसको अस्त-व्यस्त करने' पर तुला हुआ था।

परन्तु शेरअली के पतन का कारण यूरोप के झगडे बने, जिनकी इस समय ऐसी कोई आशा भी नहीं की जाती थी। १८७६ में सर्विया और मोन्टे नीग्रो के निवासियो ने तुर्क कुशासन के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह कर दिया। अगले वर्ष अप्रैल के महीने में रूस ने इन लोगो का पक्ष लेकर टर्की के साथ युद्ध की घोषणा कर दी और १८७८ में उसकी सेनाएँ बल्कान प्रदेश को पार कर आई। इग्लैंड के प्रधान मन्त्री डिजरायले ने, जो इस समय अर्ल आव बीकन्सफील्ड बन चुका था इस आधार पर कि अग्रेजी हितो के लिए टर्की साम्राज्य को सुरक्षित एव अविच्छिन्न रखना परमावश्यक था, सैनिक कार्य्यों के लिए पार्लियामेंट से ६० लाख पौंड स्वीकृत करा कर भूमध्य सागर के अपने जहाजी बेडे को दर्रा दानियाल में प्रवेश करने की आज्ञा दे दी। डिजरायले की इस चाल से रूसी कुस्तुनतुनिया पर आक्रमण करने से भयभीत हो गये और १८७८ में टर्की के सुल्तान के साथ सेन स्टीफेनो की सन्धि कर ली। परन्तु रूस की इस कूटनीतिक सफलता को भी ग्रेट ब्रिटेन ने मिट्टी में मिला दिया। लार्ड बीकन्सफील्ड ने इस सन्धि को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया, रिजर्व सेना को बुला लिया, टर्की की आज्ञा से साईप्रस पर अधिकार कर लिया और भूमध्यसागर के बेडे को और शक्तिशाली बनाया। ऐसा प्रतीत होने लगा था कि भयकर सग्राम छिड जायगा परन्तु जर्मनी की मध्यस्थता से युद्ध टल गया। जून तथा जौलाई १८७८ में यूरोप की प्रमुख शक्तियो की बर्लिन कान्फ्रेंस में सेन स्टीफेना की सन्धि को इस प्रकार सशोधित किया गया कि जिससे रूस की मनो-कामना पूरी न हो सके। इस सन्धि से रूस की सरकार लार्ड बीकन्सफील्ड के शत्रुता पूर्ण व्यवहार से अत्यन्त कुपित तथा असन्तुष्ट हो गई। इस झगडे में डिजरायले ने एक भारतीय सेना स्वेज नहर के मार्ग से माल्टा में बुला ली थी। अब रूस ने भारत की अग्रेजी सरकार को घर के निकट ही युद्ध करने का अवसर देने का दृढ़ निश्चय किया।

१३ जून को जिस दिन बर्लिन काग्रेस आरम्भ हो रही थी, जनरल स्टाटोफ ने ताशकन्द से काबुल के लिये प्रस्थान किया। उसकी प्रगति को रोकने लिये शेरअली के प्रयत्न लार्ड लिटन के इस लाछन को, कि वह स्वय रूसियो को प्रोत्साहन दे रहा था, सर्वथा निर्मूल सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है। उसने अक्षरशः वही सब बातें तुर्किस्तान के रूसी गवर्नर जनरल से कहीं, जो ब्रिटिश भारत

वाइसराय से कही थी और अपने एक मन्त्री को ताशकन्द कान्फ्रेंस में भाग लेने के लिये भेजने का वचन दिया, जैसा कि लार्ड लिटन ने भी किया था परन्तु उसके विरोध पर अब लेश मात्र भी ध्यान नहीं दिया गया और कहा गया कि स्टालटोन को अब वापिस नहीं बुलाया जा सकता और यदि उसको कुछ हो गया तो जार (रूस का राजा) उसके लिए शेरअली को उत्तरदायी ठहरायेगा। रूस की सरकार उस पर दबाव डाल सकती थी क्योंकि उसका भतीजा अब्दुर्रहमान उनका कृपा-पात्र रह चुका था। शेरअली को महत्वपूर्ण संकेत भी किया गया कि यदि उसने अधिक आना-कानी या विरोध किया तो काबुल सिंहासन के लिये एक भयानक स्पर्धी खड़ा कर दिया जायगा। अब शेरअली के पास कोई चारा नहीं था, इसलिये वह झुकने के लिये बाध्य हो गया और उसके पतन के पश्चात् काबुल में कुछ ऐसे कागज मिले जिनसे प्रकट होता है कि उसने अब रूस के साथ एक निश्चित मैत्रीपूर्ण सन्धि कर ली थी। काबुल में जब रूसी मिशन के आने का समाचार लार्ड लिटन ने सुना, तो उसने तुरन्त इंग्लैंड को ब्रिटिश सरकार की आज्ञा प्राप्त करने के लिए समुद्री तार दिया और फिर यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि शेरअली पर दबाव डाला जाय कि वह अपने यहाँ एक अंगरेज राजदूत भी रक्खे जिस प्रकार उसने रूसी राजदूत को रख लिया है। शेरअली के सामने यह शर्त रक्खी गई कि वह अंग्रेजी सरकार की आज्ञा के बिना किसी भी राज्य से सन्धि-चर्चा नहीं कर सकता, अंग्रेजों को उसे यह अधिकार देना पड़ेगा कि जब वे आवश्यक समझें तब उसके साथ कान्फ्रेंस करने के लिये अंग्रेज अफसरों को काबुल भेज सकें, और हिरात में एक अंग्रेज एजेन्ट रखने की आज्ञा उसको देनी पड़ेगी।

यह था कि वह यह समझता कि शेरअली ने रूसी राजदूत के काबुल से चले जाने पर प्रसन्नता मनाई, जैसाकि वास्तव में उसने किया था, और उसके साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध फिर स्थापित करता परन्तु दुर्भाग्यवश उसने ऐसा नही किया। उसने सोचा कि बर्लिन सधि ने अ ग्रे जो को मनमानी करने की पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी है। ३० अगस्त को एक मुसलमान दूत इस बात की घोषणा करने के लिये भेजा गया कि ब्रिटिश मिशन आ रहा है। खैबर दर्रे में रहने वाले अफरीदियों को दूत तथा उसके दल को सुरक्षित निकल जाने के लिए रिश्वत दी गई। यह ऐसा कार्य था जिस पर आपत्ति उठाने का शेरअली को प्रत्येक अधिकार था। अगस्त १८७८ में अब्दुल्लाजान की मृत्यु हो गई जो शेरअली का प्रिय पुत्र था और जिसको वह अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था। कुछ समय के लिए शेरअली पागल-सा हो गया और इस कारण कुछ देर हो गई। परन्तु इसके कुछ दिन पश्चात् सर नेवाइल चैम्बरलेन, जिसको लिटन ने राजदूत नियत किया था, पेशावर से रवाना हुआ। अलीमस्जिद पर राजदूत के दल के अग्रभाग की एक अफगान अफसर से मुलाकात हुई जिसने बडी नम्रता परन्तु दृढता के साथ दल के नेता मेजर कैवेगनरी से कहा कि काबुल से आज्ञा प्राप्त किये बिना वह उसको आगे नही बढने देगा। ब्रिटिश राजदूत यह भली प्रकार समझकर, कि यदि उसने आगे बढने का प्रयत्न किया तो अफगान लोग शक्ति का प्रयोग करेंगे, वापिस पेशावर लौट आया।

लार्ड लिटन ने यह घोषणा कर दी कि "मिशन को शक्ति से पीछे धकेला गया था" जो सर्वथा झूठ था और इ ग्लैड पर युद्ध की घोषणा करने का बहुत अधिक दबाव डाला। केबिनेट ने कुछ सप्ताह की देर की और फिर शेरअली को २ नवम्बर को लिखा कि यदि वह युद्ध की भयकरता से बचना चाहता है तो समुचित एव पूर्ण क्षमा-याचना करे और अफगानिस्तान में एक स्थायी अ ग्रेजी मिशन रखने की अनुमति दे। यदि नवम्बर तक इसका उत्तर न आया तो युद्ध आरम्भ हो जायगा। १९ नवम्बर का लिखा हुआ उत्तर देर से ३० नवम्बर को वाइसराय के पास पहुँचा जिसमें शेरअली ने मिशन को स्वीकार किया परन्तु जिसको अपर्याप्त बतलाया गया क्योकि उसमें क्षमा-याचना नही की गई थी। इसके अतिरिक्त उत्तर आने से पहले ही युद्ध आरम्भ हो चुका था, क्योकि लिटन २१ तारीख को ही अपनी सेनायें रवाना कर चुका था।

एक बार फिर ग्रेट ब्रिटेन ने अफगानिस्तान के साथ युद्ध ठान दिया था। परन्तु इ ग्लैड में इस नीति का बडा भारी तथा कट्टर विरोध किया गया। पार्लियामेंट में ग्लैडस्टन ने अपने एक अत्यन्त महत्वपूर्ण व्याख्यान में लिटन की भर्त्सना

थी, 'हमने भूल से १७३८ में अफगानिस्तान के साथ युद्ध किया। परन्तु भूल करना मनुष्य का स्वभाव है और इसलिये क्षम्य है। परन्तु हमने फिर दूसरी बार भूल की और उसी आधार पर जिसके कारण भी कोई अधिक मान्य नहीं है। इस भूल की पुनरावृत्ति प्रत्येक विचारणीय चेतावनी तथा शक्तिशाली सबूत के घोर विरोध में की गई है। यह एक कहावत है कि इतिहास अपनी पुनरावृत्ति करता है और इस कहावत का सबूत इस वर्तमान एव ऐसे ही गत काल के युद्धा के अतिरिक्त इतना अच्छा नहीं मिल सकता ''परमात्मा करे यह युद्ध टल जाय। भगवान् हमारी सेना पर १८४१ के सकट की पुनरावृत्ति न हो।'' ग्लेडस्टन की भावी आशका का भय कितना सत्य सिद्ध हुआ, आगे चलकर उपयुक्त स्थान पर बतलाया जायगा।

द्वितीय अफगान-युद्ध

२१ नवम्बर को युद्ध की घोषणा होते ही ब्रिटिश सेनायें एक साथ अफगानियों के तीनों मुख्य दर्रों में प्रवेश कर गईं। सर सेम्युअल ब्राउन ने खैबर दर्रे में होकर कूच किया और अली मस्जिद पर अधिकार करके जलालाबाद की ओर बढ़ा। मेजर जनरल रावर्ट्स कुर्रम घाटी में प्रवेश करके पेरीवन दर्रे पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। सबसे दक्षिण की ओर जनरल स्टीवर्ट की सेना क्वेटा से बोलान दर्रे में होकर कन्दहार की ओर बढ़ी। इन सेनाओं का कोई विशेष विरोध नहीं हुआ। अभागे शेरअली ने व्यर्थ ही जनरल कौफमेन से सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न किया परन्तु उस चालाक अफसर ने एक मित्र के नाते उसको अग्रेजों के साथ मित्रता करने के लिये समझाया यदि वे ऐसा करने के लिये उसको अवसर दें। दिसम्बर में शेरअली ने अपने बड़े पुत्र याकूबखाँ को बन्दीगृह से मुक्त करके, आक्रान्ताओं के साथ यथासम्भव सधि करने के लिये काबुल में छोड़कर स्वय रूसी तुर्किस्तान चला गया। शेरअली ने कौफमन से फिर सहायता की याचना की, परन्तु रूसियों ने उत्तर में केवल यह कहा कि उस समय अफगानिस्तान पर आक्रमण करना उनकी शक्ति से बाहर था और जब उसने सेंट पीटर्सबर्ग जाकर जार के सामने अपने ऊपर किये गये अत्याचारों को रखने का प्रस्ताव रक्खा, तो उसको कोई प्रोत्साहन नहीं दिया। रूसियों ने शेरअली की सहायतार्थ कुछ नहीं किया यद्यपि लन्दन में रूसी राजदूत ने ब्रिटिश सरकार से यह वचन ले लिया था कि अफगानिस्तान को छिन्न-भिन्न नहीं किया जायगा। २१ फरवरी को मसरेशरीफ में मानसिक क्लेश और शारीरिक रोग के कारण शेरअली का देहान्त हो गया। शेरअली का जीवन 'पश्चिमी सभ्यता' की काली करतूतों के ऊपर एक शिक्षाप्रद टिप्पणी है। उसकी मृत्यु पर रूस और विशेषकर इंग्लैंड को न्याय सन्तोष नहीं हो सकता। शेरअली निस्सदेह एक योग्य

शासक था परन्तु वह अपने शक्तिशाली एव धूर्त पडोसियों की निर्दयी आकांक्षाओं तथा स्वार्थपूर्ण हितो का सामना न कर सका, लार्ड लिटन की हार्दिक इच्छा थी कि अफगानिस्तान की सत्ता को छिन्न-भिन्न कर दिया जाय परन्तु इगलैड की केबिनेट इससे सहमत न हुई और याकूबखां को शेरअली का उत्तराधिकारी स्वीकार कर लिया गया।

गण्डमक की सन्धि.—याकूबखां के साथ गण्डमक नामक स्थान पर मई १८७९ में एक सन्धि हो गई। इस सन्धि में नये अमीर ने अपनी पर-राष्ट्र नीति पर अंग्रेजी सरकार का नियन्त्रण स्वीकार किया और यह भी स्वीकार कर लिया कि काबुल में एक स्थायी अंग्रेज रेजिडेण्ट और हिरात तथा अन्य सीमान्त नगरों में एजेण्ट रहा करें। इसके अतिरिक्त कुर्रम दर्रे तथा बोलान दर्रे के निकटवर्ती प्रान्त पिसिन तथा सिबी पर भी अंग्रेजो का आधिपत्य स्वीकार कर लिया गया। अंग्रेजों ने अपने निर्णय के अनुसार धन, जन, तथा शस्त्रों से अमीर की सहायता करने का वचन दिया यदि कभी कोई विदेशी आक्रमण उन पर हो और प्रति वर्ष अमीर को ६ लाख रुपया सहायता रूप में देना निश्चित किया। यह निश्चित हुआ कि कन्दहार के अतिरिक्त अफगानिस्तान से अंग्रेजी सेनायें तुरन्त हटा ली जायें। कन्दहार पतझड़ से पहले खाली होने के लिये नही था। गण्डमक की सन्धि में लार्ड लिटन की अफगान नीति उच्चतम शिखर पर पहुँच चुकी थी। लार्ड बीकन्स फील्ड के शब्दों में इस सन्धि के द्वारा अंग्रेजो ने अपने भारतीय साम्राज्य के लिये एक वैज्ञानिक एव पर्याप्त सीमा प्राप्त कर ली थी। परन्तु उनकी यह विजय क्षणिक थी। एक बार फिर भारत की अंग्रेजी सरकार को यह कड़वा पाठ पढ़ना था कि जब भी कोई विदेशी शक्ति किसी अफगान. शासक को सीधी सहायता देती है तो अफगान लोग ऐसे शासक को सम्मान की दृष्टि से नही देखते और न उसके वफादार ही होते हैं। लिटन के इन शब्दो से कि 'अफगान लोग (इनको अंग्रेजो को) शेरअली का पतन करने पर और अधिक प्यार करेंगे तथा हमारा मान करेंगे।" यह भली भांति प्रकट हो जाता है कि वह अफगानिस्तान की वास्तविक स्थिति के सम्बन्ध में कितना अबोध था। इन शब्दों के लिखे जाने के १ महीने पश्चात् ही इनकी असत्यता प्रकट हो

आदि सबको मार डाला। याकूबखाँ या तो सर्वथा शक्तिहीन था या फिर चुपके-चुपके विद्रोहियों से मिला हुआ था। कुछ भी हो विद्रोह को शान्त करने का कोई सफल प्रयत्न नहीं किया गया। वाइसराय के लिए यह अत्यन्त भयानक ख़बर थी। उसने लिखा "नीति का वह जाल, जिसको इतनी सावधानी के साथ बुना गया था, बुरी तरह से नष्ट कर दिया गया है। पिछले युद्ध और संधि वार्ता में मैं जिस चीज को टालना चाहता था, भाग्य ने अब उसी को कर दिया है।" फिर एक बार अंग्रेजी सेनाओं ने कूच किया। राबर्ट्स ने फिर कुर्रम घाटी में होकर काबुल पर आक्रमण किया और मार्ग में चरसियाब पर विद्रोहियों को पराजित करके १२ अक्टूबर को नगर में प्रवेश किया। याकूबखाँ अपने देशवासियों के व्यवहार से भयभीत होकर काबुल में प्रविष्ट होने से पहले ही अङ्गरेजी सेना से मिल गया था। उसने अपना राजपद त्याग दिया। उसने कहा कि अफगानिस्तान का शासक होने की अपेक्षा मैं भारतवर्ष में घास काटना अधिक पसन्द करूँगा। जाँच करने पर याकूबखाँ का कोई दोष नहीं पाया गया, परन्तु फिर भी उसको राजबन्दी बनाकर भारतवर्ष भेज दिया गया। काबुल की गद्दी पर उसको दोबारा बिठाना असम्भव हो समझा गया।

अब्दुर्रहमान का अमीर बनना:—अब भारत की अङ्गरेजी सरकार के सामने एक बड़ी विकट समस्या थी। इस समय अफगानिस्तान में अराजकता छाई हुई थी और वहाँ पर कोई ऐसा शासक नहीं था, जिसके साथ सन्धि-वार्ता की जाती। शीतकाल में काबुल के निकट बड़ा भयंकर युद्ध होता रहा और भारतवर्ष के साथ पत्र-व्यवहार बनाये रखने में राबर्ट्स को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। यहाँ तक कि १४ से २४ दिसम्बर तक काबुल तथा भारत के बीच आना-जाना और पत्र-व्यवहार सब बन्द हो गये थे। राबर्ट्स को काबुल एवं बालाहिसार नामक दुर्ग छोड़ने के लिये बाध्य होना पड़ा। अब उसने शेरपुर में जाकर शरण ली। यहाँ पर उसको १ लाख कबाइलियों ने घेर लिया। १८८० के वसन्त काल में स्टीवार्ट ने कन्दहार से चलकर अहमदखेल पर विद्रोहियों को परास्त किया और काबुल पहुँचकर राबर्ट्स से आ मिला। इस समय कन्धार तथा काबुल के पूर्व अफगानिस्तान के एक छोटे से भाग पर ही अङ्गरेजों का अधिकार था। सम्पूर्ण देश को विजय करने में अतुल धन-राशि की आहुति देनी पड़ती और वहाँ की सेनाओं को बहुत अधिक बढ़ाना पड़ता, परन्तु देश में कोई व्यवस्थित शासन स्थापित किये बिना लौटने से ब्रिटिश शान पर धब्बा लगता था। अन्त में लार्ड लिटन की सलाह से यह निश्चित किया गया कि पश्चिमी अफगानिस्तान को शेष देश से काट कर अलग कर देना चाहिये। कन्धार प्रान्त काबुल से पृथक् करके एक स्वतन्त्र शासक शेरअलीखाँ को

दे दिया गया, जिसको आवश्यकता पडने पर भारत की सरकार ने सैनिक सहायता देने का वचन दिया, परन्तु काबुल और उत्तर-पश्चिमी अफगानिस्तान की समस्या अभी शेष थी, परन्तु अङ्ग्रेजों के सौभाग्य से यह एक ऐसे ढग से निश्चित हुई जिस की कभी आशा नहीं की जा सकती थी। लार्ड लिटन ने लिखा 'अब्दुल रहमान हमको जगल में पकडा हुआ बकरा मिला।" अब्दुलरहमान शेरअली का भतीजा और अफजलखाँ का पुत्र था, जिसने सत्रह महीने राज्य किया था और जो रूस की ओर भाग गया था। अब वह सहसा ही उत्तरी अफगानिस्तान में आ धमका। रूसियो ने उसको एक छोटी-सी सैनिक टुकडी के साथ अपने भाग्य की परीक्षा करने के लिये अपनी मातृभूमि की ओर भेजा था। अफगान राज्य के अनेकों इच्छुकों को लिटन जाँच करने के पश्चात् अस्वीकृत कर चुका था। अब उसने अब्दुर्रहमान को उत्तर-पश्चिमी अफगानिस्तान में स्वतन्त्रता पूर्वक राज्य करने का अधिकार दे दिया और यदि अफगान लोग उसको पसन्द करें तो उसको अफगानिस्तान का अमीर बनाने का भी वचन दिया। आरम्भ में तो इस नीति से वडा भय लगता था तथा यह बहुत ही सन्देह-युक्त लगती थी, परन्तु अन्त में यह बडी सफल सिद्ध हुई। अब्दुर्रहमान अपने काल का बडा योग्य आदमी था। वह बडा दूरदर्शी तथा चतुर था। अपने ११ वर्ष के रूसी वनवास में, जब वह रूसी कृपा पर अवलम्बित था, उसने अपने सरक्षकों के राजनीतिक साधनों एव आदेशों का अच्छा अध्ययन कर लिया था, यद्यपि वह स्वय उनका बडा भारी कृतज्ञ था क्योंकि उन्होंने उसको शरण दी थी। उसने अपने हृदय में सोचा कि भले ही इगलैंड का गत इतिहास अफगान स्वतन्त्रता का अधिक पक्षपाती रहेगा, परन्तु वह आरम्भ से बहुत अधिक सावधान रहा था। अनेकों अङ्ग्रेजों ने उसकी मनोवृत्ति को समझने में भूल की उसने अपने स्मृति पत्रों में लिखा था— मैं अपनी मित्रता को जितना आवश्यक समझता था, उतना प्रकट नहीं कर सकता था, क्योंकि मेरे आदमी (अफगान लोग) अज्ञानी और अन्ध-विश्वासी थे। यदि मैं अङ्ग्रेजों के प्रति अपना कुछ झुकाव प्रकट करता तो मेरे आदमी मुझको नास्तिकों के साथ हाथ मिलाने वाला एक नास्तिक मानते।" इसलिये अङ्ग्रेजी प्रस्तावों को मानते हुए भी वह अपने देशवासियों पर प्रकट नहीं होने देता था कि उसकी शक्ति अङ्ग्रेजी सगीनों पर आश्रित थी और अँङ्ग्रेजों के साथ इस प्रकार का व्यवहार करता था जिससे यह प्रकट होता है कि वह उनसे विशेषाधिकार शक्ति के बल पर प्राप्त करता था, वे उसको देते न थे। अफगानिस्तान में उस समय अङ्ग्रेजों को बडी घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। निःसन्देह अब्दुर्रहमान के लिए बडे श्रेय की बात है कि वह अङ्ग्रेजों की सहायता से अफगानिस्तान का अमीर बना और फिर

धीरे-धीरे अपने देशवासियो को उसने अङ्ग्रेजी मित्रता और सरक्षणता के लिए तैयार कर लिया।

परन्तु यह सब कुछ होने से पहले लार्ड लिटन ने अपने पद से त्याग पत्र दे दिया था। १८८० में कन्जरवेटिव दल को आम चुनाव मे पराजय हो गई थी। लार्ड वीकन्सफील्ड के स्थान पर लार्ड हार्टिङ्गटन सेक्रेटरी आफ स्टेट बन गया था। यह आवश्यक या वैधानिक नही था कि इग्लैंड में मन्त्रिमण्डल बदलने पर भारत के वाइसराय को त्यागपत्र देना पडता, परन्तु कन्जरवेटिव मन्त्रिमण्डल की परराष्ट्र तथा भारतीय नीति की पालियामेण्ट तथा इग्लैंड भर में बडी-बडी आलोचना एव निन्दा की गई थी और लार्ड हार्टिङ्गटन ने वाइसराय के सम्बन्ध में कहा था कि "वह उस भारतीय नीति का अवतार है जो किसी भी दशा में भारतीय नीति नही थी।" जैसे ही निर्वाचन के विषय में जनता की इच्छा का पता उसको चला, लिटन ने तुरन्त त्याग-पत्र दे दिया।

लिटन काल का शासन-प्रबन्ध

अफगान व्यवस्था :—इसका उल्लेख करने से पहले अफगानिस्तान की व्यवस्था का वर्णन करना अधिक आवश्यक प्रतीत होता है। इग्लैंड में उदार दल की सरकार की नीति को लार्ड हार्टिंगटन ने मई और नवम्बर के अपने पत्रो में इस प्रकार वर्णन किया था, "एक विशाल सेना और अतुल धन-राशि का व्यय करके दो सफल युद्धो के परिणाम स्वरूप यह प्रतीत होता है कि जिस देश को हम स्वतन्त्र, शक्तिशाली तथा अपना मित्र बना कर रखना चाहते थे, उसकी सत्ता छिन्न-भिन्न कर दी गई है और उसके एक प्रान्त के सम्बन्ध में नवीन तथा अवाछनीय उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया गया है और दूसरे प्रान्त में अराजकता फैली हुई है।' इसलिये सरकार 'भूतकाल और वर्तमान समय के प्रमुख राजनीतिज्ञो के साथ यह अनुभव करती है कि अफगानिस्तान की आतरिक व्यवस्था में हस्तक्षेप करन का फल पूर्णतया वही हुआ है जिसका लिटन की नीति के विरोधी पहले से ही जानते थे तथा जिससे पहले ही भयभीत थे।' यदि अफगान लोग अङ्ग्रेजो की अपेक्षा रूस और फारिस की ओर अधिक मित्र-भावना से देखते थे तो इसका कारण लिटन की नीति थी जिसके फलस्वरूप अफगानो को अपनी स्वतन्त्रता खोये जाने का भय था। इसलिये कैबिनेट का उद्देश्य युद्ध से पूर्व की स्थिति पैदा करना था और इसी कारण से लार्ड रिपन को शातिपूर्वक अफगान-समस्या का निपटारा करने के लिये वाइसराय बना कर भारतवर्ष भेजा गया। उत्तराधिकार सम्बन्धी लिटन की नीति को ही स्वीका-

[गया और जौलाई में अब्दुर्रहमान को काबुल का अमीर स्वीकृत कर लिया गया। इस स्वीकृति के साथ केवल एक शर्त लगाई गई कि "अमीर अङ्ग्रेजो के अतिरिक्त और किसी विदेशी शक्ति से बाह्य सम्बन्ध नही रख सकता था।" पिशिन और सिबि प्रान्त अङ्ग्रेजो के ही हाथ में रहे। जब तक अब्दुर्रहमान पहली शर्त का पालन करता रहेगा तब तक अङ्ग्रेज, यदि कोई विदेशी शक्ति उस पर आक्रमण करती है, उसकी सहायता करने को सदैव तैयार रहेगे। अफ़गानिस्तन के साथ युद्ध-नीति का सर्वथा परित्याग कर दिया गया और ग्रेट ब्रिटेन ने अफ्गानिस्तान में कही पर भी रेजीडन्ट न रखने का वचन दिया। कन्दहार के शासक के साथ जो सन्धि की गई थी और जिसमें अफगानिस्तान को उत्तरी अफगानिस्तान से पृथक् रखा गया था, आरम्भ में तो रिपन ने इसका पालन करने के लिये इच्छा विरुद्ध अपने आपको बाध्य पाया, परन्तु कुछ समय पश्चात् ही ऐसी परिस्थिति पैदा हो गई कि उसने इसका भी अन्त कर दिया। लिटन नीति का यह अन्तिम अवशेष था।

इस समय अफगानिस्तान मे तीन स्वतन्त्र राज्य थे—काबुल कन्दहार और हिरात में शेरअली का एक पुत्र अयूबखां था। इस परिस्थिति में युद्ध का होना अवश्यम्भावी था और अगरेजी सेना के अफगानिस्तान को छोडकर आने के पूर्व ही युद्ध का मारू बाजा बज उठा। जून में अयूबखां ने हिरात से कन्दहार की ओर प्रस्थान किया और मार्ग में मैवन्द नामक स्थान पर जनरल बरोज की अध्यक्षता में एक अ गरेजी सेना को बुरी तरह पराजित किया। अ'गरेजो के ६१४ सैनिक मारे गये और वे समर भूमि से पीठ दिखाकर बुरी तरह भागे। इस युद्ध में ६६ वी रेजीमें के सैनिको तथा १०० अफसरो ने अलबत्ता अच्छी वीरता का परिचय दिया। अफगान सेना से चारों ओर से घिरे रहने पर भी ये लोग अन्त समय तक वीरतापूर्वक युद्ध करते रहे, जब तक कि उनमें से केवल ११ शेप रहे और अफगानों को पर्याप्त क्षति पहुँचाई। इस विजय के पश्चात् अयूबखां कन्दहार का घेरा डालने के लिए आगे बढा। काबुल से स्टीवार्ट ने रावर्ट्‌स को कन्दहार शासक की सन्धि के अनुसार सहायता करने के लिए भेजा। रावर्ट्‌स ने अपनें १०००० सैनिको के साथ कन्दहार तक का ३१३ मील का फासला बीस दिन में पूरा किया। इन दिनों उसके लिए यह बडे श्रेय की बात थी। कन्दहार के युद्ध में अयूबखां पराजित हुए। युद्ध प्रारम्भ हो जाने पर स्टीवार्ट नियत तिथि पर अपनी सेना सहित काबुल से भारत वापिस लौट आया। रावर्ट्‌स कुछ महीने कन्दहार ही में रहा। अन्त में १८८१ में सरकार ने कन्दहार को खाली करने का निश्चय कर लिया। कन्दहार के शासक शेरअलीखां को अपना राज्यपद त्याग कर भारत आने के लिए तैयार कर लिया गया। यद्यपि

"'आगे बढ़ो" नीति के समर्थक तथा लिटन आदि ने इस नीति की कड़ी आलोचना की थी। अब्दुर्रहमान ने अपने पूर्वजों के राज्य के बटवारे को कभी शान्ति से सहन या स्वीकार नहीं किया था और अब कन्दहार उसको मिल जाने पर वह अब अंगरेजों का पक्का मित्र बन गया। कुछ समय तक तो उसको यह भय था कि कहीं कन्दहार के साथ-साथ काबुल से भी हाथ न धोना पड़े। अंगरेजी सेना के चले जाने पर अयूबखाँ ने फिर हिरात से प्रस्थान किया, कन्दहार पर आधिपत्य स्थापित किया और कई महीनों तक उसको अपने अधिकार में रक्खा। अब्दुर्रहमान भी उससे युद्ध करने के लिये काबुल से रवाना हुआ। अब्दुर्रहमान को अभी तक रणक्षेत्र में अपने कौशल एवं वीरता दिखाने का अवसर नहीं मिला जब कि उसका प्रतिद्वन्दी मैवन्द की भारी विजय प्राप्त कर युद्ध का अच्छा अनुभव रखता था। किसी को आशा नहीं थी कि अब्दुर्रहमान विजयी होगा और जब कन्दहार के निकट सितम्बर में उसने अयूबखाँ को पराजित किया तो लोगों की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा। अयूबखाँ देश छोड़कर फारिस भाग गया। हिरात और कन्दहार पर अब्दुर्रहमान का आधिपत्य स्थापित हो गया। दोस्तमोहम्मद और शेरअली का अफगानिस्तान अब्दुर्रहमान द्वारा फिर एक हो गया था, जिस पर इसके पश्चात् उसने बड़ी योग्यता एवं सफलता से शासन किया।

(ड) लार्ड लिटन के शासन का प्रबन्ध

१८७६—७८ का दुर्भिक्ष :—लिटन के शासन-काल में अफगान-युद्ध के अतिरिक्त दूसरी महत्वपूर्ण घटना १८७६ से १८७८ तक का भयङ्कर दुर्भिक्ष था। यह दुर्भिक्ष दो वर्ष से अधिक काल तक चलता रहा और भारत के एक बहुत बड़े क्षेत्रफल पर इसका विनाशकारी प्रभाव पड़ा। परन्तु अधिकतर इससे दक्षिणी भारत को हानि उठानी पड़ी। मद्रास, बम्बई, हैदराबाद तथा मैसूर की दशा बड़ी शोचनीय हो गई थी। मध्य भारत और पंजाब में भी इसका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहा। सरकार ने लोगों को दुर्भिक्ष से बचाने का प्रबन्ध तो किया, परन्तु वह प्रबन्ध समुचित नहीं था। आरम्भ में मद्रास सरकार ने अकाल-पीड़ितों की सहायता के लिए सहायता देना प्रारम्भ किया, परन्तु लार्ड लिटन ने उनके साधनों की रिपोर्ट देने के लिए सर रिचार्ड टेम्पिल को भेजा और फिर स्वयं भी ग्रीष्म ऋतु के अन्तिम दिनों में मद्रास गया। उसने कहा—"मद्रास सरकार की उदार सहायता-नीति से सरकार को केवल आर्थिक हानि ही नहीं होती, वरन् उससे अकाल-पीड़ितों का भी अधिक लाभ नहीं होता। इसलिए बम्बई सरकार की मितव्ययी नीति को अपनाना चाहिए।" उसने लिखा था—"हम प्रकृति के साथ एक भयङ्कर युद्ध कर रहे हैं और हमारी

मद्रास में पूर्णतया टूट चुकी है।" यद्यपि १ करोड दस लाख पौंड भारत के काफ तथा अन्य सस्थाओं से व्यय किया गया था, तो भी अकेले ब्रिटिश भारत में ५० लाख मनुष्य काल के गाल में समा गये। २० लाख एकड भूमि पर खेती होना वन्द हो गया था और सरकार को साढे बाइस लाख पौंड भूमिकर का घाटा रहा।

अब यह निश्चय किया गया कि दुर्भिक्ष पडने पर उनके निवारण के लिये ही प्रयत्न करने भर से, जैसा कि अब तक होता रहा था, काम नही चलेगा। दुर्भिक्ष निवारण की इसलिये कोई स्थायी नीति तथा योजना का प्रतिपादन किया जाना चाहिये। दुर्भिक्ष-समस्या की जांच करने के लिये सर रिचार्ड स्ट्रेची की प्रधानता में एक कमीशन नियुक्त किया, जिसने दो वर्ष के परिश्रम के पश्चात् अपनी रिपोर्ट पेश की। कमीशन ने सिफारिश की कि दुर्भिक्ष काल में स्वस्थ मनुष्यो को दुर्भिक्ष निवारणार्थ आरम्भ किये गये कार्यों पर लगाकर उनकी सहायता की जाय और मुफ्त सहायता केवल उन दीन असहाय लोगो को दी जाये जो काम करने के सर्वथा अयोग्य हो। दूसरी बडी सिफारिश यह थी कि प्रतिवर्ष १५ लाख पौंड की बजट में बचत करके उसको जातीय ऋण कम करने, और उन प्रान्तो में, जहाँ वर्षा का अभाव रहता है, रेलें तथा नहर बनवाने में व्यय किया जाये। इस धन की प्राप्ति के लिये व्यापार तथा पेशो पर कर और भूमि पर कुछ और अब्वाब लगाये गये। लार्ड लिटन की इस दुर्भिक्ष नीति का आवश्यक तथा समयोचित परिवर्तनो के साथ अन्त तक पालन किया गया।

आर्थिक सुधार:—लार्ड लिटन का काल आर्थिक सुधारो के लिये भी प्रसिद्ध माना जाता है। उसने सर जान स्ट्रेची को, जो उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रांत का लेफ्टिनेण्ट गवर्नर था, १८७६ में अपनी कौंसिल का आर्थिक सदस्य बनाया। भारत में अंग्रेजी सरकार की आय का एक मुख्य स्रोत नमक कर था। अब तक भिन्न-भिन्न प्रान्तो में इसकी दर अलग-अलग थी और एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में अनियमित रूप से नमक को चोरी-चोरी ले जाने से रोकने तथा देशी रियासतो से ब्रिटिश भारत में उस नमक को आने से रोकने के लिये, जिस पर टैक्स नही लगाया जाता था, अटक (सिन्ध नदी पर) से दक्षिण में महानदी तक २५००मील लम्बी बाढ, दीवार तथा खाई की एक चुंगी दीवार फैली हुई थी। इस लाइन पर १२००० कर एकत्रित करने वालो की सेना का पहरा रहता था। पहले आर्थिक सचिवो ने इसका अन्त करने की इच्छा प्रगट की थी, परन्तु ऐसा करने के लिये दो बातें आवश्यक थीं। देशी राज्यो में नमक उत्पादन पर नियन्त्रण होना, तब ब्रिटिश भारत के सब प्रांतो में नमक कर को समान करना। लार्ड मेयो और लार्ड नोर्थब्रुक के काल में रियासतों

के भीतर नमक के उत्पादन पर नियन्त्रण करने में कुछ सफलता प्राप्त हो गई थी और नौर्थब्रुक के काल में परिणाम स्वरूप चुंगी लाइन दक्षिण की ओर से १००० मील कम भी हो गई थी। अब जान स्ट्रेची ने अन्य देशी रियासतों से समझौता करके उनको कुछ देकर नमक उत्पादन पर ब्रिटिश सरकार का नियन्त्रण स्थापित किया, यद्यपि वह सब प्रान्तों में नमक कर की दर को समान न कर सका; क्योंकि इससे सरकार की आय में कमी आती थी, तो भी अन्तर इतना कम रह गया था कि चोरी से एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में नमक ले जाने वालों को कोई लाभ नहीं था। इस लिये १५०० मील लम्बी शेष चुंगी लाइन का भी अब अन्त हो गया।

भारत में स्वतन्त्र व्यापार स्थापित करने के लिये जान स्ट्रेची ने एक और कदम उठाया। १८७८ में उसने देश के भीतरी भागों में चीनी पर जो चुंगी लगाई जाती थी, उसको समाप्त कर दिया और २९ अन्य पदार्थों पर आयात कर का अन्त कर दिया। वाइसराय तथा स्ट्रेची की इच्छा भारतवर्ष को सामाजिक व्यापार के लिये एक स्वतन्त्र बन्दरगाह बनाने की थी, परन्तु अफगान युद्ध और दुर्भिक्ष के कारण अधिक आर्थिक क्षति हो जाने के कारण वे सरकारी आय में अधिक कमी पड़ने के भय से अपने उद्देश्य में पूर्णतया सफल न हो सके। अभी तक विदेशी कपड़े पर पाँच प्रतिशत आयात कर लगा हुआ था। अब इस पर बड़ा वितण्डावाद उठ खड़ा हुआ। लंकाशायर के सूती कपड़े के उत्पादक इस कर का अन्त करने के लिए बहुत काल से चिन्ता कर रहे थे और जौलाई १८७७ में हाउस आव कामन्स ने सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव पास किया कि "भारतवर्ष में जो सूती कपड़े पर आयात कर लगाया जाता है वह (इस समय) संरक्षणात्मक है और व्यापारिक नीति के विरुद्ध है और उसका तुरन्त अन्त कर देना चाहिये।" परन्तु भारत में आयात कर सम्बन्धी परिवर्तनों के विरुद्ध बड़ा विरोध था। यहाँ का व्यवसाय कम्पनी ने अपनी धूर्ततापूर्ण नीति से पहले ही ठप कर दिया था और संसार भर में प्रसिद्ध सूती कपड़े का उत्पादक भारत अब विदेशी कपड़े पर आश्रित था। इस आयात कर के अन्त करने का तात्पर्य भारतीय उत्पादकों को सर्वथा नष्ट करना था। वाइसराय की कौंसिल ने भी इसका विरोध किया और कहा कि इस कर से भारतीय उद्योग को कोई संरक्षण नहीं होता और इसका अन्त करने का अभी समय नहीं आया है। हाउस आव कामन्स का यह प्रस्ताव भारत के हित में था ही नहीं, इंग्लैंड के भी नहीं था। इसमें तो एक राजनीतिक दल का हित सम्बन्ध था, जो लंकाशायर के उत्पादकों की सहायता सदा के लिए प्राप्त करना चाहता था। परन्तु फिर को स्वीकार किया गया और मद्द कपड़े के ऊपर से आयात-कर बिलकुल

गया। इससे भारतीय उद्योग पर बड़ा कुप्रभाव पड़ा। ऐसा करने में लिटन को अपने विशेष अधिकार का प्रयोग करना पड़ा, क्योंकि उसकी कौंसिल इससे सहमत न थी। १८७९ में दक्षिणी भारत का कृषि-सम्बन्धी उद्धार नियम पास किया, जिसमें किसानो को महाजनो के चंगुल से बचाने का प्रयत्न किया गया था।

आर्थिक विकेन्द्रीकरण:— अंग्रेजी काल में लार्ड मेयो ने आर्थिक विकेन्द्रीकरण की प्रथा १८७० में डाली थी। इससे पूर्व प्रान्तों को केन्द्रीय कोष से एक नियत धन राशि मिला करती थी। १८७७ में सर जान स्ट्रेची ने इस प्रथा को और अधिक प्रोत्साहन दिया। स्ट्रेची का आर्थिक मन्त्रित्वकाल वास्तव में बड़ा महत्वपूर्ण रहा।

सिविल सर्विस— १८३३ के आज्ञापत्र में भारतीयो को यह अधिकार दिया गया था कि जाति, धर्म या रंग के आधार पर किसी को भी उस पद से वंचित नहीं रक्खा जायगा, जिसके वह योग्य होगा। फिर १८५८ में राजकीय घोषणा में भी इसको दोहराया गया था, परन्तु अभी तक इसको कार्यान्वित नही किया गया था। १८७९ में नियमानुसार सिविल सर्विस की स्थापना की गई। वैसे तो १८५३ के ऐक्ट के अनुसार ब्रिटिश सम्राट् की सम्पूर्ण प्रजा को प्रतियोगिता की परीक्षा में उत्तीर्ण होकर किसी भी उच्च पद को प्राप्त करने का अधिकार दे दिया गया, परन्तु क्योंकि यह परीक्षा इंग्लैंड में होती थी, इसलिये कतिपय भारतवासियो के अतिरिक्त उनके मार्ग में यह एक बहुत बड़ी व्यवहारिक कठिनाई थी। इसलिए भारतीय जनता की दृष्टि में कम्पनी तथा साम्राज्ञी के वचनो का क्रियात्मक पालन नही किया जा रहा था। सब ही बड़े-बड़े पदो पर अंग्रेज लोग थे और भारतीय लोगों को छोटे दर्जे के पदो पर ही रक्खा जाता था। इंगलैंड में अनुदारदलीय लोगो की दृष्टि मे १८३३ और १८५८ में दिये गये वचनो का पूरा पालन किया जा रहा था और यदि इन वचनो का इससे अधिक अभिप्राय था, तो ये वचन मूर्खतापूर्ण थे। भारतवासियो के आंसू पोछने के लिये जब-तब एक-दो टुकड़े उनके सामने डाल दिये जाते थे। लार्ड लारेंस ने भारतवासियो को छात्रवृत्ति देकर तीन वर्ष तक इंग्लैंड में रखने की अल्प कालिक प्रथा आरम्भ की थी। इसके पश्चात् १८०० में ड्यूक आव आर्गिल ने जो सेक्रेटरी आव स्टेट था, एक नियम पास कराया, जिसके द्वारा कतिपय भारतवासियो को भारतीय सरकार सेक्रेटरी आव स्टेट की स्वीकृति से उन पदो पर नियुक्त कर सकती थी, जिन पर अभी तक सिविल सर्विस के ही आदमी नियुक्त किये जाते थे और इनको लंदन जाकर प्रतियोगिता की परीक्षा में उत्तीर्ण होना अनिवार्य नही था। परन्तु इस प्रकार भारतवासियो को न्याय विभाग में दी जा सकती थी—

होगा। विरोधी पक्ष की इन आलोचनाओं में एक बड़ा तथ्य निहित था, परन्तु वाइसराय ने कहा कि अंग्रेजी तथा हिन्दुस्तानी प्रेस के भेद का आधार जाति का रंग नही है, क्योकि कुछ अंग्रेजी समाचार पत्रों का सम्पादन भारतीय लोगों के हाथ में है। एक्ट पास हुआ परन्तु अधिक दिन जीवित नही रह सका, क्योंकि चार वर्ष पश्चात् लिटन के उत्तराधिकारी लार्ड रिपन ने इसको रद्द कर दिया।

लार्ड लिटन पर आलोचनात्मक दृष्टि:—आधुनिक काल में जितनी कडी आलोचना लार्ड लिटन की हुई है उतनी और किसी की नही हुई। इसके कारणों के लिए हमको अधिक खोज करने की आवश्यकता नही। उसकी अफगान नीति की भर्त्सना इंग्लैंड में सरकार ने, उदार दल ने और अधिकाश जनता ने की। उसके स्वामी लार्ड सेलिसबरी तथा लार्ड बीकन्सफील्ड ने अन्तिम दिनो में उसकी भरपेट निन्दा की। सेलिसबरी ने तो यहाँ तक कह दिया था कि "यदि उसको लगाम नही लगाई गई तो वह हमारे ऊपर अत्यन्त भयङ्कर संकट ला देगा।" उसने खैबर दर्रे पर अधिकार और मिशन का भेजना इंग्लैंड की सरकार की आज्ञा के विरुद्ध किये थे। निस्सन्देह यह लिटन की बडी भारी विनाशकारी तथा अनैतिक भूल थी और इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि वह राजनीतिज्ञ नही था। १८७८-८० के दुर्भिक्ष में लाखो मनुष्यो का काल-कवलित हो जाना, प्रेस की स्वतंत्रता का अपहरण करना, युद्ध-व्यय का त्रुटिपूर्ण अनुमान तथा हिसाब लगाना आदि सब ऐसी बातें थी जिनके आधार पर उसकी बडी आलोचना की गई। परन्तु उसके पत्रो आदि के पढने से यह भान होता है कि वह साधारण मनुष्यो से भी ऊपर था। उसमें जल्दबाजी भावुकता का प्रावल्य था। वह कुछ ऐसे कार्य भी करना चाहता था जिनको वह उपयुक्त समय न होने के कारण नही कर सका। वह भारतवर्ष की आर्थिक व्यवस्था में स्वर्ण-स्तर आरम्भ करना चाहता था और यदि उस समय यह परिवर्तन कर दिया जाता, जब चाँदी का मूल्य गिरना आरम्भ हो रहा था, तो भारत एक बडी आर्थिक क्षति से बच सकता था। वह उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त प्रदेश का एक पंजाब से पृथक् प्रान्त बनाना चाहता था जिसपर केन्द्रीय सरकार का नियन्त्रण रहे। इसी कार्य को लार्ड कर्जन ने बाद में चलकर पूरा किया। वाइसराय को सलाह देने के लिए वह भारतीय राजाओ की एक प्रिवी कौंसिल बनाना चाहता था। यदि यूरोपियन अपने भारतीय सेवको पर अत्याचार करते तो उनको अत्यन्त हलका दण्ड दिया जाता था। इस प्रथा को भी वह बन्द करना चाहता था। परन्तु संसार मनुष्य को 'उसने क्या किया' के आधार पर आँकता है, इस आधार पर नही कि 'वह क्या करना चाहता था'। और इस आधार पर लार्ड लिटन का शासनकाल किसी भी प्रकार से अच्छा

अध्याय ३३

लोर्ड रिपन तथा वैधानिक सुधार

गत अध्याय में यह देखा जा चुका है कि अफगान समस्या का उचित नपटारा करने का और वहाँ पर समुचित व्यवस्था करने के विचार लार्ड रिपन को भारत का वाइसराय बनाकर भेजा गया था। अफगानिस्तान में व्यवस्था हो जाने के पश्चात् लार्ड रिपन के सामने परराष्ट्र नीति की कोई गम्भीर समस्या नही थी। उस की रुचि राजनैतिक सामाजिक सुधारो की ओर विशेष रूप से थी। निस्सन्देह रिपन अब तक जितने वाइसराय आये थे उनसे भिन्न था और लिटन का तो वह लगभग विपर्यय ही था। वह ग्लेडस्टन काल का सच्चा उदारदलीय था और उसका शान्ति, व्यक्तिवाद तथा स्वराज के गुणो में पूर्ण श्रद्धा तथा विश्वास था। अब तक भारत को यदि कोई भौतिक लाभ पहुँचा था तो उसका श्रेय केवल प्रबुद्ध कर्मचारियो का ही है, परन्तु इन लोगो का कार्य परिश्रम करना होता है, नीति का प्रतिपादन करना नही होता। ये लोग राजनैतिक बखेडो से दूर रहने के कारण 'स्वराज्य का पाठ नहीं पढा सकते थे।' वाह रे दुर्भाग्य ! जिस भारत में यूरोप का प्रजातन्त्र तथा स्वराज्य का जन्म होने से शताब्दियो पूर्व प्रजातन्त्र की सफल प्रथायें प्रचलित हो चुकी थी, वहाँ की जनता को स्वराज्य का पाठ पढाना था। 'परमात्मन् ! हमको हमारे मित्रो से बचा।' बर्क ने कहा था कि "भारत में अंग्रेज जाति अफसरा के उत्तराधिकार की पाठशाला के अतिरिक्त और कुछ नही है। बिना प्रजा के वह एक प्रजातन्त्र राज्य है। वह एक राज्य है जिसमें केवल मजिस्ट्रेट ही रहते है।" १८५१ में सर रावर्ट मोन्टगोमरी ने कहा, "भारत में हम वहाँ की जनता को एकदम अलग कर देते है, हम किसी बात को निर्णय करते है, और कहते है कि ऐसा करना लाभ दायक होगा और फिर उनसे बिना कुछ पूछे उसको कर डालते है।" भारतवर्ष के उन लोगो में जिन्होंने अंग्रेजी ढग की शिक्षा प्राप्त की थी, अपने देश के शासन में सक्रिय भाग लेने की भावना प्रबल हो उठी थी और वे अपने देश में वैधानिक एव प्रतिनिधि शासन के स्वप्न देखने लगे थे। ऐसा करना उनके लिए स्वाभाविक ही था।

इन मनुष्यों की महत्वाकांक्षाओं से रिपन को सहानुभूति थी और उसने कुछ करने का निश्चय किया। अधिकांश अफसरों ने उसकी धारणाओं का विरोध किया और इस सम्बन्ध में अब भी मतभेद है कि उसकी नीति के परिणाम हितकर सिद्ध हुए या हानिकारक। भारत के शासकों के एक दल-विशेष की दृष्टि में लार्ड रिपन अति शीघ्रता के साथ और बहुत दूर तक जाना चाहता था। उनका कहना था कि जिन संस्थाओं को सुचारु रूप से चलाने के लिए उनके जन्म देश में भी बड़े व्यवहारिक अनुभव तथा शिक्षा की आवश्यकता होती है उनको भारत जैसे देश में, जहाँ पर उनका लेशमात्र भी अनुभव किसी को नहीं है, उखाड़ कर लगा देना बुद्धिमानी की बात न होगी। इसके अतिरिक्त कुछ थोड़े से पढ़े-लिखे मनचले आदमियों की बातों में आकर अधिकांश जनता की उपेक्षा करनी अच्छी नीति सिद्ध नहीं हो सकती।

परन्तु इन कतिपय अंग्रेजों ने अनुभव किया कि अब इस दिशा में कुछ प्रगति करना अत्यन्त आवश्यक था। उनका कहना था कि इन भारतवासियों को हम ही ने शिक्षित किया है और उनके अन्दर ये भावनाएँ हमारे ही कारण पैदा हुई हैं और इसलिए उनको सदा ही इस पूर्ण दासत्व की दशा में रखकर हम अपनी नीति का हनन नहीं कर सकते। अपने इन विचारों में रिपन को ऐसे स्थानों से भी कभी-कभी सहायता मिली, जहाँ से इसके मिलने की कभी आशा नहीं की जा सकती थी। १८८० ई० में लार्ड ब्रुक ने लिखा था, 'भारतीय जनता के साथ सच्ची सहानुभूति रखने वाले मनुष्य अफसरों में पैदा नहीं होते।" फिर १८८४ में उसने लिखा था कि "....सिविल सर्विस के आदमियों ने · अपने मस्तिष्क में यह दृढ़ विचार कर लिया है कि अंग्रेज के अतिरिक्त और कोई आदमी किसी काम को नहीं कर सकता।" नई नीति के विरोधियों के विरोध के चाहे और भी कारण हों परन्तु एक कारण यह भी था कि शासन प्रबन्ध के कार्य को अनुभवी कर्मचारियों या अफसरों के हाथ से निकाल अनुभव-शून्य निर्वाचित समितियों के हाथ में देने से कार्यक्षमता के अभाव में लाभ की अपेक्षा हानि की अधिक सम्भावना थी। विरोधियों का कहना था कि रिपन ने समस्या के इस पक्ष पर दृष्टिपात नहीं किया। परन्तु बात ऐसी उपेक्षा नहीं की थी। वह इसका सामना करने के लिए तैयार था। उसके एक सुधार-नियम का प्रस्ताव इस प्रकार था, 'शासन-प्रबन्ध में उन्नति के विचार से नहीं, बल्कि जनता में राजनीतिक एवं सार्वजनिक शिक्षा के प्रसार के दृष्टिकोण से इस प्रस्ताव को रखा गया है।" प्रजातन्त्र शासन में पूर्ण श्रद्धा रखने के कारण वह चाहता था कि भारतवासी अनुभव की कठिन पाठशाला में स्वराज्य का पाठ ग्रहण करें।

चुंगी तथा आयकर सम्बन्धी सुधार :—लार्ड रिपन के शासनकाल में देश की आर्थिक स्थिति ऐसी थी कि उसमें आन्तरिक सुधारों के प्रयोग सुगमता से किए जा सकते थे। सर जान स्ट्रेची के कार्यों के परिणामस्वरूप अंग्रेजी सरकार की आय बढ़ गई थी और चार वर्ष तक समृद्धि का काल रहा। भारतीय बजट में अब घाटे के स्थान पर बचत होने लगी थी। कुछ वर्ष पश्चात् स्थिति इतनी अच्छी नहीं रही, क्योंकि दुर्भिक्ष, महामारी, विनिमय दर के गिर जाने और सैनिक व्यय के बहुत अधिक बढ़ जाने के कारण भारत का कोष खाली हो गया था। इस स्थिति और अवसर से लाभ उठाकर रिपन की सरकार ने स्वतन्त्र व्यापार नीति को, जिसको नौर्थब्रुक ने आरम्भ किया था और लिटन ने उन्नति दी थी, पूरा किया। मूल्य पर पाँच प्रतिशत का आयात-कर १८८२ में उठा दिया गया। इसी वर्ष नमक कर भी कम कर दिया गया। परन्तु भूमि-कर को लार्ड रिपन कम नहीं कर सका। १८८३ में जैसा कि पहले अध्यायों में वर्णन किया जा चुका है समस्त भारतवर्ष में स्थायी बन्दोबस्त करने का प्रस्ताव, जो इंग्लैंड की सरकार के सामने गत २० वर्षों से था, अन्तिम रूप से उठा कर रख दिया गया था। लार्ड रिपन ने अब यह प्रस्ताव रखा कि उन प्रान्तों में जहाँ जाँच-पड़ताल हो चुकी थी और लगान की दर नियत कर दी गई थी, वहाँ पर सरकार को यह प्रण करना चाहिए कि उनका भूमिकर उस समय के अतिरिक्त, जब वस्तुओं का मूल्य बढ़ेगा, कभी नहीं बढ़ाया जायगा। यह प्रस्ताव निस्सन्देह अच्छा था, परन्तु सेक्रेटरी आव स्टेट ने इसको स्वीकृत नहीं किया।

शासन-सम्बन्धी तथा आर्थिक नियन्त्रण का विकेन्द्रीकरण :—इस सम्बन्ध के सुधार सबसे अधिक महत्वपूर्ण थे और रिपन शासन-काल इनके ही कारण लोगों को याद है। उन सबका संक्षिप्त वर्णन भी करना कठिन कार्य है। परन्तु इतना कहा जा सकता है कि इनके द्वारा जनता को स्थानीय तथा नागरिक शासन में अपने कार्यों को स्वयं करने और उनकी देख-रेख रखने का अपेक्षाकृत अधिक भाग मिल गया। भूमि कर सम्बन्धी शासन की छोटी इकाई 'तहसील' या 'ताल्लुका' से आरम्भ करके स्थानीय संस्थाओं की एक परिपाटी स्थापित की गई। इन समितियों को ऐसे राजस्व का प्रबन्ध करने का अधिकार दिया गया जिसको प्रान्तीय सरकारें यह समझती थीं कि वे समितियाँ इनका उचित प्रबन्ध कर सकती हैं। बड़ी बड़ी समितियों को सार्वजनिक भवन, शिक्षा तथा अन्य ऐसे ही सार्वजनिक हित के कार्य सुपुर्द किये गये थे। जहाँ सम्भव था वहाँ इन समितियों के सदस्यों के निर्वाचन का नियम रखा गया था। निर्वाचन वे ही मनुष्य कर सकते थे जो कुछ 'कर' देते थे। अधिकतर अब भी सरकार द्वारा सदस्यों के मनोनीत किये जाने की प्रथा थी। अंग्रेजी

शासन-काल में भी निर्वाचन की प्रथा कोई नई नहीं थी। १८७२ में बम्बई की म्यूनिसिपल बोर्ड में निर्वाचन का नियम लागू किया गया था और इसके पश्चात् अन्य प्रेजीडेन्सी नगरों में भी इसका प्रचार किया गया था, परन्तु इस नियम का बडे पैमाने पर प्रयोग किया गया। अनेकों नगरों की इन संस्थाओं को स्वतन्त्र रूप से अपने प्रधान चुनने का अधिकार दे दिया गया था। अब से पहले प्रधान के स्थान पर एक एक्जीक्यूटिव अफसर होता था जिसको सरकार मनोनीत करती थी। श्री आर० नाथन के शब्दों में "लार्ड रिपन की सरकार की यह नीति थी कि म्यूनिसिपल मामलों में आन्तरिक हस्तक्षेप के स्थान पर बाह्य नियन्त्रण स्थापित किया जाय।" परन्तु उस समय कुछ नियन्त्रण आवश्यक था और कदाचित आज भी है। स्वतन्त्र संस्थाओं की कार्यप्रणाली का ज्ञान अल्प-काल में प्राप्त नहीं किया जाता। म्यूनिसिपल बोर्डों के कुछ कर्तव्य होते हैं। उनसे इस बात की आशा की जाती है कि वे अन्य कुछ दूसरे सार्वजनिक हित के कार्य करने के लिए प्रोत्साहित हों। उनको कुछ आर्थिक अधिकार भी दिये जाते हैं और उन पर बहुधा जिलाधीश या कमिश्नर का नियन्त्रण होता है। सरकार को इन संस्थाओं के निरीक्षण, उपेक्षित कर्तव्यों के पूरा करने, तथा गम्भीर अपराध पर उनका अन्त तक कर देने का अधिकार होता है।

प्रेस की स्वतन्त्रता।—लार्ड लिटन के शासन-प्रबन्ध का वर्णन करते हुए यह बतलाया गया कि उसने हिन्दुस्तानी प्रेस पर बड़ा प्रतिबन्ध लगा दिया था। लार्ड रिपन ने लिटन के वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट को रद्द कर दिया। इसके द्वारा भारतीय भाषाओं के समाचार-पत्रों को भी स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई और वे अनेक सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं तथा प्रश्नों पर टीका टिप्पणी कर सकते थे। परन्तु वास्तविक अर्थ में तो प्रेस को ब्रिटिश साम्राज्य के अन्त होने तक पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त न हो सकी। एलफिस्टन ने बिल्कुल सत्य कहा था कि—"स्वतन्त्र प्रेस तथा विदेशी शासन कभी साथ-साथ नहीं चलते।"

शिक्षा:—इस बात की जाँच करने के लिए कि १८५४ के कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स के पत्र के सम्बन्ध में शिक्षा के क्षेत्र में क्या कुछ किया गया है और हो रहा है, डब्ल्यू डब्ल्यू. हन्टर की अध्यक्षता में बीस सदस्यों का एक कमीशन बिठाया गया। कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में लिखा कि देश में प्राइमरी तथा माध्यमिक स्कूलों की सर्वथा उपेक्षा की गई है और यूनिवर्सिटी शिक्षा की ओर अपेक्षाकृत अधिक ध्यान दिया जाता रहा है। परिणामस्वरूप प्राइमरी एवं माध्यमिक शिक्षा में उन्नति करने और ऐसे स्कूलों की संख्या में वृद्धि करने के लिए नियम बनाये गए।

संरक्षित रियासतें:—१७६६ में लार्ड वेलेजली ने मैसूर राज्य को जीत कर वहाँ पर एक हिन्दू बालक को राजा बना दिया था। १८३१ में लार्ड विलियम वैंटिक ने, राजा को पदच्युत करके रियासत का शासन प्रबन्ध अंग्रेजी सरकार के हाथ दे दिया था। १८६७ में लार्ड लारेंस ने रियासत को वापस न्याय राजा को देने का निश्चय किया था, परन्तु कुछ कारणवश ऐसा न हो सका। इसी वर्ष पदच्युत राजा का देहान्त हो गया था और यह निश्चित किया गया था कि जब मृत राजा का दत्तक पुत्र वयस्क होगा तो उसको राज्य वापस कर दिया जायगा। १८८१ में यह वचन पूरा किया गया। लार्ड रिपन ने बडी सजधज के साथ राजा का राज्याभिषेक किया परन्तु सुशासन के लिए उसको कडी चेतावनी दी। राज्य के सब प्रचलित नियमो का पालन करने और उनको योग्यता के साथ कार्यान्वित करने का राजा को आदेश दिया गया। उससे कहा गया कि जनरल तथा इसकी कौंसिल की अनुमति के बिना शासन-प्रणाली में कोई बडा परिवर्तन न किया जाय, राज्य में भूमि कर की व्यवस्था यथावत् चलनी चाहिए और राजा को शासन प्रबन्ध सम्बन्धी गवर्नर जनरल की सब सलाहों का स्वीकार करना मान्य होगा।

सामाजिक सुधार:—भारत के कारखानो में काम करने वाले श्रमजीवियों की दशा सुधारने के लिए कानून बनाने की प्रथा आरम्भ हो गई। १८८१ में एक नियम पास किया गया जिसके अनुसार सात से बारह वर्ष तक के बच्चे दिन में ६ घंटे से अधिक काम नही कर सकते थे। इस एक्ट के अनुसार कारखानो में निरीक्षक भी नियुक्त किये गये और भयानक मशीनो के ऊपर बाढ लगाकर मजदूरो की सुरक्षा का प्रबन्ध किया गया। १८८३ में भारत सरकार के समक्ष जाति-भेद की कठिन समस्या आ उपस्थित हुई। १८७३ में जाब्ता फौजदारी के अन्तर्गत यह नियम बनाया गया था कि यूरोपियन लोगो के मुकदमे केवल यूरोपियन न्यायाधीश ही कर सकते थे, यद्यपि प्रेजीडेन्सी नगरो में यह नियम लागू नहीं था। १८८३ में कुछ भारतवासी मजिस्ट्रेट या सेशन जज बन सकते थे और यह बात बडी अन्यायपूर्ण प्रतीत होती थी कि उनको वह अधिकार प्राप्त न हो जो उनके यूरोपियन साथियो को प्राप्त थे। इसलिये भारत की अग्रेजी सरकार ने "जाति-भेद पर आश्रित इस भेद-भाव" को मिटाने का निश्चय किया। सी० पी० इलबर्ट ने इस आशय का एक बिल तैयार किया। यद्यपि इस परिवर्तन का प्रभाव कतिपय भारतीयो पर ही पडता था और यूरोपियनो के मुकदमे भारतीयो द्वारा प्रेजीडेन्सी नगरो में होने से अब तक कोई बुराई नही हुई थी, तो भी भारतवर्ष में रहने वाले यूरोपियनो में एक सनसनी फैल गई और चारो ओर से भयकर विरोध की ध्वनि आने लगी। भारतीय जनमत स्वाभा-

विक रूप से बिल के पक्ष में था। दोनों विरोधी दलों में शत्रुता तथा बुरी भावना का प्रादुर्भाव हुआ। इस सुधार का केवल भारत में रहने वाले यूरोपियनों ने ही विरोध नहीं किया वरन् सभी सिविल सर्विस के आदमियों ने किया था (इसको याद रखना चाहिए कि सिविल सर्विस में इस समय 'गौरांग महाप्रभु' ही अधिकतर थे)। लार्ड रिपन का बड़ा भारी अपमान किया गया। एक प्रकार से उसके देशवासियों ने, जिनका सरकार से कोई सम्बन्ध नहीं था, उसका बहिष्कार कर दिया और उससे मिलना-जुलना सब बन्द कर दिया था। अन्त में गोरी चमड़ी वालों की विजय हुई और होती भी क्यों नहीं, उनका राज्य था। गवर्नर जनरल को बवण्डर के सामने झुकना पड़ा। यह निर्णय हुआ कि प्रत्येक यूरोपियन अपराधी को, जो किसी जिला जज या सेशन जज के सामने उपस्थित किया जाय (न्यायाधीश भारतीय हो या यूरोपियन हो), इस बात का अधिकार है कि वह अपने अभियोग का निर्णय करने के लिए ज्यूरी या पंचों की माँग कर सकता है; जिनमें से आधे या तो यूरोप निवासी या अमरीकन होने चाहिएँ। क्योंकि भारतवासियों को ऐसी माँग करने का अधिकार नहीं दिया गया था इसलिए यूरोपियनों की स्थिति उनकी अपेक्षा उच्च थी और रिपन का न्याय के क्षेत्र में गोरे काले भेद मिटाने का प्रयत्न सर्वथा निष्फल गया। यद्यपि अपने देशवासियों में इस प्रस्ताव के कारण रिपन की सर्वप्रियता कम हो गई थी, परन्तु भारतवासियों में उसकी सर्वप्रियता बहुत बढ़ गई थी। १८८४ में जब वह त्याग-पत्र देकर इंग्लैंड को चला तो मार्ग में बम्बई तक भारतवासियों ने बड़ी-बड़ी संख्या में एकत्रित होकर उसको विदाई दी और आज भी भारतवासी उसको प्रेम तथा श्रद्धा के साथ याद करते हैं।

प्रश्न

१. लार्ड रिपन ने शासन तथा अर्थ सम्बन्धी क्या सुधार किये ?

२. लार्ड रिपन के सामाजिक सुधारों की चर्चा करो ?

३. रिपन भारत के सर्वप्रिय वाइसरायों में है—क्यों ?

अध्याय ३४

लार्ड डफरिन तथा सीमांत नीति

लार्ड रिपन के पश्चात् लार्ड डफरिन भारत का गवर्नर जनरल तथा वाइसराय नियुक्त किया गया। इस पद को पाने के लिए उसको राजनीतिक एव कूटनीतिक पर्याप्त अनुभव था। जिस समय लारेंस भारत का वाइसराय था उस समय वह इग्लैंड की केबिनेट में भारत का अण्डरसेक्रेटरी था (१८६४—६६)। १८७२—७८ तक कनाडा का गवर्नर जनरल रहा और इसके पश्चात् सेन्ट पीटर्स बर्ग तथा कुस्तुनतुनिया में राजदूत के पद पर तथा मिश्र में मुख्य कमिश्नर के पद पर रह चुका था। इस प्रकार उसको रूस तथा ससार की सबसे मुख्य मुसलमान शक्ति की आतरिक दशा और उनकी राजनीतिक एव कूटनीतिक चालो का पर्याप्त ज्ञान था।

डफरिन की गणना अपने काल के ससार के मुख्य कूटनीतिज्ञो में की जाती है। उसका व्यक्तित्व आकर्षक था और वह एक बडा सफल सुवक्ता भी था। इसलिए भारत में इलबर्ट बिल के कारण पैदा हुई कडवाहट को दूर करने के लिए वह सर्वथा उपयुक्त था। उसने इस विकट परिस्थिति का सामना बडे चातुर्य एव प्रसन्न वदन से किया। परन्तु उसने निश्चय कर लिया था कि व्यक्तिगत तथा सामाजिक अधिकारो का कोई भी प्रश्न राजनीतिक समस्या नही बनने दिया जायगा। डफरिन की 'महान् अकर्मण्यता' के सामने जो सच्चे अर्थ में 'ससार का आदमी था, जाति-भेद का तूफान स्वत ही शान्त हो गया। परन्तु भारत का वाइसराय बनते समय वह बहुत बूढा हो गया था और इसलिए वह नई नई योजनाओ का प्रतिपादन करना नही चाहता था। वह शासन की मशीन पर धीरे से हाथ रखे रहना चाहता था। अपने लम्बे राजनीतिक अनुभव के आधार पर उसने अपनी शासन-सम्बन्धी समस्याओ को सम्भाला परन्तु वृद्धावस्था के कारण अधिक परिश्रम करने की क्षमता उसमें नहीं थी, इसलिए अपनी अवधि को समाप्त होने के पूर्व ही चार वर्ष पश्चात् उसको अपने पद से मुक्त होने के लिए प्रार्थना करनी पडी।

उसके शासन काल में सीमान्त प्रश्न फिर जागृत हो उठे। एक वही पुराना

उत्तरी-पश्चिमी सीमाप्रान्त का प्रश्न था और दूसरा पुर पूर्वी सीमा ब्रह्मा से सम्बद्ध था।

अफगानिस्तान की समस्या :—कन्दहार की विजय के पश्चात् कठिन युद्ध करके अब्दुर्रहमान ने अफगानिस्तान में अपनी शक्ति सुदृढ़ कर ली थी और अपनी प्रजा को व्यवस्था एवं आज्ञापालन का सफल पाठ पढ़ाया था। इस प्रकार अफगानिस्तान में सुदृढ़ शासन और शान्ति एवं व्यवस्था की स्थापना अफगानिस्तान तथा भारत की अंगरेजी सरकार दोनों के लिए ही हितकर थी, क्योंकि अब फिर रूसियों ने अफगानिस्तान की उत्तरी चौकियों की ओर बढ़ना आरम्भ कर दिया था। १८७६ में खोकन्द की रियासत को अन्तिम रूप से रूसी साम्राज्य में मिला लिया गया था। १८७९ में रूसी जनरल लोमकिन एक युद्धप्रिय जाति टैक्के टरकोमन से बुरी तरह परास्त हुआ परन्तु दो वर्ष पश्चात् उनको कुचलकर उनके प्रान्तों को भी रूसी साम्राज्य का अंग बना लिया गया। १८८४ में अफगानिस्तान की सीमा से १५० मील के अन्तर पर रूसियों ने, मर्व पर अधिकार कर लिया। परिणामस्वरूप रूसी योजनाओं से अंगरेज भयभीत हो गये और उनमें अब हलचल मचने लगी। इंग्लैंड में इस स्थान को बड़ा महत्व प्राप्त था और इसके रूसियों के हाथ में जाने पर देश में सनसनी फैल गई। परन्तु अन्त में यह अफगानिस्तान और भारत की अंग्रेजी सरकार दोनों के लिये ही बड़ा हितकर सिद्ध हुआ क्योंकि इसके कारण रूस और इंग्लैंड में अपेक्षाकृत अच्छा समझौता हो गया और अफगान सीमा पहले की अपेक्षा अधिक सुनिश्चित हो गई। परन्तु एक समय तो ऐसा प्रतीत होने लगा था कि भयंकर युद्ध हुए बिना नहीं रह सकता। लार्ड रिपन की सरकार ने पहले ही अफगानिस्तान की सीमा-रेखा को सुनिश्चित रूप से निर्धारित करने के लिए सम्मिलित कमीशन के प्रस्ताव को स्वीकृत कर लिया था और लार्ड डफरिन के वाइसराय बनने से एक महीने पूर्व दोनों देशों के कमिश्नरों की बैठक अक्टूबर के महीने में फारिस की सीमा पर सारखास में हो चुकी थी। हरीरूद और आक्सस नदियों के बीच की सीमा पर झगड़ा था। अंग्रेज कमिश्नर जब सर पीटर लम्सडन की अध्यक्षता में वहाँ पहुँचे तो उन्होंने कान्फ्रेंस का वातावरण बदला हुआ पाया। रूसी और अफगान लोग दोनों 'कब्जा सच्चा झगड़ा झूठा' वाली कहावत के अनुसार विवाद ग्रस्त प्रान्त के यथासम्भव भाग पर अधिकार करने का प्रयत्न कर रहे थे और प्रत्येक स्थान पर अपनी-अपनी चौकियों को आगे बढ़ा रहे थे।

सबसे अधिक झगड़ा पंजदेह के ऊपर था। यह एक गाँव तथा एक जिला था जो मर्व से १०० मील सीधा दक्षिण की ओर है और जहाँ पर मुर्गाब तथा कुष्क

नदियाँ मिलती हैं। कमिश्नर लोग लन्दन तथा सेंट पीटर्सवर्ग के पर-राष्ट्र-विभागों के अधीन थे और भारत की सरकार या तुर्किस्तान के गवर्नर जनरल का उन पर कोई नियन्त्रण नही था। इंगलैंड की सरकार अफगान माँग के औचित्य का अब तक निश्चय नही कर सकी थी और लन्दन-स्थित रूसी राजदूत से अब तक बातचीत चल रही थी। डफरिन को भारत की अंग्रेजी सरकार के हितो के अतिरिक्त अब्दुर्रहमान के लिये भी कार्य करना पड़ता था जिसको अल्फ्रेड लायल के शब्दो में "दोनों विदेशी शक्तियो के उद्देश्यों तथा कार्यों के प्रति अविश्वास रखने के लिये दोषी नहीं ठहराया जा सकता...।"

पजदेह का प्रश्न :—रूसी जनरल कोमरोफ ने जो असभ्य एवं क्रोधी था, पंजदेह की ओर प्रस्थान किया। जब वह वहाँ पहुँचा तो उसने देखा कि कुछ अफगान सैनिक वहाँ पर अपना अधिकार जमाये हुये थे। अब तक जितने सबूत मिल पाये हैं, उनसे यही सिद्ध भी होता है कि पंजदेह अफगान अमीर के राज्य में सम्मिलित था। कोमरोफ ने अफगान सैनिकों को शहर खाली करके चले जाने के लिये कहा और उनके इन्कार करने पर उन पर आक्रमण कर दिया तथा भारी क्षति के साथ निकाल बाहर किया। अब स्थिति बड़ी नाजुक तथा सकटपूर्ण हो गई थी। एक ओर रूस कैस्पियन के उस पार से अपने अधिकार को प्राप्त करने के लिये सेनाएँ अफगानिस्तान की ओर भेज रहा था और दूसरी ओर भारत की अंग्रेजी सरकार क्वेटा के निकट एक विशाल सेना एकत्रित कर रही थी। जहाँ से उसको रूस के साथ युद्ध आरम्भ हो जाने पर शीघ्रता और सुगमता से भेजा जा सके। युद्ध की सम्भावना सुदृढ होती जा रही थी क्योकि हिरात पंजदेह से केवल १२० मील दक्षिण की ओर था। इस प्रकार एक भयंकर युद्ध का पूरा सामान तैयार हो रहा था और ऐसा प्रतीत होने लगा था कि रूसी तथा ब्रिटिश साम्राज्य में वह भयंकर युद्ध अवश्य आरम्भ होगा जिसकी भविष्यवाणी लार्ड लारेंस ने अफगान सीमा के साथ हस्तक्षेप करने के दण्ड-स्वरूप की थी। निःसन्देह जिस समय पंजदेह के झगड़े का समाचार इंग्लैंड पहुँचा, उस समय वहाँ पर कदाचित ही कोई ऐसा आदमी हो जिसको युद्ध के टल जाने की सम्भावना हो। देश में सनसनी फैल गई। कंजरवेटिव दल ने कठोर कार्यवाही करने की जोरदार माँग की और उदार दलीय प्रधानमन्त्री गलैडस्टन ने भी, जिसकी दृष्टि में स्थिति अत्यन्त गम्भीर थी, लगभग १ करोड़ पौंड की स्वीकृति युद्ध-व्यय के लिये ले ली थी।

परन्तु डफरिन की कूटनीति और अफगान अमीर अब्दुर्रहमान के चातुर्य के कारण इस विनाशकारी युद्ध की सम्भावना टल गई। सौभाग्य से पंजदेह के झगड़े

के समय अब्दुर्रहमान रावलपिंडी में लार्ड डफरिन से भेंट करने आया हुआ था। अल्फ्रेड लायल के शब्दों में "अफ़गान लोग सीमावर्ती साधारण से झगड़े को ऐसा कोई विशेष महत्व नही देते कि जिसके लिये अनावश्यक परेशानी उठाई जाय।" जब पंजदेह की चर्चा चली तो अमीर ने वाइसराय से कहा कि निश्चय रूप से उसको यह पता नहीं था कि पंजदेह उसीके राज्य में था या नही और न उस पर आधिपत्य स्थापित करने की उसकी कोई उत्कट अभिलाषा थी और यदि उसको जुलफिकर, जो लगभग ८५ मील पश्चिम की ओर था, मिल जाय तो वह पंजदेह से कोई सरोकार नही रक्खेगा। अब्दुर्रहमान के धैर्य ने स्थिति को बिगड़ने से सँभाल लिया और कहना न होगा कि जितनी आर्थिक सहायता अङ्गरेजों ने अब तक उसको की थी उससे कही अधिक लाभ उसके द्वारा अब उनको हो गया था। उसने एक सच्चे राजनीतिज्ञ की भाँति रूस और ब्रिटेन के विनाशकारी युद्ध से स्वदेश को नष्ट-भ्रष्ट होने से बचा लिया। क्योंकि निसन्देह यदि युद्ध होता तो अफ़गानिस्तान रण-क्षेत्र अवश्य बन जाता। उसका कहना था कि "अफ़गानिस्तान चक्की के दो पाटों के बीच में था और पहले ही उसका पिसकर चूर्ण बन गया था।" बाद में उसने अपने आत्म-चरित्र में एक और सुन्दर उपमा की सहायता लेकर लिखा था "मेरा देश एक दीन बकरी की भाँति है जिस पर शेर (इंग्लैंड) और भालू (रूस) दोनों ने दृष्टि लगा रक्खी है और सर्वशक्तिमान् उद्धारक (परमात्मा) की रक्षा और सहायता के बिना शिकार (बकरी) अधिक काल तक बच नही सकता।"

इसलिये लार्ड डफरिन ने इंग्लैंड को तार दिया कि पंजदेह को युद्ध का कारण बनाने की आवश्यकता नही है और सीमा कमीशन को अपना कार्य प्रारम्भ करने का सुझाव रक्खा। इसलिये यद्यपि पीटर लम्सडन को वापिस बुला लिया गया था, तो भी वेस्ट रिजवे ने अपना कार्य चालू रक्खा। काबुल, शिमला और लन्दन से बहुत दिन तक पत्र-व्यवहार के पश्चात् जौलाई १८८७ में अफ़गानिस्तान तथा रूस का सीमा सम्बन्धी झगडा समाप्त हो गया और दोनों देशों के बीच सीमा-रेखा अन्तिम रूप से निश्चित् कर दी गई जिसको दोनो देशों ने एक समझौते पर हस्ताक्षर करके स्वीकृत कर लिया। वह निपटारा बड़ा महत्वपूर्ण था। रिजवे के कथनानुसार अमीर को नई सीमा के निर्धारित होने से एक एकड़ ज़मीन या एक भी आदमी या एक भी पैसे की राजस्व में हानि नही उठानी पड़ी। इस नई सीमा के निर्धारण ने रूस की हिरात की ओर की प्रगति पर प्रतिबन्ध लगा दिया। हिरात उत्तर-पश्चिम की ओर से भारतवर्ष की कुञ्जी माना जाता है। परन्तु पूर्व में पामीर ...र रूसियों की प्रगति बराबर जारी रही और उसको रोकने के लिये १८६५

तथा रूस में एक और समझौते पर हस्ताक्षर किये गये। इस प्रकार हिन्दुकुश पर्वत और ऑक्सस नदी पर सीमा स्तम्भ खड़े करके रूस और इंग्लैंड ने एशिया में अपने बढ़ते साम्राज्यों को एक दूसरे से टकराने से बचाने का प्रयत्न किया।

युद्ध तो टल गया था परन्तु इसका प्रभाव भारत के कोष पर पड़े बिना नहीं रहा। क्योंकि भयकर युद्ध होने की सम्भावना थी इसलिये शीघ्रता से उसके लिये बड़ी भारी तैयारी करनी पड़ी और इस प्रकार २० लाख की हानि भारतवर्ष के कोष को उठानी पड़ी। इतना ही नहीं इसके पश्चात भारतीय तथा यूरोपीयन दोनो सेनाओं की संख्या में वृद्धि की गई जिसके कारण व्यय और भी बढ गया। जब युद्ध की आशंका बहुत बढ रही थी तो देशीय राजाओं ने भी अपनी २ सेनायें अंग्रेजी सरकार की सेवा में अर्पित की जिसके कारण इम्पीरियल सर्विस ट्रुप (साम्राज्य सेवा-सेना) की स्थापना १८८९ में हुई। इस सेना की भर्ती सरक्षित राज्यों में होती थी, इसके अफसर भी भारतीय होते थे परन्तु निरीक्षण ब्रिटिश कमाण्डरों के हाथ में था।

जिस समय अब्दुर्रहमान १८८५ में रावलपिंडी में लार्ड डफरिन से भेंट करने के लिए आया तो वाइसराय के व्यक्तिगत आकर्षण तथा नीतिचातुर्य का उस पर वैसा ही प्रभाव पड़ा था जैसा मेयो का शेरअली पर, परन्तु जिस प्रकार शेरअली अपने देश के अंग्रेज सैनिकों का अफसरों को दूर रखने के प्रश्न पर दृढ था, वैसे ही अब्दुर्रहमान भी था। डफरिन ने हिरात की निर्बल किलेबन्दी की आलोचना करते हुए अंग्रेज इन्जीनियर भेजने का प्रस्ताव रक्खा जिससे उनको सुदृढ बनाया जा सके। परन्तु इस प्रस्ताव को अमीर स्वीकार करने को तैयार नहीं था क्योंकि इससे अफगान लोग यह समझते कि उनकी स्वाधीनता पर आक्रमण किया जा रहा था और इसका परिणाम बुरा होता। लार्ड डफरिन अमीर की बात को भली प्रकार समझ गया और उसने अपने प्रस्ताव पर लिटन की भाँति अधिक जोर नहीं दिया। क्योंकि वह जानता था कि अफगान जाति को स्वाधीनता प्राणों से भी अधिक प्रिय है तथा बाह्य हस्तक्षेप उनको किसी मूल्य पर भी सह्य नहीं है। कान्फ्रेंस के पश्चात अब्दुर्रहमान अपने प्रति दिखाये गये सम्मान से सन्तुष्ट और भारत की सैनिक शक्ति से प्रभावित होकर तथा वाइसराय के प्रति अपने हृदय में मैत्री की सद्भावना लेकर वापिस स्वदेश को लौटा।

ऊपरी ब्रह्मा की विजय :—लार्ड डफरिन के शासनकाल में बर्मा को पूर्णतया विजय किया गया। ब्रह्मा की पहली तथा दूसरी लड़ाई (१८२६ तथा १८५२) के फलस्वरूप जिनका पहले ही यथोचित स्थान पर उल्लेख किया जा चुका है.

अराकान, टनासरिम और पीगू प्रान्तों को भारत साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया था। अंग्रेज व्यापारियों के कारण ब्रह्मा निवासियों को बड़ी आर्थिक हानि उठानी पड़ती थी इसलिये वे अंग्रेजों को और अधिक व्यापारिक सुविधायें देने को तैयार नहीं थे। १८७८ में थीबो वहाँ का राजा बना। वह एक कठोर निरंकुश शासक था। उसने ब्रिटिश राजदूत की इतनी पर्वाह नहीं की जितनी कि अँगरेजों की आशा थी। परिणाम स्वरूप १८७९ में अँगरेजी सरकार ने अपने प्रतिनिधि को वापस बुला लिया। १८८२ में थीबो के साथ नई सन्धि करने के प्रयत्न किये गये, परन्तु कोई परिणाम न निकला। रंगून और निम्न ब्रह्मा के अंगरेज व्यापारी थीबो के राज्य को अँगरेजी साम्राज्य में मिलाने के लिए पृथ्वी और आकाश एक कर रहे थे। राजा पर यह भी अपराध लगाया गया कि वह अपनी प्रजा पर अत्याचार करता है, परन्तु ब्रह्मा पर आक्रमण का एकमात्र कारण अंगरेजी व्यापारियों के हित का साधन प्रतीत होता है। इसी बीच थीबो ने जर्मनी, इटली और विशेषकर फ्रांस के साथ व्यापारिक सन्धि करने की बातचीत प्रारम्भ कर दी थी। फ्रांस के हिन्द-चीन के उपनिवेश थीबो के राज्य से मिले हुए थे। एक स्वतन्त्र शासक के नाते किसी से भी सन्धि करने का उसका अधिकार था। परन्तु सभ्यता की डींग मारने वाले अंगरेजों ने 'जंगल के नियम' को अपनाया और 'जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाली कहावत को चरितार्थ किया। १८८३ में ब्रह्मा का एक मिशन पेरिस गया था, जिसके फलस्वरूप एक फ्रेंच दूत १८८५ में मांडले पहुँचा। उसने मांडले में एक फ्रेंच बैंक स्थापित करने की योजना तैयार की और यद्यपि फ्रान्स की सरकार ने इस बात से इन्कार किया, उसको इस बात का पता था और अपने दूत को वापिस बुला लिया, परन्तु भारत की अँगरेजी सरकार ने इस बात से लाभ उठाकर, कि ब्रह्मा सरकार ने एक अँगरेज व्यापारिक कम्पनी पर जुर्माना कर दिया था, युद्ध की तैयारी करदी। कहते हैं इसलिए जो मामले की जाँच करने के लिए कहा परन्तु आवा के राजा ने इसको अस्वीकृत कर दिया। इस पर उसके पास यह चेलेंज भेजा गया कि वह अपनी राजधानी मांडले में एक ब्रिटिश दूत रक्खे, जब तक दूत वहाँ पहुँचे कम्पनी के विरुद्ध कार्यवाही स्थगित कर दे भारत की सरकार की सम्मति के बिना विदेशों से कोई सम्बन्ध न रक्खे तथा अंगरेजों को अपने राज्य में होकर चीन के साथ व्यापार करने का अधिकार प्रदान करे। कोई भी स्वतन्त्र तथा आत्माभिमानी शासक इन शर्तों को स्वीकार नहीं कर सकता। इसलिये ब्रह्मा सरकार ने इन शर्तों का स्वीकार करने से इन्कार कर दिया, जब तक इनमें आवश्यक परिवर्तन न कर दिया जाय। और अंगरेजों को चाहिए ही क्या था ? रंगून में सेना पहले से ही एकत्रित कर ली गई थी।

को कूच की आज्ञा मिली और इरावदी नदी में होकर बडा बेडा जनरल प्रेन्डेरगास्ट की अध्यक्षता में ऊपरी ब्रह्मा पर आक्रमण करने के लिये आगे बढा। ब्रह्मा वाले युद्ध के लिये तैयार नही थे और इसलिये शत्रु के सैन्य-दल को युद्ध के लिये ललकारते हुए देखकर उनको आश्चर्य हुआ और कोई विरोध नही कर सके। जब अंगरेजी सेना उसकी राजधानी में पहुँची तो राजा ने आत्म-समर्पण कर दिया और इस प्रकार केवल दस दिन में युद्ध का प्रथम परिच्छेद समाप्त हो गया। पहली जनवरी १८८६ को ऊपरी ब्रह्मा ब्रिटिश साम्राज्य का एक अग बना लिया गया और भारत-साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया।

ऊपरी ब्रह्मा पर विजय प्राप्त कर उसको साम्राज्य में सम्मिलित तो कर लिया गया था, परन्तु उस पर आधिपत्य स्थापित करने की विकट समस्या सामने थी। ब्रह्मा की जनता अंग्रेजो के इस व्यवहार से अत्यन्त क्षुब्ध हो गई थी और उसने अन्त तक छापामार युद्ध प्रणाली के द्वारा शत्रु को तग करने का निश्चय कर लिया था। इसके फलस्वरूप अनेको अंगरेज सिविल तथा फौजी अफसरो की जान गई। ब्रह्मा-निवासियो के कुचलने के लिये एक विशाल सेना भेजी गई और छुटपुट का युद्ध निरन्तर दो वर्ष तक चलता रहा। ब्रह्मा के इस प्रान्त को अधीन करने के लिये अंगरेजो को अनेको दुर्गो का निर्माण करना पडा जिसमें से निकलकर 'चल दस्ते' विद्रोहियो पर आक्रमण करते थे। सर चार्ल्स बेनर्ड को वहाँ का चीफ कमिश्नर नियुक्त किया गया और धीरे २ देश में शान्ति स्थापित की गई और ब्रिटिश शासन की मशीन अपनी पूरी शक्ति के साथ वहाँ पर भी चालू हो गई।

चीन साम्राज्य वर्मा के ऊपर एक अनिश्चित सार्वभौम सत्ता का अधिकार रखता था। इसलिये वर्मा की विजय के पश्चात भारत की अंगरेजी सरकार के चीन के साथ कूटनीतिक सम्बन्धो में कुछ परिवर्तन करना आवश्यक हो गया। चीन के इस अधिकार की सर्वथा अवहेलना नही की जा सकती, यद्यपि यह अधिकार अब नाममात्र का ही रह गया था। संयोग से ऐसा वातावरण था कि एक समझौता हो गया। तिब्बत भी चीन के प्रति वफादार था और ग्रेट ब्रिटेन ने चीन से लासा में अपना एक व्यापारिक मिशन भेजने की स्वीकृति उसकी इच्छा के विरुद्ध बडी कठिनाई से ली थी। परन्तु तिब्बत वाले मिशन के विरुद्ध थे और यह नही चाहते थे कि कोई अंगरेज मिशन उनके देश में प्रविष्ट हो। इस प्रकार भारत की सरकार के सामने एक विकट परिस्थिति पैदा हो गई थी। परन्तु १८८६ में एक समझौते के अन्तर्गत यह समस्या सुलझ गई। यह निश्चित हुआ कि अंगरेज तिब्बत में अपना मिशन भेजने का विचार त्याग दें और चीन वर्मा के अंगरेजी साम्राज्य में सम्मिलित किये

जाने पर कोई आपत्ति न करे। परन्तु अब भी तिब्बत वालों के साथ एक कठिनाई शेष थी। भारत से तिब्बत के लिए वह मार्ग, जिससे होकर मिशन जाने वाला था, शिकम राज्य में होकर जाता था और शिकम का स्वतन्त्र राज्य अंगरेजों के संरक्षण में था। तिब्बत वालों ने मिशन के मार्ग को रोकने के लिये शिकम राज्य में आकर लिंगटू की किलेबन्दी करली थी। जब उनके वहाँ से हटाने के शान्तिमय साधन विफल हो गये, तो १८८८ में अंगरेजी सैनिकों ने वहाँ जाकर उनको वहाँ से निकालकर बाहर कर दिया।

प्रश्न

१. लार्ड डफरिन के समय भारत और अफगानिस्तान के सम्बन्ध कैसे रहे ?

२. बर्मा युद्ध के क्या कारण थे ? इसका क्या परिणाम हुआ ?

अध्याय ३५

लार्ड लेंस डाउन तथा 'आगे बढ़ो' नीति

चाँदी के गिरते हुए मूल्य का भारतीय प्रचलित सिक्के पर प्रभाव :—
डफरिन के पश्चात् दिसम्बर १८८८ में मार्किस आव लेन्स डाउन भारत का वाइसराय बनकर आया। उसके शासन-काल की सबसे महत्वपूर्ण आतरिक समस्या भारतीय सिक्के पर ससार भर में चाँदी के गिरते हुए मूल्य का प्रभाव था। इसका सबसे प्रमुख कारण यह था कि उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम चरण में चाँदी की नई खानों के प्राप्त होने के कारण चाँदी का उत्पादन बहुत बढ गया था। दूसरा प्रधान कारण यह था कि जर्मनी ने चाँदी के सिक्के ढालना बन्द कर दिया था और लेटिन सघ के देशो ने जहाँ पर सोने और चाँदी के सिक्के प्रचलित थे, दो धातुवाद की प्रथा को बन्द कर दिया था। परिणाम यह हुआ कि चाँदी के सिक्के जो पहले यूरोप के लगभग सभी महत्वपूर्ण देशों में प्रचलित थे अब केवल साकेतिक मुद्रा (टोकिन मनी) ही रह गये। इससे कुछ बडे ही विस्मयकारी आर्थिक परिणामो का जन्म हुआ। जिन देशो के मुद्रा प्रचलन का आधार स्वर्ण स्तर था उनको तो कोई विशेष हानि न उठानी पडी। जिन देशो में मुद्रा का आधार रजत (चाँदी) स्तर था और उनको विदेशो को भी विशेष भुगतान नही करना था, उनको भी बहुत अधिक हानि नही उठानी पडी। परन्तु रजत स्तर वाले देशो को, जिन पर स्वर्ण स्तर वाले देशों का भारी ऋण था, भयकर आर्थिक क्षति का सामना करना पडा। भारत अन्तिम कोटि के देशो में से था। उसका व्यापारिक एव मुद्रा-सम्बन्धी सम्बन्ध अधिकाश में इग्लैंड के साथ था और वह इग्लैण्ड का बडा ऋणी था। (हमारे ही धन को हमसे ऋण के रूप में और बडे भारी ब्याज के साथ चुकाया गया) उसको जातीय ऋण का ब्याज, अग्रेजी पूँजी जो यहाँ पर लगी हुई थी उसका ब्याज तथा लाभ, अग्रेजो की पेन्शन और इण्डिया आफिस का व्यय स्वर्ण में देना पडता था। जब चाँदी का मूल्य सोने के भाव में कम हो गया तो एक पौड के बदले अब पहले से अधिक रुपये दिये जाने लगे। चाँदी का मूल्य निरन्तर गिरता जा रहा था और भारत के इग्लैड के लिये भुगतान की मात्रा बर्मा के युद्ध आदि कारणो से बढती जाती थी

जिसके परिणाम-स्वरूप भारतीय दीन जनता पर इस आर्थिक संकट का भार बढ़ता ही गया। आरम्भ में रुपये का मूल्य २ शिलिंग ३ पैंस था। १८७३ तक कई वर्ष पहले से दो शिलिंग रहा था। इसके पश्चात् उपरोक्त कारणों से इसका मूल्य गिरना आरम्भ हुआ और १८८५ के पश्चात् तो बड़ी तेजी से गिरने लगा था। १८९० में रुपये का मूल्य केवल १ शिलिंग ४ पैंस रह गया। अगले वर्ष अमेरिका में एक विशेष कानून पास हो जाने के कारण मूल्य कुछ बढ़ा, परन्तु १८९२ में रुपये का मूल्य अधिक से अधिक गिरकर १ शिलिंग १ पैंस रह गया।

रुपये का इतना अधिक मूल्य गिर जाने के परिणाम-स्वरूप भारतीय जनता को भयंकर आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा। १८८४ में भारत को १८७३ की अपेक्षा पाँच प्रतिशत अधिक भुगतान करना पड़ता था। यह अनुमान लगाया गया था कि १८९२ में रुपये का मूल्य १ शिलिंग १ पैंस होने से पहले भारतीय जनता से कर द्वारा ६० लाख पौंड उससे और अधिक जो वैसे आवश्यक होता, एकत्रित किया गया था। विनिमय दर की घटत-बढ़त के कारण कभी २ इतना घाटा रह जाता था कि जिसकी कभी आशा भी नहीं की जा सकती थी। आय-व्यय का चिट्ठा (बजट) तैयार करने वाले अर्थ सचिवों के सामने भी यह बड़ी कठिनाई थी कि वे ठीक बजट तैयार नहीं कर सकते थे। यूरोप से भारत आने वाली पूँजी पर प्रतिबन्ध लगाया गया और व्यापार की मात्रा को व्यय करने का प्रयत्न किया गया। सरकार ने सार्वजनिक कार्यों के व्यय को भी कम किया, परन्तु कर कम नहीं किया गया। १८७३ में जिस धन को चुकाने के लिए जितना सामान भेजना पड़ता था, अब उसी धन का भुगतान करने के लिये उससे दोगुना सामान भेजना पड़ता था। विदेशों में भुगतान सोने, चाँदी में न होकर अधिकतर निर्यात के द्वारा ही होता है, परन्तु विदेश को भेजे जाने वाले सामान की मात्रा बढ़ जाने से केवल भेजने योग्य सामान के उत्पादक वर्ग को ही कुछ लाभ हुआ और नहीं तो समस्त जाति को इससे बड़ी आर्थिक हानि उठानी पड़ी।

अपने बढ़ते हुये ऋण को भुगतान करने के लिए भारत पर अंग्रेजी सरकार ने और अधिक कर लगाये। आय-कर लगाया गया और नमक-कर, जिसको भारतवर्ष में सर्वप्रियता कभी भी प्राप्त नहीं हुई, की दर बढ़ा दी गई; परन्तु स्थिति इतनी गम्भीर हो चली थी कि इससे भी काम नहीं चला और सरकार ने सेक्रेटरी आफ स्टेट को चेतावनी दी कि यदि भारतवर्ष के इस आर्थिक रोग का कोई स्थाई उपचार न खोज निकाला गया तो देश दिवालिया हो जायगा और यहाँ की दशा राजनैतिक दृष्टिकोण से अत्यन्त गंभीर एवं भयानक हो जायगी। १८९२ में यहाँ की ..

ने कैबिनेट के सामने यह प्रस्ताव रक्खा था कि अन्तरराष्ट्रीय समझौते के अनुसार सोने तथा चाँदी में एक स्थाई स्थापित कर लेना चाहिये और यदि यह सम्भव न हो सके तो भारत की टकसालो में चाँदी के सिक्के स्वतन्त्रतापूर्वक ढलने की प्रथा बन्द कर दी जाय जिससे यहाँ पर भी स्वर्ण-स्तर स्थापित किया जा सके। नवम्बर तथा दिसम्बर १८६२ ब्रूसेल्स में एक अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा सम्बन्धी कान्फ्रेंस हुई, परन्तु इसको लेशमात्र भी सफलता प्राप्त न हो सकी। इसमें भारत की सरकारके प्रतिनिधि ने भी भाग लिया था। १८६२ में इंगलैंड की सरकार ने लार्ड हर्शेल की अध्यक्षता में एक कमेटी नियुक्त की और उसकी सिफारिश के अनुसार भारतीय टकसालो में स्वतन्त्र रजत-मुद्रा-निर्माण बन्द कर दिया। १५ रुपये के बदले में १ गिन्नी ली और दी जाने लगी, परन्तु रुपये का मूल्य १८६५ तक गिरता चला गया।

मनीपुर का विद्रोह :—लेन्स डाउन के शासन-काल में मनीपुर राज्य में एक भयकर विद्रोह हुआ। मनीपुर का राज्य आसाम की सीमा पर पहाड़ियो में स्थित है। राजा की मृत्यु के पश्चात् उत्तराधिकारी के लिए झगडा उठ खड़ा हुआ और उसका परिणाम यह हुआ कि कुछ काल तक राज्य बिना राजा के ही रहा। राज्य भर में अशान्ति और अराजकता छा गई थी। वाइसराय ने इस आधार पर कि संरक्षित रियासतो के विवाद-ग्रस्त उत्तराधिकार प्रश्न में हस्तक्षेप करना सरकार का अधिकार है, हस्तक्षेप करने का दृढ निश्चय कर लिया। आसाम के चीफ कमिश्नर क्विण्टन को ४०० सैनिको की सहायता के साथ विद्रोह के कारणो की जाँच करने के लिए भेजा। उस सेनापति को पकड़ने का प्रयत्न किया गया, जिसने क्रान्ति फैलाई थी और राजगद्दी पर गैर-कानूनी अधिकार कर लिया था, परन्तु मनीपुर की जनता ने उसका साथ दिया और उसको बन्दी न बनाया जा सका। युद्ध के पश्चात् चीफ कमिश्नर और उसके तीन साथियो को एक कान्फ्रेंस में भाग लेने के लिए प्रलोभन देकर धोखे से मार डाला गया। छोटे अफसर, जो सहायक दस्ते के कमाण्डर बना दिये गये थे डरकर ब्रिटिश राज्य की ओर भाग गये। उनके ऐसा करने पर उनको नौकरी से पृथक् कर दिया गया। पूर्वी बगाल की सीमा पर मनीपुरियो के आक्रमणो को पीछे धकेल दिया गया और ब्रिटिश सैनिको ने राजधानी पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। क्विण्टन आदि के हत्यारों को, जिनमें सेनापति भी था पकडकर मृत्युदण्ड दिया गया। मनीपुर राज्य को ब्रिटिश साम्राज्य में सम्मिलित नही किया गया। राजकीय घराने में एक अल्पायु बालक को राजा बनाया गया जिसकी सहायता के लिए एक ब्रिटिश पोलिटिकल एजेण्ट रक्खा गया जिसने दास-प्रथा का अन्त किया।

कलात का विद्रोह :—इसी काल में एक और विद्रोह भारत की उत्तर-पश्चिम सीमा पर कलात की सरक्षित रियासत में हुआ। कहते हैं कलात का खान बडा क्रूर एवं अत्याचारी था, १८६२ में उसने अपने वजीर और उसके पिता तथा पुत्र तीनो को मरवा डाला। ब्रिटिश सरकार ने उसको इन अपराधो का बदला देने के लिए क्वेटा बुलाया और कलात के सरदारो की सम्मति से उसको राज्य त्यागने पर बाध्य किया। सरदारो ने उसके पुत्र के उत्तराधिकार को स्वीकार कर लिया।

भारत-साम्राज्य की सीमा समस्या :—लार्ड लेन्स डाउन के शासन काल में भारत-साम्राज्य की उत्तरी-पूर्वी तथा उत्तरी-पश्चिमी दोनो सीमाओ पर कुछ हलचल-सी हो रही थी और इसका कारण यह था कि इङ्गलैंड, रूस, फ्रास तथा चीन के साम्राज्य अपने निकटवर्ती निर्बल राज्यो को हडपकर अब एक साम्राज्य केन्द्र की ओर अग्रसर हो रहे थे। रूस के अपनी दक्षिणी एशिया की रेल को बढाने से, फ्रास के हिन्द-चीन में मीकाग तक आ जाने से और अगरेजो के ऊपरी ब्रह्मा को भारत साम्राज्य में सम्मिलित करने से तीनो शक्तियाँ एक दूसरे के निकटतम सम्पर्क में आ गई थी। उनकी सीमायें अभी तक पूर्णरूपेण स्थायी रूप से निर्धारित नही हुई थी और वे सब इस समय उस परिस्थिति में थे जब तनिक-सी राजनैतिक चिगारी भडककर युद्ध ज्वाला प्रज्ज्वलित कर देती है। एशिया के देशो में यूरोप की साम्राज्यवादी शक्तियो ने अपने २ अधीन देशो की सीमाओ के बाहर प्रभाव क्षेत्र बना रक्खे थे जिनमें वे स्वय शासन तो नही करते थे परन्तु उन में शत्रु के हस्तक्षेप को सहन नही कर सकते थे और जिनमें आवश्यकतानुसार सडकें आदि भी बना लेते थे। परन्तु 'प्रभाव क्षेत्रो' वाले देश सदा ही इस दशा में नही रहते। शीघ्र या देर में, अपनी इच्छा से या शक्ति के बल पर उनको एक दूसरी शक्ति का अग बनने के लिए बाध्य होना पडता है। जब ऐसा होता है तो नवीन प्रभाव क्षेत्रो' की खोज होती है और साम्राज्यवादी शक्तियाँ आगे बढकर फिर अपने प्रभाव क्षेत्र बनाती है और अन्ततोगत्वा ऐसा समय तथा स्थल आ जाता है जब दो ओर से बढने वाली शक्तियाँ एक दूसरे से मिल जाती हैं। यह सम्मेलन समय तथा स्थान सब से अधिक भयानक होता है।

लार्ड लेन्स डाउन के काल में उत्तरी पूर्वी तथा पूर्वी सीमा पर ब्रिटिश सरक्षित राज्यो को बढाने और उनकी सीमायें निर्धारित करने का बडा भारी काम किया गया। इस काल में अगरेजी राज्य का प्रभाव तथा अधिकार, सिकम, लुसाई लोगो पर जो चिटगाँव से उत्तर पूर्व की ओर पहाडी प्रान्तो में रहते हैं, उन लोगो पर जो और कुछ पूर्व की ओर रहते हैं, इरावदी नदी के पार शान रियासता पर तथा

चरेनी पर जो ब्रह्मा की पूर्वी सीमा पर एक देशीय रियासत थी, फैल गया था।

उत्तरी-पश्चिमी सीमा की समस्या इतनी सरल नही थी। लार्ड डफरिन ने अफगानिस्तान के अमीर अब्दुर्रहमान के साथ जो सुन्दर सम्बन्ध स्थापित कर लिया था, लेन्सडाउन उसका निर्वाह न कर सका। जिस प्रकार नौर्थब्रुक शेरअली के साथ मेयो के सस्थापित सबन्ध को स्थिर नही रख सका था। इसमें सन्देह नही कि अफगानिस्तान का अमीर ग्रेट-ब्रिटेन के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बनाये रखने का निरन्तर प्रयत्न करता रहा यद्यपि उसके वाइसरायों के साथ सम्बन्ध में परिवर्तन होता रहता था। जो वाइसराय इसकी सीमा से दूर रहता उसके साथ उसके सम्बन्ध बड़े मैत्रीपूर्ण होते थे और जो सीमा के निकटतर पहुँचने का पक्षपाती होता, उसके साथ सम्बन्ध कुछ रूखा हो जाता था।

परन्तु ऐसा करने के मार्ग में कुछ महत्वपूर्ण तथा व्यवहारिक कठिनाइयाँ थी। इतने वृहत् प्रदेश पर आधिपत्य स्थापित करना सरल कार्य नही था। इसके लिये अतुल धन-राशि की आवश्यकता थी। कवाइली लोगो को काबू में करना वैसे ही कठिन काम था। फिर यह भय था, कि ऐसा करने से अब्दुर्रहमान के साथ शत्रुता हो जायगी, जिसका अर्थ रूस के भय को निमन्त्रण देना था। इन सब बातो को दृष्टि में रखते हुये सरकार यही ठीक समझती थी कि अफगान अमीर जैसे महत्वपूर्ण मित्र को खोने की अपेक्षा कबाइली असुविधाओ को सहन करना अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण एव लाभकारी होगा। इस समय लार्ड राबटर्स कमाण्डर-इन-चीफ था और वह 'आगे बढो' नीति का समर्थक था। इसलिये 'आगे बढो' नीति की दिशा में कुछ कदम उठाये गये। परिणाम स्वरूप जैसा कि स्वाभाविक था अब्दुर्रहमान को इससे बडी बेचैनी हुई और सब सैनिक अफसरो ने भी इसका समर्थन नही किया। बोलन दर्रे तक एक रेलवे लाइन बना दी गई।

काश्मीर-घटना :—काश्मीर में कुछ ऐसी गुप्त घटनायें घटी, जिनका अब तक ठीक ठीक पता नही चला है। १८८५ में महाराजा प्रतापसिंह काश्मीर के राज-सिंहासन पर आरूढ हुआ। १८८८ में लार्ड डफरिन ने प्लोडेन को, जो वहाँ पर ब्रिटिश रेजीडेण्ट था, वापस बुला लिया था। अगले वर्ष लेन्सडाउन ने कुछ अनिश्चित कारणो से, जिनको कभी सिद्ध न किया जा सका, महाराजा को पदच्युत करके काश्मीर का शासन-प्रबन्ध ब्रिटिश रेजीडेण्ट के नियन्त्रण में एक कौंसिल के सुपुर्द कर दिया। वाइसराय के इस कार्य से ऐसा प्रतीत होता था कि काश्मीर को ब्रिटिश साम्राज्य में सम्मलित किया जायेगा। जौलाई १८९० में हाउस आव कामन्स में ब्रेडलो ने 'काम रोको' प्रस्ताव प्रस्तुत किया और काश्मीर प्रश्न पर विवाद आरम्भ हो गया। पार्लियामेण्ट की इस कार्यवाही के कारण या कुछ और कारणों से, जिनका कभी स्पष्टीकरण नही किया गया १९०५ में पदच्युत महाराजा को फिर राज्य वापस दे दिया गया और काश्मीर-शासन पर नियन्त्रण रखने का फिर प्रयत्न नही किया गया।

मार्टिमर डुरण्ड मिशन :—लेन्स डाउन की परराष्ट्र-नीति के कारण अब्दुर्रहमान के दिल में भी भय एव सन्देह पैदा हो गया था। उसको दूर करने तथा ब्रिटिश नीति के औचित्य को सिद्ध करने के लिये १८८८ में एक मिशन मार्टिमर डुरण्ड की अध्यक्षता में अफगानिस्तान के लिये रवाना होने वाला ही था कि इतने हो में इस्खों के विद्रोह का समाचार प्राप्त हुआ जिसने अब्दुर्रहमान को दो वर्ष तक

करेनी पर जो ब्रह्मा की पूर्वी सीमा पर एक देशीय रियासत थी, फैल गया था ।

उत्तरी-पश्चिमी सीमा की समस्या इतनी सरल नहीं थी । लार्ड डफरिन ने अफगानिस्तान के अमीर अब्दुर्रहमान के साथ जो सुन्दर सम्बन्ध स्थापित कर लिया था, लेन्सडाउन उसका निर्वाह न कर सका । जिस प्रकार नौर्थब्रुक शेरअली के साथ मेयो के सस्थापित सबन्ध को स्थिर नहीं रख सका था । इसमें सन्देह नहीं कि अफगानिस्तान का अमीर ग्रेट-ब्रिटेन के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बनाये रखने का निरन्तर प्रयत्न करता रहा यद्यपि उसके वाइसरायो के साथ सम्बन्ध में परिवर्तन होता रहता था । जो वाइसराय इसकी सीमा से दूर रहता उसके साथ उसके सम्बन्ध बडे मैत्रीपूर्ण होते थे और जो सीमा के निकटतर पहुँचने का पक्षपाती होता, उसके साथ सम्बन्ध कुछ रूखा हो जाता था ।

लेन्स डाउन तथा अफगानिस्तान:—लार्ड लेन्स डाउन अपने रूखे स्वभाव के कारण अब्दुर्रहमान को अपना मित्र न बना सका । इसके अतिरिक्त अमीर उसके 'तानाशाही' पत्रो से भी घृणा थी जिनमें "मेरे राज्य के आन्तरिक शासन पर मुझको नसीहत (की जानी है) और मुझको बतलाया जाता है कि मैं अपनी प्रजा के साथ कैसा व्यवहार करूँ ।" निस्सन्देह लार्ड लेन्सडाउन के शासन की अवधि समाप्त होने तक दोनो देशो की सरकारो में मतभेद बढता ही रहा और इसका कारण इंग्लैंड की परराष्ट्र नीति में परिवर्तन हो रहा था । ब्रिटिश सीमा और अफगान सीमा के बीच, जैसा कि पहले भी उल्लेख किया जा चुका है, २५००० वर्गमील का कबाइली प्रान्त था । ये कबीले नाम मात्र की राजभक्ति अफगान अमीर के प्रति प्रदर्शित करते थे जो उनकी मध्य स्थिति को अपने और अंग्रेजो के बीच एक पर्दा मानता था । और उनके साथ किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप उसको असह्य था । उनके ऊपर उसका वास्तविक अधिकार या नियन्त्रण तो नहीं था, परन्तु इच्छानुसार अपने शक्तिशाली पडोसी को तग करने के विचार से वह उनको उपद्रव करने के लिये उत्तेजित अवश्य कर सकता था । ये कबाइली तनिक भी उत्तेजना तथा प्रोत्साहन पाते ही ब्रिटिश व्यापारिक मार्गो में उपद्रव करने और ब्रिटिश सीमा के भीतर आक्रमण करने को सदा तैयार रहते थे । ऐसा होने पर ब्रिटिश सरकार अपनी सैन्य शक्ति से उपद्रवी गाँवो को दण्ड देकर या उनको नष्ट भ्रष्ट करके अपनी सीमा के भीतर आ जाती थी । इसके अतिरिक्त उनके पास और कोई चारा नहीं था । 'आगे बढो नीति' के समर्थक सदा से इन प्रान्तो में सैनिक दृष्टिकोण से महत्व पूर्ण रेलो के बिछाने, निश्चित ब्रिटिश अफगान सीमा-रेखा निर्धारित करने और समस्त कबाईली प्रान्त को विजय करके उसमें शान्ति तथा व्यवस्था स्थापित करने के लिये चिल्लाते रहे थे,

परन्तु ऐसा करने के मार्ग में कुछ महत्वपूर्ण तथा व्यवहारिक कठिनाइयाँ थी। इतने वृहत् प्रदेश पर आधिपत्य स्थापित करना सरल कार्य नहीं था। इसके लिये अतुल धन-राशि की आवश्यकता थी। कबाइली लोगों को काबू में करना वैसे ही कठिन काम था। फिर यह भय था, कि ऐसा करने से अब्दुर्रहमान के साथ शत्रुता हो जायगी, जिसका अर्थ रूस के भय को निमन्त्रण देना था। इन सब बातों को दृष्टि में रखते हुये सरकार यही ठीक समझती थी कि अफगान अमीर जैसे महत्वपूर्ण मित्र को खोने की अपेक्षा कबाइली असुविधाओं को सहन करना अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण एवं लाभकारी होगा। इस समय लार्ड राबर्ट्स कमाण्डर-इन-चीफ था और वह 'आगे बढ़ो' नीति का समर्थक था। इसलिये 'आगे बढ़ो' नीति की दिशा में कुछ कदम उठाये गये। परिणाम-स्वरूप जैसा कि स्वाभाविक था अब्दुर्रहमान को इससे बड़ी बेचैनी हुई और सब सैनिक अफसरों ने भी इसका समर्थन नहीं किया। बोलन दर्रे तक एक रेलवे लाइन बना दी गई।

काश्मीर-घटना :—काश्मीर में कुछ ऐसी गुप्त घटनायें घटी, जिनका अब तक ठीक-ठीक पता नहीं चला है। १८८५ में महाराजा प्रतापसिंह काश्मीर के राज-सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। १८८८ में लार्ड डफरिन ने प्लोडेन को, जो वहाँ पर ब्रिटिश रेजीडेण्ट था, वापस बुला लिया था। अगले वर्ष लेन्सडाउन ने कुछ अनिश्चित कारणों से, जिनको कभी सिद्ध न किया जा सका, महाराजा को पदच्युत करके काश्मीर का शासन-प्रबन्ध ब्रिटिश रेजीडेण्ट के नियन्त्रण में एक कौंसिल के सुपुर्द कर दिया। वाइसराय के इस कार्य से ऐसा प्रतीत होता था कि काश्मीर को ब्रिटिश साम्राज्य में सम्मलित किया जायेगा। जौलाई १८९० में हाउस आव कामन्स में ब्रेडलो ने 'काम रोको' प्रस्ताव प्रस्तुत किया और काश्मीर प्रश्न पर विवाद आरम्भ हो गया। पार्लियामेण्ट की इस कार्यवाही के कारण या कुछ और कारणों से, जिनका कभी स्पष्टीकरण नहीं किया गया १९०५ में पदच्युत महाराजा को फिर राज्य वापस दे दिया गया और काश्मीर-शासन पर नियन्त्रण रखने का फिर प्रयत्न नहीं किया गया।

मार्टिमर डुरण्ड मिशन :—लेन्स डाउन की परराष्ट्र-नीति के कारण अब्दुर्रहमान के दिल में भी भय एवं सन्देह पैदा हो गया था। उसको दूर करने तथा ब्रिटिश नीति के औचित्य को सिद्ध करने के लिये १८८८ में एक मिशन मार्टिमर डुरण्ड की अध्यक्षता में अफगानिस्तान के लिये रवाना होने वाला ही था कि इतने ही में इसरतों के विद्रोह का समाचार प्राप्त हुआ जिसने अब्दुर्रहमान को दो वर्ष तक

अफगान, तुर्किस्तान की सीमा पर रोके रक्खा। परिणाम-स्वरूप स्थिति और भी बिगड़ गई। गिलगित में अङ्गरेजी कार्यवाही को अमीर बड़े अविश्वास से देख रहा था। १८८९ में एक अङ्गरेज अफसर रूस के अनावश्यक भय के कारण वहाँ पर भेजा गया। उसकी उपस्थिति से हुन्जा तथा नगर के सरदार घृणा करते थे। ये दो छोटी-छोटी रियासतें थीं जो काश्मीर के प्रति शिथिल राज-भक्ति रखती थीं। उन्होंने गिलगित पर आक्रमण कर दिया, परन्तु परास्त हुए। गिलगित की स्थिति बड़ी महत्वपूर्ण है। यहाँ से चित्राल को सीधा मार्ग जाता है। चित्राल भी एक छोटा-सा राज्य है, जिसकी भूमि अधिकतर पहाड़ी है। यहाँ से हिन्दुकुश पर्वत के पार बड़े सुगम मार्ग जाते हैं। १८९२ में चित्राल के महतर (सरदार) का देहान्त हो गया और उसके पुत्र को गद्दी प्राप्त करने में कुछ कठिनाई का सामना करना पड़ा। उत्तराधिकार के झगड़े का बहाना लेकर १८९२ में एक अङ्गरेज दूत डाक्टर राबर्टसन वहाँ पर भेजा गया। अब्दुर्रहमान को इस प्रकार एजेण्ट का भेजना और उसके दर्रों तक रेलों का बनाया जाना बहुत बुरा लगा। इस समय स्थिति बड़ी नाजुक और संकटपूर्ण थी और अब्दुर्रहमान के शब्दों में इङ्गलैंड और अफगानिस्तान दोनों युद्ध के अधिक निकट पहुँच गये थे। लेन्स डाउन ने इस बात को स्वीकार किया है। सौभाग्य से वह बला टल गई और लार्ड लेन्स डाउन के इङ्गलैंड वापस जाने से पहले एक सम्मान-पूर्वक समझौता हो गया था। १८९२ में फिर एक बार एक मिशन को अफगानिस्तान भेजने का प्रस्ताव रक्खा गया था; परन्तु लार्ड रावर्टस को दूत चुनकर बड़ी भारी भूल की गई थी, क्योंकि वह 'आगे बढ़ो' नीति का एक बड़ा समर्थक था और इस बात से भी, कि दूसरे अफगान युद्ध में उसने महत्वपूर्ण भाग लिया था, भारत की अङ्गरेजी सरकार की बुद्धिमत्ता प्रकट नहीं होती। अमीर लार्ड रावर्टस का स्वागत करने के लिये तैयार नहीं था और इसलिए उसने चालाकी से काम लिया। उसने घोषणा की कि हजारा प्रान्त में उपद्रव हो जाने और अपना स्वास्थ्य अच्छा न होने के कारण वह मिशन का स्वागत करने की तिथि नियत नहीं कर सकता। इस प्रकार देर करके, जबकि रावर्टस इंग्लैंड वापस चला गया, उसने सर मार्टिमर डूरण्ड का स्वागत करने की इच्छा की घोषणा की, जो कि अब दूत नियुक्त किया गया था। इस मिशन का स्वागत तथा इसका सम्पादित कार्य यह निर्विवाद सिद्ध करते हैं कि अब अफगानिस्तान और भारत की अँगरेजी सरकार के पारस्परिक सम्बन्धों में बड़ा महत्वपूर्ण परिवर्तन हो गया था और अब्दुर्रहमान का अपनी उपद्रवी अफगान प्रजा पर पूरा नियन्त्रण था। एक बार फिर ब्रिटिश दूत ने उस नगर में प्रवेश किया जहाँ पर पहले बर्न्स और कैवेगनरी दो दूत यमलोक पहुँचा दिये गये थे। डूरण्ड ने बिना

अपनी सैनिक सहायता के प्रस्थान किया, उसकी रक्षा के लिये अमीर के सैनिक थे। यह दो अक्टूबर को नगर में प्रविष्ट हुआ और १६ नवम्बर को वहां से रवाना हुआ। इस समय में अब्दुर्रहमान के साथ द्वेष के सब कारणों की जाँच की गई, सब ही विवाद-ग्रस्त समस्याओं पर सन्तोष-जनक बातचीत चली और एक समझौते पर दोनों दलों के हस्ताक्षर हो गये। अमीर ने वचन दिया कि भविष्य में वह कभी अफरीदी, वजीरी, तथा अन्य सीमास्थ कबाइलियों के साथ हस्तक्षेप नहीं करेगा। सीमा रेखा, जहाँ पर सम्भव होगी, अफगान तथा अँगरेज कमिश्नरों द्वारा निर्धारित कर दी जायगी। कुछ प्रान्त अब्दुर्रहमान को मिले और इसके बदले में उसने स्वात, बजौर, दिर या चित्राल में हस्तक्षेप न करने का वचन दिया और चमन के रेलवे स्टेशन पर से भी अपना अधिकार उठा लिया। भारत की सरकार ने प्रण किया कि वह अमीर के गोला-बारूद मोल लेने पर कोई आपत्ति नहीं उठायेगी और उसकी वार्षिक आर्थिक सहायता भी १२ लाख रुपये से बढ़ाकर १८ लाख रुपये वार्षिक करदी। दोनों देशों के बीच फिर मैत्री-पूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो गये। अब्दुर्रहमान ने यह कहते हुए, कि वजीरिस्तान से उसके कर्मचारियों को निकाला गया है और चमन रेलवे स्टेशन उसकी भूमि पर बिना उसकी आज्ञा के बनवाया गया है, यह भविष्यवाणी की जो बाद में सत्य सिद्ध हुई, कि कबाइली प्रान्त में किसी दिन अवश्य युद्ध होगा। उसने मिशन के परिणामों के सम्बन्ध में अपनी सम्मति प्रकट करते हुए कहा था 'अब मैं सर्वथा सन्तुष्ट हूँ कि मैंने अङ्गरेजों से मित्रता करके जो कुछ खोया था, उससे अधिक प्राप्त कर लिया है और सर मार्टिमर डुरन्ड के मिशन ने मेरी क्षति-पूर्ति करके समस्या को सुलझा दिया है। मैं इन बातों को केवल यह प्रकट करने के लिए लिख रहा हूँ कि यद्यपि इंग्लैंड अफगानिस्तान के किसी भाग पर भी अधिकार करना नहीं चाहता तो भी वह संयोग को हाथ से जाने नहीं देता, और प्राप्त संयोग को नहीं खोता—और इस मित्र ने रूस की अपेक्षा अधिक प्राप्त कर लिया है।' इसके पश्चात् अमीर ने इङ्गलैंड जाने का भी निमन्त्रण स्वीकार किया; परन्तु बीमारी के कारण अपनी इच्छा को पूरी न कर सका। १८९५ में उसका दूसरा पुत्र नसरुल्लाखां उसका प्रतिनिधि बनाकर भेजा गया। परन्तु उसके जाने से कोई लाभ नहीं हुआ। अब्दुर्रहमान को यह जानकर कि उसके प्रतिनिधि को, सर जेम्स के दरबार में रखने की उसकी प्रार्थना स्वीकृत नहीं की गई, बड़ी निराशा हुई।

१८९३ में लार्ड लेन्स डाउन के त्याग-पत्र देने पर लार्ड क्रोमर को वाइसराय बनाया गया परन्तु उसने अपने व्यक्तिगत कारणों से स्वीकार नहीं किया। इसके पश्चात् क्वींसलैंड के गवर्नर सर हैनरी नारमन को यह पद प्रदान किया गया, परन्तु

अधिक वृद्ध होने के कारण उसने भी १६ दिन पश्चात् क्षमा माँग ली। इसके पश्चात् इंग्लैंड की सरकार ने लार्ड एलगीन को वाइसराय नियुक्त किया जो गवर्नर जनरल एलगीन का (१८६२-६३) पुत्र था।

प्रश्न

१. लार्ड लैन्स डाउन के समय अंग्रेजों की सीमान्त-नीति में क्या परिवर्तन हुआ और उसका क्या प्रभाव हुआ ?

अध्याय ३६

सामाजिक तथा शासन-सुधार (१८८५-६२) तथा इण्डियन नेशनल कांग्रेस

पिछले दो अध्यायों में लार्ड डफरिन तथा लेन्स डाउन के काल की राजनीतिक अवस्था तथा राष्ट्र-नीति-सम्बन्धी बातों का वर्णन किया जा चुका है। इस अध्याय में इस काल के राजनीतिक तथा सामाजिक सुधारों पर संक्षेप में दृष्टिपात किया जायगा। इनमें से कुछ लार्ड रिपन ने आरम्भ की थी, कुछ को लार्ड लेन्स डाउन ने पूर्ण किया और कुछ ऐसी थी, जिनका आरम्भ भी डफरिन ने किया था, और पूर्ण भी उसी ने किया। अङ्गरेजी काल में भारत की व्यवस्थापिका सभा ऐसी सावधानी तथा सोच-विचार कर नियम बनाती थी कि आधुनिक काल के कुछ ही नियम ऐसे मिलेंगे जो किसी एक शासन की देन हो।

कृषि-सुधार नियम:—सामाजिक सुधार के क्षेत्र में लार्ड डफरिन के शासन काल में तीन मुख्य कृषि सम्बन्धी नियम पास किये गये। इनमें से प्रथम 'बंगाल टीनेन्सी बिल' (१८८५) था। जिसका प्रस्ताव डफरिन के काल में रक्खा गया परन्तु जो लार्ड रिपन के काल में पूर्ण हुआ और जिसने १८५६ के 'बंगाल भूमिकर एक्ट' की धाराओं की और अधिक व्याख्या करके उसके क्षेत्र को अधिक विस्तृत किया। इसके द्वारा कृषकों की शोचनीय दशा को सुधारने, उनके लगान को समुचित करने तथा जमींदारों के उनसे आसानी से भूमि छीनने के अधिकार पर प्रतिबन्ध लगाने का प्रयत्न किया गया था। इस ऐक्ट के द्वारा सरकार ने स्वतन्त्र प्रतियोगिता के नियम में हस्तक्षेप किया था; परन्तु दीन कृषकों को निर्बल और अरक्षित होने के कारण प्रतियोगिता में भूमिपतियों का शिकार बनना पड़ता था। एक्ट के विरोधियों का कहना था कि यह १७६३ के स्थायी बन्दोबस्त के लिये घातक था। और इसको पास करके सरकार भूमिपतियों के साथ विश्वासघात कर रही थी। परन्तु वाइसराय का विरोधियों के लिये उत्तर था कि ये ऐसे सुधार थे जिनको लार्ड कार्नवालिस स्वयं करने की इच्छा रखता था और अब इनको बहुत समय पश्चात् पास किया जा रहा

था। इसके पश्चात् अवध के लिये एक एक्ट पास किया गया, जिसकी पृष्ठ-भूमि भी लार्ड रिपन के काल में तैयार हो चुकी थी, इसके द्वारा उन कृषकों को सुरक्षा प्रदान की गई थी जिनको भूमिपति जब चाहें भूमि से पृथक् कर सकते थे और जिनको लार्ड लारेंस के १८६८ के नियम से भी कोई लाभ नहीं पहुँचा था। इस ऐक्ट ने उन किसानो को, यदि बेदखल भी कर दिया जाय, खेतों में अपने द्वारा गत ३० वर्षों में किये गये उन्नति के साधनो के बदले जैसे—कुँआ आदि का बनाना, कुछ धन मिलने का अधिकार दिया गया था। १८८७ में ऐसा ही एक बिल कृषको के अधिकारो की व्याख्या तथा रक्षा करने के लिये पंजाब में भी पास किया गया था।

आर्थिक तथा नैतिक नियम :—लार्ड लेन्स डाउन के शासन-काल में जनता की आर्थिक तथा नैतिक उन्नति एवं भलाई के लिए दो ऐक्ट पास किये गये। प्रथम एक फैक्टरी ऐक्ट था, जिसने १८८१ के ऐक्ट की विशद विवेचना कर उसमें समयोचित संशोधन किया। स्त्रियो के प्रतिदिन काम के अधिक से अधिक ११ घण्टे नियत किये गये। बच्चों की कम से कम और अधिक से अधिक अवस्था सात वर्ष से नौ वर्ष और बारह वर्ष से चौदह वर्ष नियत कर दी गई थी। वे अधिक से अधिक सात घण्टे प्रतिदिन काम कर सकते थे और वह भी दिन में। फैक्टरी में काम करने वाले प्रत्येक श्रमजीवी को एक सप्ताह में एक दिन का अवकाश मिलना अनिवार्य था, सम्मति ऐक्ट के द्वारा लडकियों की अवस्था दस से बारह वर्ष कर दी गई। जिस प्रकार विलियम बैंटिक के सती निवारण बिल के विरुद्ध लोगों मे यह सनसनी फैल गई थी कि सरकार प्रजा के धर्म के साथ अत्याचार करती है। उसी प्रकार इस ऐक्ट का भी बड़ा भारी विरोध किया गया।

इण्डियन नेशनल कांग्रेस :—१८८५ में इण्डियन नेशनल कांग्रेस का जन्म तथा पहला अधिवेशन बम्बई में हुआ। इसका जन्म सर ए० ओ० ह्यूम के प्रयत्नो से हुआ था। १८५४ के पश्चात् शिक्षा-क्षेत्र म किये गये परिवर्तनो के कारण भारत के विश्वविद्यालयो में यूरोपियन ढंग की शिक्षा दी जाने लगी थी। इस शिक्षा का भी कांग्रेस के जन्म पर प्रभाव पड़ा था। भारतीय जनता अपने दुःखो और कष्टों को सरकार के सामने रखने का वैधानिक ढंग प्राप्त करना चाहती थी, और ह्यूम ने इसका पथ-प्रदर्शन किया। आरम्भ में कांग्रेस का जन्म इस आशय से किया गया था कि भारत में वह शासन प्रबन्ध सम्बन्धी कमियो को प्रकाश में लाने का प्रयत्न करेगी। आरम्भ में बहुत थोडे से शिक्षित तथा उदार विचार रखने वाले मनुष्य ही जिनमें से कुछ पश्चिमी प्रदेशो की शासन-प्रणाली का अध्ययन किये हुए थे, इसके सदस्य थे। उनकी इच्छा भारत में धीरे-धीरे शान्ति-पूर्वक साधनों में प्रजातन्त्र शासन

की स्थापना करनी थी। उस समय ब्रिटिश सरकार से द्वेष नहीं था, उल्टे कांग्रेस बड़ी राज-भक्त तथा ब्रिटिश शासन की मित्र थी; परन्तु कुछ समय पश्चात् ही वे सरकार से देश में प्रतिनिधि संस्थाओं की स्थापना और देश के शासन में भारत-वासियों को अधिकाधिक भाग देने की माँग करने लगी थी।

इण्डियन नेशनल कांग्रेस की प्रथम बैठक का महत्व इस काल में आकर ज्ञात हुआ है। आरम्भ में तो इसके नाम 'नेशनल' तक पर आपत्ति उठाई गई थी। तब केवल वही लोग इसके सदस्य थे जो अंग्रेजी बोलते थे और जिन्होंने पश्चिमी शिक्षा प्राप्त की हुई थी उस समय देशीय नरेश तथा मुसलमान जाति को इससे तनिक भी सहानुभूति नहीं थी। नरेशों को तो इसमें अन्त तक सहानुभूति न हो सकी। कुछ भी हो, ऐसी एक संस्था का जन्म होना अनिवार्य था और निस्सन्देह इसके जन्म में ब्रिटिश शासन-प्रणाली का भी पर्याप्त हाथ था। शासन-सम्बन्धी अनेकों त्रुटियाँ और जनता की सच्ची शिकायतों की ओर सरकार की बहुमूल्य सेवा की थी। इसके नेता बड़े योग्य तथा सच्चे देशभक्त थे और १८८५ में इसके जन्म के पश्चात् भारतीय शिक्षित जनता के ऊपर इसका प्रभाव, इसका कार्य क्षेत्र, तथा इसकी सदस्यता प्रतिवर्ष बढ़ती ही चली गई।

१८६२ का इण्डियन कौंसिल एक्ट।—लार्ड डफरिन ने कांग्रेस की माँगों के औचित्य को पहचाना। अंग्रेजों की दृष्टि में भारतवर्ष में प्रजातन्त्र शासन की स्थापना करना तो सर्वथा असम्भव था; परन्तु व्यवस्थापिका सभाओं के आधार को विस्तृत करने के सुझाव को स्वीकृत करना असम्भव नहीं था। जिस प्रकार तीनों प्रेजीडेन्सियों में लेजिस्लेटिव कौंसिलें थीं उसी प्रकार उत्तरी पश्चिमी प्रान्तों में भी, जो आजकल संयुक्त प्रान्त आगरा व अवध कहलाता है, एक लेजिस्लेटिव कौंसिल की १८८६ में स्थापना की गई थी। यद्यपि डफरिन की सम्मति से ही कांग्रेस का सूत्र-पात हुआ था, परन्तु बाद में चलकर उसको इससे भय लगने लगा था और वह बड़ी-बड़ी मीटिंग कर उनमें उत्तेजक भाषणों के प्रतिकूल था। इंग्लैंड वापिस जाने से पहले उसकी सरकार ने सुझाव रक्खा था कि यथासम्भव कौंसिलों में भिन्न-भिन्न वर्गों के प्रतिनिधियों को सम्मिलित किया जाये, वाइसराय की कौंसिल को अर्थमन्त्री द्वारा प्रस्तुत बजट पर बहस करने का अधिकार हो तथा कौंसिल के सदस्यों को कार्यकारिणी से प्रश्न पूछने का भी अधिकार प्राप्त होना चाहिए। प्रश्न पूछने के अधिकार पर उसने विशेष जोर दिया था क्योंकि उसकी सम्मति में इसके द्वारा कांग्रेस-माँग भी पूर्ण होती थी और ब्रिटिश शासननीति की सार्थकता सिद्ध करने का एक सफल साधन भी प्राप्त होता था। लगभग ये सब सुझाव उसके उत्तराधिकारी

के काल में १८९२ के इण्डिया कौंसिल एक्ट द्वारा पूरे किए गए, जिसने भारत की लेजिस्लेटिव कौंसिलो के सदस्यो की सख्या में वृद्धि की। वाइसराय की इम्पीरियल कौंसिल में कम से कम दस और अधिक से अधिक १६ अतिरिक्त सदस्य बढ़ाने का आयोजन किया गया था जिनमें से ६ से अधिक सरकारी अफसर नही हो सकते थे। इन सदस्यो का निर्वाचन नही होता था वरन् एक्ट ने गवर्नर जनरल को अपनी कौंसिल की सलाह से उनके मनोनीत करन के लिए नियम बनाने का अधिकार दिया था। आशा यह की गई थी कि ऐसे नियम बनाये जायें जिनके द्वारा लगभग सब ही वर्गों का प्रतिनिधित्व हो जाय। इसके अनुसार यह निश्चित किया गया कि दस गैर सरकारी सदस्य मनोनीत किये जायें जिनमें से ४ को 'प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभायें, १ को कलकत्ता का चैम्बर आव कौमर्स और शेष पाँच को गवर्नर जनरल स्वय मनोनीत करे। बम्बई और मद्रास की व्यवस्थापिका सभाओ में भी बीस-बीस सदस्य बढा दिये गये, जिनमें ६ से अधिक सरकारी अफसर नही हो सकते थे। गैर सरकारी सदस्यो को मनोनीति करने का अधिकार म्यूनिसपैलिटियो, यूनिवर्सिटी, सीनेट तथा व्यापारिक मण्डलो को दिया गया था। यद्यपि प्रतिनिधि-प्रणाली का सूत्रपात किया गया था, परन्तु निर्वाचन की प्रथा का अभी श्रीगणेश नही हुआ था और इम्पीरियल तथा प्रान्तीय सभाओ में सरकारी सदस्यो का बहुमत रक्खा गया था। इन कौंसिलो के कार्यक्षेत्र भी कुछ बढा दिये गये थे। इस समय तक वाइसराय की कौंसिल को सरकार की आर्थिक नीति पर बहस करने का अधिकार था, जब नये कर लगाये जाते थे, इनके पश्चात प्रतिवर्ष बजट इसके सामने रक्खा जाने लगा और प्रत्येक सदस्य को उस पर बहस करने तथा उसकी आलोचना करने का अधिकार मिल गया था। शासन प्रबन्ध के सम्बन्ध में एक्जीक्यूटिव अफसरो से प्रश्न पूछने का अधिकार भी सदस्यो को मिल गया था। इन शासन-सुधारो से अभीष्ट सन्तोष प्राप्त न हो सका क्योंकि सरकारी सदस्यो का बहुमत था, परन्तु फिर भी गैर-सरकारी सदस्यों को, भले ही उनका निर्वाचन न होता हो, कौंसिलो में बैठने और अपनी सम्मति प्रकट करने का अधिकार मिल गया था और वे वाइसराय तथा उसके अफसरो की आलोचना कर सकते थे। परन्तु ऐसा करने का साहस बहुत कम में था, क्योंकि कौंसिलो में उनकी स्थिति इनके ऊपर ही अवलम्बित थी।

अस्थायी सिविल सर्विस :—इस काल में स्थायी सिविल सर्विस को भी स्वीकृति प्रदान की गई। पिछले अध्यायो में वर्णन किया जा चुका है कि लार्ड लिटन के काल में स्थापित स्टेटुअरी (नियमानुसार) सिविल सर्विस से निराशा प्राप्त हुई थी। सर चार्ल्स एट्किसन की अध्यक्षता मे १८८६-८७ में पब्लिक सर्विस कमीशन

नियुक्त किया गया, जिसनें पूर्ण रूप से इस प्रश्न की विवेचना की और १८९१ में उसकी सिफारिशों को कार्यान्वित किया गया। स्टेटुमरी सिविल सर्विस का अन्त कर दिया गया। सिविल सर्विस तीन भागों में विभक्त कर दी गई—इम्पारियल इण्टियन सिविल सर्विस, प्रान्तीय सर्विस तथा सबोर्डिनेट (अधीन) सर्विस। प्रथम के लिए भर्ती अब भी इङ्लैंड में होती थी और केवल वही भारतवासी इसमें सम्मिलित हो सकते थे जो इङ्लैंड जाकर लन्दन में परीक्षा में बैठ सकते थे। दूसरी दोनों प्रकार की सर्विस की भर्ती भारत में ही होती थी और इनमें अधिकतर भारतवासी ही होते थे। प्रान्तीय सर्विस में तीन प्रकार से भर्ती होती थी, परीक्षा द्वारा, प्रान्तीय सरकारों द्वारा मनोनीत किये जाने से और अधीन सर्विस से उन्नति करके। इम्पीरियल सिविल सर्विस (आई० सी० एस०) वालों के हाथ में सब ही महत्वपूर्ण स्थान थे। उनसे कम महत्व की जगह पर प्रान्तीय सर्विस के आदमी होते थे और अधीन सर्विस के मनुष्यों को बहुत कम महत्व के स्थानों पर रखा जाता था। १८९३ में हाउस ग्राव कामन्स में उदार दल के सदस्यों ने यह प्रस्ताव रखा कि सिविल सर्विस की परीक्षा इंग्लैंड तथा भारतवर्ष में साथ-साथ होनी चाहिए। भारत की अङ्गरेजी सरकार तथा मद्रास के अतिरिक्त और सब प्रान्तीय सरकारों ने इसका घोर विरोध किया और यह प्रस्ताव, केवल एक प्रस्ताव बनकर ही रह गया और एक्ट न बन सका।

प्रश्न

१. १८८५ ई० से १८९२ ई० तक क्या कृषि सम्बन्धी नियम बने तथा सामाजिक व आर्थिक सुधार हुये ?

२. इन्डियन नेशनल कांग्रेस का जन्म कैसे हुआ ?

३. १८९२ ई० के इंडिया कौंसिल एक्ट पर एक टिप्पणी लिखो।

अध्याय ३७

दुर्भिक्ष, महामारी तथा सीमान्त युद्ध

लेन्सडाउन के काल में भारतवर्ष का राजनीतिक वातावरण बडा क्षुब्ध हो गया था। विनिमय दर का गिरना और देश के वार्षिक बजट में घाटे का होना, इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण था कि देश की समृद्धि का अन्त हो चला था। अब भारतवर्ष में भयकर दुर्भिक्ष, विनाशकारी महामारी, और घातक सीमान्त युद्धो का युग आरम्भ होने वाला था। जिनके कारण देश का सामाजिक एव राजनीतिक वातावरण अत्यन्त ही क्षुब्ध हो उठा था और जिसके परिणाम स्वरूप महत्वपूर्ण वैधानिक परिवर्तन किये गये। लेन्सडाउन के पश्चात् लार्ड एलगिन—गवर्नर जनरल एलगिन का पुत्र भारत का वाइसराय बनकर आया। आरम्भ में दो वर्ष तक तो उसके काल में शान्ति रही, परन्तु इसके पश्चात् चारो ओर से एक साथ इतनी कठिनाइयाँ उसके सामने आईं, जिनके कारण समस्त शासन आमूल हिल गया था। लार्ड एलगिन स्काटलैंड के एक प्राचीन उदार घराने से सम्बन्ध रखता था। वह एक गम्भीर एव सावधान शासक था। यह उसका दुर्भाग्य था कि उसके काल में ऐसी-ऐसी समस्यायें हुईं जिनका निवारण भारत के योग्यतम वाइसराय भी नही कर सकते थे। उसने स्वय कोई महत्वपूर्ण कार्य नही किया और न किसी नई योजना का स्वयमेव प्रतिपादन किया, वरन् अधिकतर अपने स्थायी अफसरो की सलाह से ही शासन कार्य का सचालन किया। कदाचित् इस कारण से भी, उसके शासन की कडी आलोचना की गई क्योकि ये अफसर भारतीय हितो के सदा से और सर्वथा विरोधी रहे थे। निस्सन्देह उसके शासन-काल में भयकर भूलें की गई और अनेको कार्यो में वाइसराय के दृढ निश्चय का अभाव साफ प्रकट होता है।

आर्थिक व्यवस्था —टकसालो के बन्द करने से अभीष्ट फल प्राप्त न हुआ और विनिमय दर के निरन्तर गिरते रहने के कारण एलगिन के समक्ष बजट में भयकर घाटे की समस्या उपस्थित हुई। फिर पाँच प्रतिशत आयात कर लगाया गया, परन्तु सूती कपडे पर कर लागू नही किया गया, किया भी कैसे जाता क्योकि अधिकांश सूती कपडा लकाशायर से आता था। इस अपवाद पर जैसाकि स्वाभाविक था,

भयकर बहस आरम्भ हुई। इग्लैंड के उत्पादकों ने यह आपत्ति उठाई कि जब और वस्तुओं पर भारत की सरकार आयात कर लगा रही है तो सूती कपड़े पर क्यों नहीं लगाया जाता। भारत के हित-अहित का कोई ध्यान नहीं था। अंगरेज उत्पादकों के हित का विशेष ध्यान रक्खा जाता था। इंग्लैंड के इस आन्दोलन का यह परिणाम हुआ कि अगले वर्ष सूती कपड़े पर भी आयात-कर लगा दिया गया, परन्तु साथ ही साथ भारत के सूती कपड़े पर भी उतना ही कर लगा दिया गया क्योंकि यह भय था कि कहीं आयात कर लग जाने से मानचेस्टर के कपड़े का मूल्य बढ़ जाने पर उसकी खपत कम न हो जाय। भारतीय उत्पादकों ने इसके विरुद्ध बड़ी हायतौबा मचाई परन्तु सब 'टाँय-टाँय फिस'। १८६६ में इस प्रचण्ड विरोध के फल-स्वरूप कर ५ प्रतिशत से ३॥ प्रतिशत कर दिया गया, परन्तु साथ ही इंगलैंड से आने वाले सूती कपड़े पर भी आयात-कर ३॥ प्रतिशत कर दिया गया। मुद्रा समस्या का भी कुछ निवारण अवश्य हो गया, परन्तु भारतीय हितों का बलिदान करके। भारत बनाम मानचेस्टर-समस्या का निपटारा करने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया। जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है रुपये का मूल्य गिरते-गिरते १८६९ में १ शिलिंग और एक पेंस रह गया था, परन्तु इसके पश्चात् इसका मूल्य बढ़ना आरम्भ हो गया। कदाचित् इसका कारण टकसालों का बन्द करना और चाँदी का बाहर से न मँगाना रहा हो। कारण कुछ भी हो रुपये का मूल्य बढ़ते-बढ़ते एक शिलिंग ४ पेंस तक पहुँच गया था। सरकार वहीं पर विनिमय दर को निश्चित करके भारतवर्ष में १५ रुपये प्रति गिन्नी की दर पर स्वर्ण स्तर का सूत्रपात करना चाहती थी।

सैनिक प्रबन्ध :— १८९५ में सैनिक प्रबन्ध सम्बन्धी एक सुधार जिसको भारत की अत्यन्त धीरे धीरे चलने वाली मशीन पिछले १६ वर्षों से भर का विचार कर रही थी, पास किया गया। इस परिवर्तन से भारत सरकार तथा इंग्लैंड की सरकार दोनों सहमत थी और इसके ऊपर लार्ड डफरिन और लार्ड लेन्सडाउन के काल में पर्याप्त विवेचना हो चुकी थी। इससे पूर्व भारत में तीन पृथक् पृथक् प्रेजीडेंसी सेनाएँ थी, जिनके तीन ही कमाण्डर-इन-चीफ होते थे और जिस प्रकार बंगाल का कमाण्डर-इन चीफ वायसराय की कौंसिल का सदस्य होता था, उसी प्रकार मद्रास और बम्बई के कमाण्डर-इन चीफ भी वहाँ की कौंसिलों के सदस्य होते थे। अब से आगे समस्त भारतीय सेना का केवल एक ही कमाण्डर-इन चीफ होने लगा और उसके नीचे चार लेफ्टिनेण्ट जनरल बंगाल, मद्रास, बम्बई तथा उत्तरी पश्चिमी प्रान्त (यू० पी०) पंजाब सहित के लिए होते थे। शासन सम्बन्धी सुधार तो यह था ही, परन्तु इसमें भारत का एकीकरण भी निहित था। तीन पृथक् सेनाओं की प्रणाली

अति प्राचीन हो चुकी थी और उस समय की याद दिलाती थी जब भारत में अंग्रेजो के तीन प्रेजीडेंसी नगर एक दूसरे से पृथक् थे। परन्तु अब तो प्रेजीडेन्सियो का क्षेत्र मिल कर एक हो गया था। अब मद्रास तथा बम्बई को अपनी अपनी सीमाओ की रक्षार्थ पृथक् सेना रखने की आवश्यकता नही थी। बिलोचिस्तान से बर्मा तक फैली हुई भारत की सीमा पर यत्र-तत्र रक्षा के अतिरिक्त अब देश के भीतरी भाग में सेना रखने की आवश्यकता शेष नही रही थी।

अफीम कमीशन की रिपोर्ट :—१८९३ में पार्लियामेंट के एक ऐक्ट ने एक कमीशन इस बात के लिय नियुक्त किया था कि वह भारत में अफीम के उपयोग, उसके द्वारा जन साधारण के स्वास्थ्य पर पडने वाल प्रभाव की जाँच करके यह सुझाव रखे कि क्या औपधि रूप में प्रयोग करने के अतिरिक्त अफीम की बिक्री को बन्द किया जा सकता है। अब १८९५ में इस कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित हुई। अफीम की पैदावार पर भारतवर्ष में राज्य का एकाधिकार था। और इसस सरकार को बडा लाभ होता था। पोस्त की कृषि पर सरकार नियन्त्रण रखती थी और गाजीपुर तथा पटना अफीम बनाने के दो कारखाने थे। भारत में पैदा की गई अफीम का एक बडा भाग चीन को भेज दिया जाता था और शेष भारतीय उपभोक्ताओ के लिये रख लिया जाता था। भारत में भी इसका निषेध करने वालो की कमी नहीं थी, और इंग्लैंड में भी एक ऐसा दल था जो सरकार के इस प्रकार अफीम उत्पादन को अनैतिक ठहराता था और उसका कहना था कि इससे कितनी ही अधिक हानि क्यो न हो। इनका विश्वास था कि अफीम को खाकर या पीकर उपभोग, स्वास्थ्य तथा चरित्र के लिये हानिकारक है। उसका विचार था कि चीनियो को १८४२ के अफीम युद्ध में अपने देश में अफीम की आयात की आज्ञा अपनी इच्छा-विरुद्ध देने और अपने देश का अहित करने के लिये अन्यायपूर्ण दबाया गया था। परन्तु यदि इस बात को ठीक भी मान लिया जाय तो फिर १८५८ की टीन्स्टीन सन्धि में चीनिया ने स्वेच्छा से अपने देश में अफीम उपभोग की बुराइयो का बहुत बढा चढा-कर वर्णन किया। उन्होंन अफीम खाने की पश्चिमी देशो में मदिरा पान से तुलना की और कहा कि दोनो ही पदार्थो को कम मात्रा में प्रयोग करने से कोई हानि नही होती और जिस प्रकार यूरोपीय देशा में मदिरा पान का पूर्ण निषेध ठीक नही है, उसी प्रकार भारत में अफीम का पूर्ण निषेध ठीक नही है। यह चीनी की अपनी घरेलू बात है कि वह भारतीय अफीम का आयात करते हैं या नही। भारत में राज्य का नियन्त्रण होने से निश्चित क्षेत्रो ही में इसकी खेती होती है। निस्सन्देह भारत की अफीम ससार भर में श्रेष्ठ होती है और यदि चीनी लोग भारत से अफीम नही

मँगाने तो वे अपने ही देश में पैदा होने वाली निम्न प्रकार की अफीम का उपयोग करेंगे परन्तु इन सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात राज्य की आय की थी। कमीशन ने कहा था कि भारत (की अंग्रेजी सरकार) का कोष अभी ऐसी स्थिति में नही है कि अफीम से पैदा होने वाली आय को छोड दिया जाय। कमीशन की बातो में कुछ तथ्य अवश्य था क्योंकि सरकार के कानूनो द्वारा अफीम का उपयोग सर्वथा बन्द करना असम्भव था, परन्तु विरोधियों को इससे संतोष नही था और उनके अधिक जोर देने पर चीन की सरकार के साथ यह निश्चय किया गया कि जनवरी १९०८ से चीन की सरकार कम से कम अफीम का आयात करेगी, परन्तु इससे भारतीय जनता के स्वास्थ्य और चरित्र पर क्या प्रभाव पडा ?

१८९६ का दुर्भिक्ष :—भारत में पिछले २० वर्षों से कोई दुर्भिक्ष नही पडा था और १८८३ के पश्चात् प्रथम बार दुर्भिक्ष निवारण नियमो की परीक्षा हुई। १८९५ में वर्षा बहुत कम हुई थी और १८९६ में तो बिल्कुल ही सूखा पड गयी थी। संयुक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त, बरार, बंगाल के जिलों, मद्रास, तथा बम्बई, राजपूताना तथा ऊपरी ब्रह्मा में सब जगह अनावृष्टि तथा अभाव का साम्राज्य था। अकेले ब्रिटिश भारत में ७।। लाख आदमी अकाल के गाल में समा गए। १८९७ के बसन्त में ४० लाख मनुष्यों को सरकारी सहायता दी जा रही थी। लगान की छूट तथा अन्य सब क्रम मिलाकर सरकार को ५५।। लाख पौंड व्यय करना पडा। दुर्भिक्ष निवारण का सर्वश्रेष्ठ कार्य संयुक्त प्रान्त में, जिसको उस समय उत्तरी पश्चिमी प्रान्त कहते थे, किया गया परन्तु मध्य प्रान्त में यह सर्वथा असफल रहा।

१८९६ की महामारी (प्लेग) —दुर्भिक्ष के साथ ही साथ भारत में एक और भयंकर आपत्ति आई। अगस्त १८९६ में बम्बई से प्लेग की सूचना आई। दुर्भिक्ष की अपेक्षा प्लेग का प्रभाव अत्यन्त भयंकर होता है। यदि प्रकृति विशेषतया असन्तुष्ट नही होती तो दूसरे ही वर्ष दुर्भिक्ष का रोग कट जाता है। प्रकृति के मुस्कराते ही पृथ्वी उल्लास से मारे लहलहा उठती है और थोडे ही काल में उदर-ज्वाला पूर्ववत् शान्त होने लगती है। परन्तु महामारी का विनाशकारी विष धीरे-धीरे बढता ही रहता है और मानवी दूरदर्शिता एवं वैज्ञानिक प्रयत्नो के होते हुए भी इसके दुःखान्त नाटक का क्रूर चलता ही रहता है। इस महामारी ने जैसे भारत-भूमि को अपना निवास बना लिया हो। प्रतिवर्ष यम का यह भयंकर दूत अब भी सहस्रो निर्दोष नर-नारियो को पकड कर यमपुरी ले जाता है। यूनान की सभ्यता की भाँति इस महामारी का इतिहास भी बडा प्राचीन बतलाया जाता है। कहते है कि प्रथम बार इसने एथेन्स में ईसा के ४३१ वर्ष पूर्व दर्शन दिये थे और अनेकों वीर तथा

वीरांगनाओं और बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों की क्षण भर में ऐहिक लीला समाप्त कर डाली थी। फिर चौदहवीं शताब्दी के मध्य में (१३४६–४६) 'काली मृत्यु' बन कर इसने यूरोप के रंग मंच पर नग्न नृत्य किया और अकेले इंग्लैंड की जनता को पटाक्षेप होते-होते विलीन कर गई। देश की सामाजिक एवं आर्थिक दशा कुछ से कुछ हो गई। एक बार फिर इसने १६६५ में लन्दन यात्रा की और इस बार भी अपनी पूरी बलि लेकर ही संतोष किया।

चीन के कतिपय अधिक जन संख्या वाले प्रान्तों से इसने निकलता स्वीकार किया। कुछ काल तक ऐसा प्रतीत होने लगा था कि बहुत अधिक यात्रा करने से थक जाने के कारण अब यह विश्राम करेगी, परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में इसने एक बार फिर विश्व विजय करने की सोची और अब की बार इसका प्रथम आक्रमण १८७७-७८ में रूस में अस्त्राखाँ पर हुआ। फिर बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में इसने चीन से धीरे २ बाहर जाने का प्रयत्न किया। इसके आने की सूचना लेकर कुछ चूहे अनाज से भरे जहाजों में बैठ कर हांगकांग से बम्बई पहुँच चुके थे। १८०६ की पतझड़ ऋतु में बम्बई में इसका प्रकोप आरम्भ हुआ। नगर-निवासी अपने-अपने घरों को छोड़ कर भाग निकले। फरवरी १८९७ तक नगर से ४ लाख आदमी भाग गये थे। डाक्टरों ने घर २ का निरीक्षण करने, पृथक् औषधालय तथा कैम्प स्थापित करने और टीका लगाने की योजना तैयार की; परन्तु ये सब बातें उस समय भारतीय जनता को अज्ञानवश प्रिय तथा सत्य नहीं थीं। १८९७ में एक सैनिक तथा एक सिविल अफसर जो महामारी निवारण कार्य में लगे हुये थे, पूना में वध कर दिये गये। मार्च १८९८ में बम्बई में भयंकर उपद्रव हुआ। इसी समय हिन्दुस्तानी भाषाओं में प्रकाशित होने वाले समाचार पत्रों ने सरकार की कड़ी आलोचना की थी, इसलिये उनका मुँह बन्द कर दिया गया। इससे विरोध की भावना और भी अधिक बढ़ गई। भारतीय जनता के इस विरोध का आधार यद्यपि अज्ञान तथा भय था तो भी यह विरोध बड़ा भयंकर और वास्तविक था। इसकी वास्तविकता को ध्यान में रखकर उन सब कठोर नियमों को, जिनको डाक्टरों ने लागू करने के लिये सिफारिश की थी, त्याग दिया गया। देश से प्लेग का उन्मूलन न किया जा सका और इसको नियन्त्रण में रखने का ही प्रयत्न किया गया।

सीमान्त प्रदेश की समस्या.—चित्राल के साथ भारत की अंग्रेजी सरकार के सम्बन्धों का उल्लेख पहले अध्याय में किया जा चुका है। १८९३ के 'डुरण्ड समझौते' के अनुसार यह छोटी सी पहाड़ी रियासत भारत की सरकार के प्रभाव क्षेत्र में सम्मिलित कर ली गई थी। अंग्रेजी सरकार रियासत पर नियन्त्रण रखने की बहुत

काल से इच्छुक थी और उसकी परराष्ट्र नीति पर अधिकार करने की तो उसकी बड़ी ही उत्कट अभिलाषा थी। काश्मीर राज्य में गिलगित में एक ब्रिटिश एजेन्सी स्थापित कर दी गई थी और चित्राल के मास्तूर पर एक चौकी भी स्थापित कर दी गई थी जहां से ब्रिटिश पोलिटिकल अफसर यदा-कदा राजधानी में हो आया करता था। जनवरी १८९५ में चित्राल के महतर (शासक) का शेर अफजल जो पहले महतर रह चुका था और भन्डोल के शासक उमरखाँ की उत्तेजना से वध कर दिया गया। जब विद्रोह हुआ तो डाक्टर रावर्टसन, जो गिलगित में ब्रिटिश एजेण्ट था चित्राल गया। विप्लवकारी सरदारों ने उससे मास्तूज चले जाने के लिये कहा और जब उसने इन्कार कर दिया, तो उसको राजधानी में ही कैद कर लिया। भारत की सरकार ने सर आर० लो को १५००० सैनिकों के साथ मालकद दर्रे और स्वात राज्य में होकर चित्राल के लिए भेजा स्वाती लोग भी इस समय चित्रालियों का पक्ष लेकर उठ खड़े हुए थे। कैली ने गिलगित से चलकर शान्डू दर्रे को जो १२००० फुट की ऊँचाई पर है पार किया और २२० मील ऊबड़ खाबड़ शत्रु के पहाड़ी प्रान्त को पार कर चित्राल नगर को विद्रोहियों से बचा लिया। नगर की रक्षार्थ जो ५०० आदमी नगर के भीतर थे अब तक ४६ दिन से वीरता के साथ सामना कर रहे थे। लार्ड एलगिन की इच्छा तो चित्राल पर अधिकार बनाये रखने की थी, परन्तु राजेश्वरी की (इंग्लैंड की) सरकार ने देश को खाली करने की ही आज्ञा दी क्योंकि अधिकार करने में अंग्रेजी सरकार का अधिक हित नहीं था। परन्तु इंग्लैंड की उदार दलीय सरकार अपने इस प्रस्ताव को कार्यान्वित होने से पहले ही अपने पद से पृथक हो गई और सैलिसबरी की सरकार ने चित्राल के अंग्रेजी राज्य की सीमा तक एक सैनिक सड़क बनाने तथा उस पर यत्र तत्र रक्षार्थ सैनिक टुकड़ी रखने की आज्ञा दी।

इस प्रश्न को लेकर इंग्लैण्ड में एक बड़ा भारी विवाद उठ खड़ा हुआ था। इसमें सन्देह नहीं कि चित्राल की राजनीति में अंगरेजों के हस्तक्षेप करने के कारण समस्त कबाइली प्रान्त में उपद्रव होने लगे थे इसके कुछ और भी कारण रहे होंगे। ये कबाइली लोग अपनी स्वाधीनता पर प्राण देते थे और गत दस वर्षों में अंग्रेजों की 'आगे बढ़ो' नीति को ये लोग बड़े सशंक नेत्रों से देख रहे थे। जब उन्होंने अपने प्रान्तों तक रेलों और सड़कों का निर्माण होते और उन पर रक्षार्थ सैनिकों को निरन्तर अपनी ओर बढ़ते देखा, तो उनको यह सब बहुत बुरा लगा। अब वे सोचने लगे थे कि यह सीमा रेखा, जो अङ्गरेज अफसरों ने अफगानिस्तान तथा उनके देश के बीच निर्धारित की थी, कुछ समय पश्चात् ब्रिटिश भारत की सीमा बन जायगी। और इसमें कोई सन्देह भी नहीं कि 'आगे बढ़ो' नीति के समर्थकों की ऐसी

स्त्री ग्रभिलाषा भी थी। मुल्ला लोगों ने मुस्लिम जनता में, जो स्वयमेव बडी युद्धप्रिय थी, यान्त्रिक ईसाइयों के विरुद्ध, जो उनके वतन को हडपना चाहते थे, उत्तेजना का प्रचार किया। अब्दुर्रहमान ने भी इस समय जिहाद (धर्म युद्ध) के ऊपर एक सैद्धान्तिक लेख प्रकाशित किया था। इसी समय इंग्लैंड में टर्की सुल्तान के विरुद्ध जो मुसलमानों का मुखिया था, उनके ग्रार्मिनिया निवासियों पर अत्याचार करने के कारण, भयंकर विषवमन किया जा रहा था। इसलिये कबाइलियों को इससे ग्रौर भी ग्रधिक उत्तेजना मिली।

उत्तरी पश्चिमी सीमा का युद्ध जून १८९७ में ग्रारम्भ हुग्रा। कबाइलियों ने टोची घाटी में ग्र गरेज एजेण्ट ग्रौर उसके रक्षक दल पर ग्राक्रमण कर दिया। जौलाई में स्वात के लोगों ने अंग्रेजो के चकदरा ग्रौर मालकन्द चौकियों पर भयंकर ग्राक्रमण किया। ग्रगस्त में काबुल नदी के उत्तरी प्रान्त में रहने वाले लोगो ने पेशावर के समीप नदी के दक्षिण ग्रौर खैबर दर्रे के निकट विद्रोह करने ग्रारम्भ कर दिये। ग्रफरीदी लोगों ने समान चट्टान की चौकियो को घेर लिया। इनमें से एक चौकी र निवासी सैनिको ने भारतीय वीरता का परिचय दिया ग्रौर ग्रपना ड्यूटी पर ही लडता हुग्रा एक एक सैनिक काम ग्राया। ग्रलीमस्जिद ग्रौर लन्डीकोतल के ग्रंग्रेजी र्गों पर भी उनका ग्रधिकार हो गया।

इस प्रकार समस्त पठान देश-विद्रोह की लपटो में जल रहा था। इस भयंकर विद्रोह ज्वाला को शान्त करने के लिये एक विशाल सेना एकत्रित की गई। दो भयंकर ग्राक्रमण किये गये। पहला ग्राक्रमण मुहम्मद लोगो के विरुद्ध किया गया। ब्लन्डन वुड की सेना ने चकदरा को जीतकर शत्रुग्रो के देश में प्रवेश किया। भयंकर युद्ध के पश्चात जनवरी १८९८ में मोहम्मदो ने शस्त्र डाल दिये दूसरा ग्राक्रमण पेशावर के दक्षिण पश्चिम में ग्रफरीदी प्रान्त में, टिराह घाटी में किया गया। इस प्रान्त से यूरोपियन ग्रभी तक पूर्णरूप से जानकारी नहीं रखते थे। ३५००० सेना लेकर विलियम लोकहार्ट रवाना हुग्रा। ग्रक्टूबर में दरगाई की ऊँचाइयों पर कठिन ग्राक्रमण किये गये। ग्रंगरेजो के १९९ सैनिक हताहत हुये। सम्पूर्ण घाटी को खाली कर दिया गया ग्रौर सब गाँव को जिनकी किलेबन्दी हो रही थी नष्ट भ्रष्ट कर डाला गया। परन्तु ग्रफरीदी लोग बड़े साहस ग्रौर वीरता से ग्रन्त तक छापामार प्रणाली से युद्ध करते रहे ग्रौर इस प्रकार ग्रंगरेजो को धन तथा जन की भयंकर हानि पहुँचाई। दिसम्बर १८९७ में लौटती हुई ग्रगरेजी सेना को बडी क्षति उठानी पडी। परन्तु ग्रफरीदी लोग समझ गये थे कि इस प्रकार निरन्तर युद्ध करने से उनकी हानि होगी ग्रौर इसलिये जब १८९८ की बसन्त ऋतु में ग्रगरेजो ने फिर

की अभिलाषा भी थी। मुल्ला लोगो ने मुस्लिम जनता में, जो स्वभावतः बडी युद्धप्रिय थी, वास्तविक ईसाइयों के विरुद्ध, जो उनके वतन को हडपना चाहते थे, उत्तेजना का प्रचार किया। अब्दुर्रहमान ने भी इस समय जिहाद (धर्म युद्ध) के ऊपर एक सैद्धान्तिक लेख प्रकाशित किया था। इसी समय इङ्गलैड में टर्की सुल्तान के विरुद्ध जो मुसलमानो का मुखिया था उसके ईसाई प्रजाओं निवासियो पर अत्याचार करने के कारण, भयकर विप्लव किया जा रहा था। इसलिये कबाइलियो को इससे और भी अधिक उत्तेजना मिली।

उत्तरी पश्चिमी सीमा का युद्ध जून १८९७ में आरम्भ हुआ। कबाइलियो ने टोची घाटी में अगरेज एजेण्ट और उसके रक्षक दल पर आक्रमण कर दिया। जोलाई में स्वात के लोगो ने अग्रेजो के चकदरा और मालकन्द चौकियो पर भयकर आक्रमण किया। अगस्त में काबुल नदी व उत्तरी प्रान्त में रहने वाले लोगो ने पेशावर के समीप नदी के दक्षिण और खैबर दर्रे के निकट विद्रोह करने आरम्भ कर दिये। अफरीदी लोगो ने समान चट्टान की चौकियो को घर लिया। इनमें से एक चौकी पर सिक्ख सैनिको ने भारतीय वीरता का परिचय दिया और अपनी ड्यूटी पर ही लडता हुआ एक एक सैनिक काम आया। अलीमस्जिद और लन्डीकोतल के अँगरेजी दुर्ग पर भी उनका अधिकार हो गया।

इस प्रकार समस्त पठान देश विद्रोह की लपटो में जल रहा था। इस भयकर विद्रोह ज्वाला को शान्त करने के लिये एक विशाल सेना एकत्रित की गई। दो भयकर आक्रमण किये गये। पहला आक्रमण मुहम्मद लोगो के विरुद्ध किया गया। बिन्डन वुड की सेना ने चकदरा को जीतकर शत्रुओ के देश में प्रवेश किया। भयकर युद्ध के पश्चात जनवरी १८९८ में मोहम्मदो ने शस्त्र डाल दिये दूसरा आक्रमण पेशावर के दक्षिण पश्चिम में अफरीदी प्रान्त में, टिराह घाटी में किया गया। इस प्रान्त मे यूरोपियन अभी तक पूर्णरूप से जानकारी नही रखते थे। ३५००० सेना को लेकर विलियम लोकहार्ट रवाना हुआ। अक्टूबर में दरगाई की ऊँचाइयो पर सफल आक्रमण किये गये। अगरेजो के १९९ सैनिक हताहत हुये। सम्पूर्ण घाटी को छलनी कर दिया गया और सब गाँव को जिनकी किलेबन्दी हो रही थी नष्ट-भ्रष्ट कर डाला गया। परन्तु अफरीदी लोग बडे साहस और वीरता से अन्त तक छापामार प्रणाली से युद्ध करते रहे और इस प्रकार अगरेजो को धन तथा जन की भयकर हानि पहुँचाई। दिसम्बर १८९७ में लौटती हुई अगरेजी सेना को बडी क्षति उठानी पडी। परन्तु अफरीदी लोग समझ गये थे कि इस प्रकार निरन्तर युद्ध करने से उनको अधिक हानि होगी और इसलिये जब १८९८ की बसन्त ऋतु में अगरेजो ने फिर

आक्रमण किया तो उन्होंने हथियार डाल दिये और जो जुर्माना उन पर किया गया था, उसका भुगतान कर दिया। इस युद्ध में उनकी गणना के अनुसार अंगरेजों के १२०० आदमी हताहत हुए परन्तु अतुल धन-राशि व्यय करनी पड़ी। १८५७-की राज्य-क्रान्ति के पश्चात् अब तक अंगरेजो की सेना की इतनी कठिन परीक्षा नही हुई थी।

प्रश्न.

१. १८६६ ई० दुर्भिक्ष तथा प्लेग पर एक टिप्पणी लिखो।

२. सीमान्त-समस्या क्या थी—१८६८ ई० तक अंग्रेजो ने इस समस्या के सम्बन्ध में क्या किया ?

अध्याय ३८

(अ) लार्ड कर्जन तथा पश्चिमोत्तर सीमा-नीति

जनवरी १८९९ में लार्ड एल्गिन के पश्चात् लार्ड नेथनील कर्जन भारत का वाइसराय बन कर आया। भारत आने के पूर्व उसने इग्लैड की पार्लियामेंट तथा मन्त्रिमण्डल में बडा नाम प्राप्त कर लिया था। उसकी अवस्था इस समय ४० वर्ष की थी और वह लार्ड सेलिसबरी के शासनकाल में भारतवर्ष तथा परराष्ट्र-विभाग में अण्डर-सेक्रेटरी रह चुका था। वह अपनी इच्छा से आयरलैंड का लार्ड बना था, जिससे यदि वह चाहे तो रिटायर होने के पश्चात् भी हाउस आव कामन्स का सदस्य बना रहे। उसकी हार्दिक इच्छा थी कि वह भारत का गवर्नर जनरल नियुक्त किया जाय। वाइसराय बनने से पहले वह चार बार भारत आ चुका था और उसने लका, अफगानिस्तान, चीन, फारिस, तुर्किस्तान, जापान तथा कोरिया आदि देशो का भी पर्यटन किया था। अन्तिम चार देशों के शासकों के साथ उसने व्यक्तिगत रूप से भेंट की थी। एशिया की समस्या पर वह तीन महत्वपूर्ण पुस्तकें लिख चुका था। सक्षेप में भारत का इतना वृहत् ज्ञान रखने वाला और कोई आदमी उससे पहले वाइसराय नही बना था। वह स्वय बहुत अधिक काम करने वाला था और अपने सहयोगियों तथा आश्रितों से भी बहुत अधिक काम लेता था। शासन का ऐसा कोई विभाग नही था जिस पर उसकी छाप न लगी हो, परन्तु उसने कुछ ऐसे कार्य भी किये जिनके कारण उसकी इग्लैड में और विशेषकर भारत में बडी आलोचना की गई।

नई सीमान्त-नीति—लार्ड कर्जन की परराष्ट्र-नीति का सम्बन्ध विशेषकर उत्तरी पश्चिमी सीमांत प्रदेश, अफगानिस्तान, फारिस तथा तिब्बत से रहा। इन समस्याओं में उसको सर्वप्रथम कबाइली प्रान्तों की व्यवस्था की ओर ध्यान देना पडा। जैसा कि गत अध्याय में उल्लेख किया जा चुका है, टिरहा आक्रमण १८९८ की वसन्त ऋतु में समाप्त हो गया था, परन्तु एक वर्ष पश्चात् तक जब कर्जन ने अपना पद सम्भाला १०,००० सैनिक चित्राल, टोची घाटी, लन्दी कोतल तथा खैबर दर्रे में डटे हुये थे। पार्लियामेंट में लार्ड कर्जन ने चित्राल-सम्बन्धी एलगिन की नीति तथा चित्राल से पेशावर तक सडक बनवाने का समर्थन किया था और लोग

उसको 'आगे बढ़ो' नीति का सबसे बड़ा प्रतिपादक तथा समर्थक मानते थे। परन्तु भारत में आने पर उसने प्रकट किया कि इस नीति को चरम सीमा तक ले जाने वालों के साथ उसकी सहानुभूति नहीं थी। उसने गत वर्षों की सीमान्त नीति को सर्वथा ही बदल डाला था, क्योंकि अब त्रिचाल, क्वेटा तथा अन्य चौकियों को खाली करने का ही प्रश्न नहीं रह गया था। धीरे-धीरे ब्रिटिश सेना का अधिकांश खैबर दर्रे कुर्रम घाटी, वजीरस्तान तथा साधारणतया कबाइली प्रान्तों से हटा लिया गया, यद्यपि मालकन्द तथा दरगाई आदि चौकियों को अक्षुण्ण रक्खा गया। उनके स्थान पर कबाइली लोगों की सेना को ब्रिटिश अफसरों के मातहत रक्खा गया। खैबर दर्रे की रक्षा के लिए, उदाहरणतया १९१४ तक अफरीदी सेना रक्खी गई। ब्रिटिश सीमा के भीतर सेना की वृद्धि करके मुख्य-मुख्य स्थानों पर उसको रक्खा गया और सैनिक दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण रेलवे लाइन खैबर दर्रे तक दरगाई और जमरूद तक और कुर्रम घाटी के लिये थल तक बना दी गई। कबाइलियों के लिये गोला-बारूद की मात्रा सीमित करने का प्रयत्न किया गया और उनको स्पष्ट रूप से यह समझा दिया गया कि अङ्ग्रेज उनकी स्वतन्त्रता का सम्मान करेंगे और उनको चाहिए कि वे ब्रिटिश राज्य पर धावे न किया करें। इस नीति की सफलता इस बात से प्रकट हो जाती है कि १८९७—९८ के पश्चात् दस वर्ष तक शान्ति-काल बना रहा।

उत्तरी-पश्चिमी सीमाप्रान्त :—अब तक उत्तरी-पश्चिमी सीमा के प्रान्त पंजाब के लेफ्टिनेंट गवर्नर के अधीन थे और भारत सरकार का नियन्त्रण उन पर सीधा नहीं था। यह व्यवस्था उस समय से चली आ रही थी जब पंजाब स्वयं एक सीमाप्रान्त था और उसका शासन-प्रबन्ध अधिकतर उन जिला अफसरों के हाथ में छोड़ दिया गया था जिनको बहुत अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त थी। उनके सम्बन्ध जनता के साथ बड़े गहरे तथा व्यक्तिगत होते थे और जब तक यह प्रणाली सफलतापूर्वक कार्य करती रही, तब तक ये अफसर कलकत्ता या शिमला किसी की भी अधिक नहीं सुनते थे। परन्तु जब ब्रिटिश साम्राज्य की पश्चिमोत्तर सीमा और आगे को बढ़ी तो पंजाब का भी अधिकांश भाग सुव्यवस्थित प्रान्तों की भाँति कानून और व्यवस्था के अन्तर्गत आ गया। लार्ड लिटन ने, जैसा कि पहले भी उल्लेख किया जा चुका है, इन सीमाप्रान्तों को ऐसे अफसरों के अधिकार में रखने का प्रस्ताव रक्खा था जिन पर सर्वोच्च सत्ता का सीधा नियन्त्रण हो, परन्तु यह प्रस्ताव कार्यान्वित नहीं किया जा सका। १९०१ में लार्ड कर्जन ने इसको कार्य रूप में परिणत किया। पंजाब के सिन्ध नदी के पश्चिम के प्रान्तों को मालकन्द, खैबर, कुर्रम,

टोची आदि से मिलाकर ४०००० वर्गमील के क्षेत्रफल का एक पृथक् पश्चिमोत्तर प्रान्त बनाया गया और भारत सरकार के अधीन एक चीफ कमिश्नर के सुपुर्द कर दिया गया। उसी समय गडबड दूर करने के लिये पुराने उत्तरी-पश्चिमी प्रान्त का नाम बदल कर 'सयुक्त प्रान्त व अवध' कर दिया गया। उस समय इस परिवर्तन का भी विरोध किया गया था। नया प्रान्त बनने से पजाब के कुछ अफसरो को अपनी शक्ति घट जाने से बडा दु ख हुआ उन लोगो ने बडा विरोध किया था।

अफगानिस्तान :—पश्चिमोत्तर सीमा पर शान्ति और व्यवस्था स्थापित हो जाने से अफगानिस्तान के साथ सम्बन्ध भी अपेक्षाकृत अच्छे हो गये। १८९७—९८ के पश्चात् ये सम्बन्ध बडे बुरे हो रहे थे। अमीर बडी विकट परिस्थिति म था। यद्यपि अनेको अगरेजो ने अब्दुर्रहमान पर यह दोषारोपण किया था कि वह गुप्तरीति से कबाइलियो में उत्तेजना फैला रहा था, परन्तु यह अपराध निराधार था। कबाइलियो ने स्वय उससे प्रार्थना की थी और स्वय उसके देशवासी प्रसन्नतापूर्वक अराजकता से लाभ उठाने के बडे इच्छुक थे। परन्तु अब्दुर्रहमान की विजय हुई और उनको अपने नियत्रण में बनाये रखना उसके लिए कुछ कम श्रेय की बात नही थी। एक महत्वपूर्ण घोषणा में उसने उनको शान्ति बनायें रखने का आदेश दिया था और कहा कि यह आन्दोलन जेहाद या धार्मिक युद्ध नही था। उसने घोषणा की कि जब धार्मिक युद्ध का उपयुक्त समय आवेगा, वह स्वय इसका ऐलान कर देगा और उनका नेता बनकर युद्ध में आगे चलकर भाग लेगा। १९०० में उसने अपना आत्म-चरित्र प्रकाशित किया। नि सन्देह उनका दृष्टिकोण अगरेजो के दृष्टिकोण से स्वाभाविक रूप से भिन्न था, परन्तु ब्रिटिश नीति की जो शिकायतें उसने की हैं उनसे अगरेजो के साथ मित्रता बनाये रखने का महत्व सिद्ध होता है। उसका कहना था कि अगरेजो की उसके देश के प्रति नीति कभी स्थायी न रही वरन् उसमें समय समय पर परिवर्तन होता रहता था। ग्रेट ब्रिटेन को चाहिये कि वह अपने मित्र को रूसी आक्रमण के विरुद्ध अधिक से अधिक भौतिक एव नैतिक सहायता देता। उसको कबाइली प्रान्तो को अपने राज्य में सम्मिलित करने तथा दो बडे मुसलमानी राज्यो—टर्की और फारिस से मित्रता करने की आज्ञा होनी चाहिये। इस योग्य शासक का देहान्त १९०१ में हो गया। उसकी योग्यता एव सर्वप्रियता का सबसे बडा सबूत यही था कि उसके पश्चात् उसका पुत्र हबीबुल्ला शान्तिपूर्वक उसका उत्तराधिकारी स्वीकृत कर लिया गया और उसके अनेक पुत्रो में कोई गृहयुद्ध नही हुआ, जो अफगान इतिहास की एक नई और आश्चर्यजनक बात थी। नये अमीर के साथ अगरेजो के सम्बन्ध आरम्भ में इतने अच्छे नही थे, जितने कि उसके

पिता के साथ थे। अंगरेजी सरकार अब्दुर्रहमान के साथ की गई सन्धि को व्यक्तिगत मानती थी और यह चाहती थी कि नये अमीर के साथ संधि भी नई की जानी चाहिए। हबीबुल्ला का कहना था कि सन्धि दो देशों के बीच में थी और इसलिये उसका नया करना आवश्यक नहीं था। कुछ समय के लिए भारतवर्ष और अफगानिस्तान के बीच सम्बन्ध बन्द रहा और अमीर ने अपनी वार्षिक सहायता भी लेना बन्द कर दिया। निस्सन्देह उनकी कुछ आन्तरिक कठिनाइयां थी। तीन वर्ष पश्चात् नवम्बर १९०४ में जब लार्ड कर्जन इंग्लैंड में था तो स्थानापन्न वाइसराय लार्ड एम्पथिल ने सर लुई डेन को एक मिशन पर काबुल भेजा। यह मिशन जो काबुल में १२ दिसम्बर १९०४ से २९ मार्च १९०५ तक रहा, इस बात में सफल रहा कि अमीर के साथ अच्छे सम्बन्ध स्थापित हो गये, परन्तु कुछ ऐसी रिआयतों के आधार पर, जिनके कारण कुछ समालोचकों की दृष्टि में अंगरेजों की साख तथा मान को ठेस लगी, हबीबुल्ला ने अपने आपको 'हिज मैजेस्टी' (महाराज) कहलवाया। अन्त में सन्धि-सम्बन्धी उसी का दृष्टिकोण स्वीकार किया गया और उसने भी अपनी अब तक आर्थिक सहायता ले लेने की अनुमति दे दी।

फारिस के साथ सम्बध :—लार्ड कर्जन से पहले गत बीस वर्षों में भारत सरकार की परराष्ट्र नीति का मुख्य सम्बन्ध मध्यपूर्व और विशेषकर फारिस की खाडी से रहा था। ग्रेट ब्रिटेन का इस खाडी में प्रभाव सदा से बडा विचित्र रहा था। अंगरेजों ने बडी दूरदर्शिता से काम लेकर कभी भी अपना कोई सुनिश्चित अधिकार इस पर प्रकट नहीं किया था और उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक आकर उनका अधिकार पूर्ण हो गया था। सत्रहवी शताब्दी में यह खाडी अंग्रेजों को व्यापारिक दृष्टि से बडी महत्वपूर्ण रही थी। यहां पर रहने वाले समुद्री डाकुओं को समाप्त करके तथा यहाँ पर रक्षार्थ पुलिस का कार्य करते हुए १८२३ से अग्रेजों ने इसमें प्रत्येक जाति के जहाजों को स्वतन्त्र रूप से आने-जाने दिया था। भारत के लिए समुद्री मार्ग को सुरक्षित रखने के विचार से अंग्रेजों को अदन से बिलोचिस्तान तक समुद्र तट की देख-भाल रखनी पडती थी, परन्तु अब तक किसी भी स्वतन्त्र मुसलमानी राज्य के साथ हस्तक्षेप नहीं किया गया था। इसी प्रकार खाडी के किसी ओर भी उन्होंने कोई स्थलीय आधिपत्य स्थापित नहीं किया था; परन्तु वह किसी यूरोपियन शक्ति को भी ऐसा नहीं करने दे सकते थे। १८९८ में एक फ्रेंच राजनीतिज्ञ ने अपनी व्यवस्थापिका सभा में यह घोषणा की कि ग्रेट ब्रिटेन का फारिस की खाडी में अकेले ही शान्ति बनाये रखने और अरब, फारिस तथा टर्की के सरदारों के पारस्परिक झगडों का निपटारा करने का अधिकार यूरोप की किसी भी शक्ति ने

स्वीकार नही किया है। इस कथन में यद्यपि वास्तविकता पर पर्दा डाला गया था तो भी एक तथ्य था और इसके पश्चात् ११ वर्ष तक फ्रान्स, रूस, जर्मनी तथा टर्की अपनी कूटनीतिक चालो द्वारा अगरेजों के गुप्त अधिकारो की मान्यता की परीक्षा लेते रहे। १८९८ में अमन के सुल्तान ने १८९१ के एक गुप्त समझौते के विरुद्ध मसकत से ५ मील दक्षिण-पूर्व में 'जिसा' बन्दरगाह पर फ्रान्स को अपने जहाजो के लिए कोयला पानी लेने का स्टेशन बनाने के और इसकी किलबन्दी करने का अधिकार दे दिया। एक वर्ष पश्चात् जब इसका पता चला तो लार्ड कर्जन ने कलकत्ता से एक जहाजी बेडे का दस्ता रवाना किया और सुल्तान को उसके राजमहल को तोपो से उडा दने का भय दिखा कर फ्रान्स को दिया गया अधिकार वापिस करा दिया। इस के पश्चात् लन्दन तथा पेरिस में जो बातचीत चली, उसमें फ्रास के दृष्टिकोण को प्रथम राज्य में १८६२ की एक सन्धि के अनुसार अमन राज्य में दोनो (इग्लैड और फ्रान्स) में से किसी को भी भूमि सम्बन्धी अधिकार स्थापित करने का अधिकार नहीं था। १९०० में रूस के भी ऐसे ही एक प्रयत्न को विफल किया गया। खाडी के सिरे पर कोवीत नामक एक बडा सुन्दर बन्दरगाह है। वहाँ के शासको को 'शेख मुबारक' की उपाधि प्राप्त है। टर्की उस पर अपना अधिकार स्थापित करना चाहता था, परन्तु अगरेजो ने ऐसा न होने दिया और फिर १८९९ में 'शेख मुबारक' के साथ एक समझौता करके उसको इस बात के लिए बाध्य किया कि वह किसी भी विदेशी शक्ति के साथ कोई भी रिआयत न करे। फलस्वरूप जब जर्मनी ने १९०० में अपनी बर्लिन बगदाद' रेल के लिए स्टेशन बनाने के लिए स्थान की प्रार्थना की तो उसकी यह प्रार्थना ठुकरा दी गई। १९०३ में ब्रिटिश परराष्ट्र सेक्रेटरी लार्ड लेन्स डाउन ने यह महत्त्वपूर्ण घोषणा की कि यदि कोई शक्ति फारिस की खाडी में किसी भी स्थान पर अपना अधिकार स्थापित करने की चेष्टा करेगी तो अग्रेज जाति अपनी पूरी शक्ति से उसका सामना करेगी।

इस घोषणा की आवश्यकता उपरोक्त घटनाओ के कारण ही नही हुई, वरन् इसका एक बडा कारण यह भी था कि फारिस का साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो रहा था। यद्यपि दक्षिणी फारिस में व्यापार का अधिकाश अब भी अंगरेजो के हाथ में था तो भी सम्पूर्ण देश में गत कुछ वर्षों से उनका प्रभाव कम होता जा रहा था। १८८७ में सर हैनरी ड्रमन्ड वुल्फ को तेहरान में ब्रिटिश मिनिस्टर के पद पर नियुक्ति होने से अग्रेजो का गिरता हुआ सम्मान बहुत कुछ सँभल गया था, परन्तु फारिस साम्राज्य के उत्तरी प्रान्त में अग्रेज रूस का मुकाबला नही कर सकते थे। खीवा और बुखारा के पतन के पश्चात् रूस की सीमा २०० मील तक फारिस की सीमा से आ मिली

थी। ट्रांस केस्पियन रेलवे बन जाने और वाल्गा नदी को जहाजों के चलने के योग्य बनाये जाने पर उत्तरी तथा मध्य फारिस का अधिकांश व्यापार रूसियों के हाथ में चला गया था। परन्तु रूस की व्यापारिक नीति अभी तक एकाधिकार तथा प्रतिबन्ध के नियमों में विश्वास करती थी। फारिस में रेलों के बनने तथा देश की उन्नति के अन्य साधनों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था। राजनैतिक एवं व्यापारिक दृष्टिकोण से उत्तरी फारिस में अधिकाधिक रूस का प्रभुत्व स्थापित हो रहा था। क्योंकि फारिस की उत्तरी सीमा सुनिश्चित नहीं थी, इसलिए उसको सरलता से ही भंग किया जा सकता था। फारिस की राजधानी तेहरान रूसी सीमा से लगभग १०० मील के अन्तर पर थी और फारिस की सबसे अधिक महत्वपूर्ण सेना फारिसी कज्जाकों की थी जिसके अफसर रूसी लोग थे। सम्भवतः यदि दक्षिण फारिस में इंग्लैंड का प्रभाव न होता तो सम्पूर्ण देश को जार-साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया जाता। लार्ड कर्जन की अनेकों वर्षों से यह धारणा थी कि फारिस में अंग्रेजी प्रभाव को अधिक विस्तृत और प्रबल बनाना चाहिये। १६०३ में फारिस की खाड़ी में जाना, खाड़ी के बन्दरगाहों और देश के भीतरी व्यापारिक केन्द्रों में दूतावास स्थापित करना, सर हैनरी मैकमेहोन की अध्यक्षता में सीमा निर्धारण के लिए सीस्तान में मिशन का जाना, तथा सीस्तान तक एक व्यापारिक मार्ग बनाने के लिए क्वेटा से नश्की तक रेल बनाने की योजना तैयार करना ऐसे कार्य थे जो ब्रिटिश प्रभाव को बढ़ाने के विचार से किये गये थे। लार्ड कर्जन की इस उत्तेजक नीति की, जो इंग्लैंड की सरकार की भी नीति थी, कड़ी आलोचना की गई है। लार्ड कर्जन का कहना था कि फारिस में ब्रिटिश प्रभाव के सर्वथा लुप्तप्राय हो जाने का भय था। उसकी इस कार्यवाही का इंग्लैंड के लिए लाभकारी परिणाम यह हुआ कि दूसरी शक्तियों ने अपने अधिकार स्थापित करने के प्रयत्नों को त्याग दिया।

(आ) तिब्बत-समस्या

लार्ड कर्जन की पश्चिमोत्तर सीमानीति निस्सन्देह सफल रही, परन्तु तिब्बत समस्या के सुलझाने में उसने जिस नीति का आश्रय लिया, उसकी कड़ी आलोचना की गई और उसका परिणाम भी सर्वथा असन्तोषजनक ही रहा।

तिब्बत की प्राकृतिक बनावट :—तिब्बत का पठार हिमालय पर्वत के उत्तर में फैला हुआ है। इसकी पश्चिमी तथा दक्षिणी सीमा लगभग १००० मील तक काश्मीर, पंजाब, गढ़वाल, संयुक्तप्रान्त, नेपाल, सिक्किम, भूटान, पूर्वी बंगाल तथा ऊपरी ब्रह्मा की सीमा से मिली हुई है। इसके पूर्व में चीन साम्राज्य और उत्तर में पूर्वी तुर्किस्तान है। इसका क्षेत्रफल लगभग फ्रांस और जर्मनी के संयुक्त क्षेत्रफल के

समान है; परन्तु इसकी जनसख्या कोई ४० लाख के लगभग होगी। ससार का और कोई इतना बडा देश इतनी अधिक औसत ऊँचाई पर नही है। इसकी राजधानी लासा समुद्र के धरातल से १२,६०० फुट की ऊँचाई पर है। फरीनगर १५००० फीट की ऊँचाई पर स्थित है। यग हजबेंड की साहसिक यात्रा के समय कारोला के स्थान पर १८-१६ हजार फुट की ऊँचाई पर सैनिक कार्यवाही करनी पडी थी। तिब्बत पठार की ऊँचाई कही-कही पर २४ हजार से २५ हजार फीट तक हो गई है। यद्यपि यत्र-तत्र उसमें नीची-नीची घाटियाँ भी हैं। देश का अधिकाश भाग वर्ष के बारह महीने बरफ से ढका रहता है और मीलो तक कोई वृक्ष दिखलाई नही पडता और तेज आँधियाँ चला करती हैं। परन्तु घाटियाँ बडी बडी उपजाऊ हैं और उनमें फसलें लहलहाती हुई दृष्टिगोचर होती हैं। यातायात के साधन बडे दुर्गम हैं। किसी भी प्रकार की गाडियाँ वहाँ पर चल ही नही सकती। व्यापारिक मार्ग ऐसी ऐसी ऊँचाइयो पर होकर जाते हैं, जहाँ पर वायु तेज होने के कारण मनुष्य चेतनाहीन होने लगते हैं। प्रकृति ने ही देश को सबसे पृथक् बनाया है। फिर यहाँ की सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक व्यवस्था शेष मानव जाति के विशेष सम्पर्क को अधिक पसन्द नही करती।

राजनीतिक दशा :—तिब्बत-निवासी बौद्ध धर्म के मानने वाले हैं। वहाँ के राज्य का आधार धर्म है और शासन की बागडोर कुलीन वर्ग के हाथ में है। कुलीन तन्त्र के दो मुख्य अधिपति होते हैं। लासा का दलाईलामा और ताशिहुन्पो मठ का ताशी लामा। इनको बुद्ध का अवतार माना जाता है। जब इनमें से किसी का देहान्त हो जाता है तो उसकी मृत्यु के समय पैदा हुए नवजात शिशुओ में से कोई एक उसका उत्तराधिकारी नियुक्त किया जाता है। जब तक वह वयस्क होता है, तब तक शासन कार्य एक कौंसिल के हाथ में रहता है। आध्यात्मिक विषयो में ताशीलामा बडा माना जाता है, परन्तु राजनैतिक क्षेत्र में दलाईलामा का प्रभुत्व है। पिछले कई सौ वर्षों में ऐसा देखा गया है कि दलाईलामाओ की मृत्यु अधिकतर उनके वयस्क होने के पूर्व ही हो जाती है और इसलिए राजकार्य धार्मिक कौंसिल के हाथ में ही चलता रहता है। दलाईलामा या वह कौंसिल जो उसका प्रतिनिधित्व करती है तथा कार्यकारिणी को सलाह देने के लिए एक राष्ट्रीय सभा होती है, जिसको सोग दु कहते हैं और जिस पर पतिपय वशपरम्परागत सरदारो एव लासा के तीन सठो के लामाओ का नियन्त्रण रहता है। अठारहवी शताब्दी के प्रारम्भ से ही तिब्बत पर चीन का प्रभुत्व रहा है और चीन के दो बडे अफसर जो अमवन कहलाते हैं, लासा में रहते हैं तथा तिब्बत की सरकार पर नियन्त्रण करते हैं। ये अफसर

रेजीडेण्ट, राजदूत तथा वाइसराय तीनों का कार्य करते हैं। सम्पूर्ण देश में मठों का जाल सा बिछा हुआ है, जो देश के सामाजिक जीवन पर पूरा नियन्त्रण रखते हैं। मनुष्यों का जीवन बड़ा सादा है और उनका मुख्य उद्यम खेती है। तिब्बत का आदमी अपने जीवन से सन्तुष्ट प्रतीत होता है, और वह आज के मानव की भांति व्याकुल एवं चिन्तातुर नहीं दिखाई देता।

तिब्बत के साथ अंग्रेजों का सम्बन्ध १७७४-७५ से प्रारम्भ होता है। जब वारेन हेस्टिंग्ज ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के एक लेखक बेगिल को ताशीलामा से भेंट करने के लिए भेजा था, उसका बड़ा अच्छा स्वागत किया गया। फिर १७८३ में सेम्युअल टर्नर को भेजा गया, परन्तु उसका इतना अच्छा स्वागत नहीं किया गया और तिब्बत निवासियों ने अंग्रेजों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए अरुचि का परिचय दिया। १८११-१२ में मेनिंग, जो एक स्वतन्त्र राजनीतिज्ञ था ल्हासा तक पहुँचने और बालक दलाईलामा से भेंट करने में सफल हो गया। १८८५-८६ में जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है, चीन सरकार ने अनिच्छा से अंग्रेजों को तिब्बत में एक व्यापारिक मिशन भेजने की अनुमति दे दी थी, परन्तु बाद में चलकर यह अधिकार अंगरेजों की ऊपरी ब्रह्मा को अपने साम्राज्य में सम्मिलित करने का अधिकार प्राप्त करने के बदले त्यागना पड़ा था। १८८७ में तिब्बत निवासियों ने शिकम के सरक्षित राज्य पर आक्रमण कर दिया था, परन्तु अगले वर्ष उनको निकाल बाहर किया गया। १८९० में ग्रेट ब्रिटेन और चीन की एक सम्मिलित कान्फ्रेंस में तिब्बत और शिकम की विवादग्रस्त सीमा का निपटारा किया गया और दोनों देशों का एक सम्मिलित कमीशन व्यापार की सुविधाओं को बढ़ाने और सीमावर्ती चरागाहों के प्रश्न का निपटारा करने के लिए नियुक्त किया गया। उन दिनों तिब्बत तथा शिकम दोनों देशों के लोग एक-दूसरे की सीमा के भीतर अपने अपने जानवरों को चरा लिया करते थे। १८९३ में कमीशन ने एक और सुनिश्चित समझौता किया और तिब्बत शिकम सीमा पर यातुंग में एक व्यापारिक मण्डी की स्थापना की गई। परन्तु कोई व्यावहारिक व्यापार का लाभ न हो सका। चीन वाले नम्रतापूर्वक अफसोस प्रकट करते हुए कहते कि तिब्बत वाले अंग्रेजों के हस्तक्षेप को सहन करने को तैयार नहीं हैं और तिब्बत वाले कहते कि वे चीन की सम्मति के बिना कुछ भी नहीं कर सकते थे।

इसी प्रकार यह अनिश्चितता का वातावरण कुछ समय तक चलता रहा। जिस समय लार्ड कर्जन भारत का वाइसराय बनकर आया, उस समय तिब्बत के राजनीतिक वातावरण में दो मुख्य बातें हो रही थीं। प्रथम तो अमवन लोगों का

तिब्बत के शासन के ऊपर नियन्त्रण ढीला होता जा रहा था। तिब्बत वाले चीन के प्रभुत्व से छुटकारा पाने की बडी उत्कृष्ट अभिलाषा रखते थे और रूस के प्रभाव का स्वागत करने को तैयार थे। दूसरे इस समय दलाईलामा वयस्क होकर स्वयं राज्य करने लगा था। उसने कौंसिल को पृथक् कर दिया था। वह स्वयं बडा योग्य और महत्वाकांक्षी था। उसके ऊपर दोरजिफ नामक एक रूसी प्रजाजन का, जिसने उन्नति करते-करते शासन में एक ऊँचा पद प्राप्त कर लिया था, बडा प्रभाव पडा। इस आदमी को १८९८ में जार की बौद्ध प्रजा से धार्मिक कृत्यों के लिये चन्दा लेने के लिये भेजा गया था। इसके पश्चात् वह कई बार रूस गया और १९०० तथा १९०१ में उसने रूसी सम्राट् से भेंट की। रूसी प्रेस ने इस घटना का, यह कहकर कि तिब्बत में रूस का प्रभाव बढ़ रहा था बडा प्रचार किया। रूस के परराष्ट्र सचिव ने सेंट पीटर्सबर्ग में ब्रिटिश राजदूत को यह आश्वासन दिया कि दोरजिफ की रूस-यात्रा का कोई राजनीतिक महत्व नही था और रूस का जार भी धार्मिक कार्य के लिये आए हुए दूत को प्रत्यक्षतः मिलने से इन्कार भी नही कर सकता था। परन्तु इस घटना से भारत सरकार की बेचैनी बढ़ने लगी। अंग्रेजों को पूर्ण विश्वास था कि दोरजिफ तिब्बत में रूस का एजेण्ट बनकर रहेगा। सम्भवतः दलाईलामा स्वयं ही रूस की ओर झुका हुआ था। हो सकता है दोरजिफ ने दलाईलामा को यह सुझाया हो कि चीन से छुटकारा पाने के लिए किसी महान् शक्ति का आश्रय लिया जाय और उनको इंग्लैंड की अपेक्षा रूस से अधिक रुचि थी, जहाँ पर बहुत-से बौद्ध भी रहते थे। सोग दु ने दलाईलामा की इस नीति का विरोध किया।

लार्ड कर्जन ने इंग्लैंड की सरकार पर तिब्बत को एक मिशन भेजने पर बडा जोर दिया। तिब्बत निवासियों के विरुद्ध अनेकों शिकायतें की गईं कि उन्होंने सिकम-सीमा को भंग किया है, गियागोग में चुंगी-घर स्थापित कर लिया है, जहाँ पर सीमा-स्तम्भ गिरा दिये है, और तिब्बत से यातुंग को जाने वाली एकमात्र सडक को रोक लिया है। इसके अतिरिक्त यह भी कहा गया कि तिब्बत राज्य का इस दशा में रहना भारत के अंग्रेजी साम्राज्य के लिए अहितकर सिद्ध होगा। परन्तु मिशन भेजने के ये सब कारण थोथे थे और यदि दोरजिफ रूस न गया होता, तो इनमें से एक भी शिकायत न की गई होती।

इंग्लैंड की सरकार तिब्बत की ओर प्रगति के विरुद्ध थी। उसका कहना था कि तिब्बत की सरकार चीन की राजनैतिक अधीनता में थी 'और इसलिए चीन पर दबाव डालकर तिब्बत को ठीक मार्ग पर लाना ठीक होगा। इसलिए १९०२ में, जब यह समाचार प्राप्त हुआ कि रूस और चीन के बीच चीन और तिब्बत के सम्बन्ध

में एक समझौता हो गया है तो लार्ड लेन्सडाउन ने रूसी राजदूत से कहा कि लासा भारत की उत्तरी सीमा के बहुत कम अन्तर पर है, जबकि रूस के एशियाई साम्राज्य से यह लगभग १००० मील है। इसलिए रूस की अपेक्षा इंग्लैंड को तिब्बत की समस्याओं में अधिक दिलचस्पी है और यदि रूस ने तिब्बत की आन्तरिक व्यवस्था में कुछ हस्तक्षेप किया तो इंग्लैंड भी आवश्यक कार्यवाही करने के लिए बाध्य होगा। उधर पेकिंग में ब्रिटिश राजदूत ने चीन सरकार से कह दिया था कि यदि चीन ने तिब्बत के सम्बन्ध में किसी और शक्ति से समझौता किया तो ब्रिटिश सरकार अपने हितों की रक्षा के लिए उचित कार्यवाही करने पर बाध्य हो जायगी। लार्ड कर्जन का पूरा विश्वास था कि सेंट पीटर्सबर्ग और लास के बीच यदि सन्धि नहीं तो एक समझौता अवश्य हो गया है और उसने इंगलैंड की सरकार पर सीधा तिब्बत को एक मिशन भेजने पर जोर दिया। कर्जन और उसके समर्थकों की दृष्टि में इंगलैंड रूस की सत्ता को तिब्बत में स्थापित होते नहीं देख सकता था। तिब्बत से होकर भारत पर आक्रमण करना असम्भव था, परन्तु रूस की तिब्बत में उपस्थिति पूर्वी देशों में ग्रेट ब्रिटेन की महत्ता को ठेस अवश्य पहुँचाती। सेक्रेटरी ग्राव स्टेट ने कहा कि जब तक इंगलैंड और रूस में बातचीत चल रही है, तब तक तिब्बत में मिशन का भेजना अनुपयुक्त होगा और इसलिये उसने देरी की इसी बीच रूसी राजदूत ने ब्रिटिश सरकार को आश्वासन दिया कि तिब्बत के सम्बन्ध में कोई समझौता नहीं हुआ था और न कोई रूसी एजेण्ट ही तिब्बत में था। यद्यपि रूस ने यह स्वीकार किया कि तिब्बत चीन साम्राज्य का एक भाग था और वे यह नहीं चाहते थे कि छिन्न भिन्न हो जाय।

सम्पूर्ण स्थिति बडी विकट थी, कर्जन ब्रिटिश सरकार पर 'आगे बढो' नीति को अपनाने का जोर दे रहा था, इंगलैंड की केबिनेट कर्जन के उतावलेपन को रोकने और रूस को असन्तुष्ट न करने का प्रयत्न कर रही थी। अंग्रेजी राजदूत पेकिंग में चीनी सरकार पर दबाव डालने का प्रयत्न कर रहा था, चीन अंग्रेजी हस्तक्षेप से घृणा करता था और तिब्बत पर दबाव डालने में असमर्थ था, परन्तु असमर्थता छिपाने का प्रयत्न कर रहा था, और रूस यह घोषणा कर रहा था कि तिब्बत के उद्देश्य में उनका कोई उद्देश्य नहीं है। परन्तु अंग्रेजो के हस्तक्षेप की सम्भावना पर बेचैन था। अब लार्ड कर्जन ने यह प्रस्ताव रक्खा कि चीन और तिब्बत के साथ खम्बाजोंग नामक स्थान पर, जो सिक्कम सीमा से १५ मील ऊपर की ओर है बातचीत करनी चाहिये और उनसे सन्धि की शर्तों को पूरा करने के लिये कहा जाय और यदि उनके दूत वहाँ पर आये तो ब्रिटिश कमिश्नरों को शान्तसे की ओर बढने का

अधिकार होगा। अब इ गलैंड की सरकार भी चुप लगा गई। उन्होंने एफ० ई० जंग की अध्यक्षता में अनिच्छा से खम्बाजोग के लिये एक मिशन भेजने की आज्ञा दे दी और यद्यपि उन्होने कर्जन के इस प्रस्ताव को मानने से इन्कार कर दिया कि तिब्बत पर लासा में एक अङ्गरेज एजेंट रखने पर जोर दिया जाये, तो भी उन्होंने उस मार्ग का अनुसरण प्रारम्भ कर दिया था जो अन्तिम रूप से उनको लासा विजय की ओर ले जाता है।

जौलाई में कर्नल यग हजबैंड खम्बाजोग पहुँचा, परन्तु यद्यपि चीनी प्रतिनिधि तो वहाँ पर उपस्थित थे, तिब्बत वालो ने कान्फ्रेंस में भाग लेने से इन्कार कर दिया जब तक कि मिशन वापिस सीमा तक न चला जाये। कर्नल यग हजबैंड ने यह स्वीकार किया कि तिब्बतियो की यह माँग सर्वथा उपयुक्त थी और कान्फ्रेंस की कार्यवाही उनके राज्य के भीतर नहीं—वरन् राज्य की सीमा पर होनी चाहिये थी और अ ग्रेजो को उनकी इस उपयुक्त माँग को स्वीकार करना न्यायसगत था। इस प्रश्न पर गतिरोध आरम्भ हुआ और तिब्बतियो ने खम्बाजोग के निकट अपने सैनिक एकत्रित करने आरम्भ कर दिये। अब कर्जन ने इगलैंड सरकार पर और दबाव डाला और अन्त में सरकार ने ग्यान्तसे तक ब्रिटिश सेना के बढाने की आज्ञा दे दी, परन्तु इस शर्त पर क्षति पूर्ति कराते ही यह सेना वापिस बुला ली जायगी। इस पर रूस ने आपत्ति उठाई। परन्तु परराष्ट्र सेक्रेटरी लार्ड लैंसडाउन ने यह आश्वासन दिया कि तिब्बत को ब्रिटिश साम्राज्य में नही मिलाया जायगा और न स्थायी रूप से उस पर आधिपत्य ही स्थापित किया जायेगा।

मार्च १९०४ में ग्यान्तसे की ओर ब्रिटिश सेना ने प्रस्थान किया और ३१ तारीख को तिब्बत की सेना से मुठभेड हुई। गुरु नामक स्थान पर तिब्बत की सेना को बुरी तरह पराजित किया गया। इगलैंड में कर्जन के विरोधियो ने उसके विरुद्ध आन्दोलन खडा कर दिया। तिब्बत वालो ने मार्ग रोक लिया और हटने से इन्कार कर दिया अङ्गरेजी सेना ने अपने आधुनिक अस्त्रो से क्षण भर में ७०० तिब्बतियो को धराशायी कर दिया। ११ अप्रैल को ब्रिटिश सेना ग्यान्तसे जा पहुँची, परन्तु यहाँ भी दलाईलामा ने सधि की बातचीत करने से इन्कार कर दिया। अब लासा की ओर प्रस्थान किया गया। परन्तु अब युद्ध की भयकरता बढने लगी। करोला दर्रे की ऊँचाइयो पर, जहाँ हर सतय बरफ पडी रहती है, अग्रेजो ने तिब्बतियो को परास्त किया। अब दलाईलामा ने भयभीत होकर सन्धि की बातचीत करने के लिए एक के बाद दूसरा मिशन भेजा, परन्तु अब यग हजबेंड ने लासा पहुँचने से पहले बातचीत करने से इन्कार कर दिया। ३ अगस्त को अङ्गरेजी सेना ने लासा के पवित्र तथा

और ब्रिटिश सरकार की सब आज्ञाओं की अवहेलना की। भारत की अंग्रेजी सरकार ने यंग हजबेंड की नीति का समर्थन किया। परन्तु सेक्रेटरी आव स्टेट सेंट जान ब्रोडरिक अपनी आज्ञाओं की इस प्रकार अवहेलना होते देखकर बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने दोबारा सन्धि करने पर जोर दिया। क्षति-पूर्ति का धन ७५ लाख से २५ लाख रुपया कर दिया गया और यह निश्चित किया—यदि तिब्बत की सरकार संधि की अन्य शर्तों का पालन करती रही तो तीन वर्ष तक वार्षिक किश्तों का भुगतान होने पर चुम्बी घाटी खाली कर दी जायगी। ग्यान्तसे के एजेण्ट से लासा जाने का अधिकार छीन लिया गया।

जिन आधारों पर १८७८ में लार्ड लिटन ने अफगानिस्तान में 'आगे बढ़ो' नीति को अपनाया था उन्ही आधारों पर कर्जन ने १९०४ में तिब्बत में यह कार्य-वाही की। दोनो ही अवसरों पर वाइसरायों ने इंगलैंड की सरकार की विशेष परवाह नहीं की और 'आगे बढ़ो' नीति का पूर्ण प्रदर्शन किया। तिब्बत एक स्वतन्त्र एवं शान्ति प्रिय बौद्ध राज्य था। उसका कोई दोष या अपराध नही था। उसका एकमात्र अपराध था उसकी निर्बलता और इसीलिये उसको कर्जन की साम्राज्यवादी लिप्सा का शिकार होना पड़ा। साम्राज्यवादी भेड़ियों को दुर्बल मेमनों द्वारा पानी गंदा करने का बहाना मिल ही जाता है।

(इ) लार्ड कर्जन तथा आंतरिक शासन

दुर्भिक्ष तथा महामारीः—जिस समय लार्ड कर्जन वाइसराय नियुक्त होकर भारत आया, देश में चारों ओर महामारी और दुर्भिक्ष के कारण 'त्राहि माम्' त्राहि माम्' का शब्द गूंज रहा था। १८९९-१९०० जैसा वर्षा का अभाव अब तक नहीं हुआ था। अभी देश १८९६ की आपत्ति से भली प्रकार छुटकारा न पा सका था कि यह नई आपत्ति आ पड़ी और विसूचिका तथा जूड़ी ने अकाल पीड़ितों की दशा को और भी अधिक शोचनीय बना दिया। इन आपत्तियों का प्रभाव ४७५००० वर्ग मील में फैला हुआ था और लगभग ६ करोड़ आदमी इसके पंजे में थे। पंजाब राजपूताना बड़ौदा, बम्बई, मध्य प्रान्त, बरार, हैदराबाद और गुजरात भर में दुर्भिक्ष का आतंक छाया हुआ था। अकेले ब्रिटिश भारत में दस लाख मनुष्य दुर्भिक्ष की भेंट चढ़ गये थे।

१९०० के पश्चात भारत को दुर्भिक्ष से तो छुटकारा मिला परन्तु प्लेग कर्जन के शासन काल भर चलती रही और पहले की अपेक्षा अधिक तीव्र हो गई। प्लेग को नष्ट करने का प्रयत्न भी किया गया परन्तु सब व्यर्थ रहा और कर्जन के शासन

के अन्त तक १ लाख आदमी उसके शिकार बन चुके थे। अप्रैल १६०० में कानपुर में प्लेग-निवारण नियमों के विरुद्ध भयंकर उपद्रव हुआ। सात उत्तेजना फैलाने वालों को मृत्यु दण्ड दिया गया।

आर्थिक व्यवस्थाः—उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में भारत की आर्थिक व्यवस्था बहुत कुछ सुधर गई थी। टकसाल बन्द करने का प्रभाव अब दृष्टिगोचर होने लगा था। १८६६ के पश्चात् भारत के बजट में घाटे के स्थान पर बचत होने लगी थी। इसलिए १८६३ की नीति को अन्त तक चलाने का निश्चय किया गया। १८६६ में एक ऐक्ट पास करके अंग्रेजी सावरन को भारत का कानूनी सिक्का बना दिया गया और एक गिन्नी का मूल्य १४ रुपये नियत किया गया। अब भारत में सोना बाहर से आने लगा और चाँदी के सिक्कों के ढालने से जो लाभ होता था उसको स्वर्ण-रक्षित कोष में एकत्रित किया जाने लगा और जिस समय कर्जन भारत से वापिस गया तो इस कोष में ६० लाख पौंड था। १६०२ में उन प्रान्तों को जिनको दुर्भिक्ष काल में भयंकर हानि उठानी पड़ी थी, भूमि-कर का १२ लाख ५० हजार रुपया वापिस मिल गया और दो वर्षों में नमक-कर की दर भी कम कर दी गई। लार्ड मेयो ने इम्पीरियल सरकार और प्रान्तीय सरकार के बीच जो आर्थिक व्यवस्था स्थापित की थी, उसमें संशोधन कर दिया गया और पंचवर्षीय प्रणाली के स्थान पर इसको चिरस्थायी बना दिया गया।

शासन-सुधारः—लार्ड कर्जन ने अपने शासन-काल में शासन-सुधार की ओर विशेष ध्यान दिया। निस्सन्देह सरकार के अनेकों विभागों की बड़ी परीक्षा की गई। सुधार का यह नियम बनाया गया कि कमेटी नियुक्त करके विभाग-विशेष की बुराइयों पर रिपोर्ट प्राप्त की जाती थी और फिर उस रिपोर्ट के सुधार पर आवश्यक कानून बनाये जाते थे। लार्ड कर्जन ने कमीशनों से बड़ा लाभ उठाया। पहले की भाँति कमीशन की रिपोर्ट के असुविधाजनक प्रश्नों को उठाकर अलमारी में बन्द नहीं किया जाता था, वरन् उसके आधार पर कठोर कार्यवाही की जाती थी। परिवर्तित स्थिति में प्राचीन सिविल सर्विस की प्रथा कुछ अंशों में बेकार और कुछ अंशों में सर्वथा हानिकारक हो गई थी। परन्तु जैसा कि स्वाभाविक है सुधार कैसे ही लाभदायक क्यों न हों कभी भी सर्वप्रिय नहीं होते। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि सुधार करने में कुछ भूल भी की गई और बहुत से सुरक्षित हितों को ठेस भी लगी। परन्तु परिणाम अन्त में अच्छा ही निकला सुधार की आवश्यकता को सबने स्वीकार किया। पुलिस विभाग सबसे अधिक विकृत अवस्था में था। जाँच करने वाले कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में लिखा था कि इसकी व्यवस्था तथा नियन्त्रण सर्वथा

त्रुटिपूर्ण था और सम्पूर्ण विभाग "भ्रष्ट तथा अत्याचारी माना जाता था।" कमीशन की रिपोर्ट ऐसी कठोर एव आलोचनापूर्ण थी कि यद्यपि १६०३ में इस पर हस्ताक्षर किए गये थे परन्तु दो वर्ष तक उनको प्रकाशित नही किया गया। कुछ नियम बना कर सुधार का प्रयत्न किया गया परन्तु अ ग्रेजी सरकार का पुलिस-विभाग अन्त तक भ्रष्ट तथा अत्याचारी रहा।

भूमि-कर-सम्बंधी सुधार :—भारत में अग्रेजी सरकार की भूमि-कर नीति की सदा से ही कडी आलोचना की जा रही थी। आलोचको का तो यहाँ तक कहना था कि सरकार इतना अधिक भूमि-कर वसूल करती है कि लोगो के पास दुर्भिक्ष निवारण के लिए कुछ नही बच रहता और वे कुत्ते-बिल्ली की मौत मरते है। कभी-कभी दुर्भिक्ष का एक प्रबल कारण अधिक भूमि कर ही बन जाता है। सम्भवत. यह आलोचना शत-प्रतिशत सत्य न हो परन्तु भूमि कर सम्बन्धी अनेको बुराइयाँ थी जिनको कर्जन ने स्वय स्वीकृत किया था। दुर्भिक्ष-काल तक में कृषको से अत्याचार करके पूरा और पूरे से भी अधिक भूमि-कर वसूल करने के उदाहरण मिले थे। लगान वसूल करने वाले कृषको की शोचनीय दशा का ध्यान न करके सरकार के प्रति राज्यभक्ति प्रदर्शित करने के लिए बडी कठोरता का व्यवहार करते थे। १६०० में दस रिपोर्ट सिविल अफसरो ने जिनमें एक भारतीय भी था, सेक्रेटरी आफ स्टेट के सम्मुख एक स्मृति-पत्र उपस्थित किया और उसमें उन लोगो ने लार्ड सेलिसबरी के १८७५ के उन शब्दो को याद दिलाया जिनमें उसने अ ग्रेजी सरकार की भावी आर्थिक नीति का प्रतिपादन करते हुए लिखा था कि भारत की सरकार राज्य-कर का अधिकाश भाग दीन किसानो से नही वरन् नगरो से प्राप्त किया जाना चाहिए जहाँ पर पू जी की अधिकता होती है और उसका एक अश व्यर्थ ही नष्ट हो जाता है। उनके निम्नलिखित सुझाव थे —(१) जहाँ पर भूमि कर सीधा कृषको से वसूल किया जाता है वहाँ पर उनके कृषि सम्बन्धी आवश्यक व्यय को निकालकर उनकी आय का आधा भाग कर रूप में लेना चाहिये, (२) जहाँ कर भूमिपतियो से वसूल किया जाता है वहाँ लगान के आधे से अधिक नही होना चाहिए। (३) भूमि-व्यवस्था ३० वर्ष के लिए होना चाहिए, (४) सामान्य मूल्य में वृद्धि होने या सिंचाई के साधनो के कारण भूमि का मूल्य बढ जाने पर ही भूमि कर में वृद्धि होनी चाहिए, (५) भूमि पर और अतिरिक्त स्थानीय कर दस प्रतिशत से अधिक नही होना चाहिए। इन सुझावों तथा अन्य आलोचनाओ का उत्तर भारत की सरकार ने १६ जनवरी १६०२ के 'भूमि-प्रस्ताव' में दिया। एक दो बातो के अतिरिक्त इन सुझावो को यथावत स्वीकार नही किया गया। श्री आर० सी० दत्त ने जो भारत का प्रति-

निधि था, 'भूमि प्रस्ताव' के सम्बन्ध में कहा था—"यदि वाइसराय ने रैय्यतवाड़ी प्रान्तो में सरकार की माँगो की निश्चित् तथा व्यवहारिक सीमाएँ निर्धारित करदी होती और इन प्रान्तो में भूमि-कर की वृद्धि के उचित सुधार की व्याख्या कर दी होती तो सरकार के भूमि-प्रस्ताव से लाखो, करोडो कृषको को आवश्यक सुरक्षा तथा आश्वासन प्राप्त हो जाता।"

संक्षेप में लार्ड कर्जन ने चार प्रकार से भूमि-कर की बुराइयो को दूर करने का प्रयत्न किया। १६०० में पहले ही उसने 'पजाब लैंड एलीनेशन एक्ट' पास करके उन किसानो को भूमि से पृथक् होने से बचा दिया था, जिन्होंने अपनी भूमि साहूकारो को रहन कर दी थी। अब से आगे वश-परम्परागत किसानो की भूमि बेची नही जा सकती थी। इस एक्ट ने पजाब के किसानो को भूमि से बेदखल होने से बचा लिया। १६०२ के लैंड रिजोल्यूशन (भूमि-प्रस्ताव) द्वारा यह निश्चित किया गया कि यदि बन्दोबस्त में भूमि कर बहुत अधिक बढाया जाए तो यह वृद्धि क्रमशः होनी चाहिये और फिर १६०५ के सस्पेन्शन तथा रेमिशन रिजोल्यूशन' (भूमि कर के त्याग तथा भविष्य के लिए छोड देने के प्रस्ताव) में ऐसे नियम बनाये गए कि ऋतु के साथ-साथ सरकार की माँग में परिवर्तन होना चाहिये। तीसरी बात उसने यह की कि कृषको को कम ब्याज पर रुपया देने के लिये सहकारी समितियाँ स्थापित की गई। अन्त में इन्सपैक्टर जनरल आव एग्रीकल्चर (कृषि का सर्वोच्च निरीक्षक) नियुक्त किया गया और एक इम्पीरियल कृषि-विभाग की स्थापना की गई और उसके अधीन कृषि में वैज्ञानिक साधनो द्वारा उन्नति करने के लिए अनुसन्धान सस्था, प्रयोगशालायें तथा प्रयोगात्मक फार्म स्थापित किए गये।

सेना सम्बधी सुधार :—सेना में जब लार्ड किचनर कमाण्डर-इन-चीफ था, देशीय रेजीमेंटों को नए हथियार दिये गये, तोपखाने में अच्छी-अच्छी तोपें रक्खी गई, तथा समस्त सामान ढोने के साधनो की पुनर्व्यवस्था की गई। १६०१ में इम्पीरियल कैडेट कोर स्थापित की गई जिसमें राज-वश एव कुलीन वशो के लडके भर्ती किये जाते थे। भारत की रक्षा के अतिरिक्त अब भारतीय सेनाओ को अन्य बृहत् कार्यों के लिए भी प्रयोग किया जाने लगा था। चीन में बॉक्सर विद्रोहियो और सुमाली लैंड में मुल्ला के विरुद्ध उनको प्रयोग किया गया। दक्षिणी अफ्रीका में भी भारतीय सैनिको ने लेडी स्मिथ पर अधिकार बनाये रक्खा और नेटाल की रक्षा की।

रेल तथा सिंचाई :—कर्जन के शासन-काल में रेलो के ऊपर भी बहुत अधिक व्यय किया गया और ६००० मील लम्बी रेल और बनाई गई। कृषि की

उन्नति के लिए सिंचाई का भी समुचित प्रबन्ध किया गया।

व्यापार तथा व्यवसाय :—कर्जन ने व्यापार और व्यवसाय की उन्नति के लिए एक नया विभाग स्थापित किया जिसको उसने वाइसराय की कौंसिल के छठे सदस्य के अधीन रक्खा। प्राचीन इमारतों तथा स्मृति-चिन्हों को सुरक्षित रखने का भी प्रयत्न किया गया।

शिक्षा सम्बन्धी सुधार :—शिक्षा-समस्या की जाँच करने के लिए कर्जन ने एक कमीशन नियुक्त किया, परन्तु इसमें एक भी भारतीय या गैर सरकारी सदस्य नहीं था। कमीशन की रिपोर्ट शिक्षा के सम्बन्ध में बड़ी निराशा-जनक थी। भारत के विश्वविद्यालयों का मुख्य एवं एकमात्र कार्य केवल परीक्षा लेना था। ये राज्य के नियंत्रण से छुटकारा पाने का प्रयत्न कर रहे थे इसमें कुछ सफलता भी प्राप्त कर ली थी। रटने की प्रथा को प्रोत्साहन दिया जाता था जिसका बालकों के मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव पड़ता था। रटने की यह प्रथा, दुख के साथ लिखना पड़ता है आज तक भी प्रचलित है। भारत की शिक्षा-पद्धति को एक समालोचक ने "मशीन जैसी निर्जीव एवं विकृत" बतलाया है। १९०४ में विश्वविद्यालयों की शासन समितियों की इस विचार से पुनर्व्यवस्था की गई कि ये केवल परीक्षा लेने वाली संस्था न रहकर शिक्षा प्रदान करने वाली सच्ची संस्थाएँ बन जायें और शिक्षकवर्ग मशीन के पुर्जे ढालने के स्थान में सच्ची शिक्षा देने का प्रयास करें। परन्तु इस सुधार का भारतीय सुधार दल (इण्डियन रिफार्म पार्टी) ने विरोध किया और बंग-भंग के प्रश्न पर यह विरोध और भी अधिक तीव्र हो गया था।

पहली जनवरी १९०३ को लार्ड कर्जन ने दिल्ली में एक बड़े शानदार दरबार में एडवर्ड सप्तम के सम्राट होने की घोषणा की। अप्रैल १९०४ में उसकी अवधि समाप्त हो गई परन्तु फिर उसको दूसरी बार वाइसराय नियुक्त किया गया। वह कुछ महीने के आराम के लिए इंग्लैंड गया और उसकी अनुपस्थिति में मद्रास का गवर्नर लार्ड एम्पृहिल स्थानापन्न वाइसराय बना। दिसम्बर १९०४ में वह वापिस भारत लौटा और अब की बार आकर उसने दो ऐसे कार्य किए जिनके कारण उसकी बड़ी आलोचना की गई और उसको अपनी अवधि समाप्त होने के पूर्व ही त्याग-पत्र देने के लिए बाध्य होना पड़ा।

बंग-भंग की समस्या :—लार्ड कर्जन ने अपनी दूसरी अवधि के आरम्भ में आते ही बंगाल-विच्छेद के प्रश्न को उठाया। बंगाल के लेफ्टिनेंट गवर्नर के कार्य भार को हल्का करने की आवश्यकता पहले ही से महसूस की जा रही थी। उसका कार्य इतना बढ़ गया था कि अकेले आदमी के लिए सुचारु रूप से उसको चलाना

बड़ा कठिन हो गया था। प्रान्त की जन-संख्या ग्रेट ब्रिटेन की जन-संख्या से दो गुने से भी अधिक ७ करोड़ ८० लाख थी, कार्य की अधिकता का एक परिणाम यह बतलाया जाता था कि गंगा के पूर्व के जिले लैफ्टिनेंट गवर्नर जनरल के नियन्त्रण से बाहर रह जाते थे। प्रान्त के इस भाग की बड़ी अवहेलना होती थी और यहाँ पर शासन शेष ब्रिटिश भारत के शासन-प्रबन्ध की अपेक्षा विकृत अवस्था में था। अनुपस्थिति भूमिपतियों के अत्याचारों का पृथक् वर्ग शिकार बन रहा था और यहाँ की पुलिस सब जगह से अधिक भ्रष्ट एवं अत्याचारी थी। इस प्रान्त की शान्ति-व्यवस्था भी बहुत ही बिगड़ी हुई थी। अनाचार और अत्याचार का बोल बाला था।

बंगाल का विच्छेद करने के लिए प्राचीन ऐतिहासिक उदाहरण दिये गए। १८६५ में बंगाल की प्रारम्भिक फोर्ट विलियम प्रेजीडेन्सी को दो भागों में विभक्त करके उत्तरी पश्चिमी प्रान्त बनाया गया जो १६०१ से संयुक्त प्रान्त आगरा व अवध कहलाने लगा तथा आसाम को १८७४ में पृथक् करके एक हाई कमिश्नर के अधीन कर दिया गया। सरकार ने निश्चय किया कि प्रान्त के एक बार फिर विभाजन का समय आगया है। विभाजन के करने में अधिक शीघ्रता भी नहीं की गई थी और न कोई विशेष कठोरता ही बर्ती गई थी। विभाजन नीति पर बड़ा विचार विनिमय किया गया था और बाह्य आलोचना को दृष्टि में रखते हुए अनेकों परिवर्तन भी किए गये थे। अन्त में आसाम, चिटगाँव तथा प्राचीन बंगाल के १२ जिलों को मिलाकर एक पृथक् प्रांत बना दिया गया। नये प्रान्त का क्षेत्रफल लगभग १०६,००० वर्ग मील और जनसंख्या ३१ ०००,००० के लगभग थी।

नये प्रान्त का जन्म होने से पूर्व ही इसके विरुद्ध एक भयंकर आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था। आन्दोलन का आधार निस्सन्देह बिल्कुल सच्चा था, यद्यपि बाद में चलकर इसमें कुछ भावुकता तथा मतिभेद का समावेश हो गया था। सम्भवतः आन्दोलन को जान बूझकर उत्तेजना भी दी गई थी। परन्तु इसका यह आशय नहीं है कि भारतवासी प्रजातन्त्र शासन के सर्वथा अयोग्य थे या इतने योग्य नहीं थे जितने कि यूरोपनिवासी। इंग्लैंड के इतिहास में भी ऐसे उदाहरण भरे पड़े हैं जब आवश्यक एवं हितकर प्रस्ताव जनता की अज्ञानता के कारण पास न किये जा सके थे। अंग्रेजी सरकार की दृष्टि में बंगाल का विभाजन, कर्जन के शब्दों में "शासन-सम्बन्धी सीमाओं की पुनर्व्यवस्था करना" था। परन्तु बंग निवासियों की दृष्टि से यह एक राष्ट्र का विभाजन था। यह एक जाति को इच्छापूर्वक विभक्त करने का प्रयत्न था; बंगालियों के इतिहास, भाषा तथा परम्पराओं पर नीचतापूर्ण आक्रमण था। भारत के विनम्र विचार वाले, इंग्लैंड के उदारदलीय तथा सिविल सर्विस के कुछ आदमियों

का भी यह विचार था। सार्वजनिक विरोध के सामने प्रस्ताव को त्याग देना चाहिए था, भले ही इससे लाभ होता हो। अकेले बंगाल ही में नही, लगभग समस्त देश में बग-भग के प्रस्ताव पर बडा भारी आन्दोलन चल रहा था। इस समस्या को सुलझाने के लिए उन लोगो ने यह प्रस्ताव रक्खा था कि मद्रास और बम्बई की भाँति बगाल का शासन भी एक गवर्नर के हाथ में होना चाहिए और उसकी सहायता के लिए एक कार्य-कारिणी होनी चाहिए। ऐतिहासिक आधार पर इन लोगों का पक्ष सबल था, क्योंकि १८३३ और १८५३ के आज्ञापत्रो में ऐसी व्यवस्था करने का अधिकार प्रदान किया गया था।

परन्तु कर्जन ने इन लोगो के सुझाव पर ध्यान नही दिया। उसका कहना था कि बगाल और बम्बई तथा मद्रास की दशा में बडा भारी अन्तर था। बगाल में अनेको जातियाँ तथा समस्या होने के कारण, कर्जन की दृष्टि में एक लेफ्टिनेन्ट गवर्नर ही उचित शासन-प्रबन्ध कर सकता था क्योकि वहाँ पर कठोर शासन की आवश्यकता थी। यदि वहाँ पर कार्यकारिणी की स्थापना कर दी जाय तो इससे लेफ्टिनेट गवर्नर की स्वतन्त्रता में बाधा पैदा होती है और उत्तरदायित्व में विभाजन पैदा होता है। संक्षेप में लार्ड कर्जन लेफ्टिनेट गवर्नर की शक्ति को क्षीण नही करना चाहता था, जबकि उसके विरोधी विकेन्द्रीकरण के पक्षपाती थे। परन्तु कर्जन ने भयकर विद्रोह की तनिक पर्वाह नहीं की और १९०५ में बगाल का विच्छेद कर दिया गया।

दूसरी मुख्य समस्या जिसके कारण लार्ड कर्जन को अपनी अवधि से पहले ही त्यागपत्र देने के लिये बाध्य होना पडा, सैनिक शासन-प्रबन्ध के सम्बन्ध में लार्ड किचनर के साथ झगडे का होना था। अब तक भारतवर्ष में कमाण्डर-इन-चीफ सेना का स्वामी होता था और वह वायसराय की कौंसिल का असाधारण सदस्य भी होता था। इसके अतिरिक्त कौंसिल के एक साधारण सदस्य के अधीन सेना का एक शासन-विभाग भी था, जो सरकार को सेना के शासन से इतना अधिक अवगत रखता था कि कमाण्डर-इन-चीफ को अपने अन्य कार्यों के कारण ऐसा करना सम्भव न था। कौंसिल का यह सदस्य भी एक सैनिक होता था, परन्तु उसको अपने अवधि काल में सेना की कमान सभालने की आज्ञा नही दी जाती थी। सैनिक विषयो में वह वायसराय का वैधानिक सलाहकार होता था और गवर्नर जनरल के पास कमाण्डर-इन-चीफ के सैनिक सदस्यो पर प्रस्तावो को अपनी समालोचनाओ सहित भेजना उसका कर्तव्य होता था। लार्ड किचनर ने, जिसने सेना से शासन में अनेको आवश्यक सुधार किये थे, इस प्रणाली का विरोध किया। उसका कहना था कि इस प्रकार बहुत देर हो जाती है और व्यर्थ का वाद-विवाद बढता है। उसने कहा कि केवल

एक सेना विभाग होना चाहिये जिसका कमाण्डर-इन-चीफ अधिपति हो और सैनिक शासन का सब कार्य उसके सुपुर्द होना चाहिये। इस प्रस्ताव का लार्ड कर्जन ने विरोध किया। क्योंकि उसकी दृष्टि में सम्पूर्ण शक्ति सैनिक कमाण्डर-इन-चीफ के हाथ में चली जायगी।

लार्ड किचनर के असन्तोष का एक आधार यह था कि प्रचलित प्रथा के अनुसार कमाण्डर-इन-चीफ को अधिक देर हो जाने के कारण बड़ी परेशानी होती थी। लार्ड किचनर का कहना था कि उसके प्रस्ताव में सिविल सरकार के अधिकार में किसी प्रकार की कमी नही आती थी, क्योंकि वाइसराय को प्रस्तावो को स्वीकार या अस्वीकार करने का अधिकार है, परन्तु वह चाहता था गवर्नर जनरल, सीधा कमाण्डर-इन-चीफ के सम्पर्क में रहे। उसको यह बात बुरी लगती थी कि कमाण्डर-इन-चीफ के प्रस्तावो की वाइसराय की कौंसिल का एक सदस्य सैनिक दृष्टिकोण से आलोचना करे, जो कमाण्डर-इन-चीफ से पद और सैनिक अनुभव में कम होता है। कर्जन का कहना था कि एक सिविल वाइसराय को एक दृढ विचार कमाण्डर-इन-चीफ के प्रस्तावो का विरोध करना, जब तक कि उसको सलाह देने वाला कोई अनुभवी एवं योग्य सैनिक न हो, असम्भव होगा और इस प्रकार वाइसराय कमाण्डर-इन-चीफ पर आश्रित हो जायगा। उसने यह भी कहा कि यह कोई नया प्रश्न नहीं था। गत ४० वर्षों से वाइसराय और कमाण्डर इन-चीफ इस प्रश्न पर विचार-विनमय करते आ रहे हैं और सबने इसी प्रचलित प्राचीन प्रथा को अब तक अपनाया है। भारत में अफसरो की सहानुभूति लार्ड कर्जन के साथ थी।

इंग्लैंड की सरकार को इस जटिल समस्या का निपटारा करना था। सबसे अच्छी बात तो यह थी एक या दूसरा दल अपने हठ को छोड देता। सरकार ने दोनो में समझौता कराने का प्रयत्न किया। इससे लार्ड किचनर भी असतुष्ट नही हुआ, कर्जन को ऐसा लगा कि उसको अपने शत्रु के सामने सर झुकाने के लिये बाध्य किया गया और एक निष्पक्ष आदमी को ऐसा प्रतीत हुआ कि गुत्थी को और अधिक जटिल बना दिया गया है। केबिनेट ने यह फैसला दिया कि सैनिक शासन वे सर्वथा सैनिक विभाग पर अकेले कमाण्डर-इन-चीफ का पूर्ण नियन्त्रण होना चाहिए और उसको ही सैनिक समस्याओं के सम्बन्ध में वाइसराय की कौंसिल में बोलने का अधिकार होना चाहिये। परन्तु सहायक विभागों के लिए जो सर्वथा सैनिक नही है, कौंसिल में एक मिलिटरी सप्लाई मेम्बर होना चाहिए। यह सुझाव भी रखा गया कि सर एडमण्ड एलीस को रिटायर कर दिया जाय और लार्ड कर्जन उसके स्थान पर एक और अफसर को मनोनीत करे। परन्तु जिस आदमी को उसने मनोनीत किया था

इंग्लैंड की सरकार ने उसको अस्वीकृत कर दिया। सेक्रेटरी आव स्टेट ने कर्जन को लिखा कि इस सम्बन्ध में वह किचनर की सलाह ले लें। अब कर्जन को ऐसा लगा कि सरकार नही चाहती कि उसको अपनी इच्छा का सलाहकार मिले और इसलिये उसने अगस्त १९०५ में त्याग-पत्र दे दिया। सरकार ने त्याग पत्र वापस लेने को कहा, परन्तु उसने अस्वीकार कर दिया।

लार्ड कर्जन के पश्चात् लार्ड मिण्टो भारत का वाइसराय बन कर आया। वह १८७८ में लार्ड राबर्टस के आधीन अफगानिस्तान में युद्ध कर चुका था और १८९८ से १९०४ तर्क कनाडा का गवर्नर जनरल रह चुका था।

प्रश्न

१. लार्ड कर्जन ने सीमान्त-समस्या को कैसे हल किया ?

२. लार्ड कर्जन ने रूस के विरुद्ध मध्यपूर्व में सुरक्षा पंक्ति स्थापित करने के लिए क्या किया ?

३. किन-किन कारणों से लार्ड कर्जन ने तिब्बत के साथ सम्बन्ध स्थापित करने चाहे ? उसका क्या परिणाम हुआ ?

४. कर्जन की आन्तरिक व्यवस्था का वर्णन करो।

अध्याय ३६

मार्ले-मिण्टो सुधार तथा इंग्लैंड और रूस का समझौता

वास्तव में लार्ड कर्जन के साथ भारत में अङ्गरेजी राज्य के एक युग का अन्त होता है। लार्ड कर्जन के वाइसराय पद के समाप्त होते-होते इग्लैंड में उदार दल की सरकार बनी। अब तक ऐसे उदार दल की सरकार नहीं थी। 'लार्ड मार्ले सेक्रेटरी आव स्टेट बना रहा। वह बड़ा योग्य तथा सुधारवादी था। वह सच्चे अर्थ में भारत का सेक्रेटरी बनना और भारत के शासन प्रबन्ध में वैधानिक सुधार करना चाहता था। उससे पहले जितने भी सेक्रेटरी आव स्टेट हुए थे वे सब वाइसराय और केबिनेट के बीच आवश्यक 'कड़ी' थे। परन्तु मार्ले केवल एक कड़ी बनाना नहीं चाहता था। और यद्यपि वह वाइसराय को अपना एजेण्ट भी नहीं बनाना चाहता था, परन्तु अब तक के सेक्रेटरियों की अपेक्षा वह भारत के शासन में अधिक भाग लेना चाहता था। उसके सौभाग्य से लार्ड मिण्टो इस समय भारत का वाइसराय नियुक्त किया गया। दोनों की नियुक्ति एक दूसरे से कुछ सप्ताह के आगे पीछे हुई और दोनों ने लगभग साथ-साथ प्रयास किया। दोनों ने अपने-अपने कर्मचारियों की सलाह पर अधिक ध्यान नहीं दिया। मार्ले-मिण्टो सुधारों के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि ये सुधार "दो राजनीतिज्ञों के विचार-विनिमय का परिणाम थे जिनको भारत के विषय में विशेष ज्ञान नहीं था।"

जिस समय लार्ड मिण्टो भारत का वाइसराय बनकर आया, देश में बंग-भंग का आन्दोलन चल रहा था और वाइसराय तथा कमाण्डर-इन-चीफ का विवाद भी अभी समाप्त नहीं हुआ था। उदार दल, जिसकी इस समय इङ्गलैंड में सरकार थी बंगाल-विच्छेद के विरुद्ध और लार्ड किचनर के साथ था। यद्यपि मार्ले निर्वाचन-काल में पिछले सेक्रेटरी आव स्टेट के कार्य की आलोचना कर चुका था, तो भी अब उसने अब की हुई बात को बदलना उचित नहीं समझा और कमाण्डर-इन-चीफ को वाइसराय की कौंसिल का एक साधारण सदस्य बना दिया गया। मिलिटरी सप्लाई विभाग का निर्माण किया गया और उसको एक और वाइसराय की कौंसिल के सदस्य

को दे दिया गया। परन्तु मार्ले की दृष्टि में यह व्यवस्था शासन और मितव्ययता के दृष्टिकोण से अच्छी नही थी। १९०७ में इसका अन्त कर दिया गया। यद्यपि लार्ड किचनर की विजय हुई, परन्तु बारह वर्ष पश्चात् कर्जन की नीति की सार्थकता सिद्ध हुई। इस बीच में भारत की सरकार का देश की सैनिक नीति पर नियन्त्रण बहुत क्षीण हो गया था। सब शक्तियों को अकेले कमाण्डर इन-चीफ के हाथ में दे देने का परिणाम यह हुआ कि प्रथम महायुद्ध काल (१९१४-१८) में मैसोपोटमिया में युद्ध में यातायात तथा दवा-दारू की व्यवस्था बहुत बिगड गई थी। जाँच के लिए जो कमीशन नियुक्त किया गया गया था उसने अपनी रिपोर्ट में कहा था कि युद्ध-काल में एक आदमी कमाण्डर-इन-चीफ तथा सैनिक सदस्य के कार्यों को सुचारु रूप से सम्पन्न नही कर सकता।

मार्ले ने बगाल के विच्छेद को बदलने से भी इन्कार कर दिया। उसकी दृष्टि में उसके पूर्वजो की नीति के साधन त्रुटिपूर्ण थे। पर तु बग-भग उसके लिए एक सुरनिश्चित समस्या थी। देश भर में और विशेषकर बगाल में अब भी एक भयकर आन्दोलन चल रहा था और एक ऐसी घटना घटी जिसके कारण सरकार की कडी आलोचना की गई। बगाल के सब स्कूल और कालिज विरोध में बन्द थे और विद्यार्थी भी राजनैतिक सभाओ में भाग लेते थे। बगाल के नये प्रान्त के प्रथम लेफ्टिनेंट गवर्नर ने शिक्षा विभाग के लिये एक चिट्ठी भेजी थी जिसमें यह धमकी दी गई थी कि जिन स्कूलो के विद्यार्थी राजनीतिक आन्दोलन में भाग लगे उनकी सरकारी आर्थिक सहायता बन्द कर दी जायगी और कलकत्ता विश्वविद्यालय से उनका सम्बन्ध-विच्छेद करा दिया जायगा। कहते है कि पटना जिले के दो स्कूलो ने इस आदेश का उल्लघन किया और दो शरारत फैलाने वालो को अपने विद्यार्थियों में छिपा लिया। लेफ्टिनेंट गवर्नर ने कलकत्ता विश्वविद्यालय से उनका सम्बन्ध-विच्छेद करने की प्रार्थना की। इस पर भारत की सरकार ने लेफ्टिनेंट गवर्नर ने अपनी प्रार्थना इस आधार पर वापस लेने के लिए कहा कि उस समय के वातावरण में विश्वविद्यलय की सीनेट में ऐसा वितण्डावाद उठ खडा होगा जो वाछनीय नही था। इस पर लेफ्टिनेंट गवर्नर ने त्यागपत्र दे दिया और यह स्वीकार कर लिया गया। इसको आन्दोलन-कर्त्ताओ ने अपनी विजय समझा। लार्ड कर्जन ने लाट सभा में घोषणा की कि—"फुलर (लेफ्टिनेंट गवर्नर) को इस भ्रम में बलि चढा दिया गया कि इससे आन्दोलन शान्त हो जायगा।"

उदार दल की सरकार को अपनी परराष्ट्र नीति में बडी सफलता मिली। सबसे महत्वपूर्ण सफलता रूस के साथ समझौता था। एशिया में रूस और इगलैंड

का झगडा तिब्बत, अफगानिस्तान तथा फारिस तीन देशों में चल रहा था। अब १९०७ में इन सबका निपटारा हो गया। यहाँ हम मिन्टो-काल में भारत के इन तीनो देशो के साथ सम्बन्ध का पृथक् पृथक् वर्णन करेंगे।

तिब्बत :—यंग हसबैंड की लासा के साथ सन्धि का उल्लेख किया जा चुका है। १९०४ की सन्धि के ऊपर चीन की अनुमति प्राप्त करना आवश्यक था। १९०६ में पेकिङ्ग में चीन के साथ एक सन्धि हुई, जिसमें उसने लासा, सन्धि ही को स्वीकार नही किया वरन दो और बातें भी निश्चित की गईं। प्रथम ग्रेट ब्रिटेन ने वचन दिया कि न तो वह देश को अपने साम्राज्य में सम्मिलित करेगा और न उसके आतरिक शासन में हस्तक्षेप करेगा। दूसरे चीन ने इसी प्रकार के प्रतिबन्ध अन्य विदेशी शक्तियों पर भी लगाने का वचन दिया। इस दूसरी बात से जितना अंग्रेजो को लाभ था, उतना ही चीन को भी था। इसके द्वारा उस कथन की कुछ पुष्टि हो जाती है कि तिब्बत में अंग्रेजी हस्तक्षेप से चीन ने लाभ उठाया। भारत की अंग्रेज सरकार तो लार्ड कर्जन की सन्धि के अक्षरशः पालन पर जोर दे रही थी परन्तु सेक्रेटरी आव स्टेट ने उसकी बातों को स्वीकार नही किया। क्षतिपूर्ति का धन तिब्बत के स्थान पर चीन ने देना स्वीकार किया और भारत सरकार की इच्छा के विरुद्ध सेक्रेटरी आव स्टेट ने चुम्बी घाटी को खाली करने का आदेश दिया। फरवरी १९०८ में चुम्बी घाटी से अंग्रेजी सेना हटा ली गई। इसी बीच अगस्त १९०७ में इंग्लैड और रूस के समझौते ने किसी भी यूरोपियन शक्ति के तिब्बत में प्रवेश करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। दोनो देशो ने तिब्बत की सत्ता को अक्षुण्ण रखने, देश के आन्तरिक शासन में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप न करने, तिब्बत की सरकार से चीन सरकार द्वारा बातचीत करने और लासा को कोई दूत न भेजने का प्रण किया। इसके दो परिणाम निकले। दलाईलामा को पदच्युत करके शासन की बागडोर चीनी रेजीडेण्टों के हाथ में चली गई और उन्होंने ब्रिटेन के प्रति द्वेष का परिचय दिया। जौलाई १९०८ में दलाईलामा को पेकिङ्ग बुलाया गया और वहाँ पर उनको अपनी वास्तविक स्थिति का ऐसा दुखपूर्ण ध्यान कराया कि १९१० में लासा पहुँचकर उसने लासा पर आक्रमण करने वाली चीनी सेना के विरुद्ध अंग्रेजो से सहायता की प्रार्थना की। इसी वर्ष फरवरी के महीने में वह एक बार और भागा और दार्जिलिंग आया। १९०५-६ में ताशीलामा पहले ही भारत आ चुका था और उस समय वायसराय तथा वेल्स के राजकुमार ने उसका स्वागत किया था और अब दलाईलामा भी जो १९०४ में लासा से इसलिए भाग गया था कि वह यूरोपियनों का मुँह न देख सके, ब्रिटिश भारत की राजधानी में आया और लार्ड मिण्टो

से भेंट की। उसने चीन के विरुद्ध सहायता की प्रार्थना की जिसने उसको फरवरी में एक आदेश से पदच्युत कर दिया था। परन्तु यह प्रार्थना व्यर्थ गई। अंग्रेज एक सन्धि के द्वारा चीन के साथ बँधे हुए थे और वे युद्ध में चीन का विरोध नही कर सकते थे। कुछ समय पश्चात् एक और दलाईलामा खोज निकाला गया जिस पर चीनी रेजीडेन्टो का पूर्ण नियन्त्रण था।

मोर्ले की तिब्बत सम्बन्धी नीति के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि उसने एक जटिल समस्या का बडा अच्छा निपटारा करके अंग्रेजो को विकट परिस्थिति से निकाल लिया था। विरोधियो के अनुसार इसके द्वारा लार्ड कर्जन की नीति के सब उद्देश्यो को त्याग दिया गया था। परन्तु यग हजबेंड की साहसिक यात्रा का एकमात्र उद्देश्य तिब्बत में रूसी प्रवेश को रोकना था और यह १९०७ के रूस के साथ किये गये समझौते से पूर्ण हो गया था, दुःख की बात तो यह है कि १९०३ में इङ्गलैड तथा रूस ऐसा समझौता न कर सके। यदि उस ऐसा समय हो जाता तो तिब्बत-युद्ध में किया गया अतुल व्यय बच जाता, गुरु में सैकडो तिब्बतियो की बलि नही चढाई जाती, दलाईलामा को पदच्युत न किया जाता और तिब्बत पर का निरंकुश शासन स्थापित नही होता।

अफगानिस्तान :—१९०७ के इङ्गलैड और रूस के समझौते में रूस ने निश्चित रूप से यह वचन दिया कि अफगानिस्तान उसके प्रभाव-क्षेत्र से सर्वथा बाहर है और वह उसके साथ सब राजनैतिक सम्बन्ध इंङ्गलैड के द्वारा ही रखेगा। वह कभी कोई अपना एजेण्ट वहाँ पर नही भेजेगा। अङ्गरेज और रूसी व्यापारियो को समान अधिकार दिये गये, परन्तु यह निश्चित किया गया कि जब ग्रेट तक ब्रिटेन इसके सम्बन्ध में अमीर की अनुमति रूस के पास न भेज दे तब तक समझौते की शर्तों को कार्यान्वित नही किया जा सकता। यद्यपि समझौते में यह सावधानी बर्ती तो गई थी, तो भी हबीबुल्ला ने अपने देश के सम्बन्ध में दो यूरोपियन शक्तियो के इस समझौते को अपना अपमान समझा—यह ठीक भी था—और अनुमति देने से इन्कार कर दिया।

फारिस :—इंग्लैंड तथा इसका समझौता फारिस के सम्बन्ध में तिब्बत तथा अफगानिस्तान की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण था। इस समझौते ने इग्लैड तथा रूस के अवश्यम्भावी भयंकर युद्ध को टाल दिया था और उस काल की इसको यदि सब से अधिक महत्वपूर्ण कूटनीतिक विजय कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी। फारिस राज्य का अंग भंग हो रहा था। १९०५ से १९१० तक देश में अराजकता फैलती

जा रही थी। देश की अव्यवस्था का एक कारण यह भी था कि जनता में पश्चिमी नियमानुमोदित शासन की भावना जागृत होती जा रही थी और शासक निरकुश था। ऐसी परिस्थिति में इंग्लैंड और रूस का समझौता फारिस और इन दोनो देशो के लिए निस्सन्देह लाभदायक सिद्ध हुआ। समझौते में इग्लैंड और रूस दोनो ने फारिस की स्वतन्त्रता का सम्मान करने का वचन दिया। उत्तरी फारिस को रूस का प्रभाव क्षेत्र और दक्षिणी फारिस को इग्लैंड का प्रभाव क्षेत्र निश्चित किया गया। दोनो देशो ने दूसरे के प्रभाव क्षेत्र में किसी भी प्रकार का हस्त-क्षेप न करने का वचन दिया। इस समझौते की आलोचना भी की गई और यह कहा गया कि रूस का प्रभाव क्षेत्र इग्लैड के क्षेत्र से बहुत बडा था और वास्तव में था भी ऐसा ही, परन्तु उत्तरी फारिस में रूस पहिले ही दक्षिण की ओर बहुत बढ़ चुका था। कुछ भी हो इस समझौते से एक भयकर युद्ध की आशका जाती रही थी।

देश की राजनैतिक बेचैनी :—जैसा कि पहले भी वर्णन किया जा चुका है कि बग भग के प्रश्न को लेकर न केवल बगाल में वरन् समस्त भारत में बेचैनी की एक लहर दौड गई थी। मोर्ले के शब्दो में "धीरे-धीरे समस्त भारत में राजनैतिक बेचैनी की एक लहर, कुछ मौलिक कारणो से, देश भर में फैल रही थी। क्रातिकारी आवाजें, कुछ उग्र और बडी तेज, चारो ओर से सुनाई पडने लगी, अपने देश के शासन में जनता का अधिकाधिक हाथ रखने की भावना ने सुव्यवस्थित रूप धारण कर लिया था।" यह आन्दोलन भारतीय इतिहास की बडी महत्वपूर्ण घटना थी। पूर्वी देशो में अंग्रेजो की स्थिति पर इसका बडा प्रभाव पडा था। यहाँ इसके कारणो का सक्षिप्त इतिहास दे देना आवश्यक है।

भारतवर्ष का यह आन्दोलन एक वृहत् आन्दोलन का भाग था। शताब्दियो की दासता के पश्चात् एशिया ने करवट बदली थी और राजनीति तथा विचार के क्षेत्र में उसने यूरोप के आधिपत्य से अपने को मुक्त करने के लिए हाथ पैर फैलाने प्रारम्भ कर दिए थे। जापान ने रूस की विशाल सेना को परास्त कर दिया था। लार्ड कर्जन के शब्दो में "इस विजय की प्रतिध्वनि समस्त पूर्वी देशो में बिजली की भाँति दौड गई थी।" जापान के छोटे से देश ने पश्चिमी युद्ध-कला के बूते पर ही रूस की विशाल शक्ति को पछाड दिया था। चीन, भारत और फारिस में इसका प्रभाव पडा। जिस प्रकार युद्ध-कला में पश्चिमी साधनो को अपनाकर जापान विजयी हुआ था, उसी प्रकार राजनैतिक क्षेत्र में भी पश्चिमी साधनो को इन देशो में अपनाया जा रहा था और पश्चिम को अपनी अवश्यम्भावी पराजय की सम्भावना

हो चली थी।

उस समय भारत के आन्दोलन का एक कारण यह भी था कि इंग्लैंड में सुधारवादी दल की सरकार बन गई थी, जिसको भारतीय समस्या से अपेक्षाकृत अधिक सहानुभूति थी। वैसे तो भारत के लिए अंग्रेज सब एक समान थे चाहे कन्जरवेटिव या उदार दल के हो। भावना में कोई विशेष अन्तर नही था, हां साधनो में अंतर अवश्य हो जाता था। दूसरे देश में इण्डियन नेशनल कांग्रेस का प्रभाव निरन्तर बढता जा रहा था और हिन्दू तथा मुसलमान अब पहले की अपेक्षा एक दूसरे के अधिक सम्पर्क में आते-जाते थे। दोनो ने एक होकर सामान्य पितृदेश के उद्धार के लिए प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया था। तीसरा मुख्य कारण आन्दोलन का यह था कि भारत के राष्ट्रवादी नेता कर्जन के निरकुश शासन से बहुत अधिक अप्रसन्न थे।

भारत के प्रगतिशील दल के दो भाग थे एक नम्र दल तथा दूसरा उग्र दल था। ए० सी० दत्त, गोखले तथा सर सत्येन्द्र सिन्हा पहले दल से सम्बन्ध रखने थे, परन्तु दूसरा दल क्रान्तिकारियों का था जो हिंसा में विश्वास करते थे। इस दल के उग्र प्रचार के कारण देश में यत्र-तत्र झगडे होने लगे थे। अप्रैल में लाहौर तथा रावलपिंडी में भयकर उपद्रव हुए। अंग्रेज सरकार ने बडी कठोरता से इनका दमन किया। यह नियम बना दिया गया कि बिना सात दिन का नोटिस पहले दिये हुए कोई मीटिंग नही हो सकती और नियम भग करने वालो को 'काले पानी' का दण्ड दिया जायगा। इसके पश्चात् जब सूरत में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ तो उसमें उदार तथा उग्र दलो में झगडा हो गया। झगडे का आधार प्रधान का निर्वाचन था। उग्र दल वाले एक ऐसे आदमी को प्रधान बनाना चाहते थे जिसको पजाब के झगडो में देश निकाले का दण्ड मिल चुका था। अधिवेशन समाप्त हो गया और इसके पश्चात् उदार दल वालो ने अपने उद्देश्यो की घोषणा की कि वे वैधानिक साधनो से भारत के लिए वही अधिकार प्राप्त करना चाहते है जो ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत रहते हुए कनाडा तथा अन्य उपनिवेशो को प्राप्त है। परन्तु दूसरी ओर हिंसात्मक साधनो में विश्वास रखने वालो की कार्यवाही भी जारी थी और अनेको यूरोप निवासियों को उनकी हिंसा का शिकार होना पडा। इस पर भारत की अंग्रेजी सरकार ने इन हिंसात्मक कार्यों को दबाने के लिए इंग्लैंड की सरकार से उसको विशेषाधिकार देने की प्रार्थना की। दो एक्ट पास करके विस्फोटक पदार्थो का बनाना, प्रेस के द्वारा हिंसात्मक उत्तेजना फैलाना 'देशद्रोहिता' ठहराया गया

श्रौर न्यायालयों को ऐसे काम करने वालों के अभियोगी की अधिक छान बीन किये बिना कठोर दण्ड देने का अधिकार दिया गया।

कहने को लार्ड मार्ले तथा मिन्टो भारत के लिये अति उदार पद उठाने की सात्विक इच्छा रखते थे, परन्तु उदार दल की उस अत्यन्त उदार अभिलाषा को भी, जिसका ऊपर वर्णन किया जा चुका है, पूरा करना उस समय असम्भव ठहराया गया। लार्ड मार्ले ने निश्चय किया कि उग्र दल को नि:शक्त करने का एकमात्र साधन यह था कि कुछ राजनैतिक अधिकार देकर उदार दल की सहायता प्राप्त की जाय, परन्तु साथ ही साथ आन्दोलन को कुचलने के लिये भी कठोरता का बर्ताव करने का निश्चय किया गया और वैलेन्टाइन शिरोल के शब्दों में 'लार्ड मिण्टो के शासन के प्रथम दो विनाशकारी वर्षों में अनेको भोले भाले मनुष्यो को शिकार होना पडा।" लाट सभा में अँगरेजी शासन की पेट भर प्रशसा करने के पश्चात् लार्ड मार्ले ने कहा, 'मेरे वाइसराय तथा गवर्नर जनरल और दूसरे सलाहकारो की दृष्टि में अब समय आ गया है जब प्रतिनिधित्व के नियम को और अधिक बढाया जा सकता है।" १९०९ में इण्डियन कौंसिल एक्ट पास किया गया। इसके द्वारा वाइसराय और प्रान्तो की कौंसिल में सदस्यो की सख्या बढा दी गई। मद्रास और बम्बई की कार्यकारिणियो में सदस्यो की सख्या बढाने तथा लेफ्टिनेन्ट गवर्नरो के प्रान्तो में कार्यकारिणी की स्थापना करने का आयोजन किया गया। व्यवस्थापिका सभाओ में निर्वाचन-पद्धति का सूत्रपात किया गया, परन्तु मनोनीत करने की प्रथा को समाप्त नही किया गया; किन्तु ये सब बातें यथावत्त अनिवार्य नही थी। इनके अन्तर्गत सेक्रेटरी को नियम बनाने का अधिकार दिया गया था और बहुत कुछ इन नियमो पर अवलम्बित था। निस्सन्देह यह ऐक्ट 'सेक्रेटरी के नाम एक खाली चैक था जिसमें नियमों की अन्तिम रूपरेखा का पूर्ण अधिकार, जिन पर प्रत्येक बात आश्रित थी, उसी को दिया गया था।"

ऐक्ट का भारत के आन्दोलन पर कोई विशेष प्रभाव नही पडा। क्रान्तिकारियो की कार्यवाही निरन्तर चलती रही। फरवरी में एक बगाली विद्यार्थी ने बगाल के पब्लिक प्रोसीक्यूटर को गोली मार दी। जौलाई में एक पजाबी ने लन्दन के इम्पीरियल इन्स्टीटयूट में सर्जन विली की यही दशा की और बम्बई के एक थियेटर में मरहठा ब्राह्मण ने जैक्सन नामक एक सिविलियन की जीवन-लीला समाप्त की। जनवरी में अहमदाबाद में वाइसराय के प्राण लेने का भी प्रयत्न किया गया था, परन्तु वह सफल न हो सका। ये सब हिंसात्मक कार्यवाहियाँ इस बात की प्रतीक थीं

कि भारत की आत्मा स्वतन्त्र होने के लिए छटपटा रही थी। सरकार की कठोर एव अमानुषिक दमन नीति ने लोगो को और भी अधिक उग्र बना दिया था। क्योकि पूज्य बापू के शब्दो में 'घृणा' घृणा से और 'हिंसा' हिंसा से पराजित नही की जा सकती।

नवम्बर में इण्डियन कौंसिल ऐक्ट (१६०६) के कार्यक्रम की व्याख्या करने वाले नियम प्रकाशित किये गये। ये नियम बड़े ही पेचीदा और शब्दाडम्बर से ऐसे परिपूर्ण है कि उनका सरल एव सक्षिप्त-रीति से वर्णन करना कठिन कार्य है। व्यवस्थापिका सभाओ में अनेको जातियो, हितो तथा अल्प मतो के प्रतिनिधित्व के लिए बडे पेचीदा नियम बनाये गये। मुसलमानो, भूमिपतियो, चाय तथा चाय व्यवसायों और भारतीय व्यापार के प्रतिनिधित्व का आयोजन किया गया था। इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्यो की सख्या २१ से बढ़ाकर अधिक से अधिक ६० कर दी गई तथा अन्य लेजिस्लेटिव कौंसिलो के सदस्यो की सख्या लगभग दो गुने से कुछ अधिक कर दी गई थी। मद्रास और बम्बई की एक्जीक्यूटिव कौंसिलो में अब दो के स्थान पर चार सदस्य होने लगे। वाइसराय की कार्यकारिणी में अब एक भारतीय होने लगा। मद्रास एव बम्बई की कार्यकारिणी में भारतीयो की सख्या बढ़ा दी गई, और इण्डिया आफिस की कौंसिल में भी अब दो भारतवासी होने लगे। परन्तु यह सब बातें राष्ट्रीय नेताओ की आशा से बहुत कम थी। और इनमें जाति भेद का विष बोया गया था। यदि यह कहा जाय कि पाकिस्तान का बीज १६०६ के सुधारो में बोया गया था तो इसमें अतिशयोक्ति न होगी। मुसलमानो को पृथक् प्रतिनिधित्व देकर देश में भयकर हिन्दू-मुसलमान समस्या को जन्म दिया गया जिसके कारण देश को क्या-क्या आपदायें न उठानी पडी। भिन्न-भिन्न जातियो का पृथक्-पृथक् प्रतिनिधित्व देश की एकता तथा राष्ट्रीयता की जड पर करारी चोट थी। भारतीय जनता के इन उद्देश्यो को पूरा करना ऐक्ट के रचयिताओ का कभी अभिप्राय नही था। लाट-सभा में लार्ड मार्ले ने कहा था,' 'यदि यह कहा जाय कि इन सुधारो के कारण किसी भी प्रकार से प्रजातन्त्र पद्धति की स्थापना होती है या मैं ऐसा करने का प्रयत्न कर रहा हूँ, तो मुझको इससे कुछ सम्बन्ध नही यदि मेरा जीवन सेक्रेटरी रूप में या वैसे भी, जितना यह होना है उससे २०' गुना अधिक हो जाय तो भी एक क्षण-भर के लिए मै भारत के लिये प्रजातन्त्र पद्धति की इच्छा नही कर सकता।' मार्ले-मिण्टो सुधारो का राग अलापने वाला को मार्ले के इन शब्दो का बार-बार अध्ययन करना चाहिये। मोण्टेग्यू तथा चेम्सफोर्ड ने १६१८ में अपनी रिपोर्ट में मार्ले-मिण्टो विधान की बडी आलोचना की थी और कहा था

कि सीधा निर्वाचन न करके और बहुत कम मनुष्यों को अधिकार देकर वास्तविक प्रजातन्त्र-पद्धति के अभाव ने सदस्यों में अनुत्तरदायित्व की भावना को जागृत कर दिया था।

प्रश्न

१ १९०७ ई० के इंगलैंड और रूस के समझौते का विवरण दो।

२. मिण्टो मार्ले सुधारों पर एक निबन्ध लिखो।

अध्याय ४०

राज्याभिषेक दरबार तथा मांटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार

लार्ड मिण्टो के पश्चात भारत का वाइसराय लार्ड हार्डिंज नियुक्त किया गया। वाइसराय पद पर नियुक्त किये जाने से पहले वह परराष्ट्र विभाग में स्थायी अण्डर-सेक्रेटरी रह चुका था। उसके शासन-काल में तिब्बत की राजनैतिक दशा में और भी परिवर्तन हुए और इसका कारण चीन की क्रान्ति थी। १६११ में लासा में रक्षार्थ रहने वाली चीनी सेना ने पेकिंग से अपना वेतन तथा राशन बन्द हो जाने के कारण, लासा में गदर कर दिया और राज्यकोष लूट लिया। अन्त में तिब्बत निवासियो ने उनको निकाल कर बाहर किया। दलाईलामा इस अवसर से लाभ उठाकर दो वर्ष पश्चात् अपने 'वनवास' से वापिस लौट आया। उसने रेजीडेण्ट से एक समझौता कर लिया, जिसमें यह निश्चित हुआ कि वह लासा में ही रहता रहे और अपने व्यक्ति की रक्षा के लिए कुछ अङ्गरक्षक रक्खे तथा देश के शासन में किसी प्रकार हस्तक्षेप न करे। इस पर पेकिंग की एक आज्ञा के अनुसार दलाईलामा को उसके सब प्राचीन अधिकार तथा विशेषाधिकार प्रदान किये गये। १६१२ में यह अफवाह फैली कि चीन तिब्बत की पुर्नविजय के लिये तैयारी कर रहा था। इस पर ब्रिटिश सरकार ने चीन को सूचित किया कि यद्यपि वह तिब्बत पर चीन के अधिकार को स्वीकार करते हैं परन्तु यदि चीन ने तिब्बत को अपने साम्राज्य का एक प्रान्त बनाने का प्रयत्न किया, तो ग्रेट ब्रिटेन इसका विरोध करेगा। भारत सरकार के परराष्ट्र सचिव की प्रधानता में दिल्ली और शिमला में चीन और तिब्बत के प्रतिनिधियो की एक कान्फ्रेंस हुई जिसमें इस प्रस्ताव का निपटारा हो गया। तिब्बत के साथ अँगरेजो के सम्बन्ध अच्छे स्थापित हो गये थे जिसके परिणाम स्वरूप दलाईलामा ने १६१४ के युद्ध में अँगरेजो को सहायता भेजी।

दक्षिणी अफ्रीका मे भारतवासी :—लार्ड हार्डिंज के शासनकाल में दक्षिणी अफ्रीका में रहने वाले भारतीयो से सम्बन्ध रखने वाली एक जटिल समस्या उठ खडी हुई। आज भी यह समस्या बडी भयकर बनी हुई है। १६१३ में दक्षिणी अफ्रीका की सरकार ने एक ऐक्ट पास करके भारतवासियो के यहाँ प्रवेश करने पर प्रतिबन्ध

एवे में उसका राज्याभिषेक किया गया। अपने मन्त्रियों की सलाह से जार्ज पंचम ने यह निश्चय कर लिया था कि इस वर्ष के अन्त में वह स्वयं रानी के साथ भारत जाकर राज्याभिषेक-दरबार में सरकार के बड़े-बड़े कर्मचारियों तथा सरक्षित रियासतो के राजाओ से सम्मान प्राप्त करेगा। राजा की अनुपस्थिति में चार सदस्यो की एक कौंसिल बना दी गई थी। महत्वपूर्ण बातें तार द्वारा सम्राट् के पास भेज दी जाया करती थी। सम्राट् के साथ सेक्रेटरी ग्राव स्टेट भी पधारे थे। १२ दिसम्बर को दिल्ली में एक विराट दरबार लगा, जिसमें लगभग ८०००० आदमी उपस्थित थे। लोगो को जागीर, कर्मचारियो को १ महीने का अतिरिक्त वेतन, जनता की शिक्षा के लिए ५० लाख रुपया प्रदान किया गया। यह घोषणा की गई कि अब से भारतवासी भी 'विक्टोरिया क्रास' प्राप्त करने के अधिकारी होंगे। इसके पश्चात् महत्वपूर्ण राजनैतिक परिवर्तन की घोषणा की गई जिसको अब तक गुप्त रखा गया था। कलकत्ता के स्थान पर अब दिल्ली को भारत की राजधानी बनाया गया। बंगाल के दोनो प्रान्तों को मिलाकर एक गवर्नर-इन-कौंसिल के सुपुर्द किया गया। बिहार, उडीसा और छोटा नागपुर के लिये एक पृथक् लेफ्टिनेंट गवर्नर की नियुक्ति की गई और आसाम एक बार फिर चीफ कमिश्नर का प्रान्त रह गया। राजधानी के परिवर्तन का एक मुख्य कारण यह बतलाया गया कि देश में ब्रिटिश सत्ता के सुदृढ हो जाने तथा आवागमन के साधनो के पूर्णतया सम्पन्न हो जाने के कारण राजधानी को समुद्र-तट पर रखना आवश्यक नही रह गया था। अपनी केन्द्रीय स्थिति तथा ऐतिहासिक महत्व के कारण दिल्ली अन्य नगरो की अपेक्षा राजधानी बनने के लिए सबसे अधिक उपयुक्त थी। बगाल के दोनो भागो को मिलाकर एक गवर्नर के अधीन करके भारत के बग-भग से पैदा हुए रोष को शान्त किया गया। इन परिवर्तनों की आलोचना की गई। पालियामेंट से इनको गुप्त रखा गया था, परन्तु अब उसकी स्वीकृति के बिना इनको कार्यान्वित करना सम्भव नही था। सम्राट् की घोषणा का उल्लघन करना भी वाछनीय नही था, क्योंकि ऐसा करने से ब्रिटिश साम्राज्य के सम्मान को ठेस लगने की आशका थी। फिर दिल्ली को नई राजधानी बनाने में एक बडी धनराशि की आवश्यकता थी। अर्थ-शास्त्रियो के अनुमान के अनुसार ४,०००,००० पौड की आवश्यकता पडती। बंगाल के सम्बन्ध में भी इगलैंड में घोषणा की बडी अलोचना की गई। कहा गया कि बगाल-विच्छेद से पैदा हुआ रोष तथा आन्दोलन अब जब दब चुका है और इस प्रकार विद्रोहियो को सन्तुष्ट करने का परिणाम उनको और अधिक उत्तेजित करना होगा। परन्तु इस प्रकार की सब आलोचनाओ के होते हुए भी इन राजकीय घोषणाओ को कार्यान्वित करना पड़ा।

१६१४ में प्रथम महायुद्ध आरम्भ हुआ जिसमें भारत ने जन-धन से अंग्रेजों की सहायता की। इस समय भारत के राष्ट्रीय जीवन के कर्णधार 'बापू' बन चुके थे और उन्होंने देश में घूम-घूमकर संकट काल में सरकार की सहायता करने के लिए घोर परिश्रम किया। फलस्वरूप लाखों मनुष्यों ने योग दिया और करोड़ों, अरबों की सम्पत्ति भारत ने इंगलैंड के युद्ध में लगाई। युद्ध और उसके सब परिणामों का विशद वर्णन करने के लिए प्रस्तुत पुस्तक में पर्याप्त एवं उपयुक्त स्थान नहीं है। युद्ध के कारण अधिक धन की आवश्यकता थी इसलिए बाहर से आने वाले सब सामान पर ७॥ प्रतिशत आयात-कर लगाया गया। इसमें लंकाशायर से आने वाला सूती कपड़ा भी सम्मिलित था। परन्तु इस बार भारत के बने कपड़ों पर इतनी ही चुङ्गी नहीं लगाई गई। मानचेस्टर के उत्पादकों ने विरोध तो बहुत किया, परन्तु कहीं भारतीय जनता पर युद्धकाल में बुरा प्रभाव न पड़ जाय, इसलिए उसकी अधिक पर्वाह नहीं की गई। कुछ भी हो सरकार का यह कार्य भारतवासियों की पुरानी शिकायत को दूर करने के विचार से नहीं किया गया, शिकायत इससे दूर अवश्य हो गई थी, यद्यपि बहुत काल पश्चात् और बहुत अधिक हानि उठाने के पश्चात्। लंदन की इम्पीरियल कान्फ्रेंस में दो भारतीय प्रतिनिधि, महाराजा बीकानेर तथा सर सत्येन्द्र सिन्हा को आमन्त्रित किया गया था। १६१८ में सिन्हा को लार्ड बना कर भारत के लिए अण्डर-सेक्रेटरी बना दिया गया।

मोण्टेग्यू घोषणा:—२० अगस्त १६१७ को भारत के सेक्रेटरी ई० एस० मोण्टेग्यू ने भारत के सम्बन्ध में इगलैंड की भावी नीति की घोषणा की। भारत के शासन से सम्बन्ध रखने वाली ब्रिटिश नीति के भविष्य में पथ प्रदर्शन के लिए उसने चार नियमों का प्रतिपादन किया। प्रथम, 'भारतवासियों को देश के शासन में अधिकाधिक संख्या में भाग देना' था। दूसरा, 'ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत भारत में उत्तरदायी शासन को जन्म देने के विचार से स्वायत्त संस्थाओं को धीरे-धीरे शक्तिशाली बनाना' था। तीसरा यह था कि "इस नीति में प्रगति क्रमशः ही प्राप्त की जा सकेगी।" चौथा यह था "कि इंगलैंड की सरकार, भारत की सरकार के साथ मिलकर, जिस पर भारतीय जनता की समृद्धि का उत्तरदायित्व है, यह निर्णय करेगी कि कौन समय वैधानिक प्रगति के दूसरे पद के लिए उपयुक्त है।"

लार्ड चेम्सफोर्ड १६१६ में लार्ड हार्डिञ्ज के पश्चात् भारत का वाइसराय बनाया गया था। सेक्रेटरी आव स्टेट, चेम्सफोर्ड के साथ घोषणा के सम्बन्ध में विचार-विनिमय करने के लिए भारत आया। मोण्टेग्यू के यहाँ से वापिस जाने पर एक बहुत बड़ी रिपोर्ट प्रकाशित की गई। रिपोर्ट में व्यवस्थापिका सभाओं को उत्तर-

दायित्व देने पर ध्यान दिया गया था। "उनके पास करने के लिए वास्तविक कार्य हो और उनके वैसा करने पर उनको उत्तरदायी ठहराने के लिये वास्तविक आदमी भी होने चाहियें।" लार्ड साउथबरी की अध्यक्षता में, दो समितियाँ भारत में निर्वाचन क्षेत्रों को बनाने के लिये भेजी गई। इसके पश्चात दोनों समितियों की रिपोर्ट के साथ एक बिल तैयार करके पार्लियामेंट के दोनों भवनों की सम्मिलित समिति के सामने पेश किया गया। दिसम्बर १९१९ में यह एक्ट पास हुआ जिसके अनुसार भारत के शासन-विधान में निम्नलिखित परिवर्तन किए गये।

१९१९ का एक्ट—प्रान्तों में द्वैत शासन स्थापित किया गया। कार्यकारिणी समिति दो भागों में विभक्त कर दी गई थी। ऐक्ट में कौंसिल के दो से चार तक सदस्य होते थे जिनको सम्राट् मनोनीत करता था और जिनमें से आधे सामान्य रूप से भारतवासी होते थे। यह कौंसिल अन्ततोगत्वा सेक्रेटरी आव स्टेट के सामने उत्तरदायी होती थी। दूसरे भाग में मन्त्री लोग होते थे जिनको गवर्नर लेजिस्लेटिव कौंसिल के निर्वाचित सदस्यों में से चुनता था। प्रान्त के सब विषयों को दो भागों में विभक्त कर दिया गया—रक्षित तथा हस्तान्तरित। रक्षित विषयों में महत्वपूर्ण विभाग सम्मिलित थे और हस्तान्तरित में वह विभाग आते थे जिनको वैसे तो राष्ट्र-निर्माण के विभाग कहा जाता था, परन्तु जिनको बहुत कम महत्व दिया जाता था। 'हस्तान्तरित विषय वे विभाग होने चाहियें जिनमें स्थानीय ज्ञान और सार्वजनिक सेवा का अधिक अवसर प्राप्त हो, जिनमें भारतवासियों ने अधिक रुचि प्रदर्शित की हो, जिनमें यदि त्रुटियाँ चाहे गम्भीर भी हों परन्तु ऐसी न हों जिनका उपचार न किया जा सके, और जिनमें प्रगति की सबसे अधिक आवश्यकता हो।' हस्तान्तरित विषयों के मन्त्रियों की दशा बाह्य रूप से ब्रिटिश केबिनेट के मन्त्रियों से मिलती-जुलती थी। उनकी नियुक्ति गवर्नर करता था, परन्तु वे भी तभी तक मन्त्री रह सकते थे जब तक व्यवस्थापिका सभा का विश्वास उनको प्राप्त हो और जब तक वे उसके सदस्य रहें। यह कहा गया था कि धीरे-धीरे रक्षित विषय हस्तान्तरित कर दिये जायेंगे और अन्त में जाकर सब विभागों पर व्यवस्थापिका सभा के समक्ष उत्तरदायी मन्त्रियों का अधिकार हो जायगा। आरम्भ में शिक्षा, स्वास्थ्य आदि विषय ही हस्तान्तरित किये गये थे।

और बम्बई में १११ सदस्य रखे गये। यह नियम रखा गया कि निर्वाचित सदस्यों की सख्या, कुल संख्या की कम से कम ७५ प्रतिशत होनी चाहिए। परन्तु १६०६ में लगाये गये जाति-भेद के पौधे को उखाड़ फेंकने के स्थान पर और अधिक प्रोत्साहन दिया गया और मुसलमानों, पंजाब में सिक्खों, यूरोपियनों, ऐंग्लो इण्डियनों तथा इण्डियन क्रिश्चियनों के लिए पृथक् निर्वाचन का अधिकार दिया गया। लेजिस्लेटिव कौंसिलों को आवश्यक धन स्वीकृत या अस्वीकृत करने का अधिकार दिया गया, परन्तु गवर्नर को यह अधिकार दिया गया था कि वह रक्षित विषयों के लिए जितना चाहे उतने धन की माँग कर सकता था। चार वर्ष पश्चात् कौंसिलों को अपने प्रधान स्वयं चुनने का अधिकार दिया गया था।

केन्द्र में द्वैत शासन स्थापित किया गया था और गवर्नर जनरल सीधा सेक्रेटरी आव स्टेट तथा पार्लियामेंट के सामने उत्तरदायी होता था। उसकी कार्य-कारिणी के सदस्यों की संख्या अपरिमित कर दी गई थी। यह आशा की गई थी, यह आदेश नहीं था, कि कौंसिल के आधे सदस्य ऐसे हों जिनका जन्म भारत में हुआ हो। केन्द्रीय व्यवस्थापिका को दो भवनों में विभक्त कर दिया गया था। एक कौंसिल आव स्टेट जिसमें ६१ सदस्य थे और जिनमें से अधिकतर निर्वाचित होने चाहिएँ। इसके निर्वाचक बड़े-बड़े धनी, भूमिपति या पूंजीपति ही हो सकते थे। दूसरे भवन का नाम लेजिस्लेटिव असेम्बली था, इसमें कुल १४६ सदस्य थे, जिनमें १०६ निर्वा-चित और ४० मनोनीत होते थे। मनोनीत सदस्यों में २५ सरकारी अफसर होते थे। कौंसिल की अवधि ५ वर्ष, असेम्बली की अवधि ३ वर्ष रखी गई। यदि दोनों भवनों में मतभेद हो जाय, तो गवर्नर जनरल को दोनों भवनों का सम्मिलित अधिवेशन बुलाने का अधिकार दिया गया था। यद्यपि असेम्बली को अर्थसम्बन्धी सब अधिकार प्राप्त थे, परन्तु गवर्नर जनरल को अपने निर्णय के अनुसार कितने ही धन की माँग देश की 'शान्ति तथा व्यवस्था' के लिए करने का अधिकार था। यदि वह आवश्यक समझे तो किसी भी बिल को जिसको व्यवस्थापिका सभा पास न करती हो, पास कर सकता था। उसके आर्डीनेन्स बनाने का अधिकार पृथक् रहा। प्रान्तों में गवर्नरों और केन्द्र में गवर्नर जनरल को इतने अधिक अधिकार प्राप्त थे कि उनका न्यूनाधिक निरंकुश शासन ही चलता था। वे यदि उत्तरदायी थे तो इंग्लैंड की सरकार के सामने, भारत की व्यवस्थापिका सभाओं के समक्ष नहीं।

१६१६ के एक्ट में यह भी लिखा गया था कि १० वर्ष पश्चात् इंग्लैंड की पार्लियामेंट एक कमीशन नियुक्त करेगी जो इस बात की रिपोर्ट देगा कि १६१६ के वैधानिक सुधार कहाँ तक सफल हुए हैं। उनको और बढ़ाया जाय, उतना ही रखा

जाय या ग्रौर कम कर दिया जाय। सम्राट् की स्वीकृति प्राप्त होते ही एक घोषण द्वारा नरेन्द्र-मण्डल की स्थापना की गई जिसका कार्य केवल विचार-विनिमय कर ग्रौर सलाह देना था। सब राजबन्दियो को मुक्त कर दिया गया। डाक्टर ए० बी कीथ के शब्दो में "ग्रसेम्बली को सरकार की ग्रालोचना का सफल साधन बना दि गया...परन्तु कार्यकारिणी व्यवस्थापिका सभा के सीधे नियन्त्रण से सर्वथा स्वत रही।"

प्रश्न

१. दक्षिणी ग्रफ्रीका में गांधी जी ने भारतीयों के लिये क्या किया ?

२ १९१९ ई० के एक्ट से भारत के विधान में क्या परिवर्तन हुए ?

-अध्याय ४१

द्वैत शासन तथा असहयोग आन्दोलन

१९१९ के एक्ट से प्रान्तों में जैसा कि गत अध्याय में वर्णन किया जा चुका है, द्वैत शासन स्थापित किया गया था। ऐसा इसलिये किया गया था कि ब्रिटिश सरकार की दृष्टि में भारतवासी उत्तरदायी शासन के योग्य नहीं थे और उनको वैधानिक शासन की पाठशाला में एक के पश्चात् दूसरा पाठ पढ़ाकर योग्य बनाना था। श्री मोण्टेग्यू की घोषणा का यही सारांश था और इसीलिए प्रान्तों में हस्तान्तरित विषयों को जन्म दिया गया था। परन्तु इस शासन-प्रणाली को इसके जन्मदाता लिओनेल कर्टरिस के अतिरिक्त कभी किसी ने पसन्द नहीं किया। 'इसमें परेशानी के चीज छिपे थे।' इसमें सन्देह नहीं कि इतिहास में ऐसे परिवर्तन के काल आते रहते हैं परन्तु उनका बोध उनके अन्त होने पर होता है और ऐसे काल में किये गये वैधानिक परिवर्तन उस समय के लिए अन्तिम प्रतीत होते हैं। परन्तु १९१९-२९ के काल में एक विशेष बात थी। इसकी पहले ही से घोषणा कर दी गई थी, यह परिवर्तन का काल है और इसका विधान भी स्थाई नहीं वरन् एक बीच के काल के लिए है। यह भी एक कारण था कि जनता की इसके प्रति कभी अच्छी भावना न हो सकी। दूसरा बड़ा कारण यह था कि जनता पूर्ण उत्तरदायित्वपूर्ण शासन चाहती थी और सरकार उसकी क्षमता में अविश्वास रखती थी या ऐसा बहाना करती थी। युद्धकाल में धन-जन से बड़ी महत्वपूर्ण सेवा करने के पश्चात् जनता की आशा अपने देश के शासन में वास्तविक शक्ति प्राप्त करने में बड़ी प्रबल हो गई थी और उनको मिला गवर्नर गवर्नर जनरल के आर्डीनेन्सों का राज और मिला उनको रौलट एक्ट। इसके अतिरिक्त परिस्थिति भी ऐसी थी कि उसमें १९१९ जैसा विधान जनता को प्रिय हो ही नहीं सकता था। युद्ध के पश्चात् अन्य देशों की भाँति भारत के भी आर्थिक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में असन्तोष तथा बेचैनी फैली हुई थी और ऐसा समय वैधानिक प्रयोगों के लिए उपयुक्त नहीं होता।

महात्मा गांधी की महानता का एक कारण यह था कि हिंसा के युगों में उसने अहिंसा के शस्त्र से संसार की सबसे महान् शक्ति को पराजित करने का व्र

लिया था और उसमें सफलता प्राप्त की। चर्खा, असहयोग, सत्याग्रह, बहिष्कार, हड़ताल आदि साधनो से उसने सरकार की शक्ति का सामना किया। चर्खे का शब्द उसके लिये वेद मन्त्र था। उसकी मधुर ध्वनि में उसको स्वतन्त्र भारत का सगीत सुन पड़ता था। यह सत्य है कि उसकी अछूतोद्धार नीति कट्टर पन्थियो को प्रिय नही थी, परन्तु यह स्वाभाविक बात थी। सामाजिक कुरीतियो का एक दिन में अन्त नही होता।

रौलट एक्ट :—१९१९ में महात्मा गाधी ने असहयोग आन्दोलन आरम्भ किया। जिसके कारण दक्षिणी अफ्रीका में उनको बड़ी ख्याति तथा सफलता प्राप्त हो चुकी थी। असहयोग आन्दोलन आरम्भ करने का आधार रौलट एक्ट का पास होना था। क्रान्तिकारी प्रचार की जाँच करने के लिए रौलट की अध्यक्षता में एक समिति स्थापित की गई थी और उसकी सिफारिशो के सुधार पर रौलट एक्ट बनाया गया था, जिसके अन्तर्गत प्रेस की स्वतन्त्रता का हनन किया, बिना जूरी राजनीतिक बन्दियो के अभियोगो का निर्णय करने का न्यायाधीशो को अधिकार दिया गया, और सरकार की दृष्टि में जिन लोगो पर नियम भंग करने का सन्देह किया जाय, उसको अनिश्चित काल के लिये बदीगृह में डाल देने का नियम बनाया गया। एक ओर जनता को एक हाथ से आंशिक उत्तरदायित्वपूर्ण शासन दिया जा रहा था, दूसरे हाथ से उनकी मौलिक स्वतन्त्रता का हनन किया जा रहा था। युद्धकाल में भारत में भारत-रक्षा कानून था जो अब युद्ध समाप्त होने वाला था। उससे जो अधिकार सरकार को प्राप्त थे, उन अधिकारों को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए रौलट एक्ट पास किया गया था। अन्य देशो में ऐसे कानून युद्धकाल में ही सहन किये जाते और युद्ध के साथ ही साथ उनको भी दफना दिया जाता है परन्तु भारतवर्ष में इसके विपरीत किया गया और इसलिये महात्मा जी को लाचार होकर असहयोग आन्दोलन आरम्भ करना पड़ा।

जलियानवाला बाग.—जनता ने सरकार की नीति का विरोध किया। मार्च, अप्रैल १९१९ में पजाब, गुजरात तथा दिल्ली में उपद्रव हुये। सरकार ने अमानुषिक दमन नीति से काम लिया। पजाब के हत्याकाड की बातो को याद कर-करके रोमाच हो जाता है। अमृतसर में दो-चार यूरोपियनो की हत्या अवश्य हो गई थी परन्तु इस पर सरकार ने प्रतिशोध की भावना का जो परिचय दिया और नृशसता का ताण्डव नृत्य खेला उसकी उपमा स्पेनी अत्याचार के नीदरलैंडस के इतिहास में मिल जाय तो मिल जाय। अमृतसर में १३ अप्रैल को जलियानवाला बाग में एक मीटिंग हो रही थी जिसमें सदस्यो की सख्या में आबाल वृद्ध, नर-नारी एकत्रित थे।

जहाँ पर सभा हो रही थी वह स्थान चारो ओर से घिरा हुआ था, केवल एक द्वार, था, जिस पर हत्यारे डायर ने खडे होकर निःशस्त्र जनता पर अग्नि-वर्षा कराई। भागने का कोई रास्ता नही था, युद्ध करने के कोई साधन नहीं थे, इसलिए सैकडो वही धराशायी हो गये और हजारो घायल हुये। इस घटना ने समस्त देश को क्षुब्ध कर दिया था। स्वयं एसक्विथ ने पार्लियामेंट के समक्ष भाषण देते हुए कहा था कि जलियानवाला बाग का नर संहार "हमारे इतिहास के निकृष्टतम अत्याचारो में से एक है।' अगरेज इतिहासकारो ने भी जनरल डायर की तीन भयकर भूलो को स्वीकार किया है—प्रथम, सैनिको को गोली चलाने का आदेश देने के पहले उसने सभा की जनता को तितर-बितर होने का आदेश नही दिया। दूसरे, वह इतनी अधिक देर तक गोलियाँ चलवाता रहा, और तीसरे, आठ दिन पश्चात् नीचतापूर्ण 'रेंग कर चलने का आदेश' दिया जिसके अनुसार भारतवासियो को सडक-विशेष पर चलते समय रेंग कर चलने की कठोर आज्ञा दी गई थी। इस कुकृत्य के लिए दण्ड देने के स्थान पर डायर को पद की उन्नति दी गई। लगभग २० वर्ष पश्चात् ऊधमसिंह ने इगलैंड ही में इस नृशस का अपनी पिस्तौल से काम तमाम किया।

नये चुनाव.—ऐसे क्षुब्ध वातावरण में अक्टूबर १९२० में नये एक्ट के अनुसार निर्वाचन किया गया। कांग्रेस पार्टी ने निर्वाचन का बहिष्कार किया। केवल ३३ प्रतिशत निर्वाचकों ने मतदान किया। प्रान्तो में मन्त्रिमण्डल बनाये, गये परन्तु मद्रास को छोडकर जहाँ एक दल का बहुमत था अन्य प्रान्तो में अनेको राजनीतिक दलो में से मन्त्रिमण्डल बनाने पडे। ९ फरवरी १९२१ को कानोट के ड्यूक ने नई केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा का उद्‌घाटन किया और सम्राट् की यह सूचना पढ़कर सुनाई, 'वर्षों से वीर देशभक्त तथा राजभक्त भारतवासी अपनी प्रिय मातृभूमि के लिए स्वराज्य का स्वप्न देख रहे थे। आज मेरे साम्राज्य के अन्तर्गत तुम स्वराज्य को प्रारम्भ कर रहे हो और मेरे अन्य उपनिवेशों की भाँति स्वाधीनता की उन्नति एव समृद्धि के लिए विस्तृत क्षेत्र तथा पर्याप्त से भी अधिक अवसर (तुमको प्राप्त होगे)।'

द्वैत शासन की असफलता के कारण :—१९२३ में श्री पडित मोतीलाल नेहरू—पडित जवाहरलाल नेहरू के पिता—की अध्यक्षता में कांग्रेस की स्वराज्य पार्टी ने चुनाव लडने का निर्णय किया। निर्वाचन में पार्टी की विजय हुई। अब तक जो कुछ भी द्वैत शासन के सफल होने की आशा थी, वह सब समाप्त हो गई। द्वैत शासन की असफलता के अन्य अनेको कारणो में से कुछ महत्वपूर्ण कारण इस प्रकार थे। (१) सर बेसिल ब्लेकेट ऐक्ट ने नमक-कर दोगुना कर दिया था जिसको वाइ-

सराय रीडिंग ने अपने विशेष अधिकार से पास किया। (२) भारतवासी शीघ्रता से सेना के भारतीयकरण के पक्षपाती थे, परन्तु उनकी आशा फलवती होती प्रतीत नहीं होती थी। (३) भारत को राष्ट्रसंघ तथा इम्पीरियल कान्फ्रेंस में स्थान तो दिया गया, परन्तु उसके प्रतिनिधियों का इतना मान नहीं किया जाता था जितना कि अन्य उपनिवेशों के प्रतिनिधियों का और जब उन्होंने दूसरी डोमिनियनों में भारतवासियों पर किये जाने वाले अत्याचारों को समाप्त करने की माँग की तो कोई ध्यान नहीं दिया गया। (४) १९२१ में जब प्रिंस आव वेल्स भारत आया तो बम्बई में उसका बहिष्कार किया गया। इस पर उपद्रव हो गया और १९२२ में चौराचौरी की घटना के पश्चात महात्माजी को बन्दीगृह में डाल दिया। इस घटना से दुखी होकर महात्मा जी ने सत्याग्रह आन्दोलन स्थगित कर दिया था। बंगाल तथा मध्यप्रान्त में उग्रदल के द्वैत शासन का अन्त करने पर शासन की बागडोर गवर्नरों ने अपने हाथ में ले ली और पूर्ववत् निरकुश शासन प्रारम्भ हो गया। (६) १९२३ में भारतीय सर्विस पर ली कमीशन नियुक्त किया गया, इसकी सिफारिशों का स्वागत नहीं किया गया, क्योंकि वे भारतीय आशा से बहुत दूर थीं। (७) १९२८ में मुडीमेन कमेटी ने १९१९ के शासन के सम्बन्ध में अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की, जिसमें महत्वपूर्ण अल्पमत ने यह सम्मति दी कि द्वैत शासन सर्वथा दोषपूर्ण तथा अव्यावहारिक है।

प्रश्न

१. द्वैत-शासन से तुम क्या समझते हो, भारत ने किस प्रकार इसका विरोध किया ?

२. द्वैत शासन की असफलता के क्या कारण थे ?

अध्याय ४२

(क) साइमन कमीशन तथा गोलमेज कान्फ्रेंस

१९२६ में लार्ड इरविन भारत का वाइसराय बन कर आया। निस्सन्देह वह बड़ा योग्य, विद्वान् तथा धार्मिक वृत्ति का मनुष्य था और उसको भारत की समस्या से किसी अंश तक सहानुभूति थी परन्तु एक तो कन्जरवेटिव दल का सदस्य और दूसरे साम्राज्यवादी मशीन का एक बड़ा पुर्जा होने के कारण वह अधिक कुछ कर नहीं सकता था और न कर सका। परन्तु फिर भी कभी-कभी उसके कन्जरवेटिव दल के सहयोगी उसकी तथाकथित अति उदार नीति का विरोध करते रहते थे।

साइमन कमीशन :—१९१९ के एक्ट में यह रक्खा गया था कि १० वर्ष के पश्चात् एक कमीशन नियुक्त किया जायगा, जो यह देखेगा कि एक्ट के अन्तर्गत भारत ने कितनी प्रगति की है। क्या उसको और अधिक अधिकार दिये जा सकते हैं या प्रदत्त अधिकारों को भी कम करने की आवश्यकता है। यह निर्णय करने का अधिकार ब्रिटिश केबिनेट तथा भारत की अंग्रेजी सरकार को ही था। उत्तरदायित्व-पूर्ण शासन को एक और स्टेज प्रदान करने के लिए यह आवश्यक ठहराया गया था कि १९१९ के ऐक्ट के साथ भारतवासी सहयोग दें और जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, भारत की एकमात्र राजनैतिक पार्टी इण्डियन नेशनल कांग्रेस ने इन अधूरे सुधारों का आरम्भ से ही बहिष्कार किया था। इस प्रकार यह आवश्यक शर्त पूरी नहीं होती थी।

दस वर्ष की अवधि के २ वर्ष पूर्व नवम्बर १९२७ में सर जान साइमन की अध्यक्षता में एक कमीशन नियुक्त किया गया। इसके सात सदस्य थे और वे सब गोरी चमड़ी वाले अंग्रेज ही थे। इसलिए इसका 'ह्वाइट' (श्वेत) कमीशन नाम पड़ा। कमीशन में भारतवासियों को सदस्यता नहीं दी गई थी। इसलिए कांग्रेस के दोनों उदार तथा उग्र दलों ने क्रमशः सर तेजबहादुर सप्रू तथा पंडित मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में इसका विरोध किया। जब ३ फरवरी १९२८ को कमीशन बम्बई पहुँचा तो इसका बहिष्कार किया गया। नगर में हड़ताल की गई और काले झंडों के साथ प्रदर्शन किया गया तथा 'गो बैक साइमन' (साइमन वापिस जाओ) के नारे लगाये गये।

बाद में यह घोषणा की गई कि केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के सात सदस्यो का सहयोग लिया जायगा और उनको अपनी पृथक रिपोर्ट, कमीशन की रिपोर्ट के साथ पेश की जायगी, परन्तु केन्द्रीय सभा ने अन्त तक कमीशन का विरोध किया और सहयोग नही दिया। प्रान्तीय सभाम्रो कतिपय अल्पमतो, तथा दलित वर्गों को सरकार ने अपनी "मतभेद करो और शासन करो" की नीति से अपनी ओर मिला लिया था। डाक्टर ए० बी० कीथ के शब्दो में 'यह एक ऐसी भूल थी, जिसको टाला जा सकता था।' इस बात का निर्णय करने का अधिकार कि क्या भारतवर्ष स्वायत्त शासन के लिये आगे बढने के लिए योग्य था, किसी तीसरे निष्पक्ष दल को होना चाहिए था। कमीशन के स्वरूप देशभर में हडतालें की गई, अनेको मिल और कारखानो के मजदूरो ने काम करना बन्द कर दिया। बगाल और पजाब में भयकर उपद्रव हुए। इन उपद्रवों और हडतालो का दमन करने के लिये अङ्गरेजी सरकार ने सुरक्षा एक्ट और व्यवसायिक झगडो का एक्ट पास किया।

कमीशन अपना काम करता रहा। देश में चारो ओर हडताल तथा बायकाट हो रहा था। स्थिति और भयकर थी। उधर इगलैंड मे रैम्जे मैक्डोनल्ड की अध्यक्षता में मजदूरो की सरकार स्थापित हो चुकी थी। लार्ड इरविन सरकार से सलाह करने इंग्लैड दौड गया और वहा से शीघ्र आकर घोषणा की कि सरकार की नीति भारतवर्ष में औपनिवेशिक स्वराज्य स्थापित करने की है तथा साइमन कमीशन की रिपोर्ट के प्रकाशित होते ही लन्दन में एक गोलमेज सभा का आयोजन किया जायगा, जिसमें अङ्गरेज तथा भारतीय राजनीतिज्ञ साथ-साथ बैठकर भारत के भावी विधान पर विचार-विनिमय करेंगे। सरकार ने इसकी घोषणा तो कर दी थी परन्तु इसका पालन करना उसका उद्देश्य नहीं था। इससे पहले सरकार ने भारतीय जनता को अपना सर्वसम्मत विधान तैयार करने का चैलेंज दिया था जिसको स्वीकार कर पडित मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक विधान तैयार किया गया जिसमें भारत को एक औपनिवेशिक दर्जे की माँग थी, परन्तु उसमें यह साफ लिखा था कि यदि सरकार इसको स्वीकृत नहीं करती है तो कांग्रेस अपने अगले अधिवेशन में अपना ध्येय पूर्ण स्वराज्य रक्खेगी। ऐसा ही हुआ, सरकार ने सर्वसम्मत विधान को अस्वीकार कर दिया था और परिणामस्वरूप १९२९ में लाहौर अधिवेशन में कांग्रेस ने अपना लक्ष्य पूर्ण स्वराज्य घोषित कर दिया और २६ जनवरी १९३० को देशभर मे स्व-

स्वीकार नहीं किया। कुछ बातें रिपोर्ट की, बाद में चलकर, सरकार ने अवश्य स्वीकृत करली थी।

महात्माजी की डण्डी-यात्रा—इङ्गलैंड में उधर साइमन कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित हो रही थी और इधर भारत सरकार का दमनचक्र जारी था। इसी समय अप्रैल १९३० में महात्मा गाँधी ने नमक कानून को भंग करने के लिए अपना डण्डी प्रस्थान किया और अनेक देशभक्तों को साथ लेकर पैदल मार्ग से गाँवों और नगरों के निवासियों में स्वतन्त्रता का मन्त्र फूंकते हुऐ समुद्र-तट पर पहुँचकर कानून को भंग किया। देशभर में नमक बनाने का आन्दोलन आरम्भ हुआ। इस पर सरकार ने अपने दमन-चक्र को और तेज किया। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया गया, मादक वस्तुओं की दूकानों पर धरना दिया गया और कृषकों को लगान न देनें की सलाह दी गई। परिणामस्वरूप देश भर में सरकार की दानवी वृत्तियों का नग्न नृत्य होने लगा। इस आन्दोलन में महिलाओं ने भी बड़ा भारी कार्य किया था। उत्तरी-पश्चिमी सीमाप्रान्त में 'सीमान्त गांधी' अब्दुलगफ्फारखाँ के नेतृत्व में बर्बर पठान जाति ने 'बापू' के महामन्त्र 'अहिंसा' को अपनाकर, अपूर्व आत्मबल का परिचय दिया।

गोलमेज कान्फ्रेंस :—गोलमेज कान्फ्रेंस के प्रथम अधिवेशन की सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह थी कि देशी राज्यों के प्रतिनिधियों ने यह घोषणा की कि यदि केन्द्र में उत्तरदायित्वपूर्ण शासन स्थापित किया जाता है तो हम (देशी राज्य) भारत संघात्मक शासन में पूर्णतया सम्मिलित होने के. लिए तैयार हैं। इंग्लैंड की सरकार इस घोषणा को सुनने के लिये भी तैयार नहीं थी, फिर स्वीकार करने की कौन कहे? भारत के राष्ट्रवादी एवं देशी नरेश केन्द्र के अनुत्तरदायित्वपूर्ण शासन के सर्वथा विरुद्ध थे। अङ्ग्रेजी सरकार की परिस्थिति कुछ विकट-सी थी। १९ जनवरी को इंग्लैंड के प्रधान मन्त्री ने घोषणा की यदि केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा की रचना संघात्मक आधार पर हो तो ब्रिटिश सरकार केन्द्र में उत्तरदायित्वपूर्ण शासन स्थापित करने को. तैयार है।

महात्मा जी के भारत वापिस लौटने से पहले ही विलिंगडन ने, जो अप्रैल में वाइसराय बन कर आ गया था, दमन आरम्भ कर दिया था। संयुक्त प्रान्त के किसानों में भारी संकट पैदा हो गया था और देश के बड़े-बड़े नेता पण्डित जवाहरलाल नेहरू आदि सब बन्दी-गृह में डाल दिये गये। भारत आने पर महात्मा जी ने वाइसराय से मुलाकात करना चाहा, परन्तु वाइसराय ने इन्कार कर दिया। फिर

बाद में यह घोषणा की गई कि केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के सात सदस्यो का सहयोग लिया जायगा और उनको अपनी पृथक रिपोर्ट, कमीशन की रिपोर्ट के साथ पेश की जायगी, परन्तु केन्द्रीय सभा ने अन्त तक कमीशन का विरोध किया और सहयोग नही दिया। प्रान्तीय सभाओं कतिपय अल्पमतो, तथा दलित वर्गों को सरकार ने अपनी "मतभेद करो और शासन करो" की नीति से अपनी ओर मिला लिया था। डाक्टर ए० बी० कीथ के शब्दो में 'यह एक ऐसी भूल थी, जिसको टाला जा सकता था।' इस बात का निर्णय करने का अधिकार कि क्या भारतवर्ष स्वायत्त शासन के लिये आगे बढने के लिए योग्य था, किसी तीसरे निष्पक्ष दल को होना चाहिए था। कमीशन के स्वरूप देशभर में हडतालें की गई, अनेको मिल और कारखानो के मजदूरो ने काम करना बन्द कर दिया। बगाल और पजाब में भयकर उपद्रव हुए। इन उपद्रवों और हडतालो का दमन करने के लिये अङ्गरेजी सरकार ने सुरक्षा एक्ट और व्यवसायिक झगडो का एक्ट पास किया।

कमीशन अपना काम करता रहा। देश में चारो ओर हडताल तथा वायकाट हो रहा था। स्थिति और भयकर थी। उधर इग्लैड में रेम्जे मैकडोनल्ड की अध्यक्षता में मजदूरो की सरकार स्थापित हो चुकी थी। लार्ड इरविन सरकार से सलाह करने इग्लैड दौड गया और वहा से शीघ्र आकर घोषणा की कि सरकार की नीति भारतवर्ष में औपनिवेशिक स्वराज्य स्थापित करने की है तथा साइमन कमीशन की रिपोर्ट के प्रकाशित होते ही लन्दन में एक गोलमेज सभा का आयोजन किया जायगा, जिसमें अङ्गरेज तथा भारतीय राजनीतिज्ञ साथ-साथ बैठकर भारत के भावी विधान पर विचार-विनिमय करेंगे। सरकार ने इसकी घोषणा तो कर दी थी परन्तु इसका पालन करना उसका उद्देश्य नहीं था। इससे पहले सरकार ने भारतीय जनता को अपना सर्वसम्मत विधान तैयार करने का चैलेंज दिया था जिसको स्वीकार कर पडित मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक विधान तैयार किया गया जिसमें भारत को एक औपनिवेशिक दर्जे की माँग थी, परन्तु उसमें यह साफ लिखा था कि यदि सरकार इसको स्वीकृत नहीं करती है तो कांग्रेस अपने अगले अधिवेशन में अपना ध्येय पूर्ण स्वराज्य रक्खेगी। ऐसा ही हुआ, सरकार ने सर्वसम्मत विधान को अस्वीकार कर दिया था और परिणामस्वरूप १९२९ में लाहौर अधिवेशन में कांग्रेस ने अपना लक्ष्य पूर्ण स्वराज्य घोषित कर दिया और २६ जनवरी १९३० को देशभर में स्वतन्त्रता दिवस मनाया गया। तब से प्रतिवर्ष २६ जनवरी स्वतन्त्रता दिवस मनाया जाता है। मई १९३० में साइमन कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित हुई। जैसा प्रकट था कांग्रेस ने इसकी कडी आलोचना की। इङ्गलैंड की सरकार ने भी इसको पूर्णत.

स्वीकार नही किया। कुछ बातें रिपोर्ट की, बाद में चलकर, सरकार ने अवश्य स्वीकृत करली थी।

महात्माजी की डण्डी-यात्रा—इङ्गलैंड में उधर साइमन कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित हो रही थी और इधर भारत सरकार का दमनचक्र जारी था। इसी समय अप्रैल १९३० में महात्मा गांधी ने नमक कानून को भग करने के लिए अपना डण्डी प्रस्थान किया और अनेक देशभक्तों को साथ लेकर पैदल मार्ग से गांवो और नगरों के निवासियो में स्वतन्त्रता का मन्त्र फूंकते हुऐ समुद्र-तट पर पहुँचकर कानून को भग किया। देशभर में नमक बनाने का आन्दोलन आरम्भ हुआ। इस पर सरकार ने अपने दमन-चक्र को और तेज किया। विदेशी वस्तुओ का बहिष्कार किया गया, मादक वस्तुओ की दूकानों पर धरना दिया गया और कृषकों को लगान न देने की सलाह दी गई। परिणामस्वरूप देश भर में सरकार की दानवी वृत्तियों का नग्न नृत्य होने लगा। इस आन्दोलन में महिलाओ ने भी बड़ा भारी कार्य किया था। उत्तरी-पश्चिमी सीमाप्रान्त में 'सीमान्त गांधी' अब्दुलगफ्फारखां के नेतृत्व में बर्बर पठान जाति ने 'बापू' के महामन्त्र 'अहिंसा' को अपनाकर, अपूर्व आत्मबल का परिचय दिया।

गोलमेज कान्फ्रेंस :—गोलमेज कान्फ्रेंस के प्रथम अधिवेशन की सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह थी कि देशी राज्यों के प्रतिनिधियों ने यह घोषणा की कि यदि केन्द्र में उत्तरदायित्वपूर्ण शासन स्थापित किया जाता है तो हम (देशी राज्य) भारत सघात्मक शासन में पूर्णतया सम्मिलित होने के लिए तैयार हैं। इंग्लैंड की सरकार इस घोषणा को सुनने के लिये भी तैयार नहीं थी, फिर स्वीकार करने की कौन कहे? भारत के राष्ट्रवादी एवं देशीय नरेश केन्द्र के अनुत्तरदायित्वपूर्ण शासन के सर्वथा विरुद्ध थे। अङ्गरेजी सरकार की परिस्थिति कुछ विकट-सी थी। १९ जनवरी को इंग्लैंड के प्रधान मन्त्री ने घोषणा की यदि केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा की रचना सघात्मक आधार पर हो तो ब्रिटिश सरकार केन्द्र में उत्तरदायित्वपूर्ण शासन स्थापित करने को तैयार है।

महात्मा जी के भारत वापिस लौटने से पहले ही विलिंगडन ने, जो अप्रैल में वाइसराय बन कर आ गया था, दमन आरम्भ कर दिया था। संयुक्त प्रान्त के किसानो में भारी संकट पैदा हो गया था और देश के बड़े-बड़े नेता पण्डित जवाहरलाल नेहरू आदि सब बन्दी-गृह में डाल दिये गये। भारत आने पर महात्मा जी ने वाइसराय से मुलाकात करना चाहा, परन्तु वाइसराय ने इन्कार कर दिया। फिर

समय ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के दोनो भवन ब्रिटेन के सम्राट् से प्रार्थना करते कि भारत में सघ शासन की स्थापना की जाय और उस समय सघ-स्थापना की तिथि की घोषणा की जाती। केन्द्रीय, प्रान्तीय तथा देशीय राज्यो के क्षेत्रों का निर्णय करने के लिए एक सघीय न्यायालय की स्थापना होनी परन्तु शासन-विधान में सशोधन या परिवर्तन करने का अधिकार ब्रिटेन की पार्लियामेण्ट को ही था। भारत के उन राज्यो पर जो सघ में सम्मिलित नही होते तथा उनके उन अधिकारो पर जिनको वे सघ के केन्द्रीय शासन को नही देते। गवर्नर जनरल को अपनी इस हैसियत में नियन्त्रण रखने का अधिकार नही था, वरन् देशीय राज्यो के सम्बन्ध में सम्राट के प्रतिनिधि के रूप में, अर्थात् वाइसराय के रूप में वह ऐसा कर सकता था। वह कार्य भी गवर्नर जनरल ही करता परन्तु यह आवश्यक नही था, परन्तु ऐसा करते समय वह सम्राट् का प्रतिनिधि था, भारतीय शासन का अधिपति नही।

संघीय कार्यकारिणी :—कार्यकारिणी का अधिपति गवर्नर जनरल था। वह सम्राट् के प्रतिनिधि के रूप में भारतीय राज्यो से सम्बन्ध तो रखता ही था इसके अतिरिक्त उसके दो और प्रमुख कार्य क्षेत्र थे। प्रथम ऐसे कार्यों में जैसे देश की सुरक्षा तथा परराष्ट्र-नीति में वह किसी की सलाह या सम्मति स्वीकार करने के लिए बाध्य नही था। यद्यपि उसकी सहायता के लिये तीन सलाहकार थे। दूसरे क्षेत्र में उसको उन मन्त्रियो की सम्मति मान्य थी जो केन्द्रीय धारा सभा के सामने उत्तरदायी थे। परन्तु यहाँ पर भी उसको अपने व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार कार्य करने का अधिकार था।

संघीय धारा सभा :—सघीय धारा सभा के दो भवन थे, कौंसिल आव स्टेट और एसेम्बली। कौंसिल आव स्टेट में कुल २६० सदस्य थे जिनमें १५६ ब्रिटिश भारत या प्रान्तो के और १०४ देशी राज्यो के १५६ में १५० का सीधा निर्वाचन होता था, परन्तु निर्वाचक लोग बहुत अधिक धनाढ्य या शिक्षित ही हो सकते थे और ६ सदस्यो को गवर्नर जनरल को अल्पमतो स्त्रियो तथा दलित जातियो का प्रतिनिधित्व करने के लिए मनोनीत करने का अधिकार था, राज्यो के प्रतिनिधियो को राजा लोग मनोनीत करते थे। इस प्रकार प्रान्तो के प्रजा द्वारा निर्वाचित सदस्यो की प्रगतिशील भावनाओ का सन्तुलन करने के लिए राज्यो के राजाओ द्वारा मनोनीत अनुदार सदस्यो को उनकी सख्या के अनुपात से भी अधिक स्थान दिये गये थे। असेम्बली में कुल ३७५ सदस्य थे, जिनमें २५० ब्रिटिश भारत के और १२५ राज्यो के, ब्रिटिश इण्डिया के सदस्यो के निर्वाचन का अधिकार सीधा जनता को नहीं दिया

गया था । वरन् प्रांतीय असेम्बलियों, व्यापार संघों, भूमिपतियों के समुदायों, तथा श्रम-जीवियों के संघों आदि को यह अधिकार प्राप्त था । राज्यों के प्रतिनिधि इस भवन में भी राजाओं द्वारा मनोनीत किये जाते थे ।

प्रान्तीयकार्यकारिणी :—जिस प्रकार के अधिकार केन्द्र में गवर्नर जनरल को प्राप्त थे, लगभग वैसे ही अधिकार प्रान्तों में गवर्नरों को भी दिये गये थे । प्रांतों में स्वायत्त-शासन की स्थापना कर द्वैत शासन का अन्त किया गया था । साधारणतया गवर्नर लोग अपने मन्त्रि-मण्डल की सलाह से काम करते थे, जो अन्तिम धारासभा के सामने उत्तरदायी होता था, परन्तु गवर्नरों को विशेष अधिकार प्राप्त थे और प्रान्त की शान्ति तथा व्यवस्था सुस्थिर रखने के लिए वे भी समस्त प्रान्तीय शासन को अपने हाथ में ले सकते थे । ऐसी परिस्थिति में उनकी तानाशाही चलती थी ।

धारासभायें :—छः प्रान्तों में दो भवनों वाली धारासभायें स्थापित की गई और पांच में एक एक भवन वाली केन्द्रीय धारा सभा की भांति प्रथम भवन की अवधि ५ वर्ष रक्खी गई थी और दूसरा भवन चिरस्थायी था, जिसके ⅓ सदस्य प्रत्येक तीसरे वर्ष पृथक होते थे । सभाओं में भिन्न-भिन्न जातियों के प्रतिनिधियों की संख्या ४ अगस्त १९३२ के 'कम्यूनल अवार्ड'—साम्प्रदायिक निर्णय—और १५ सितम्बर १९३२ के पूना पैक्ट के अनुसार निश्चित की गई थी ।

१९३६ का निर्वाचन :—१९३५ के एक्ट के दो भाग थे । केन्द्र में संघ-शासन की स्थापना तथा प्रान्तों में स्वायत्त शासन । कांग्रेस ने यद्यपि इस एक्ट की आलोचना की थी परन्तु फिर भी अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने और शासन विधान को रद्द करने के लिये कांग्रेस ने नवम्बर १९३६ में प्रान्तीय धारासभाओं के निर्वाचन में भाग लिया और ११ प्रान्तों में से ६ प्रान्तों में कांग्रेस को भारी बहुमत प्राप्त हुआ ।

प्रश्न

१. साइमन कमीशन क्यों नियुक्त हुआ, भारत में उसकी क्या रिपोर्ट प्रकाशित हुई ?

अध्याय ४३

(क) प्रथम महायुद्ध के परचात् रूस से सम्बन्ध

१९१७ के पश्चात् कुछ समय तक पश्चिमी तथा मध्य एशिया में रूस व स्पेन भारत यूरोपियन शक्तियों को बड़ा भयङ्कर प्रतीत हो रहा था। १९०७ में ग्रेट ब्रिटेन के साथ रूस का जो समझौता हो गया था, जिसका पहले वर्णन किया जा चुका है, उसके द्वारा दोनों देशों की प्रमुख समस्याओं का निर्णय हो गया था और प्रथम महायुद्ध काल (१९१४-१८) में रूस ग्रेट ब्रिटेन का मित्र था। परन्तु बोल्शेविक क्रान्ति के पश्चात जार सत्ता के नष्ट हो जाने पर रूस में कुछ काल के लिए अराजकता सी छा गई थी। सोवियत शक्ति के सुस्थापित हो जाने के पश्चात् उसने प्राचीन रूसी साम्राज्य के सीमान्त प्रदेशों को ही पुनर्विजय करने का प्रयत्न नहीं किया वरन् खीवा और बुखारा पर विजय प्राप्त करने का यत्न किया। ये दोनों प्रान्त स्वतन्त्र हो चुके थे। इन दोनों खान राज्यों के पश्चात् रूस और भारत की अङ्गरेजी सरकार के बीच फारिस तथा अफगानिस्तान दो ही देश रह गये थे और बोल्शेविक प्रचार भारत की उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर अङ्गरेजी सरकार का सिर दर्द बना रहा।

(ख) द्वितीय महायुद्ध के परचात् स्वतन्त्रता आन्दोलन

जब सरकार ने दूसरा विश्व व्यापी युद्ध आरम्भ होने पर भारतवर्ष को भी युद्ध में शामिल कर दिया, तो कांग्रेस मन्त्री मण्डलों ने त्याग-पत्र दे दिया था। कांग्रेस ब्रिटिश सरकार से युद्ध के उद्देश्य पूछना चाहती थी और उसका कहना था कि यदि युद्ध का उद्देश्य प्रजातन्त्र की रक्षा करना है तो क्या भारत को भी यह शासन प्रणाली प्रदान की जायगी। परन्तु सरकार ने कोई निश्चित उत्तर नहीं दिया और अपना उद्देश्य शीघ्र से शीघ्र भारत में औपनिवेशिक स्वराज्य स्थापित करना बतलाया। कांग्रेस एक वर्ष तक सरकार के साथ समझौते का प्रयत्न करती रही परन्तु सब निष्फल रहा। भाषण की स्वतन्त्रता के प्रश्न पर महात्मा जी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह आरम्भ किया और सहस्रों मनुष्य हँसते-हँसते जेलखानों में चले गये। भारतवासियों का युद्ध में अधिक से अधिक सहयोग प्राप्त करने तथा अन्य देशों की आँखों में धूल झोंकने के विचार से वाइसराय ने अपनी कौंसिल में ५ भारतवासी

और बढा लिए। १९४१ में जापान ने भी अ ग्रेजो के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। युद्ध को अति निकट आता और स्थिति को विकट होता देखकर ब्रिटिश सरकार ने अपने लार्ड प्रिवीसील सर स्टेफोर्ड क्रिप्स को भारतीय नेताओं से समझौते की बात-चीत करने के लिए भेजा। उसने कहा कि युद्ध समाप्त होने पर भारतवासी एक विधान परिषद् के द्वारा अपना विधान बना सकेंगे, परन्तु उसी समय सरकार कोई अधिकार नही देना चाहती थी। परिणाम-स्वरूप कोई समझौता न हो सका और क्रिप्स महाशय को वापस जाना पडा। कांग्रेस, बिना पूर्ण स्वतन्त्रता को एक निश्चित अवधि में प्राप्त किये, सहायता करने को तैयार नहीं थी।

'भारत छोडो' प्रस्ताव :—इन्ही दिनो प्रशान्त महासागर में जापान ने अ ग्रेजो को खूब छकाया। अ ग्रेज लोग पूर्वी प्रदेशो में भारतवासियो को उनके भाग्य पर छोडकर चले आये। दीन भारतवासियो को नाना प्रकार की यातनाएँ सहनी पडी। सहस्रो की सख्या में पैदल ही भारत की ओर चल पडे क्योंकि यातायात के साधनो पर अंग्रेजो का अधिकार था। उनमें से अधिकतर कथन, भूखा, रोग, और शत्रुओ के आक्रमण के कारण मार्ग ही में सदा के लिए सो रहे। महात्माजी को इससे बडी वेदना हुई, उन्होंने ८ अगस्त १९४२ को बम्बई के कांग्रेस अधिवेशन मे 'क्विट-इण्डिया' भारत छोडो – प्रस्ताव पास कराया। इस प्रस्ताव को पास कराने का आशय यह था कि यदि अ ग्रेज जापानी आक्रमण के समय भारतवासियो को उनके भाग्य पर छोडकर भाग निकले तो देश को महान् सकट का सामना करना पडेगा, इसलिये पहले ही उनसे देश छोडकर चले जाने की प्रार्थना की गई थी। परन्तु जब तक महात्माजी वायसराय से मिलकर समझौते के सब सम्भव प्रयत्न समाप्त न कर लें तब तक कोई आन्दोलन आरम्भ होने को नही था। परन्तु सरकार तो दमन का पहले ही पूर्ण निश्चय कर चुकी थी और ९ अगस्त को बहुत सवेरे ही कांग्रेस वकिंग कमटी के सब सदस्यो तथा अन्य सहस्रो राष्ट्रीय नेताओ को बन्दीगृह में बन्द कर दिया। नेतृत्वहीन जनता ने क्षुब्ध होकर आन्दोलन आरम्भ कर दिया। सरकार ने बडी कठोरता का व्यवहार किया। परिणामस्वरूप आन्दोलन उग्र हो उठा सरकार यह चाहती ही थी। उसको अपनी पैशाचिक वृत्तियो का परिचय देने का अवसर मिला। गाँव के गाँव जला डाल गए, लोगो पर लाठी चार्ज हुआ। कहीं-कहीं उनको उल्टा पेड से लटकाया गया। महिलाओ का सतीत्व अपहरण किया गया। मनुष्यो पर अवर्णनीय अमानुषिक अत्याचार ढाये गए और प्रेस का मुख बन्द कर दिया गया जिससे इन कुकृत्यो का समाचार कही पहुँच न जाय। इस भयकर दमन तथा अमानुषिक व्यवहार के कारण आन्दोलन दब गया और इस

आन्दोलन का उत्तरदायित्व काग्रेस के मत्थे मढ़ा गया। जब इस भयकर दा
समाचार महात्माजी के पास बन्दीगृह में पहुँचा, तो उन्होने वाइसराय लार्ड
लिथगो को लिखा कि इसका उत्तरदायित्व सरकार पर है और उसको यह
बन्द कर देना चाहिये। यदि सरकार ऐसा नहीं करती है तो वे १० फरवरी
से २१ दिन का उपवास आरम्भ कर देंगे। लिनलिथगो की सरकार के कानों
तक न रेंगी। महात्मा जी ने अपनी घोषणा के अनुसार व्रत आरम्भ कर दिया
भर में सनसनी फैल गई। चारों ओर से तार खटकने लगे, परन्तु ब्रिटिश सर
लेशमात्र भी परवाह नहीं की। ७३ वर्ष के वृद्ध महात्मा ने २१ दिन का व्रत स
समाप्त किया।

वैवल योजना :—अगस्त १६४४ में लार्ड लिनलिथगो के स्थान पर
वैवल गवर्नर जनरल नियुक्त होकर आये। वह क्रिप्स-वार्ता के समय कमान्ड
चीफ था। मार्च १६४५ में वह भारत के राजनीतिक गतिरोध के अन्त व
प्रश्न पर परामर्श करने इंग्लैंड गए और लौटकर १४ जून को अपनी योज
रेडियो पर घोषणा की। उनके प्रस्ताव की मुख्य-मुख्य बातें इस प्रकार थी—
कारिणी में देश के मुख्य सम्प्रदायों के प्रतिनिधियों के साथ-साथ सवर्ण हिन्दुओं
मुसलमानों का सामान प्रतिनिधित्व रहेगा। इस नई कार्यकारिणी में वाइसरा
कमाण्डर-इन-चीफ को छोड़कर सभी सदस्य भारतीय होंगे। वैदेशिक विभाग ज
तक वाइसराय के हाथ में था, भारतीय सदस्य के हाथ में होगा, परन्तु केव
हद तक जहाँ तक ब्रिटिश भारत के हितों का सबंध हो। जिस
ब्रिटिश हितों की रक्षा के लिए डोमिनियनों में ब्रिटिश हाई कमिश्नर नियुक
जाते हैं, वैसे ही भारतवर्ष में एक हाई कमिश्नर नियुक्त किया ज
यह कार्य-कारिणी वर्तमान विधान की सीमाओं के भीतर ही काम करे
गवर्नर जनरल की वैधानिक शक्तियों के प्रयोग न करने का कोई प्रश्न नहीं
हाँ उनका कोई अनुचित प्रयोग नहीं होगा। इस योजना का अन्तिम वै
समझौते पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। इस नई कार्यकारिणी के मुख्य काम
लिखित होंगे—"(१) जापान के विरुद्ध युद्ध का पूरी शक्ति से सचालन करना
नये शासन विधान के बनाने और काम में आने तक ब्रिटिश भारत का शासन स
करना और उसके साथ ही युद्धोपरान्त की जाने वाली उन्नति की अनेकों सम
पर विचार करना और कार्य करना, (३) भावी सर्वसम्मत शासन विधान ब
साधनों पर विचार करना।" वाइसराय ने यह भी बतलाया कि प्रान्तों के गव
राजनैतिक नेताओं की सम्मति से गवर्नर जनरल द्वारा पसन्द किए जायेंगे

और उसके लिये एक धारासभा और कार्यकारिणी का निर्माण कर लें। प्रत्येक को यह निर्णय करने का अधिकार होगा कि कौन कौन से प्रान्तीय विषय व्यवस्था के लिये उसके पास रहेंगे।

(५) यूनियन और इस प्रकार के संघों के शासन-विधान में ऐसी होनी चाहिये जिसके अनुसार कोई भी प्रान्त अपनी धारासभा में बहुमत से करके शासन विधान के बनने के प्रथम १० वर्ष पश्चात् और फिर प्रत्येक वर्ष शासन विधान की धाराओं के पुनर्विचार की मांग कर सके।

(६) विधान परिषद के निर्माण के लिये मिशन ने निम्नलिखित निय रखे —

क—प्रत्येक प्रान्त की धारासभा अपनी जनसंख्या के प्रति १० लाख के लि एक सदस्य चुने।

ख—ये सदस्य प्रत्येक प्रान्त में मुख्य सम्प्रदायों (जनरल, मुस्लिम और सिख) के बीच उनकी जनसंख्या के अनुपात में विभक्त किये जायें और धारासभा प्रत्येक साम्प्रदाय के सदस्य अपने प्रतिनिधियों को पृथक्-पृथक् एक परिवर्तनीय वो वाली आनुपातिक निर्वाचन प्रणाली के अनुसार चुनें।

ग—चीफ कमिश्नर के प्रान्तों के लिये भी आनुपातिक संख्या में प्रतिनि चुने जायें।

और उसके लिये एक धारासभा और कार्यकारिणी का निर्माण कर लें। प्रत्येक को यह निर्णय करने का अधिकार होगा कि कौन-कौन से प्रान्तीय विषय व्यवस्था के लिये उसके पास रहेगे।

(५) यूनियन और इस प्रकार के सघो के शासन विधान में ऐसी व्य होनी चाहिये जिसके अनुसार कोई भी प्रात अपनी धारासभा में बहुमत से कर शासन विधान के बनने के प्रथम १० वर्ष पश्चात् और फिर प्रत्येक वर्ष शासन विधान की धाराओ के पुनर्विचार की माँग कर सके।

(६) विधान परिषद के निर्माण के लिये मिशन ने निम्नलिखित नि रक्खे —

क—प्रत्येक प्रान्त की धारासभा अपनी जनसख्या के प्रति १० लाख के लि एक सदस्य चुने।

ख—ये सदस्य प्रत्येक प्रान्त में मुख्य सम्प्रदायो (जनरल, मुस्लिम सिख) के बीच उनकी जनसख्या के अनुपात में विभक्त किये जायें और धारासभा प्रत्येक साम्प्रदाय के सदस्य अपने प्रतिनिधियो की पृथक-पृथक् एक परिवर्तनीय वो वाली आनुपातिक निर्वाचन प्रणाली के अनुसार चुनें।

ग—चीफ कमिश्नरो के प्रान्तो के लिये भी आनुपातिक सख्या में प्रतिनि चुने जायें।

घ—देशीय राज्यो के कुल प्रतिनिधियो की सख्या ९३ निश्चित की गई इनके निर्वाचन का ढग पारस्परिक विचार विनिमय द्वारा निश्चित किया जाने क था। रियासतो के सम्बन्ध में परामर्श करने के लिये एक विचार विनिमय कमेटी बनाई जाय और गई। कमेटी प्रारम्भ में राज्यो का प्रतिनिधित्व करेगी।

भारतीय हाथों में सत्ता सौंपने के लिये आवश्यक कार्यवाही करने का निश्चित इरादा है। इसके साथ यह भी कहा गया कि यदि तब तक विधान न बन सका तो ब्रिटिश सरकार सोचेगी कि केन्द्रीय सत्ता किसी केन्द्रीय सरकार या कुछ विभागों में वर्तमान प्रान्तीय सरकारों या अन्य और किसी प्रकार सत्ता हस्तान्तरित की जाय। साथ ही लार्ड वेवल के स्थान पर लार्ड माउण्टबेटन के वाइसराय बनाये जाने की भी घोषणा की गई। ब्रिटिश केबिनेट का विचार था कि इस घोषणा के प्रभाव से वास्तविक स्थिति को समझकर शीघ्र कोई समझौता हो जायगा परन्तु लीग कोई समझौता करने को तैयार नहीं थी। अब उसने अधिक से अधिक प्रान्तों के शासन पर अधिकार करने का प्रयत्न किया। पंजाब में लीग का पक्षपाती गवर्नर था उसने इस बात का यूनियनिस्ट मन्त्रिमण्डल से त्यागपत्र दिलवा दिया परन्तु लीग अल्पमत होने के कारण फिर भी अपना मन्त्रिमण्डल न बना सकी और गवर्नर अपने विशेषाधिकारों से स्वयं शासन करने लगा।

और उसके लिये एक धारासभा और कार्यकारिणी का निर्माण कर लें। प्रत्येक स को यह निर्णय करने का अधिकार होगा कि कौन-कौन से प्रान्तीय विषय उसकी व्यवस्था के लिये उसके पास रहेगे।

(५) यूनियन और इस प्रकार के संघो के शासन-विधान में ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये जिसके अनुसार कोई भी प्रान्त अपनी धारासभा में बहुमत से निर्णय करके शासन विधान के बनने के प्रथम १० वर्ष पश्चात् और फिर प्रत्येक वर्ष पश्चा शासन-विधान की धाराओ के पुनर्विचार की मांग कर सके।

(६) विधान परिषद के निर्माण के लिये मिशन ने निम्नलिखित नियम रक्खे :—

क—प्रत्येक प्रान्त की धारासभा अपनी जनसख्या के प्रति १० लाख के लिये एक सदस्य चुने।

ख—ये सदस्य प्रत्येक प्रान्त में मुख्य सम्प्रदायो (जनरल, मुस्लिम और सिख) के बीच उनकी जनसख्या के अनुपात में विभक्त किये जायें और धारासभा में प्रत्येक साम्प्रदाय के सदस्य अपने प्रतिनिधियो की पृथक-पृथक् एक परिवर्तनीय वोट वाली आनुपातिक निर्वाचन प्रणाली के अनुसार चुनें।

ग—चीफ कमिश्नर् के प्रान्तो के लिये भी आनुपातिक सख्या में प्रतिनिधि चुने जायें।

घ—देशीय राज्यो के कुल प्रतिनिधियो की सख्या ९३ निश्चित की गई। इनके निर्वाचन का ढग पारस्परिक विचार विनिमय द्वारा निश्चित किया जाने को था। रियासतो के सम्बन्ध में परामर्श करने के लिये एक विचार विनिमय कमेटी बनाई जाय और गई। कमेटी प्रारम्भ में राज्यो का प्रतिनिधित्व करेगी।

९ दिसम्बर १९४६ को बडे उत्साह के साथ विधान परिषद का उद्घाटन हुआ, परन्तु लीग ने भाग नही लिया। पडित नेहरू ने वैवल को लिखा कि या तो लीग विधान परिषद में भाग ले या फिर अन्तरिम सरकार से भी पृथक् हो जाय। वैवल ने यह पत्र लियाकतअलीखाँ को दे दिया जिसके उत्तर में उसने कहा कि १६ मई की योजना को स्वीकार न करके जिस प्रकार काग्रेस को अन्तरिम सरकार में रहने का अधिकार है, उसी प्रकार लीग का भी है। ये दोनो पत्र वैवल ने ब्रिटिश केबिनेट के पास भेज दिये। इन पर तो कोई निर्णय नही किया गया परन्तु प्रधान मन्त्री एटली ने २० फरवरी को एक महत्वपूर्ण घोषणा यह की कि "सम्राट् की सरकार यह बात स्पष्ट कर देना चाहती है कि उसका जून १९४८ तक उत्तरदायी

भारतीय हाथों में सत्ता सौंपने के लिये आवश्यक कार्यवाही करने का निश्चित इरादा है। इसके साथ यह भी कहा गया कि यदि तब तक विधान न बन सका तो ब्रिटिश सरकार सोचेगी कि केन्द्रीय सत्ता किसी केन्द्रीय सरकार या कुछ विभागों में वर्तमान प्रान्तीय सरकारों या अन्य और किसी प्रकार सत्ता हस्तान्तरित की जाय। साथ ही लार्ड वेवल के स्थान पर लार्ड माउण्टबेटन के वाइसराय बनाये जाने की भी घोषणा की गई। ब्रिटिश केबिनेट का विचार था कि इस घोषणा के प्रभाव से वास्तविक स्थिति को समझकर शीघ्र कोई समझौता हो जायगा परन्तु लीग कोई समझौता करने को तैयार नही थी। अब उसने अधिक से अधिक प्रान्तों के शासन पर अधिकार करने का प्रयत्न किया। पंजाब में लीग का पक्षपाती गवर्नर था उसने इस पर का यूनियनिस्ट मन्त्रिमण्डल से त्यागपत्र दिलवा दिया परन्तु लीग अल्पमत होने के कारण फिर भी अपना मन्त्रिमण्डल न बना सकी और गवर्नर अपने विशेषाधिकारो से स्वयं शासन करने लगा।

लार्ड माउण्टबेटन ने भारत आकर २२ मार्च को अपने पद का भार सँभाला। जब उसने देखा कि मिशन-योजना को लीग स्वीकार नही करेगी तो देश के बँटवारे का प्रश्न सामने आया और ३ जून को नये तथा अन्तिम वाइसराय ने यह ऐतिहासिक घोषणा की कि देश को दो भागों—भारतवर्ष तथा पाकिस्तान में विभक्त किया जायगा। दोनो की पृथक्-पृथक् विधान परिषद होगी। बंगाल और पंजाब के दो भाग किये जायेंगे। उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रान्त में इस विषय पर जनमत लिया जायगा कि जनता वर्तमान विधान सभा में भाग लेना चाहती है या नई बनने वाली सभा में। आसाम के सिलहट जिले में भी इस बात पर जनमत लिया जायगा कि वहाँ के निवासी आसाम में रहना चाहेंगे या बंगाल में सम्मिलित होंगे। इस घोषणा में यह भी बतलाया गया कि ब्रिटिश सरकार जून १९४८ से पहले ही सत्ता हस्तान्तरित करने को तैयार है।

४ अगस्त १९४७ को भारत की स्वतन्त्रता का बिल ब्रिटिश पालियामेण्ट में पेश किया गया जो शीघ्र ही पास हो गया। इसमें १५ अगस्त को भारत और पाकिस्तान दो डोमिनियनो का जन्म करने की व्यवस्था की गई, अन्य डोमिनियनों की भाँति इनमें भी पृथक्-पृथक् सम्राट् के प्रतिनिधि गवर्नर जनरल की व्यवस्था की गई। दोनों की व्यवस्थापिका सभाओं पर से सब नियन्त्रण हटाकर उनको सब प्रकार के साधारण एवं वैधानिक कानून बनाने का अधिकार दे दिया गया। अब किसी बिल को सम्राट् की इच्छा जानने के लिये स्थगित करने या किसी अवधि तक रोकने की आवश्यकता नही रही। सम्राट् की ओर से गवर्नर जनरल को व्यवस्थापिका सभा

द्वारा बनाये हुए कानूनो पर स्वीकृति देने का अधिकार मिल गया। रियासतें स्वतन्त्र हो गई। उनके साथ सम्राट् का सब सम्बन्ध टूट गया और उनके साथ जितनी सन्धियाँ या इकरारनामे थे सब रद्द हो गये। १५ अगस्त १६४७ को यह एक्ट लागू हो गया भारत और पाकिस्तान दो स्वतन्त्र डोमिनियन घोषित कर दिये गय। लगभग दो सौ वर्षों की दासता के पश्चात् देश को स्वतन्त्रता मिली परन्तु लीग की हठधर्मी और घृणित प्रचार के कारण देश की अखण्डता का मूल्य चुकाकर।

हैदराबाद में मुसलमानो की एक सस्था इत्तिहादुल मुसलमीन ने अपनी शक्ति को इतना बढा लिया था कि अन्त में नवाब पर भी उसका अधिकार हो गया। ये लोग वहाँ स हिन्दुओ को निकाल बाहर करना चाहते थे और इसलिए उनके साथ नाना प्रकार के अत्याचार किये जाने लगे। यहाँ भी लीगी ढङ्ग का प्रचार किया गया। कासिम रिजवी रजाकारो के नेता ने आसफजाही पताका लालकिले पर फहराने की धमकी दी और चुपके-चुपके युद्ध की पूरी तैयारी कर ली गई। जब समझाने स किसी प्रकार काम न चला तो भारत सरकार ने १३ सितम्बर १६४८ को अपनी सेना पुलिस कार्यवाही के लिये रियासत में प्रविष्ट की। रजाकारो और हैदराबाद की सेना ने ४ दिन तक सामना किया परन्तु १७ सितम्बर को नवाब ने आत्म-समर्पण कर दिया। पाकिस्तान ने हैदराबाद की समस्या को लेकर राष्ट्र सघ में बडी हायतौबा मचाई। हैदराबाद की स्थिति पर अधिकार करने और वहाँ का प्रबन्ध ठीक करने क लिए फौजी गवर्नर का शासन स्थापित कर दिया गया।

काश्मीर की समस्या हैदराबाद से पहले गभीर हो चुकी थी। महाराज काश्मीर का अभी यह निर्णय नही हो पाया था कि उसका राज्य भारत में या पाकिस्तान में सम्मिलित हो कि पश्चिमी पाकिस्तान ने कबाइलियो को भड़काकर काश्मीर पर आक्रमण करा दिया, जिसमें चोरी-चोरी पाकिस्तानी सेना ने भी सहायता की। काश्मीर सेना के कुछ मुसलमान सिपाही भी आक्रान्ताओ से आ मिले। सम्पूर्ण राज्य में हाहाकार मच गया। इस स्थिति में महाराज काश्मीर ने नेशनल कान्फ्रेंस के नेता शेख अब्दुल्ला को अपना प्रधान मन्त्री बनाकर शासन का भार उसके सुपुर्द कर दिया। जिसने २७ अक्तूबर १६४७ को महाराज से भारत सरकार से काश्मीर को सम्मिलित करने और रक्षार्थ सेना भेजने के लिए प्रार्थना कराई। भारत सरकार ने प्रार्थना स्वीकार कर, तुरन्त सेना भेजी। भारत सरकार ने करोडो रुपया व्यय करके काश्मीर की निरपराध जनता की रक्षा की और बहुत भागो से आक्रान्ताओ को निकाल बाहर किया। परन्तु क्योकि पाकिस्तानी सेना भी आक्रमणकारियो की सहायता कर रही थी, और उनको तब तक पराजित नही किया जा सकता था जब तक पाकिस्तान के भीतर

उनके अड्डों पर सफल आक्रमण न किये जाते और इसका अर्थ पाकिस्तान के साथ खुल्लम-खुल्ला युद्ध करना था, जिसको भारत सरकार करना नहीं चाहती थी। इसलिए ३० दिसम्बर १६४७ को काश्मीर प्रश्न भारत सरकार ने यू. एन. ओ. की सुरक्षा कौंसिल के समक्ष रक्खा। इस प्रश्न पर व्यर्थ ही एक वर्ष वाद-विवाद होता रहा परन्तु १ जनवरी १६४८ को अस्थायी शान्ति स्थापित होकर युद्ध बन्द हो गया। अभी तक (नवम्बर १६४६) प्रश्न यू. एन. ओ. के सामने है और समस्या का निर्णय नहीं हो सका है। भारत सरकार काश्मीर की जनता का जनमत लेने को तैयार है, परन्तु काश्मीर से सब शत्रु-सेना का निकल जाना और रियासत से बाहर गये हुए आदमियों का वापिस आकर बस जाना नितान्त आवश्यक है। इसके लिए पाकिस्तान तैयार नहीं है और वह अस्थायी संधि की शर्तों को भी भंग करता आ रहा है। इंग्लैंड का एक दल विशेष काश्मीर के विभाजन के पक्ष में है। परन्तु भारत सरकार इसको स्वीकृत करने के पक्ष में नहीं है। काश्मीर की जनता भारत में सम्मिलित होना चाहती है।

६ दिसम्बर १६४६ से भारत की विधान परिषद भारत के लिए नया शासन विधान बनाने का कार्य कर रही है। भारत एक सार्वभौम स्वतन्त्र प्रजातन्त्र होगा। देश में संघीय शासन की व्यवस्था की जायगी। राज्य का अध्यक्ष एक प्रेजीडेण्ट होगा। और उसकी सहायता के लिए एक वाइस प्रेजीडेण्ट भी होगा। मन्त्रिमण्डल धारासभा के सामने उत्तरदायी होगा। शासन-विधान के निर्माण का कार्य समाप्त हो चुका है और २६ जनवरी १६५० से लागू हो गया है।

भारत को सत्ता हस्तान्तरित करते समय ब्रिटिश सरकार ने रियासतों को स्वतन्त्र घोषित करके अपनी धूर्ततापूर्ण कूटनीति का अन्तिम परिचय दिया था; परन्तु भारत सरकार ने सरदार पटेल उप-प्रधानमन्त्री के अथक परिश्रम एवं श्रेयस्कर कार्य से रियासत समस्या को अच्छी तरह सुलझा दिया। उड़ीसा, मध्यप्रान्त, बिहार मद्रास, बम्बई तथा पूर्वी पंजाब और युक्तप्रान्त की छोटी-छोटी रियासतें इन्हीं प्रान्तों में विलीन करदी गई हैं। पूर्वी पंजाब की २१ पहाड़ी रियासतों को हिमाचल प्रदेश संघ में सम्मिलित करके केन्द्रीय शासन ने अपने हाथ में ले लिया है और इसी प्रकार कच्छ का शासन भी केन्द्रीय सरकार के हाथ में है। काठियावाड़ की रियासतों को मध्यभारत, बुन्देलखण्ड की रियासतों को मत्स्यसंघ में सम्मिलित कर दिया गया है। जोधपुर, जैपुर, बीकानेर और जैसलमेर के अतिरिक्त राजपूताने की सब रियासतें राजस्थान संघ में मिला दी गई थी। अब ये राज्य भी मिलाकर वहाँ राजस्थान की स्थापना की गई है। भूपाल राज्य को भी १ जून १६४६ को सरकार ने अपने हाथ

में ले लिया था। इस प्रकार सैकडो छोटी वडी स्वतन्त्र रियासतो को, जिनसे देश की व्यवस्था में गडबड होने का भय था, वडी योग्यता तथा सुन्दरता से भारत यूनियन में सम्मिलित कर लिया गया है। यह कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है और नेहरू-पटेल सरकार को इसका श्रेय प्राप्त है।

भारत को ब्रिटिश कामनवैल्थ का सदस्य बनाये रखने के लिये इंगलैंड वडा उत्सुक था और इसके लिए अक्तूबर १९४८ तथा अप्रैल १९४९ में दो बार लन्दन में कामनवैल्थ के प्रधान मन्त्रियो का सम्मेलन हुआ। भारत ने कामनवैल्थ में रहना स्वीकार कर लिया है परन्तु इसका नाम ब्रिटिश कामनवैल्थ के स्थान पर 'कामनवैल्थ आव नेशन्स' हो गया है। इंगलैंड की दासता का अन्तिम चिन्ह प्रिवी कौंसिल में भारत के हाईकोर्टों की अपील का जाना भी १० अक्तूबर १९४९ से समाप्त कर दिया गया है। अब भारत पूर्णतया स्वतन्त्र है संसार के प्रमुख देश उसकी मित्रता प्राप्त करने के लिए हाथ वढा रहे हैं। प्रधान मन्त्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने, जो पराराष्ट्र-विभाग के अध्यक्ष भी हैं, भारत की वैदेशिक नीति की घोषणा अनेको बार स्पष्ट शब्दो में इस प्रकार की है कि "भारत आधुनिक किसी गुट में सम्मिलित नही होगा। 'बापू' द्वारा प्रशस्त सत्य, अहिंसा तथा नैतिकता के पथ पर चलकर वह सबके साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है।" और ससार से उपनिवेशवाद समाप्त कर पचशीला के आधार पर सगठन में शान्ति स्थापित करना चाहता है और विकास योजनाओ से अपने आपको समृद्ध करना चाहता है।

प्रश्न

१. द्वितीय महायुद्ध के बाद भारत ने किस प्रकार स्वतन्त्रता प्राप्त की ?

अध्याय ४४

भारतीय संविधान की रूप-रेखा

परमात्मा की परम अनुकम्पा से आज भारत दासता की श्रृंखलाओं से उन्मुक्त है। विश्व के सभ्य एवं स्वतन्त्र देशों के समकक्ष है। आज भारतवासी का वक्षस्थल विस्तीर्ण एवं मस्तिष्क मनमानी उड़ान करने के लिये सर्व प्रकारेण स्वतन्त्र है। हमने अपने देश का संविधान निर्मित किया है और बड़े गर्व से कहा है कि 'हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण सत्ताधारी प्रजातान्त्रात्मक गणराज्य निर्माण करने तथा उसके समस्त जानपदों को न्याय, सामाजिक, आर्थिक, और राजनैतिक, स्वतन्त्रता-विचार की अभिव्यक्ति की, विश्वास की, धर्म की और उपासना की, प्राप्त कराने तथा उन सब में बन्धुता, जिससे व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित हो, वर्धन करने के हेतु कृतदृढ़संकल्प अपनी इस संविधान-सभा में आज ता० २६ नवम्बर १९४९ ई० को इसके द्वारा इस संविधान को अंगीकार करते हैं, अधिनियम या रूप देते हैं और अपने आपको इस संविधान के अर्पण करते हैं।" अतः ऐसी महत्वपूर्ण घोषणा के पश्चात् यह अनिवार्य हो जाता है कि विद्यार्थियों को भारतीय संविधान की सूक्ष्म रूप-रेखा से परिचय कराया जावे।

किसी विदेशी राज्य में नही किया है और वह प्रत्येक व्यक्ति जो स्वयं या जिसके जनक अथवा महाजनो में से कोई भारत शासन अधिनियम सन् ३५ ई० द्वारा परिभाषित भारत में अथवा ब्रह्मदेश, लंका अथवा मलाया देश में जन्मा था और जिसका अधिवास इस संविधान द्वारा परिभाषित भारत के राज्यक्षेत्र में है, भारत का नागरिक होगा। ससद विधि द्वारा, जानपदत्व की अवाप्ति और अवसान तथा तत्सम्बन्धी अन्य सब बातो के लिये और भी प्रावधान बना सकेगी।

मताधिकार :—धर्म, प्रजाति, जाति अथवा लिंग के आधार पर विभेद का प्रतिषेध है। राज्याधीन नियुक्ति में अवसर-समता रहेगी। अस्पृश्यता एवं उपाधियों का अन्त होगा। भाषण, अभिव्यक्ति, शान्तिपूर्वक और निरायुध सम्मेलनो की स्वतन्त्रता रहेगी। भारत के समस्त राज्यक्षेत्र में अबाध पर्यटन, निवास और बस जाने की पूरी-पूरी स्वतन्त्रता रहेगी। व्यवसाय, वृत्ति, वाणिज्य, अथवा व्यापार करने का जानपदो को अधिकार होगा, किन्तु यें समताधिकारी किसी अन्य जानपद के विरुद्ध न होने चाहियें। मानव-पणन और बलात्श्रम वर्जित है। बालकों के निर्माणियो आदि में सेवा-योजन का वर्णन है। विश्वास-स्वातन्त्र्य तथा धर्म के अबाध मानने, आचरण और प्रचार करने का स्वातन्त्र्य रहेगा। अल्पसख्यकों के हितों की रक्षा की जावेगी। लोक-हित-वृद्धि-हेतु राज्य सामाजिक व्यवस्था बनायेगा।

संघ-प्रधान तथा उपप्रधान :—भारत का एक प्रधान होगा। संघ की अधिशासी शक्ति प्रधान में निहित होगी और वह इसका प्रयोग संविधान तथा विधि के अनुसार कर सकेगा। पूर्वगामी प्रावधान की व्यापकता पर बिना विपरीत प्रभाव डाले प्रति रक्षाबल का सर्वोच्च समादेश प्रधान में निहित होगा और उसका प्रयोग विधि से अनियमित होगा। प्रधान का निर्वाचन एक ऐसे निर्वाचक-समूह के सदस्य करेंगे जिसमें संसद् के दोनो आगारो के सदस्य तथा राज्यो के विधानमण्डल के निर्वाचित सदस्य होंगे, प्रधान की पद-अवधि पांच वर्ष की है। प्रधान का पद वही प्राप्त कर सकता है जो भारत का जानपद हो, ३५ वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो तथा लोक-सभा के लिये सदस्य निर्वाचित होने की योग्यता रखता हो। प्रधान न तो ससद् का और न किसी राज्य के विधानमण्डल का संदस्य होगा। वह परिलाभ का अन्य कोई पद अथवा स्थिति ग्रहण न करेगा। उसके स्वयं के परिलाभ तथा अधिदेय उसकी पदावधि में घटाये न जायेंगे। पद-प्रवेश के पूर्व प्रधान को शपथ लेनी पड़ेगी।

भारत का एक उपप्रधान होगा। वह अपने पदकारणात् राज्य-परिषद् का सभापति होगा और अन्य किसी परिलाभ का पद अथवा स्थिति धारण न करेगा,

किन्तु प्रधान के स्थानापन्न होते ही वह राज्य-परिषद् के सभापति के पद कर्त्तव्यों को न करेगा। उपप्रधान भी किसी संसद् या किसी राज्य के विधानमण्डल का सदस्य न होगा। उसे भारत का जानपद होना चाहिये और ३५ वर्ष की आयु से बड़ा होना चाहिये तथा राज्य-परिषद् के लिये सदस्य निर्वाचित होने की योग्यता रखता हो। उपप्रधान की पदावधि भी ५ वर्ष की है।

मंत्रिपरिषद् :—प्रधान को सहायता और मन्त्रणा देने के लिये मन्त्रि-परिषद होगी जिसका प्रमुख प्रधानमन्त्री होगा, प्रधानमन्त्री की नियुक्ति प्रधान करेगा और अन्य मन्त्रियों को प्रधान मन्त्री की मन्त्रणा पर प्रधान नियुक्त करेगा। प्रधान के प्रसाद-काल तक मन्त्री अपने पद पर आसीन रहेंगे, मन्त्रिपरिषद् लोक सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होगी। कोई मन्त्री जो छ निरन्तर मासों की किसी अवधि तक संसद के किसी आगार का सदस्य न रहे, उस अवधि के पश्चात् मन्त्री न रहेगा। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश को प्रधान, भारत का महान्यायाभिकर्ता नियुक्त करेगा। उसका पद प्रधान के प्रसाद-काल पर आश्रित रहेगा तथा एक भारत का महालेखक प्रधान नियुक्त करेगा। भारत शासन की समस्त प्रशासी कार्यवाही प्रधान के नाम से की गई कही जावेगी।

प्रधानमंत्री का कर्त्तव्य :—संघ कार्यों के प्रशासन-सम्बन्धी मन्त्रि-परिषद् के समस्त निर्णय तथा विधानार्थ प्रस्थापनाएँ प्रधान को पहुँचाना; संघ-कार्यों के प्रशासन-सम्बन्धी तथा विधानार्थ प्रस्थापनाओं-सम्बन्धी ऐसी जानकारी प्रस्तुत करना जिसे प्रधान मँगावे; और किसी विषय को, जिस पर मन्त्री ने निर्णय दे दिया है, किन्तु मन्त्री-परिषद् ने विचार नहीं किया है, प्रधान के अपेक्षा करने पर परिषद् के सम्मुख विचारार्थ रखना प्रधान मन्त्री का कर्तव्य होगा।

संसद्.—संघ के लिये एक संसद् होगी जो प्रधान और दो आगारों की बनेगी, जिनके नाम क्रमशः राज्य-परिषद् और लोक-सभा होंगे। राज्यपरिषद् के दो सौ पचास सदस्य होंगे जिनमें से १२ सदस्य प्रधान द्वारा मनोनीत होंगे और शेष राज्यों के प्रतिनिधि होंगे। राज्यपरिषद् का विलयन न किया जायेगा किन्तु उसके सदस्यों में से ⅓ यथाशक्य निकटतम संख्या संसद् से विधि द्वारा बनाये गये तद्विषयक उपबन्धों के अनुसार प्रत्येक द्वितीय वर्ष की समाप्ति पर निवृत हो जायगी। लोक-सभा के लिये निर्वाचन प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर होगा। लोक-सभा यदि पहिले ही विलयन न करदी जाये तो अपने प्रथम अधिवेशन के लिए नियुक्त तिथि से ५ वर्ष पर्यन्त चालू रहेगी, किन्तु इससे अधिक नहीं और पांच वर्ष की उक्त अवधि के अवसान पर लोक-सभा का विलयन होगा। प्रधान

समय-समय पर दोनों अथवा किसी भी आगार को अधिवेशन के लिए बुला सकेगा और लोक-सभा का विलयन कर सकेगा।

संसद् के अधिकारी :—भारत का उपप्रधान, पद-कारणात् राज्य-परिषद् का सभापति होगा। राज्यपरिषद् अपने किसी सदस्य को उपसभापति चुनेगी। लोक-सभा यथासम्भव शीघ्र, अपने दो सदस्यो को क्रमशः अपने अध्यक्ष और उपाध्यक्ष चुनेगी, राज्यपरिषद् के सभापति तथा उपसभापति को, और लोक-सभा के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष को वेतन तथा अधिदेय, दिये जायेंगे।

राज्य तथा अधिशासी वर्ग :— प्रत्येक राज्य के लिए एक शासक होगा। राज्य की अधिशासी शक्ति शासक में निहित होगी और वह इसका प्रयोग संविधान तथा विधि के अनुसार कर सकेगा। राज्य के शासक का निर्वाचन उन सब व्यक्तियो के अव्यवहित मत से होगा जिनको उस राज्य की विधान-सभा के लिए सामान्य निर्वाचन में मत देने का अधिकार है। शासक की नियुक्ति प्रधान अपने हस्ताक्षरित और मुद्रांकित अधिपत्र द्वारा करेगा। प्रधान के प्रसाद काल तक शासक पदारूढ़ रहेगा। प्रधान को स्वहस्ताक्षरित लेख द्वारा शासक अपना पद-त्यागपत्र दे सकेगा। शासक अपनी पद-प्रवेश तिथि से ५ वर्ष की अवधि तक पद धारण करेगा। शासक पद के लिए व्यक्ति को ३५ वर्ष से बडा और भारत का जानपद होना चाहिए, किन्तु यह आवश्यक नहीं कि वह व्यक्ति उसी राज्य का निवासी हो। शासक भी परिलाभ का अन्य कोई पद अथवा स्थिति न धारण करेगा। पद ग्रहण करने से पूर्व वह राज्य के विधान-मंडल के सदस्यो के समक्ष राज-भक्ति की शपथ लेगा।

मन्त्रि-परिषद् :—शासक को सहायता और मन्त्रणा देने के लिए मन्त्रिपरिषद् होगा जिसका प्रमुख मुख्य मन्त्री होगा। यह परिषद् उसके प्रसाद-काल तक अपने पद पर आसीन रहेगा। पर बिहार, मध्य प्रान्त और बरार तथा उडीसा राज्यों में वन जातियो के कल्याण का प्रभारी एक मन्त्री रहेगा जो पिछडे हुए वर्गों के कल्याण का अथवा किसी अन्य कार्य का प्रभारी हो सकेगा।

प्रत्येक राज्य का शासक उच्च न्यायालय का "राज्य का महाधिवक्ता" नियुक्त करेगा। उसे वे पारितोषण दिये जायेंगे जो शासक निश्चय करे।

किसी राज्य के शासन की समस्त अधिशासी कार्यवाही शासक के नाम से की गई कही जायगी।

मुख्य मन्त्री का कर्त्तव्य :—मुख्य मन्त्री के कर्त्तव्य शासक के प्रति वे ही जो प्रधान मन्त्री के कर्त्तव्य प्रधान के प्रति है। राज्य-कार्यों के प्रशासन-सम्बन्धी मंत्रि-परिषद् के समस्त निर्णय तथा विधानार्थ प्रस्थापनायें शासक को पहुँचाना और ऐसी

जानकारी प्रस्तुत करना जिसे शासक मगावे तथा किसी विषय को, जिस पर मन्त्री ने निर्णय कर दिया है, किन्तु मन्त्रि-परिषद् ने विचार नही किया है, शासक के अपेक्षा करने पर परिषद् के सम्मुख विचारार्थ रखना उसके कर्त्तव्य है।

राज्य का विधान मण्डल :—प्रत्येक राज्य के लिये एक विधान-मण्डल होगा, जो बिहार, बम्बई मद्रास, पजाब, उत्तरप्रदेश तथा पश्चिमी बगाल में शासक और दो आगारो का तथा अन्य राज्यो में शासक तथा एक आगार का होगा। प्रत्येक राज्य की विधान सभा अव्यवहित निर्वाचन द्वारा चुने हुए सदस्यो से बनेगी। निर्वाचन प्रौढमताधिकार के आधार पर होगा। किसी राज्य की विधान-सभा में सदस्यो की समस्त सख्या किसी अवस्था में ३०० से अधिक अथवा ६० से कम न होगी। जहाँ विधान परिषद् है, वहाँ परिषद् के समस्त सदस्यो की सख्या विधान-सभा की समस्त सख्या के २५ प्रतिशत से अधिक न होगी। आधी सख्या अभ्यर्थियो की तालिकाओ में से चुनी जायगी ॐ उस राज्य की विधान-सभा के सदस्य अनुपाती प्रतिनिधान-पद्धति के अनुसार एकल सक्राम्य मत द्वारा निर्वाचित करेंगे, शेष शासक मनोनीत करेगा।

राज्य की प्रत्येक विधान सभा दो सदस्यो को क्रमश अपने अध्यक्ष और उपाध्यक्ष चुनेगी तथा प्रत्येक विधान परिषद् अपना सभापति तथा उपसभापति चुनेगी।

किसी राज्य का विधान मण्डल विधि द्वारा उस राज्य के लिए मुख्याकेक्षक की नियुक्ति के लिए प्रावधान कर सकेगा, तत्पश्चात् शासक स्वविवेक से उस राज्य के लिये मुख्याकेक्षक नियुक्त कर सकेगा, इस प्रकार नियुक्त मुख्याकेक्षक अपने पद से केवल उस रीति और उन कारणो से ही निष्कासित किया जा सकेगा जिन रीति और जिन कारणो से कि उस राज्य के उच्च न्यायालय का कोई न्यायाधीश निष्कासित किया जा सकता है।

राज्यों के बीच सहयोग :—यदि किसी समय प्रधान को यह दीखे कि किसी परिषद् की स्थापना से लोकहितो की सेवा होगी, जिस पर राज्यो के बीच जो विवाद उत्पन्न हो चुके हो, उनकी जाँच करने और उन पर परामर्श देन, कुछ अथवा सघ और एक या अधिक राज्य के पारस्परिक हित से सबद्ध विषयो के अनुसधान तथा पर्यालोचन करने अथवा ऐसे किसी विषय पर अभिस्ताव करने और विशेषत: उस विषय पर नीति और कार्यवाही के अधिक अच्छे सहयोग के हेतु अभिस्ताव करने का भार हो तो प्रधान के लिये आदेश द्वारा ऐसी परिषद् की स्थापना वैध है। यदि प्रधान को समाधान हो जाये कि गम्भीर स्थति विद्यमान है, जिससे भारत को आतरिक या बाह्य सकट का भय है, चाहे युद्ध से, चाह आन्तरिक हिंसा से, तो वह

उद्घोषणा द्वारा तदर्थ घोषणा करेगा। ऐसी स्थिति में किसी राज्य की समस्त अथवा आंशिक शक्ति को प्रधान स्वयं धारण कर सकेगा।

अल्पसंख्यकों की रक्षा :—लोक सभा में अल्पसंख्यकों के लिये स्थान सुरक्षित रखे जायेंगे। लोक सभा में आंग्ल भारतीय समुदाय के प्रतिनिधित्व के लिये विशेष प्रावधान होगा। राज्यों की विधान सभाओं में अल्पसंख्यकों के लिये स्थान आरक्षित रहेंगे। सेवाओं और पदों के लिये अल्पसंख्यक समुदायों के दावों पर ध्यान रखा जायेगा। पिछड़ी हुई जातियों की अवस्थाओं व अनुसंधान के लिए आयोग की नियुक्ति होगी, किन्तु अल्पसंख्यकों के लिए स्थानों का आरक्षण केवल १० वर्ष तक रहेगा, जब तक कि उसका प्रवर्तन संविधान के संशोधन से चालू न रखा जाए।

संविधान प्रारम्भ और विखंडन :—(१) इस संविधान का नाम भारतीय संविधान है। (२) २६ जनवरी सन् १९५० से यह संविधान पूर्ण रूप से लागू है। (३) भारतीय स्वाधीनता अधिनियम १९४७ तथा भारत शासन अधिनियम १९३५, भारत केन्द्रीय शासन और विधान मंडल-अधिनियम १९४६ के सहित तथा भारत शासन अधिनियम १९३५ को संशोधन और अनुपूरण करने वाले अन्य सब अधिनियम प्रभाव शून्य हो जायेंगे।

प्रश्न

१ भारतीय संविधान में नागरिक को क्या अधिकार दिये गये हैं? इसमें किस प्रकार अल्पसंख्यकों की रक्षा की गई है।

२. संविधान में भारत के शासन की क्या व्यवस्था है?

परीक्षा प्रश्न-पत्र

१९५३

(इतिहास मुख्य) द्वितीय प्रश्न-पत्र

Either Group-A (Indian History)

समय ३ घण्टे . पूर्णांक ३०

नोट :—केवल पाँच प्रश्नों के उत्तर दीजिए और प्रत्येक खण्ड से कम से कम दो प्रश्नों के उत्तर दीजिए। सब प्रश्नों के अंक समान हैं।

खण्ड (क)

१. भारत में बाबर की कृतियों का वर्णन कीजिए।

२. अकबर के समय की मालगुजारी प्रथा का विवरण लिखिए। उसका कृषकों की आर्थिक दशा पर क्या प्रभाव पड़ा ?

३. क्या यह कहना सत्य है कि शाहजहाँ का समय मुगलकाल का स्वर्ण युग है ?

४. औरंगजेब की दक्षिण विजय का हाल लिखिए।

५. मुगल कालीन भारत में साहित्य के विकास पर प्रकाश डालिए ?

खण्ड (ख)

६. आपके विचार में वारन हेस्टिंग्स कहा तक ब्रिटिश राज्य का संस्थापक कहा जा सकता है ?

७. लार्ड विलियम बेंटिक के सुधारों का वर्णन कीजिए और यह भी बताइए कि उन्होंने ब्रिटिश राज्य को कैसे दृढ़ किया ?

८. "उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत में धर्म और समाज सुधार की एक बड़ी उग्र लहर उठी, इस पर प्रकाश डालिए ?

९. लार्ड कर्जन की शासन सम्बन्धी नीति का वर्णन कीजिए।

१०. १९४७ में भारत का विभाजन किन परिस्थितियों के कारण हुआ।

ग्रुप (ख) ससार का इतिहास

नोट :—किन्ही पाँच प्रश्नो के उत्तर दीजिए। सब प्रश्नो के अंक समान हैं।

१ सास्कृतिक पुनरुत्थान (Renaissance) से आप क्या समझते हैं पश्चिमी योरप के मनुष्यों के जीवन पर उसका क्या प्रभाव पड़ा ?

२ राष्ट्र (nation) राज्यो के उत्थान का योरप की उन्नति में कहाँ त हाथ था ?

३ इगलैंड के गृह युद्ध (Civil War) के क्या कारण थे और उसके क्य परिणाम हुए ?

४. एलीजाबेथ या रिशलू या अकबर की गृह नीति की विवेचना कीजिए।

५ १६वी शताब्दी में महान शक्तियो (Great powers) के साम्राज्य विस्तार सम्बन्धी कार्यों के अच्छे और बुरे परिणामो का सक्षेप में वर्णन कीजिये।

६. वर्तमान जर्मनी को बनाने में बिस्मार्क की जो देन है उसकी विवेचना कीजिए।

७ पूर्वी प्रश्न का क्या अर्थ है ? १६ वी शताब्दी में आंग्ल-तुर्क सम्बन्ध के बारे में इस प्रश्न के महत्व की विवेचना कीजए।

८ प्रथम विश्व महायुद्ध (१६१४—१८) के आन्तरिक कारणो की विवेचना कीजिए।

६ 'फासिस्टवाद' का क्या अर्थ है ? इटली में उसकी उन्नति, विकास और पतन का वर्णन कीजिये।

१०. सयुक्त राष्ट्र (United Nations Organisation) की स्थापना के कारण उसकी व्यवस्था पर एक सक्षिप्त निबन्ध लिखिये।

११ शताब्दियो के नीद की बात चीन का एकाएक जागरण ससार के इतिहास में एक अपूर्व घटना है।

१२ महात्मा गान्धी जी के जिन उपदेशो का ससार व्यापी महत्व है, उनके सम्बन्ध में एक सक्षिप्त निबन्ध लिखिये।

१९५४

(द्वितीय प्रश्न पत्र)

भाग (क)

१. शेरशाह सूरी को अपना राज्याधिकार स्थापित करने में क्या-क्या कारण सहायक हुये, सविस्तार बतलाइये ?

२. किन कारणों से सम्राट अकबर एक 'राष्ट्रीय सम्राट' माना जाता है ?

३. "मुगल" सम्राटों की "दक्षिणी" नीति ने मुगल साम्राज्य की नींव खोखली कर दी। क्या आप इस कथन से सहमत है ?

४. पेशवाओं के काल में मराठा साम्राज्य के संगठन और शासन व्यवस्था में क्या-क्या परिवर्तन हुये ? आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।

५. मुगल राज्य काल में भारतीय साहित्य कला के विकास पर प्रकाश डालिये।

भाग (ख)

६. डूप्ले की नीति की व्याख्या कीजिये और बतलाइये कि क्या यथार्थ में फ्रांस की सरकार के सहयोग के कारण ही वह सफल हुआ ?

७. "वारेन हेस्टिंग्ज की शासन नीति सराहनीय थी।" इस कथन की विवेचना कीजिए।

८. लार्ड डलहौजी के सुधारों का वर्णन कीजिये।

९. १८५४ के पश्चात् भारतीय शिक्षा व्यवस्था के विकास की और उसके परिणामो की व्याख्या कीजिये।

१०. सामाजिक सुधार के सम्बन्ध में महात्मा गान्धी के क्या विचार थे, उन्होंने इस क्षेत्र में क्या-क्या कार्य किये ?

१९५५
इण्टरमीडिएट परीक्षा
इतिहास (मुख्य)
द्वितीय प्रश्न पत्र

समय—तीन घण्टे] [पूर्णांक—५०

टिप्पणी :—भारतीय इतिहास में प्रविष्ट होने वाले विद्यार्थी भारतीय इतिहास के खण्ड से तथा विश्व इतिहास में प्रविष्ट होने वाले विद्यार्थी केवल विश्व इतिहास के खंड से उत्तर दें।

खण्ड १
भारतीय इतिहास

सूचना :—किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर दीजिए, परन्तु प्रत्येक भाग में से कम से कम दो प्रश्नों के उत्तर दीजिए। सब प्रश्नों के अंक समान हैं।

भाग (अ)

१. इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं कि "बाबर मुगल साम्राज्य का निर्माता था?" अपने विचारों की व्याख्या सविस्तार कीजिए।

२. शेरशाह के उत्तराधिकारी सूरी साम्राज्य को सुरक्षित रखने में क्यों असफल हुए?

३. सविस्तार बताइये कि अकबर ने कला और विद्या के विकास के लिए क्या-क्या कार्य किए?

४ क्या यह कथन सत्य है कि शाहजहाँ का राज्य काल मुगल साम्राज्य का स्वर्ण युग है? सविस्तार विवेचना कीजिए।

५. मरहठा युद्ध में औरंगजेब की असफलता के कारण बताइये।

भाग (ब)

६. ईस्ट इण्डया कम्पनी और मीर कासिम के बीच संघर्ष के कारण बताइये और तदन्तर जो व्यवस्था हुई उसकी व्याख्या कीजिए।

७. वारेन हेस्टिंग्स की बाह्य नीति की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

८. भारतीय राज्यों के प्रति डलहौजी की नीति की सविस्तार व्याख्या कीजिए और उसके परिणाम बताइए।

९ "लार्ड कर्जन ने भारत का बहुत उपकार किया।" इस कथन की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए।

१०. १८५८ के पश्चात्, भारत में हुए सांस्कृतिक परिवर्तनों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।